मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति ३०००, १९५७

सितम्बर, १९५७

दो रुपये

बालकोको चरखे तैयार करके देने पडेंगे। माल टूटे या बिगडे तब अुसे सुधारनेके लिअे बालकोको दूसरेकी मदद चाहिये। यानी वे परावलम्बी रहेंगे। तकली तो स्वय भी बना सकते है। वैसा करनेमे अुन्हे खेल और काम दोनो मिलेंगे। दो कामोके बीचके समयमे खेलमे, घरमें, सभामे जहा भी चाहो तकली चलाअी जा सकती है। यदि शिक्षक पाच मिनटके लिअे बाहर जाय तो अुतनी देरके लिअे चरखा खोल कर चलानेका बालकोका मन नही होगा, लेकिन तकली तो वे तुरन्त ही निकाल कर चलाने लगेंगे।

अिसके अलावा, अिस प्रश्नके पीछे यह विचार मालूम होता है कि तकली कुछ दिनके लिअे है और चरखा हमेशा रखनेकी चीज है। यह भूल है। तकली और चरखा दोनो खादीके कार्यसाधक है और दोनोका अुसमें सदाका स्थान है। वस्त्रस्वावलम्बनके लिअे चरखेका ही होना जरूरी नही है। मजदूरी पर कातनेवालेके लिअे चरखा अनिवार्य माना जायगा। लेकिन अुसमे तो शायद वर्तमान चरखेका स्थान मगन चरखा ले सकता है। सादे चरखेके और मगन चरखेके अुत्पादनमे बडा फर्क तो रहेगा ही। अुसी प्रकार तकली और चरखेके बीच भी रहेगा। फिर भी, तकलीकी जो गति आज सिद्ध हुअी है वह अितनी तो है कि अुसे वस्त्रोत्पादक यत्रके रूपमे तुच्छ नही कहा जा सकता। तकलीका कुशल कतवैया चरखेके साधारण कतवैयेको स्पर्धामे हरा सकता है। विनोबा तकलीको जो वस्त्रपूर्णा कहते है, वह कोअी अुनका तकलीके लिअे पागलपनकी हद तक पहुचा हुआ अुत्साह नही है, बल्कि अेक गणितशास्त्री और शिक्षाशास्त्रीके अनुभवोका निचोड है।

हमारी शिक्षाका अेक दोष यह है कि हम दाहिने हाथसे या बाये हाथसे काम करनेवाले बन जाते है। वह हमें दोनो हाथोंसे काम करनेकी आदत नही डालती। यह दोष तकलीको दोनो हाथोंसे चलानेका अभ्यास करनेसे दूर हो जायगा। तकली पर [illegible] ध्यान नही दिया, यह मुझे ठीक नही मालूम होता।

अैसा दिखाअी देता है कि मानव-जाति व्यापार, युद्ध, सुलह-शान्ति, विज्ञान और कलाके कार्योंमे तल्लीन है। परन्तु मानव-जातिके लिअे सच्चा और महत्त्वका कार्य तो अेक ही है, और वही कार्य वह करती है। वह कार्य है जिन नैतिक सिद्धान्तोंके आधार पर वह जीती है, अुनका साक्षात्कार करना। नैतिक सिद्धान्तोंका अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आया है। मानव-जाति अपने लाभके लिअे अुन्हें केवल विशद (=अुनका स्पष्ट ज्ञान) कर लेती है।

— **टॉल्स्टॉय** ('तब क्या करेंगे?' से)

ॐ

न होय जे देवा असुरां।
तें तुझें करणे दातारा।
समर्थ न देखो दुसरा।
तुजवाचूनि ॥

आणिका कवणा नमस्कारूं।
कवणाचे स्तवन करूं।
जयजयाजी श्री गुरु।
अगाध महिमा ॥

तुज विण अन्य न देखो कोणी।
म्हणोनि आणिकाते न मानी।
हा मस्तक तुझिये चरणी।
ठेविला सत्य ॥

(परमामृत)

प्रस्तावना

लगभग १७–१८ वर्ष पहले जब मैं कॉलेजमें पढता था, तब हमारे देशकी प्राथमिक तालीमके प्रश्नने पहले-पहल मुझे आकर्षित किया था। जिस तरह माननीय गोखलेजीके थोडे मिनटके सहवासने भाईश्री करसनदास चितळियाके जीवनका रास्ता ही बदल डाला, अुसी तरह अुनका प्राथमिक तालीम सम्बन्धी मसौदा मेरे जीवनको शिक्षाके क्षेत्रमे ले जायगा, अैसा तो अुस समय नही लगता था। परन्तु अुसने मुझे जिस विषयमें विचार करनेकी प्रेरणा अवश्य दी थी।

मुझे याद नही आता कि अैसी ही किसी बाह्य प्रेरणासे मैं धर्ममे रस लेने लगा होअू। धर्मके सम्बन्धमें तो यही कहना चाहिये कि धार्मिक माता-पिता और स्वामीनारायण सम्प्रदायके सन्तो द्वारा डाले हुअे संस्कार मुझमे अपने-आप खिलते और विकसित होते गये।

कॉलेजमें अुस समय संपत्तिशास्त्र और विज्ञानशास्त्र मेरे बडे प्रिय विषय थे।

अिन सबके फलस्वरूप मेरी यह श्रद्धा हो गअी थी कि हमारे देशके सारे दु:ख दूर करनेके अुपाय चार प्रकारके हैं अनिवार्य प्राथमिक तालीम, धर्म-प्रचार, विज्ञानकी सहायतासे चलाये जा सकने-वाले छोटे-छोटे अुद्योग तथा देशकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन।

परन्तु यह नही कहा जा सकता कि अिन चारोके बारेमें मुझे कोअी तात्त्विक विचार अुस समय सूझे थे। अितना स्मरण है कि अुस समय विद्यार्थियोकी अेक सभामे प्राथमिक तालीमके बारेमें मैंने जो निबन्ध पढा था, अुसमे अभ्यासक्रमकी अेक योजना भी बताअी थी। अुसमें मातृभाषाको स्थान दिया गया था, हिन्दीको स्थान दिया गया था, धार्मिक शिक्षणको स्थान दिया गया था और अुद्योग-धन्धोको स्थान दिया गया था। परन्तु मेरा खयाल है कि सारी योजना परम्परागत मार्ग पर ही बनाअी गअी होगी। मुझे स्वयं तो शिक्षणका

कोओी अनुभव नही था। अिसलिअे सारी चीज दूसरोके विचारोका निष्कर्ष होगी अथवा तर्कसे खोजी हुअी होगी।

अुस समय मेरा यह विश्वास था कि धार्मिक शिक्षणका अर्थ है स्वामीनारायण धर्मका प्रचार। परन्तु भिन्न भिन्न सम्प्रदायोके श्रोता-वर्गके सामने अैसा कहनेकी मेरी हिम्मत नही थी। अिसलिअे जिन नैतिक गुणो पर स्वामीनारायण सम्प्रदायने जोर दिया था, अुन गुणोकी तालीमको मै धार्मिक शिक्षण कहता था। परन्तु मनमें यह धारणा रहती थी कि ये गुण स्वामीनारायण सम्प्रदायके प्रचारके बिना और किसी तरहसे समाजमे आनेवाले नही है। अतः सहजानन्द स्वामीके धर्मको मै नैतिक गुणोका निष्कर्ष मानता था।

अुसके बाद ८–९ वर्षका समय चला गया। अिस बीच अिन विषयोमे मेरी कुछ दिलचस्पी तो बनी रही, परन्तु यह पता नही था कि अिसी क्षेत्रमें मेरे जीवनका प्रवाह घूमेगा। मै गाधीजीके सम्पर्कमें आया और अपनी जिस चित्तवृत्तिका मुझे स्पष्ट भान नही था, अुसका स्पष्ट भान हुआ।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय और प्राथमिक तालीमके प्रचारकी पुरानी वासनायें फिर जाग्रत हुअी। अिन दो प्रकारकी वासनाओके कारण वर्षों तक मैने यह आशा रखी कि स्वामीनारायण सम्प्रदाय द्वारा ही अेक विद्यापीठकी स्थापना की जाय, जिससे अेक पंथ दो काज सिद्ध हो जाय। लेकिन सम्प्रदायका वातावरण अैसी प्रवृत्तिके अनुकूल नही था। और अैसे किसी दूसरे व्यक्तिको मै जानता न था, जो मरी अिस काममें सहायता करता। अिसके अलावा, न तो मुझे धर्मके तत्त्वोका अनुभव था और न तालीमका कोअी अनुभव था। अत मैने अिस निश्चयके साथ आश्रममें प्रवेश किया कि वहा रहकर मै यह अनुभव प्राप्त करूंगा।

आश्रममें कुछ समय तक मैने शिक्षकका काम किया। अभी तक मुझे तात्त्विक विचारोकी कोअी दिशा सूझी नही थी। परन्तु दो बातोंका निश्चय हो गया था (१) शिक्षकके रूपमें मै अयोग्य

हूं; (२) धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे धर्म कोअी अलग ही चीज है, जिसका ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके विना प्राप्त नही हो सकता।

शिक्षकके रूपमें मेरी अयोग्यता आज मुझे जैसी दिखाअी देती है, वैसी अुन समय विलकुल नहीं दिखाअी दी थी। अुन दिनो मेरा खयाल था कि मुझे शिक्षा देना नही आता, क्योकि मैं वहुश्रुत नहीं हूं, मुझमें ज्ञान देनेकी कला नही है या मेरी आवाज तीखी है आदि आदि। लेकिन अुन दिनो मुझे अिस वातका स्पष्ट पता नही चला था कि शिक्षकके रूपमे मेरी अयोग्यताका असल कारण यह है कि मै स्वयं तालीम पाया हुआ नही हू।

भूतकाल पर आजकी दृष्टिसे विचार करने पर मैं देखता हू कि प्राथमिक और धार्मिक तालीमके वारेमें मेरा अत्यन्त आग्रह होनेका कारण यह था कि मैंने स्वय यह दो प्रकारकी तालीम नहीं पाअी थी। जव तक अपने भीतरकी अिन कमियोका मुझे स्पष्ट भान नहीं था, तव तक अुनके प्रचारके वारेमे मेरा आग्रह भी तीव्र नही था; जैसे-जैसे ये कमियां मुझे अधिक खलने लगीं, वैसे-वैसे अुनके प्रचारके वारेमें मेरा आग्रह भी तीव्रसे तीव्रतर होता गया। अलवत्ता, यह ज्ञान मुझे विलकुल नही था कि मेरे अन्दरकी कमिया ही मुझे वाहर दिखाअी देती है।

पाठकोंको लगेगा कि अेक वर्गसे दूसरे वर्गमें चढते हुअे वी०अे०, अेल-अेल० वी० तक पहुचा हुआ मै यह क्या वकता हू कि मै प्राथमिक तालीमसे वञ्चित था। धर्मका ज्ञान मुझे नही था, यह वात शायद पाठक स्वीकार कर लेंगे, परन्तु यह वात वे सभवत. नही मानेंगे कि मैंने प्राथमिक तालीम नही पाअी थी। मै पढा-लिखा था, अिससे मेरा अिनकार नही। फिर भी मेरी प्राथमिक तालीम — सम्पूर्ण तालीमका मूल आधार, जिसके विना सारा शिक्षण रेतमें वनाये हुअे मकानकी तरह भयंकर हो जाता है — पूरी नही हुअी थी। यह वात मुझे समझानी पडेगी।

मैं कुछ विद्यार्थियोको अैसी आदर्श तालीम देनेका अिरादा रखता था, जिससे वे भविष्यमें देशके आदर्श सेवक वनें। मातृभाषाका ठोस

ज्ञान, हिन्दी, सस्कृत, अंग्रेजी, अितिहास, भूगोल, गणित, जमाखर्च या हिसाब-नवीसी, संगीत, प्रार्थना आदि विपयोकी शिक्षा लेकर विद्यार्थी आदर्श नागरिक बनेगे, अैसे मेरे मुहसे निकलनेवाले सिद्धान्त तो नही, परन्तु अन्त करणके विचार मालूम होते थे। परन्तु मैंने देखा कि ये सव तो अलग अलग विद्यायें है। अैसी विद्याये तो अनंत हो सकती हैं। और यह निश्चय करना कठिन था कि अैसी कितनी विद्याओके ज्ञानसे विद्यार्थी आदर्श नागरिक बन सकते है। अितने विषयोकी गिनतीके क्या कारण है, यह मैंने अुन दिनों अेक लेखमें समझाया था। लेकिन आज मै देखता हू कि अुन कारणोके पीछे यदि कोअी सिद्धान्त रहा हो, तो अुसे मै अुस समय समझा नही था। मै केवल अितना समझ पाया था कि शिक्षण देनेमे कडा परिश्रम करनेके बावजूद मुझे और मेरे विद्यार्थियोको सन्तोष नही होता था। रोगी मनुष्य जिस तरह रोगकी वेचैनीमे करवट बदलकर, अिस ओरका तकिया अुस ओर रखकर, लेटा हो तो वैठकर और वैठा हो तो लेटकर, अथवा मा-बाप या भगवानको पुकार कर चैन पानेकी कोशिश करता है, अुसी तरह हम लोग वर्ग बदल कर, समयपत्र बदल कर, विषय बदलकर, अपने दोषोके लिअे विद्यार्थियोको दण्ड देकर और शारीरिक दण्ड देनेमे अनीति मालूम होने पर अुपवासके वहाने अुन्हे मानसिक दण्ड देकर सन्तोष पानेका मार्ग खोजते थे। परन्तु रोगकी जडकी कोअी दवा ध्यानमें नही आती थी।

अुस रोगकी जड यह थी। मुझमें और मेरे विद्यार्थियोमें अैसा कोअी तात्त्विक भेद नही था, जिससे हम दोनोमें यह फर्क किया जा सकता कि वे तालीम लेने लायक है और मै तालीम देने लायक हू। हमारे विद्यार्थी आपसमें लडते-झगड़ते थे, अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे, कअी वार वाग्युद्ध पर और कभी कभी मार-पीट पर भी अुतर आते थे। अुसी तरह हम शिक्षक अथवा व्यवस्थापक भी आपसमें लडते थे, अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे और कअी वार वाग्युद्ध पर अुतर आते थे। हमारे बीच मार-पीटकी नौवत नही आती थी, अुसका अेकमात्र कारण यह था कि हमारे पास अधिक तेज फलवाला वाण था; वह था मर्मभेदी वाणीका वाण। वालकोने आपसमें जो मार-पीट की थी,

अुसका आज अुन्हे स्मरण होगा या नही यह शकास्पद है। परन्तु हमारे वाग्बाणोके घाव तो जीवन भर याद रहनेवाले थे। बालकोकी दृष्टिसे सोचा जाय तो अुनके झगडोके विषय हमारे झगडोके विषयोसे अुनके जीवनमें कम महत्त्व नही रखते थे। बालक अपने विषयोकी तुच्छताको समझ नही सकते थे। और हमारे विषयोको तो हम तुच्छ मान ही कैसे सकते थे?

अिसके सिवाय, बालक जिन वस्तुओसे खुश होते थे, अुन्ही वस्तुओसे हम भी खुश होते थे। अुन्हे मिष्टान्न अच्छे लगते थे, तो हमें भी अच्छे ही लगते थे। अुन्हे सगीतमे आनन्द आता था, तो हमें भी अुसमें आनन्द आता था, अिसीलिअे तो हम अुन्हे सगीत सिखानेको ललचाते थे। यदि हम दोनोके बीच कोअी भेद था तो अितना ही कि अुनमे जो विषयेच्छाये नही थी वे हमारी बडी अुम्रके कारण हममे थी। हमारे विद्यार्थी गर्मीके दिनोमे भर दोपहरीमें मस्त खेलते थे, परन्तु हमारी चमडी बहुत नाजुक थी, वह धूप सहन नही कर सकती थी। काम-वासनासे विह्वल होनेका तो हमारा ही हतभाग्य था। अधिकारकी लालसा और मान-अपमानके झगडे अुनकी अपेक्षा हमारे बीच ही अधिक तीव्र थे।

आश्रमकी साय-प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञके लक्षणोवाले गीताके श्लोक बोलनेका रिवाज है। मैं देखता था कि

१ अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन ।
२ ध्यायतो विषयान् पुस सगस्तेषूपजायते।
३ अिन्द्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नाविमिवाभसि।।
४ अिन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

आदि श्लोक जितने बालकोको लागू होते अुतने ही हमे भी लागू होते थे। क्रोध, लोभ, अीर्ष्या आदि विकार जिस प्रकार बालकोको विवश कर देते थे, अुसी प्रकार हमे भी विवश कर देते थे। भेद विकारोका नही था, केवल विकारोके प्रत्ययो — निमित्तों — का था।

मैंने देखा कि अिस विषयमें अेक ओर बालक और दूसरी ओर युनिवर्सिटीकी दो-दो डिग्रिया रखनेवाले, युरोप या अमेरिकाके डिग्रीधारी, कवित्वकी ख्यातिवाले, संगीतके निष्णात, भिन्न भिन्न प्रकारकी कारीगरीमें कुशल, कलाकी दृष्टि रखनेवाले, तत्त्वज्ञानके अभ्यासी, योगके अभ्यासी, अवधानी, विधिवत् देवपूजा करनेवाले, साधुओंको भोजन करानेवाले, ब्रह्मचारी, संन्यासी, देशके लिअे या सम्प्रदायके लिअे जीवन अर्पण करनेवाले जवान, बूढे, स्त्री, पुरुष — सब अेक ही मिट्टीके पुतले है। अिन विकारोकी गुलामीसे न तो स्वतत्र प्रजाये मुक्त है, और न परतत्र प्रजाये।

अेक बात और। आश्रमकी शालाके प्रयोगोके दिनोमें परिवारके कुछ बालकोको भी हमने साथ रखा था। अुनमे आश्रमवासियोके बालक भी थे। दूसरे लोगोने भी कुछ बालक हमें सौंपे थे। मैंने देखा कि बहुतसे पिताओने परेशान होकर अपने बालकोको आश्रममे रखा था; अुन्हे अपने बालकोंसे सतोष नही था; वे हमारे द्वारा अुनमे सुधार कराना चाहते थे। अिस सम्बन्धमें बहुत बार वे हमारे पास आकर बालकोंके बारेमें चिता प्रकट करते थे और हमारी 'सलाह' मागते थे। माता-पिताके साथ हुअी बातचीतसे मुझे पता चलता था कि पिता-पुत्रके बीचके असन्तोषकारक सम्बन्धो और पुत्रोके दोषोका कारण घरका वातावरण ही था। भले ही पिताको बालकोकी अुमग, अुत्साह, खेलकूद वगैरा किसीके साथ सहानुभूति न हो, किसी दिन भी अुन्होने बालकोको प्रेमसे अपने पास बैठाने जितना मनको अुदार न किया हो, स्वय कैसा भी व्यवहार करते हो और चाहे जैसी आदतें रखते हो, चाहे जैसे हलके शब्दोंसे बालकोका अपमान करते हो, अव्यवस्थित रहते हो, स्वयं अपनी पत्नीके साथ चाहे जैसा व्यवहार करते हो, लगभग पुत्रकी आयुकी लडकी ब्याह कर लाये हो, अपने रहन-सहनमें कोअी सुधार करनेकी अिच्छा न रखते हो, फिर भी वे यह चाहते थे कि अुनका बालक विनयी, परिश्रमी, सयमी और सबको पसन्द आने लायक बन जाय। 'हमारा जीवन तो अब गया, पर हम चाहते है कि ये बालक सुधर जाय' — अुनकी यह माग मुझे विचित्र मालूम होती थी और मैंने अेक-दो पिताओसे

कहा भी था कि जब तक आप न सुधरेंगे, तब तक आपका लड़का नही सुधर सकता। फिर भी अैसा हो सकनेकी मुझे आशा तो थी।

परतु माता-पिता या पालकोके लिअे जिस नियमको मै ठीक समझता था, वही नियम मुझे भी लागू होता है, अिस चीजको मै अुस समय समझ नही पाया था। जिस प्रकार बाहरके बालक अुनके घरका वातावरण शुद्ध हुअे बिना आश्रमके ४–६ महीनोके सहवाससे सुधर नही सकते, अुसी प्रकार मेरी देखरेखमें रहनेवाले बालक मेरे घरका वातावरण शुद्ध हुअे बिना वैसे नही बन सकते जैसे बननेकी मै अुनसे अपेक्षा रखता हूं — यह बात मेरी समझमें नही आ पाती थी। अिसलिअे मेरे और मेरे घरके बालकोके बीच भी असन्तोष ही रहता था। मेरी पत्नीके साथ हर दूसरे-तीसरे दिन मेरा झगडा होता रहता था, अपने किसी निश्चय पर मै कमसे कम अेक माहके लिअे भी दृढतासे अमल नही कर पाता था, मुझे भी अपनी वस्तुअें अुनके स्थान पर करीनेसे रखनेकी आदत नही थी, मेरी मेज भी सदा अव्यवस्थित दशामे रहती थी (आज भी अैसी ही रहती है), भूख न होने पर भी दिनमें २–४ बार खानेकी मेरी अिच्छा हुआ करती थी और कोअी रोकनेवाला न होनेके कारण मैं बेखटके अैसा कर सकता था — फिर भी मैं चाहता था कि मेरे भतीजे झगडा न करनेवाले, दृढनिश्चयी, व्यवस्थित और मिताहारी बनें। और जब मै अुन्हे अैसे बनते न देखता तो परेशान होकर अपना यह भार मैं अन्य किसी शिक्षकको सौंप देता था। ‘पराअी मा ही कडी बनकर बालकको सीधे रास्ते लगा सकती है’ पालकोके अिस सिद्धान्तको मै भी मानता था।

अिसी प्रकार हम यह भी चाहते थे कि हमारे विद्यार्थी केवल विद्या-व्यासगी ही नही, अुद्योग-व्यासगी भी बनें, वे मजदूरकी तरह श्रम करनेवाले बनें। अिसके लिअे हम शालामें बार बार श्रमके लिअे अधिक समय रखनेके प्रयोग करते थे, हममें से अेक-दो शिक्षक बारी बारीसे अिस श्रममें शरीक भी होते थे। परन्तु विद्यार्थियोको श्रमकी अधिकसे अधिक महिमा समझाने पर भी अुनमें हमने पडित-जीवनकी प्रीति ही निर्माण होते देखी; और श्रम प्रेमसे नही

बल्कि वेगारकी भावनासे ही किया जाता देखा। अिसके कारण अितना लिखनेके पश्चात् अब आसानीसे समझमे आ जायेंगे, परन्तु मै अुस समय अुन्हे समझ नही पाया था।

मै यह नही समझ सका कि हमारा जीवन विद्या-व्यासगी था, अुद्यम-व्यासगी नही; बालकोके साथ परिश्रम करनेका समय रखते अुस समय भी हमारा मन तो किसी पुस्तकमे अथवा साहित्य-चर्चामे ही रमा रहता था। अिसके सिवाय, अेक-दो शिक्षक ही बालकोके साथ परिश्रमके काममे अूपर कहे अनुसार बेमनसे भाग लेते थे, जब कि दूसरे शिक्षक तो प्रत्यक्ष रूपमे साहित्यकी ही अुपासना करते थे। साहित्यका खण्डन करनेके हमारे तरीकेमे भी साहित्यकी अुपासना ही होती थी, और श्रमका मण्डन हाथ-पैरसे नही परन्तु अधिकतर लेखो और प्रवचनोसे ही किया जाता था। फिर भी हमारा यह विश्वास था कि जो चीज हममें नही है, वह विद्यार्थी हमसे प्राप्त कर सकेगे।

परन्तु यह सब मै आजकी दृष्टिसे कह रहा हू। अुस समय तो अितना ही भान था कि मेरे चित्तको अिससे शाति नही मिलती। अिसलिअे मै विद्यापीठके नये प्रयोगमे अुत्साह और अुमगसे शरीक हुआ। 'सा विद्या या विमुक्तये' अिस गभीर वाक्यको काकासाहबने विद्यापीठका ध्यानचिह्न बनानेकी सूचना की और विद्यापीठने अिस सूचनाको स्वीकार किया। गाधीजीको यह वाक्य बहुत पसद आया। बादमें अुन्होने 'अेक वर्षमे स्वराज्य' लेनेकी घोषणा की। अिन दो चीजोने फिर मुझे अशान्त कर दिया। विद्यापीठकी सस्था नअी थी। परन्तु केवल नअी सस्थामे शरीक होनेसे ही हृदय थोडा नया हो जाता है? अिस नअी संस्थामें मै पुराना, विविध रागद्वेषोवाले आग्रहोसे पूर्ण हृदय लेकर ही गया था। और जैसे गाडीके नीचे चलनेवाला कुत्ता भ्रमसे मानने लगता है कि वही गाडीको खीच रहा है, वैसे ही मै अपनेको अपूर्व त्यागी, देशभक्तिमे ओतप्रोत और विद्यापीठका स्तंभ समझता था और अपने साथ सहमत न होनेवाले साथियोको स्वार्थी मानता तथा सबके साथ झगडता रहता था। जैसे-जैसे मेरी कमिया मेरी अयोग्यताको तीव्र रूपमे सामने लाने लगी, वैसे-वैसे प्राथमिक तालीम

और धार्मिक तालीमका मेरा आग्रह बढता गया। परन्तु जब मेरा आग्रह न चला तब अपनी अयोग्यता पर क्रोध करनेके बजाय मैं विद्यापीठके अपने काममें शिथिल हो गया। परन्तु मेरा आग्रह न चला, अिसीलिअे मैं बच गया। अुपरोक्त अशान्ति मुझे परेशान कर ही रही थी। मेरे मनमे अितना तो स्पष्ट हो गया कि मुक्तिकी तालीम देनेकी योग्यता पदवीधारियोमे, साहित्य-सगीत-कलाके अुपासकोमें अथवा शास्त्रियोमे भी नही है। यह योग्यता राष्ट्रभाषामे भी नही है, मातृभाषामे भी नही है और अग्रेजीमे भी नही है। अिसलिअे अिन सबके अुच्च शिक्षणमे पहलेसे ही शिथिल रहनेवाली मेरी श्रद्धा अब बिलकुल अुठ गअी। यह भी अेकागी दृष्टि ही थी।

अिस बीच धार्मिक पुस्तकोका मेरा पठन बढता जा रहा था। जैसा कि बहुत बार होता है, जिस वस्तुको मैं कमसे कम समझता था अथवा जिस वस्तुको मैंने अपने जीवनमे कमसे कम सिद्ध किया था, अुसके विषयमे मैं अधिक भारपूर्वक और विश्वासके ढोगके साथ बोलता या लिखता था। किसी अचूक मार्गदर्शकको मैं जानता नही था। स्वामीनारायण सप्रदायके अच्छे अच्छे साधुओके सपर्कमें मैं आया करता था, और गाधीजीकी ओरसे यम-नियमोके पालन तथा विचारोके बारेमें प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलती रहती थी।

अिस समय धर्म-विचार और शिक्षण-विचारके बीच अेक बडा विरोध मेरे ध्यानमें आया।

धर्मशास्त्र कहते है. भोगसे विषयोकी शाति नही होती; अिन्द्रियोको लाड न लडाओ, मनको वशमे रखो; मन कहे वैसा मत करो, यम-नियमोका पालन करो, विषयोमे रस कम करो; राग-द्वेषसे परे रहो। धर्मशास्त्र यह भी कहते है सगीत-नृत्य-वाद्य आदि विद्यार्थियो, सयम साधनेका प्रयत्न करनेवाले पुरुषो और ब्रह्म-चारियोके लिअे वर्ज्य है, अेक अिन्द्रियको भी स्वतत्रता देनेसे सब अिन्द्रियोका काबू चला जाता है, आदि आदि। शिक्षणशास्त्र कहता है —और यह शास्त्र तो आश्रमके सयमी वातावरणको भी मान्य था —कि बालककी सारी अिन्द्रियोका विकास करो, सगीतके बिना

शिक्षण अधूरा है, कला राष्ट्रका प्राण है, साहित्य प्रजाका जीवन है, बालकको अपनी सोची हुअी चीज मत दो, बल्कि अुसे जिस चीजमें रस हो वही दो। विषयोंको सरस बनाओ। अिसके लिअे बालकोंसे नाटकका अभिनय कराओ, अुन्हें रास खेलाओ, शालाको सजाना सिखाओ, अिसके अलावा, बालकसे 'राष्ट्रदेवो भव' कहो, अिस तरह अुसे अितिहासका ज्ञान दो, अुसीके देशकी संस्कृति (अर्थात् प्रकृति) का पोषण करनेवाला ज्ञान दो, आदि आदि।

अिस विरोधको मैं समझता तो था, परन्तु स्पष्ट रूपमें नहीं; अतः अिस विरोधको टालनेकी कुंजी तो मुझे मिल ही कैसे सकती थी?

परन्तु बड़ोंके आशीर्वादसे और मित्रोंके प्रेमसे मेरी यह परेशानी बहुत समय तक नहीं रही। थोड़े ही समयमें मुझे अपने सद्गुरुका परिचय हो गया; और गुरुके रूपमें अुनके साथ हुअे मेरे पहले ही समागममें अुन्होंने मुझे विचारकी अेक अैसी दृष्टि प्रदान की, जिससे जीवन और जगत्के विषयमें सोचनेकी मेरी पद्धतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। अिसके सिवाय, अुन्होंने मुझे अेक अैसी कसौटी बताअी, जिस पर कसनेसे जगत्की प्रत्येक विभूतिका सच्चा कस निकल सके।*

भाग्यवशात् मुझे फिर विद्यापीठमें जुड़ना पड़ा। तभी मैंने केवल सद्गुरुसे कसौटी ही प्राप्त की थी; परन्तु मैं अुसका अुपयोग नहीं जानता था, और आज भी पूरी तरह नहीं जानता। अिसका कारण यह है कि तुलना करनेके लिअे सुवर्णका जो शुद्ध नमूना मेरे पास रहना चाहिये, अुतना मैं अभी तक स्वामी नहीं बन पाया था। अिसलिअे अभी तक मेरी प्राथमिक शिक्षणके प्रचारकी अिच्छा शान्त नहीं हुअी थी।

परन्तु अब अेक दूसरे अनुभव पर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। [illegible] आन्दोलनके आरम्भमें [illegible] [illegible] कारण जिसी प्रवृत्तिमें

* अिस दृष्टि तथा कसौटीके बारेमें दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावनामें [illegible] [illegible] [illegible] है।

पैसेका तो विचार ही नही आता था। परन्तु मैं फिरसे विद्यापीठमे जुडा, तब मैंने प्रत्येक सस्थाके व्यवस्थापकोको पैसोकी चिन्ता करते देखा। धनी लोगोको ताना मारनेवालोका काम धनके विना चलता नही था। विश्वभारतीसे लेकर छोटेसे-छोटे कुमार-मदिरके आचार्य तक सब तिरस्कारके पात्र बने हुअे साधुओकी तरह 'सेठजी, पैसा धर दो' करते थे। ब्रह्मदेशसे आरभ करके अफ्रीका तकके विशाल भूखण्डमें प्रत्येक सस्थाके चन्दा अुगाहनेवाले लोग घूम रहे थे। मदिरके महाराज और साधु किसी भी प्रकारके स्थूल कल्याणकी आशा नही दिलाते थे; अुनकी हुडिया तो स्वर्गमें ही सिकरनेवाली थी, जब कि हम प्रत्यक्ष जन-कल्याणकी वात कहते थे आपके वालकोको ज्ञान मिलेगा, आपको स्वराज्य मिलेगा, देशकी 'अबुद्धि' दूर होगी, अित्यादि अित्यादि। परन्तु लोग हमारे वचनोकी तरफ ध्यान ही नही देते थे। मदिरोके दान पर और साधुओको भोजन करानेमें अुनकी श्रद्धा अधिक बैठती है, अिसका कारण क्या है? क्या वे अितने जड है कि अपने (हमारी दृष्टिसे) प्रत्यक्ष दिखाअी देनेवाले स्वार्थको भी नही समझ सकते, या हमारा ही कोअी दोष है? अिस अुधेड-बुनमें मैं पडा, और तालीमके माने जानेवाले प्रत्येक अगका अुपरोक्त कसौटीके आधार पर विचार करने लगा।

✓ मेरे गुरुदेवकी प्रदान की हुअी दृष्टिसे अेक नअी वस्तु भी मेरे ध्यानमें आअी। विविध प्रवृत्तियोमें लगे हुअे हम सब लोगोको अपनी आजकी स्थितिसे सतोष नही है, हमें अिस बातका भान है कि हममें कोअी न्यूनता है। परन्तु वह न्यूनता है क्या, अिसका ज्ञान नहीं है। हम अपने आसपास देखते हैं। दूसरे लोग विवाहित है, मैं अविवाहित हूं, मुझे लगता है कि मै अविवाहित हू, यही मेरी न्यूनता है। दूसरे लोग विद्वान है, मैं अपढ हू, मुझे लगता है कि मुझमें विद्वत्ता ही होनी चाहिये। दूसरे लोग अमीर हैं, मै गरीब हू; मैं मानता हू कि मुझमें पैसेकी ही न्यूनता है। दूसरे लोग सन्तानवाले है, मैं निस्सन्तान हूं; मुझे लगता है कि निस्सन्तान होनेसे ही मैं दुखी हूं। अिस प्रकार दूसरोके साथ अपनी तुलना करके हम अपनी न्यूनता

खोजनेका प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग अिसका अुपाय यह बताते हैं कि हमारी जैसी स्थिति हो अुसीमें हमें संतोष मानना चाहिये। परन्तु यह संतोष कैसे अुत्पन्न हो सकता है? मुझमें न्यूनता है, यह मेरा भान निष्कारण नहीं है, और यह न्यूनता किस कारणसे है, अिसका मुझे ज्ञान नहीं है। ज्ञान न होनेसे जिस प्रकार रोगकी ठीक औषधि न मिलने तक प्रयोग करना ही अेकमात्र अुपाय रह जाता है, अुसी प्रकार दूसरोंके साथ तुलना करके जो दूसरोंके पास हो और मेरे पास न हो अुसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना ही अेकमात्र स्वाभाविक मार्ग रह जाता है। परन्तु यह परिणाम भी अुतना ही स्वाभाविक है कि जब तक रोगकी निश्चित औषधि नहीं मिलती, तब तक असंतोष ही बना रहेगा।

गहरी जांचसे पता चलता है कि जो न्यूनता मुझे अपनेमें दिखाई देती है वह जिन लोगोंमें नहीं है अुन्हें भी जीवनमें कम असंतोष नहीं होता। अुन्हें अपनेमें कोअी अन्य प्रकारकी न्यूनता दिखाई देती है। अिसके अलावा, अपने जीवनकी जांच करनेसे भी मालूम होता है कि पहले जिन पदार्थोंकी प्राप्तिके लिअे मैं दौड़धूप करता था, अुनके मिल जानेके बाद भी मेरा असंतोष कम नहीं होता। तब यह असंतोष किसलिअे रहता है? विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि बाह्य पदार्थोंकी कमीके कारण अथवा शरीर, अिन्द्रियों या बुद्धिके कम विकासके कारण ही सदा असंतोष नहीं रहता। जीर्ण रोग, भुखमरीकी हद तक पहुंची हुअी गरीबी या अिन्द्रियोंके दोषके लिअे किसीको असंतोष हो तो वह समझमें आ सकता है। परन्तु अिन सब कारणोंके होते हुअे भी संतोषपूर्वक रहनेवाले और अपने जीवनका सदुपयोग करनेवाले मनुष्य दुनियामें पाये जाते हैं। अिसलिअे हम देख सकते हैं कि ये नैसर्गिक कारणोंसे अुत्पन्न हुअी अपूर्णता भी असंतोषका कारण नहीं होती।

अिस प्रकार सोच करनेसे मालूम होता है कि मनुष्यको न्यूनताका भान दूसरे ही किसी कारणसे होता है। मुझमें समझकी कमी है, परिश्रमशीलताकी कमी है, कार्यनिष्ठाकी कमी है, सदाचरणकी कमी

है, अुदारताकी कमी है, दयाकी कमी है, प्रेमकी कमी है, निडरताकी कमी है, तेजस्विताकी कमी है, समभाव और सहानुभूतिकी कमी है, और अिन सब गुणोके अुत्कर्षके परिणामस्वरूप ही प्राप्त की जा सकनेवाली ज्ञाननिष्ठाकी भी कमी है। कमीका भान होना गलत नही है। परन्तु जब तक कमीका कारण समझमे नही आता, तब तक मैं अधीर होकर कितने ही प्रयत्न क्यो न करू, मुझे शाति और सन्तोषकी प्राप्ति नही हो सकती। अपनी कमियोका कारण जाननेके लिअे अैसे जीतोड प्रयत्न मुझे थोडे दिन तक करने पडे या युगो तक करने पडें, अिसके लिअे मुझे किसी छोटीसी प्रवृत्तिमे शामिल होना पडे या सारी दुनिया छान डालनी पडे, वह कारण मै अेक अिशारेमे समझ जाअू या अुसके लिअे मुझे जगत्की सारी पुस्तकें पढनी पडे, — जब मैं अुसे भलीभाति समझूगा तभी मुझे शाति और सतोष प्राप्त हो सकेगा। ✓

अिस कसौटी पर तालीमके कुछ अगोको कसनेसे मुझे जो कुछ मालूम हुआ वही मैंने अिन निबन्धोमे प्रस्तुत किया है। कुछ परीक्षण अधूरा भी मालूम पडेगा। अत यह नही कहा जा सकता कि निबन्धोमें प्रकट किये गये विचारोमे घटाने-बढाने जैसा कुछ नही है।

अिसलिअे अिन निबन्धोके पीछे अेक ही मुख्य विचार मालूम होगा। वह विचार है दैवी सम्पत्तियोके अुत्कर्षका, चित्तके गुण-विकासका, विवेक-बुद्धिकी शुद्धिका। अिससे कुछ लोगोको निराशा होगी। जिस पुस्तकके अितने निबन्धोसे केवल अेक पक्तिका सार निकले, वह तो निश्चित रूपसे युरोपियन पद्धतिकी पुस्तक मानी जायगी। परन्तु बात अैसी ही है।

मुझे यह भय है कि अिन निबन्धोको — अिनकी भाषाके कारण, अिनमें चर्चित विषयोके कारण और अिनके भीतर कही कही 'बालकी खाल' निकालनेका प्रयत्न होनेके कारण जनसाधारण समझ नही सकेंगे। विचारके कुछ विषय अधिक तात्त्विक होनेके कारण कठिन है, अुन्हे आसान बनाकर कैसे लिखा जाय, यह अभी तक मैं सीख नही पाया हूं। बात यह है कि ये विषय अभी तो मेरे अपने ही अुपयोगके

लिअे लिखे हुअे है; ये विचार अभी मेरे जीवनमें ओतप्रोत नही हो पाये हैं। हृदयसे निकलनेवाली सरल, सुबोध और प्रसादगुणवाली शैली अैसे ही विचारोंके लिअे सभव हो सकती है, जो जीवनके अविच्छेद्य अग वन गये हो। अैसे विचारोको सब कोअी समझ सकते हैं, अैसे मनुष्यके जीवनको देखनेवाले वालक भी अुन विचारोको समझ सकते है। परन्तु मेरे ये विचार केवल विचार हैं; जीवन नही है।

फिर भी मित्रगण मानते हैं कि जो थोडेसे लोग अिन निवन्धोंको पढ़ेगे अुनके लिअे वे अुपयोगी सिद्ध होगे। अिसीलिअे मैंने अिन्हे पुस्तकके रूपमें प्रकाशित होने दिया है। 'वह तालीम कौनसी?' नामक निवन्ध सबसे पहले लिखा गया था। परन्तु मुझे लगता है कि अेक दृष्टिसे अुसमें सारे निवन्धोका निष्कर्ष आ जाता है।

गूजरात विद्यापीठ कार्यालय, — कि० घ० मशरूवाला
आषाढ वदी ६, १९८१

दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावना

पहली आवृत्तिकी प्रस्तावनामे कही गअी अेक बातके लिअे वार वार मुझसे प्रश्न पूछे गये है। अुसमे अिस आशयके शब्द आये है कि मेरे गुरुने मुझे विचारकी अेक 'दृष्टि' प्रदान की और अेक 'कसौटी' बताअी। मैने यह नही सोचा था कि मेरे अिस प्रकार लिखनेसे पाठकोको अैसा भ्रम होगा कि मै कोअी गुप्त ज्ञान प्राप्त होनेकी बात कह रहा हू। मैने माना था कि प्रस्तावना और पुस्तकके प्रकरण पढकर पाठक मेरे अुपरोक्त कथनको स्पष्ट रूपमें समझ ही लेगे। परन्तु मै देखता हू कि मेरी बात पाठकोने अिस तरह समझी नही है, अिसलिअे यहा मै अुसे अधिक स्पष्ट करता हू। मेरे अुस कथनमें 'विचारकी दृष्टि' का अर्थ है तर्क, कल्पना और अनुभवके बीचके भेदकी दृष्टि, और 'कसौटी' से मतलब है भावनाके विकासकी कसौटी। सत्यकी शोधके लिअे और अुसमे दृढ स्थिति होनेके लिअे ये दोनो अनिवार्य है। आशा है अितना स्पष्टीकरण काफी होगा।

जैसा कि मुखपृष्ठ पर बताया गया है, अिस पुस्तकमे तालीमसे सबध रखनेवाले अलग अलग निबध ही है। यह सग्रह तालीमसे सबधित सारे विषयोका सागोपाग विचार करनेवाला शास्त्र अथवा पाठ्य-पुस्तक नही है। अिसका मुझे पूरा खयाल है। दूसरे भागके प्रकरणोको विशिष्ट प्रकरण मानना हो तो माना जा सकता है। अेक मित्रने यह सूचना की थी कि भिन्न भिन्न विषयो पर अिस प्रकारके लेख पुस्तकमें शामिल करके 'बुनियादो' पर खडी की जानेवाली 'अिमारत' का नकशा भी मुझे पेश करना चाहिये। पुस्तक लिखी अुस समय जिस प्रकारके शिक्षण-कार्यमे मै लगा हुआ था, अुसीमे लगा रहता तो शायद अैसा कुछ कर सकता था। परन्तु आज तो अैसा करना सभव नही मालूम होता।

अेक प्रश्न मुझसे यह पूछा गया है ये किसकी तालीमकी 'बुनियादे' है? मेरी अपनी या विद्यार्थियोकी? प्रस्तावना और सत्रहवा

प्रकरण 'वह तालीम कौनसी?' पढनेसे यह पुस्तक केवल शिक्षककी अपनी ही तालीमसे मबध रखनेवाली मालूम होती है। और अिन्हें पढ कर अैसा लगता है कि दूसरोको तालीम देनेकी आकाक्षाका मैं विरोध करता हू। परन्तु वाकी सारे प्रकरण शिक्षक और विद्यार्थीके संवधोको घ्यानमें रखकर लिखे गये मालूम होते है। अिसलिअे प्रस्ता-वना और सत्रहवें प्रकरण तथा अन्य प्रकरणोके वीच विरोधकी शका अुठती है।

अैमी शका अुठना दुर्भाग्यकी वात है। मेरा अपना मत तो अिस प्रकार है यह सच है कि 'वुनियादो' में से अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली वहुत-कुछ सामग्री मिल सकती है। यदि अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी कोअी सामग्री अिसमे न हो, तो यह तालीमकी पुस्तक भी नही हो सकती। क्योकि सही हो या गलत, मेरी यह दृढ मान्यता है कि मनुप्य जो भी कार्य करता है, अुसमे अुसका अपना आव्यात्मिक लाभ भी रहता ही है। और जो मनुष्य अिस लाभके प्रति दृष्टि रखकर अपना कार्य करता है, वह अुस कार्यको भी अधिक सुशोभित करता है। अिस प्रकार जो शिक्षक यह समझता है कि वालकको तालीमके प्रयत्नमे अुसकी अपनी तालीमका सावन समाया हुआ है, वह वालकको तालीम देनेमे भी अविक सफल होता है। अिस तरह अिस पुस्तकमें शिक्षककी अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली सूचनाये मिलें, तो वह अिमका दोष नही माना जाना चाहिये।

फिर भी 'तालीमकी वुनियादें' अपनी तालीमका प्रयास करने-वालेके लिअे नही लिखी गयी है। हर जगह तालीम लेनेवाला वालक और अुसे तालीम देनेका प्रयत्न करनेवाला अेक शिक्षक — दोनो स्पप्ट रूपसे मेरी नजरके सामने रहे हैं। अिस पुस्तकमें यह समझानेका प्रयत्न है कि अपनेको सौंपे हुअे वालकको तालीम देनेके लिअे तालीम-सम्वन्धी विचारोमें शिक्षकके मनमे ध्येयकी कैसी स्पष्टता होनी चाहिये। अत. 'वुनियादें' अपनी तालीमकी पुस्तक नही है, अुसकी सहायक भले हो।

अिसके सिवाय, अपनी तालीमकी दृष्टिसे सोचें अथवा बालककी तालीमकी दृष्टिसे सोचें, यह बात अेक भी निबन्धमें मैं भूला नहीं हू कि तालीम लेनेवालेको सामाजिक जीवन बिताना है। तालीम लेनेवाला समाजका अुपयोगी अंग कैसे बने, अिस बातका कहीं भी विस्मरण नहीं हुआ है। अिसके विपरीत, यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि मनुष्यकी अपनी अुन्नति और समाजोपयोगी जीवनके बीच विरोध बतानेवाली धार्मिक मान्यतामें कुछ भूल है। जहां सामाजिक जीवन अपनी अुन्नतिमें बाधक बनता मालूम होता हो, वहां समाजके कल्याणके आदर्शमें या स्व-कल्याणके आदर्शमें अथवा हमारी तालीममें कहीं भूल होनी चाहिये।

अेक दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि सारी पुस्तकमें धार्मिक तालीमके बारेमें अेक भी प्रकरण क्यों नहीं है? धर्मकी विशाल दृष्टिसे देखा जाय तो मेरे खयालसे पुस्तकमें अेक भी प्रकरण अैसा नहीं है, जिसमें अिस बातको जरा भी भुलाया गया हो कि तालीम धर्ममय ही हो सकती है। परन्तु अुपासना, भक्ति आदि धर्मके अंगोंकी दृष्टिसे देखने पर अैसे प्रकरणकी कमी मालूम होनेकी संभावना अवश्य थी। मैं आशा करता हू कि 'सामुदायिक अुपासनाके बारेमें व्यावहारिक चर्चा' नामक अेक नया प्रकरण जुडनेसे यह न्यूनता कम हो जायगी।

'अंक सिखानेके बारेमें सूचना' नामक लेख पुस्तकके अन्य निबन्धोंसे अलग पड जाता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे अुपयोगी होनेके कारण अिसी संग्रहमें अुसका समावेश किया गया है। वह अेक अलग टिप्पणी जैसा भी माना जा सकता है।

किं० घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

पहला भाग

दूसरा भाग

तालीमकी बुनियादें

पहला भाग

१

तालीम और शिक्षा

जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यंत अलग-अलग दिशाओमे मनुष्यका विकास करनेकी जो रीति होती है, अुसके लिअे भाषामे भिन्न-भिन्न शब्दोका अुपयोग किया जाता है। अुन सबमे हमारे सादे गुजराती शब्द 'केळवणी' (तालीम)मे जितना अर्थ समाया हुआ है, अुतना आम तौर पर प्रचलित किसी भी दूसरे अेक शब्दमे नही है। यदि अिसके लिअे किसी सस्कृत शब्दका प्रयोग करना ही हो, तो वह 'सस्क्रिया' अथवा 'सस्करण' हो सकता है। सस्क्रियाका अर्थ है, शरीर, मन, वाणी, आदत, भावना, बुद्धि वगैरामे पाओी जानेवाली किसी भी प्रकारकी अव्यवस्थाको व्यवस्थित बनानेकी क्रिया। मेरे खयालसे हिन्दुस्तानीका 'तालीम' शब्द 'केळवणी' शब्दके बहुत करीब है और अुसी शब्दका यहा प्रयोग किया जायगा। 'सस्करण', 'सस्क्रिया' अथवा 'सस्कृति' की बुनियादे अधिक अटपटा प्रयोग हो जायगा।

'केळवणी' या 'तालीम' शब्दका अिस तरह पूरा अर्थ अच्छी तरह ध्यानमे रखनेकी जरूरत है। और अिसलिअे, यह जान लेना ठीक होगा कि दूसरे शब्दोकी अपेक्षा अिस शब्दमे क्या अधिक अर्थ समाया हुआ है। अिस परसे यह समझमे आ जायगा कि हम शालामे और घरमे अपने बच्चोके लिअे जो मेहनत करते है, अुसमे अुन्हे कितनी तालीम मिलती है और कितनी नही मिलती या नष्ट हो जाती है, तथा जो मिलती है वह कितने महत्त्वकी है और जो नही मिलती अुसका कितना महत्त्व

है। अिसके अलावा, तालीमका ध्येय और तत्त्व समझने पर यह भी संभव है कि हमें तालीम देनेकी कोअी नयी दिशा मिल जाय।

'तालीम'के अर्थमें हम 'शिक्षा' शब्दका बार-बार अुपयोग करते हैं। 'शिक्षा' का अर्थ है सिखाना। और साधारण तौर पर अुसका अर्थ 'नअी बात सिखाना' ही समझा जाता है। बच्चेको लिपिका ज्ञान स्वभावत नही होता। सौ या हजार वर्ष पहलेकी घटनाओंकी जानकारी अुसे नही होती। दूसरे किसी देशमे गये बिना वहाकी आबहवा, रचना वगैराकी कुछ जानकारी नही होती। अपने समाजमे बोली जानेवाली भाषाके सिवाय दूसरी कोअी भाषा वह समझ नही सकता। शालामे यह सब ज्ञान, यह सब जानकारी अुसे मिलती है। न जानी हुअी बातोकी जानकारी करानेका अर्थ है 'शिक्षा' देना। लेकिन 'तालीम' सिर्फ अैसी 'शिक्षा' देकर ही नही रुक जाती। क्योंकि शिक्षा ज्यादातर परोक्ष होती है। किसी देशके बारेमें हम जो जानकारी प्राप्त करते है, वह सही है या गलत, अिसका निश्चय अुस देशको देखकर किया हुआ नही होता। जिस भाषाका अर्थ करना हम जानते है, अुस भाषाको बोलनेवाले लोगोके सपर्कमे हम नही आये होते। किसी देशके अितिहासकी जो बाते हम पढते है, अुन बातोंके मूल आधार हमारे जाचे हुअे नही होते। अिस तरह शिक्षा द्वारा हमें जो कुछ ज्ञान मिलता है, वह परोक्ष होता है, — प्रत्यक्ष नही। अिस परोक्ष ज्ञानकी परीक्षा करके जब हम अुसे सच्चा बनाते है, तब वह प्रत्यक्ष होता है। जब तक ज्ञान परोक्ष है, केवल सीखा हुआ है, तब तक अुसके बारेमे केवल श्रद्धा ही रखनी होती है। यह श्रद्धा गलत भी हो सकती है। जिस जानकारीके बारेमे केवल श्रद्धा होती है, वह वास्तवमे 'ज्ञान' अर्थात् 'जानी हुअी' या 'अनुभव की हुअी' वस्तु नही है। वह केवल मान्यता ही है। ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे प्राप्त जानकारीको प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा और आदत

होनी चाहिये। प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा और आदत संस्कारका विषय है। यह संस्कार देना तालीमका अेक अंग है।

शिक्षक, माता-पिता या मित्र विद्यार्थीको अनेक बातोंका परोक्ष ज्ञान या शिक्षा तो दे सकते हैं, परन्तु अनेक बातोंका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं दे सकते। वह तो अधिकतर विद्यार्थीको ही कभी न कभी स्वयं प्राप्त करना होता है। लेकिन अगर तालीम देनेवाला किसी भी ज्ञानको — जानकारीको — प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा विद्यार्थीमें अुत्पन्न कर सके और अुसके बारेमें प्रयत्न करनेकी आदत डाल सके, तो कहा जायगा कि अुसने विद्यार्थीके हाथमें ज्ञान प्राप्त करनेकी अेक कुंजी दे दी। तालीमका अर्थ केवल जानकारी देकर रुक जाना नहीं है, बल्कि ज्ञानकी अलग-अलग कुंजियां देना भी है। अिस दृष्टिमें 'शिक्षा' की अपेक्षा 'तालीम' शब्दमें अधिक अर्थ समाया हुआ है।

मनुष्य अनेक वस्तुओंका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। कितनी ही बातोंमें अुसे मान्यता और जानकारीसे ही संतोष मानना पड़ता है। अगर अितनी परोक्ष जानकारी भी न हो, तो अुसे जीवनमें नुकसान अुठाना पड़ता है। अिसलिअे यह न मान लेना चाहिये कि शिक्षा निरर्थक है। मनुष्य जिस परिस्थितिमें जीवन बिताता हो, अुसका विचार करके यदि वह अुचित मात्रामें भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेकी आदत न डाले, तो अुसकी सारी जानकारी निकम्मी पंडिताअी बन जाती है, अुस जानकारीसे स्वयं अुसे या समाजको कोअी लाभ नहीं होता। वह केवल अुतनी जानकारीका बोझ ढोनेवाला मजदूर ही बना रहता है। जिस हद तक वह जानकारी गलत होगी, अुस हद तक वह गलत ज्ञान फैलानेका निमित्त भी बनेगी। अिसलिअे शिक्षा द्वारा दी जानेवाली तालीममें तीन प्रकारके कार्यका समावेश होता है :—

१ प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेकी जिज्ञासा पैदा करना और अुसकी आदत डालना; और अुसके लिअे,

२. बन सके अुतने विषयोका प्रत्यक्ष ज्ञान देना; और अुसकी भूमिकाके रूपमें,

३. जितने विषयोकी शिक्षा (जानकारी, परोक्ष ज्ञान) देनेकी सुविधा हो, अुतनोकी शिक्षा देना।

थोड़ी शिक्षा पाये हुअे और गरीब माता-पिता या शिक्षक भी निश्चय कर लें, तो कमसे कम सामग्री द्वारा भी अिस प्रकारकी तालीम देनेमें समर्थ हो सकते है। अिसमें जिस सामग्रीकी जरूरत है, वह अितनी ही है: बालक और तालीम देनेवालेके पास अिन्द्रियां हो, जिज्ञासा हो और परिश्रम करनेकी आदत और वृत्ति हो। जिज्ञासाकी जागृतिका सस्कार ज्ञानका बीज है। अुसमें से परिश्रमी विद्यार्थीके हृदयमें ज्ञानका वृक्ष अपने-आप अुग आता है।

२

‘तालीम’ और ‘विनय’

अग्रेजीके ‘अेज्युकेशन’ शब्द और हमारी माध्यमिक शालाओंके नाममें प्रयुक्त ‘विनय’ शब्दके अर्थमे थोडा ही भेद है। ‘अेज्युकेशन’ शब्दका अर्थ ‘बाहर (यानी अज्ञानके बाहर) ले जाना’ होता है। ‘विनय’ का अर्थ होता है ‘आगे (यानी थोडे ज्ञानसे ज्यादा ज्ञानकी तरफ) ले जाना’। सामान्य भाषामे विनयका अर्थ हम अच्छा आचरण, सभ्यता या शिष्टाचार ही समझते है। और अैसी आशा रखते है कि विद्यासे विनय आयेगा। अिसका कारण यह है कि जिसे सभ्यताका — शिष्टाचारका ज्ञान नही है, वह अभी अनघड है, क्योकि वह कम समझ-वाला है। अुसे विनय देनेसे, यानी अुसका ज्ञान बढानेसे, वह सुघड अर्थात् सभ्य और शिष्टाचारयुक्त बनता है। विनय देनेके फलस्वरूप अुसमें सुघडता आती है। अिस परसे सामान्य भाषामें विनयका अर्थ ही सुघडता या शिष्टता हो गया है।

पिछले लेखमें हमने शिक्षाके अर्थकी जो छानबीन की, अुस परसे यह नही मालूम होता कि अुसमे विनयका अर्थ समाया हुआ ही है। अुसका अर्थ केवल न जानी हुअी चीजकी जानकारी पाना ही होता है। अुसी लेखमे हमने यह भी देखा कि ‘तालीम’ शब्दमे शिक्षाके अलावा और क्या अर्थ समाया हुआ है। लेकिन ‘तालीम’ अुतनेसे ही पूरी नही होती। ‘तालीम’ में ‘विनय’ का अर्थ भी आ जाता है। जो शिष्ट व्यवहार करना नही जानता, वह शिक्षित भले हो लेकिन हम अुसे तालीम पाया हुआ नही कहते। दूसरी तरफ, कोअी शिक्षित न होने पर भी अगर सभ्यता और शिष्टाचार जानता

है, तो अेक हद तक वह तालीम पाया हुआ माना जाता है। अिसलिअे 'शिक्षा' के बजाय 'विनय' का अधिक महत्त्व है और 'तालीम' में अिन दोनोंकी आशा रखी जाती है।

लेकिन शिष्टाचार जाननेके बारेमें भी 'विनय' के बनिस्बत 'तालीम' मे ज्यादा अर्थ समाया हुआ है। कुछ लोग कैसे भी समाजमें असभ्य भाषा बोलते नही हिचकिचाते। अुन्हे सभ्य या असभ्य भाषाके बारेमे कोअी भान ही नही होता, अथवा अिस विषयमें वे निर्लज्ज होते हैं। अैसे लोगोको हम अनघड या अविनयी कहते हैं। कुछको असभ्य भाषा बोलनेकी आदत होती है और अपने बराबरीके लोगोमें अैसी भाषा बोलनेमे अुन्हे आनन्द भी आता है। लेकिन स्त्रियोंके बीच या पूज्य लोगोंके बीच वे सभ्य भाषा बोलते हैं। बाह्य दृष्टिसे वे विनयी कहे जा सकते है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अुनकी वाणी 'तालीम पाअी हुअी' है। कुछ लोग अैसे होते हैं, जो घरमे या समाजमें असभ्य भाषा बोलते तो नहीं, किन्तु असभ्य शब्द अुनके मनमें जरूर आ जाते हैं। और जब वे अत्यन्त संतप्त या दु:खी होते है, तब वाणीमे अुनका अुपयोग करते भी देखे जाते है। अिनकी वाणीको साधारण तौर पर अविनयी या तालीम न पाअी हुअी नहीं कहा जा सकता, फिर भी अितना तो कहना पडेगा कि असभ्य वाणी न निकालनेके संबंधमे अुनके मनने पूरी तालीम नही ली है। और अिस हद तक वह तालीम न पाअी हुअी ही कही जायगी।

अिस परसे मालूम होगा कि तालीम सिर्फ विनय या बाहरी शिष्टाचार और वाणीमे ही पूरी नही हो जाती, बल्कि वह शिष्ट-व्यवहार और वाणीके बारेमे बुद्धिपूर्वक विचार करके भले-बुरेका निश्चय करने और अुसके मुताबिक मन, वाणी और कर्मको व्यवस्थित करनेकी अपेक्षा रखती है।

अिस तरह तालीम अेक दिशामे विवेक-बुद्धि तक पहुच जाती है और दूसरी दिशामे स्थूल कर्मका रूप ले लेती है। केवल अनुकरणसे विनय तो आ सकता है, किन्तु विवेक-बुद्धि नही आ सकती। और जब तक विवेक-बुद्धि व्यवस्थित नही होती, तब तक तालीम पूरी नही हो सकती।

३

तालीम और विद्या

विद्‌का अर्थ है जानना। विद्याका अर्थ है ज्ञातव्य (जाननेका) विषय। अिसका सामान्य अर्थ चतुराअी होता है। लेकिन विद्या अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। चोरी करनेकी, दूसरेके प्राण लेनेकी, ठगनेकी, जुआ खेलनेकी चतुराअीका और भिन्न-भिन्न कलाओका भी समावेश विद्यामे होता है। विद्या शब्द अितना व्यापक अर्थ रखता है, अिसीलिअे सुविद्या, कुविद्या, परा विद्या, अपरा विद्या जैसे भेद करने पडते है।

सारी विद्याये तालीम नही है। जो लोग नृत्यकला, गानकला या चित्रकला जानते है, वे सब तालीम पाये हुअे भी होगे, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। अधिकसे अधिक अितना ही कहा जा सकता है कि अुनकी कुछ अिन्द्रियोका, और कुछ दिशाओमे बुद्धिका काफी विकास हुआ है। कुछ विद्याये तालीमकी विरोधी भी हो सकती है।

विद्यासे तालीमका दर्जा अूचा है, क्योकि विद्या नीतिहीन भी हो सकती है। किन्तु तालीमको नीतिके विचारसे अलग नही किया जा सकता। जहा अिस तरह विद्याको नीति (नैतिकता) से अलग रखकर विचार करनेका प्रयत्न किया जाता है, वहा विद्या (=चतुराअी

या प्रवीणता) भले कुछ समयके लिअे टिक सके, किन्तु तालीम नही टिक सकती। अिसके अुदाहरण लें: काव्य, अलकार, गीत, चित्र और शिल्पकलाके अैसे अनेक नमूने मिलेंगे, जिन्हे विकारो पर विजय पानेकी अिच्छा रखनेवाला पुरुष निर्भयतासे पढ, गा, या देख नही सकता; जो वालकोंके हाथमे निर्भयतासे नही रखे जा सकते, अथवा माता और पुत्रीके साथ वैठकर नि.सकोच पढे, गाये या देखे नही जा सकते। तालीमकी दृष्टिसे अैसे नमूनोके लिअे तालीम-मदिरोंमे कोअी स्थान नही हो सकता। परतु अिस दृष्टिको भुला दिया जाता है और अेक शुद्ध (?) विद्याकी दृष्टिसे अिन्हें सीखा और सिखाया जाता है।

तालीम अिन्द्रियो या अन्त करणकी शक्तियोके विकासके विरुद्ध नही है, लेकिन सिर्फ अुन्हीके विकाससे तालीम पूरी नही हो जाती। अुसके साथ सदाचार — नीतिके विचारका विकास हो तो ही, और अुसी हद तक, अिन विद्याओको तालीममे स्थान प्राप्त हो सकता है।

विद्या और तालीमके वीचका भेद दूसरे प्रकारसे भी समझाया जा सकता है। अैसा कहा जा सकता है कि विद्या अेक आखवाली है और तालीम दो या अनेक आखोवाली है। विद्यारसिक व्यक्ति जिस चीजके पीछे पडता है, केवल अुसीको देखता है — और किसी तरफ अुसकी नजर नही जाती। अगर वह चित्रोके पीछे पड जाय, तो अुसकी दृष्टि यही तक सीमित रहती है कि चित्रविद्यामे प्रवीणता प्राप्त की जाय। फिर वह अिस सबंधमें सत्य, सदाचार, जनहित, अुपयोगिता वगैराका कोअी विचार नही करता। दूसरी तरफ, तालीम पाया हुआ व्यक्ति चित्रविद्याकी प्रवीणताको तो स्वीकार करता है, लेकिन सत्य, सदाचार, जनहित और अुपयोगिताके प्रति लापरवाह नही रह सकता। अुसी तरह, जीवनकी दूसरी अुपयोगी वातोका खयाल करते हुअे वह अिस वात पर ध्यान देना भी नही भूलता कि अपने समयमे चित्रविद्यामें किस हद तक प्राप्त की हुअी प्रवीणताका महत्त्व

है और किस हदके बादकी प्रवीणता केवल शोभा या आश्चर्यकी चीज या निरर्थक है।

अिसलिअे तालीम किसी विषयमे योग्य प्रवीणता प्राप्त कराकर नही रुकती, बल्कि अिसका निश्चय भी करती है कि अुस विषयका अन्य विषयोकी तुलनामे और जीवनके सब अगोकी तुलनामें कितना महत्त्व है। हर चीजका ठीक ठीक मूल्य आकनेके लिअे तालीमकी जरूरत है। केवल विद्या यह निश्चय नही करा सकती।

शालामे सिखाअी जानेवाली अनेक बातोके सबधमें विद्यार्थियो, पालको और शिक्षकोके बीच तीव्र मतभेद होता है। विद्यार्थी कुछ अैसी बाते सीखना चाहते है, जो पालक और शिक्षक अुन्हे सिखाना नही चाहते। शिक्षक कुछ अैसी बाते सिखाना चाहते है, जो पालकोको पसन्द नही आती। और पालक अपने बच्चोको कुछ अैसी बातोकी शिक्षा दिलाना चाहते है, जिनका विद्यार्थी और शिक्षक विरोध करते है। अिसका अेकमात्र कारण यह है कि अिन तीनोमे से कोअी भी अलग अलग विषयोका तालीमकी सर्वांगीण दृष्टिसे विचार नही करते। अभी तक हमे यह खोजनेकी कुजी नही मिली है कि किसी भी विपयका अुचित महत्त्व कितना है। मिली हो तो भी कअी तरहके मोहोके कारण हम अपने भीतर अितनी शक्ति पैदा नही होने देते, जिससे अुस पर अमल किया जा सके।

आजके जमानेमे आत्मोन्नति और जनहितकी दृष्टिसे शिक्षाके हरअेक विषयकी — शरीर, अिन्द्रियो अथवा बुद्धिके विकासकी — कितनी कीमत है, अिसका ठीक ठीक हिसाब लगानेमे ही तालीमकी समस्याका हल छिपा हुआ है।

४

तालीम और विज्ञान

गीतामें अेक श्लोक है : 'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।' अिसका शब्दार्थ यह है — 'मैं तुझे संपूर्ण रूपसे विज्ञान-सहित ज्ञान कहता हूं ।' यहां ज्ञान और विज्ञानका क्या अर्थ किया जाय, अिस विषयमें भाष्यकारोंमें मतभेद हैं। कुछ यह अर्थ करते हैं कि 'ज्ञान' यानी किसी वस्तुको केवल वर्णन या चित्र द्वारा समझकर अुसकी कल्पना करना। अुदाहरणके लिअे, ताजमहलका चित्र देखकर या वर्णन सुनकर अुसके बारेमें कल्पना करना ताजमहलका ज्ञान प्राप्त करना कहा जायगा। अुसी तरह शास्त्रोंमें आत्माके विषयमें जिन सिद्धान्तोंकी चर्चा की गअी है, अुन परसे आत्माके बारेमें कल्पना करना अुसका ज्ञान कहा जायगा। और विज्ञानका अर्थ है जिस वस्तुकी हमें कल्पना है, अुसका प्रत्यक्ष अनुभव। कोअी आगरा जाकर सारा ताजमहल देख आवे, तो कहा जायगा कि अुसे ताजमहलके बारेमें विज्ञान हुआ। अुसी प्रकार शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका अनुभव करनेवालेको आत्माके विषयमें विज्ञान हुआ कहा जायगा। अिस तरह विज्ञानका अर्थ निजी अनुभवसे मिला हुआ ज्ञान किया जाता है।*

दूसरे कुछ भाष्यकार अूपर जिस अर्थमें विज्ञान शब्दका प्रयोग किया गया है, अुसी अर्थमें ज्ञान शब्दका प्रयोग करते हैं। अैसा कहा जा सकता है कि जिसका हमें अनुभव है, अुसीका यथार्थ ज्ञान है। जिसका अनुभव नहीं है, अुसके विषयमें हमें केवल कल्पना ही रहती है। कल्पना चाहे जितनी सावधानीसे की गअी हो, फिर भी कल्पना

---

* देखिये शांकरभाष्य — अध्याय ७, श्लोक १ :
सविज्ञानं विज्ञानसहितं स्वानुभवयुक्तम् ।

आखिर कल्पना ही है; अुसे ज्ञान नही कहा जा सकता। कितनी भी सावधानीसे हम यह कल्पना क्यो न दौडाये कि मगल ग्रह पर मनुष्य जैसे प्राणी रहते होगे, लेकिन हम यह तो हरगिज नही कह सकते कि अिस विषयका हमे ज्ञान है। अिसके बजाय यही कहना ठीक होगा कि अैसी हमारी कल्पना है। अिस अर्थमे 'ज्ञान' को लेनेसे 'विज्ञान' का अर्थ विशेष ज्ञान किया जाता है। हम सबको निजी अनुभवसे पानीका ज्ञान होता है, हम सब पानीको पहचानते है। लेकिन जब पानीमे रहे तत्त्वोका पृथक्करण करते है, तो अुसके विषयमे हमे विशेष ज्ञान होता है। पानीके धर्मोके बारेमे हम जितना जितना अनुभव अिकट्ठा करेगे, अुतना सब पानीके बारेमे हुआ विज्ञान ही कहा जायगा। अिस बातका हम सबको ज्ञान है कि हाथका पत्थर जब हम छोड देते है, तो वह जमीन पर गिर जाता है। लेकिन जब हम यह जानते है कि वह पत्थर क्यो गिरता है, कितने वेगसे गिरता है, किस दिशामे गिरता है, तो यह सब अुसका विज्ञान कहा जायगा।

'सायन्स' के अर्थमे जब हम विज्ञान शब्दका प्रयोग करते है, तब अुसका अर्थ अिस दूसरे अर्थसे मिलता-जुलता होता है। वहा ज्ञान यानी स्थूल — छिछला — प्रथम दृष्टिका ज्ञान, और विज्ञान यानी सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान।

प्रत्येक ज्ञेय (जानने योग्य पदार्थ) सबधी विज्ञान — विशेष ज्ञान — दो दिशाओमे होता है। अिन दो दिशाओका वर्णन दो प्रकारसे किया जा सकता है। यद्यपि दोनो दिशायें अेक ही चीजको दिखानेवाली है, फिर भी दोनोमे से अेक भी पूरी स्पष्ट नही है — केवल खयाल देनेवाली है। अेक दिशाको पदार्थके मूलका ज्ञान, अथवा अुस पदार्थ और सपूर्ण जगत्के बीचका सबध या समानधर्म खोजनेवाला विज्ञान कहा जा सकता है; और दूसरी दिशाको पदार्थके विस्तारका या अुस पदार्थ और सपूर्ण जगत्के बीचके भेदोको खोजनेवाला विज्ञान कहा जा सकता है।

अेक अुदाहरण द्वारा मैं अिसे अधिक स्पष्ट करनेकी कोशिश करता हू :

हम अेक बडके पेडको ही लें। अिस बडके विषयमें हम दो तरहसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह बड पैदा ही क्यों हुआ? अिस बडकी अुत्पत्तिकी सच्ची कुजी कहा है? — वगैरा बातें खोजते-खोजते हम अुसके फलो परसे पत्तो पर, पत्तो परसे डालो पर, डालोंसे तने पर, तनेसे मूल पर और मूलसे बीज पर पहुच जाते हैं। यह बडके आदिकारणकी दिशाका विज्ञान कहा जायगा। और, सभव हो तो अिससे भी गहरी खोज बडके बारेमें हम कर सकते हैं: आगे बढकर हम अिस बातकी शोध कर सकते है कि अिस बडकी दूसरे बड़ोंके साथ, दूसरे पेडोके साथ, दूसरी वनस्पतियोंके साथ तथा दूसरी सजीव और निर्जीव सृष्टिके साथ क्या समानता है। अिस प्रकार यह बड और जगत्के बीचकी समानधर्मताको खोजनेवाला, बडके मूलकी दिशाका विज्ञान कहा जायगा।

दूसरी शोधमें हम बडकी डालोसे फूटकर लटकनेवाली जडो, तने, डालो, पत्तो, फूलो, फलो वगैराकी जाच करते हैं। अिनमें से हरअेककी रासायनिक रचना, भौतिक रचना और रासायनिक-भौतिक-वैद्यक धर्मोंके भेदोकी, अुसके प्रत्येक पत्तेमे, प्रत्येक फलमे और प्रत्येक डालमे रहे हुअे भेदोकी और अिस बड तथा दूसरे बडो, वृक्षो, वनस्पतियो और सजीव-निर्जीव सृष्टिके बीचके अनेक भेदोकी खोज करते हैं। अिस तरह यह विज्ञान बडके विस्तारकी दिशाका अथवा अुसके और बाकीकी सृष्टिके बीच रहे भेदोको खोजनेवाला विज्ञान कहा जायगा।

ज्ञेय पदार्थके मूल और सर्वसाधारण धर्म तक हम पहुच जाय, तो अुसके विज्ञानका अेक छोर आ जाता है। मूलकी दिशाका ज्ञान छोरवाला है।*

---

* दूसरे प्रकारसे 'ज्ञान' और 'विज्ञान' शब्दोके जो अर्थ किये गये है, अुनका तात्पर्य यह होता है कि यह मूलका — आदिकारणका

किसी भी ज्ञेय पदार्थका आदिकारण हाथ लग जानेके बाद विज्ञान अुस दिशामें आगे नही जा सकता। लेकिन विस्तारकी दिशाके विज्ञानका कोअी ओर-छोर ही नही होता। अिस विज्ञानकी जितनी

—ज्ञान ही 'ज्ञान' है, बाकी सब 'विज्ञान' है। क्योंकि अुसकी अपेक्षा यह विस्तारका ज्ञान है। अूपर बताये हुअे दूसरे वर्गके भाष्यकारोने अिसी प्रकार अर्थ करके यह समझाया है कि 'ज्ञान' यानी आत्मा, ब्रह्म या पुरुषका ज्ञान और 'विज्ञान' यानी प्रकृतिके कार्यका ज्ञान। देखिये ज्ञानेश्वरी·

जाणीव जेथ न रिगे। विचार मागुता पाअुली निघे।।
तर्क आयणी नेघे। आगी जयाचा।।
अर्जुना तया नाव ज्ञान। येर प्रपच हे विज्ञान।।
(अ० ७, श्लोक १, ओवी ५–६)

[जाननेका भाव जहा पहुच नही सकता, विचार अुलटे पाव लौट आता है, तर्क जिसके अग पर (पहुचनेका) मार्ग नही पा सकता, हे अर्जुन, अुसका नाम ज्ञान है, बाकी सारा विस्तार विज्ञान है।]

अिस तरह, ज्ञानका अर्थ अूपरी या स्थूल दृष्टिका ज्ञान और विज्ञानका अर्थ सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान नही है। क्योंकि अध्यात्मशास्त्रकी दृष्टिसे स्थूल दृष्टिका ज्ञान भी विज्ञान ही है, और आदिकारणका ज्ञान सायन्सकी सूक्ष्म दृष्टिसे भी अधिक सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान है। सायन्सके समानार्थी विज्ञान शब्दमे शकराचार्य और ज्ञानेश्वर दोनोके अिष्ट अर्थ आ जाते हैं, किन्तु ज्ञान शब्दका अर्थ तीनोकी दृष्टिसे अलग-अलग होता है। फिर भी अिस बातको तो ज्ञानेश्वरी और सायन्स दोनो मानते हैं कि ज्ञान शब्दका अुच्चारण करते ही अुसके भीतर अनुभवका भाव आ जाता है। अर्थात् अिन दोनोके बीचका भेद तात्त्विक नही है। सायन्स तत्त्वज्ञान तक गहरा जाय, तो अैसा लगता है कि सायन्सको ज्ञानेश्वरीका अर्थ स्वीकार करना होगा। अिस लेखमे तो ये शब्द सायन्सकी भाषामें ही प्रयुक्त किये गये हैं।

भी वारीकियोमे अुतरना हो अुतरा जा सकता है, फिर भी अज्ञात भाग अपार ही रहेगा। समानता और कार्यकारण-परम्परा खोजनेकी तरफ दृष्टि रखकर जब हम ज्ञेयकी खोज करते है, तब हम अुसके मूलकी तरफ जाते है। जब हम भेदकी और वाहरी धर्मोकी तरफ दृष्टि रखते है, तव विस्तारका विज्ञान वढता है।

तालीम विज्ञानकी विरोधी नही है। लेकिन विज्ञानसे तालीम पूरी भी नही होती। पहले लेखमे तालीम और शिक्षाका भेद बताते हुअे मैने कहा था कि शिक्षा अधिकतर परोक्ष ज्ञान है; जब कि तालीममे परोक्ष ज्ञानको प्रत्यक्ष बनानेकी वृत्ति समायी होती है। विज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है, अिसलिअे शिक्षाकी अपेक्षा अुसमे अधिक तालीम होती है। लेकिन विज्ञानसे भी (पदार्थोके अनुभवयुक्त विशेष ज्ञानसे भी) तालीम पूर्ण नही होती। अिसका कारण 'विद्या' और 'तालीम'के वीच वताये हुअे भेद जैसा ही है। अर्थात् विज्ञान हमेशा आत्मोन्नति और जनहितका खयाल नही करता, जब कि तालीम अिस खयालको कभी छोड ही नही सकती।

अूपर वताया गया है कि विज्ञान ज्ञेय पदार्थके आदिकारणसे सबध रखनेवाला और अुसके विस्तारसे सबध रखनेवाला हो सकता है। मनुष्यकी अुन्नतिके लिअे और जीवन-व्यवहार चलानेके लिअे दोनो प्रकारका विज्ञान आवश्यक है। कोयला और हीरा मूलमे अेक ही चीज है यह विज्ञान, और दोनोमे वहुत ही भिन्न भिन्न धर्म भी है यह विज्ञान — दोनो अुपयोगी है। कोयले और हीरेकी सच्ची अेकताका ज्ञान हो, तो कोयलेमें से हीरा अुत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। और अुनका भेद जाना हो तो दोनोका यथोचित अुपयोग किया जा सकता है। मनुष्यकी तालीमके दूसरे अग यदि विकसित हुअे हो, तो अेकताका ज्ञान अुसके चित्तकी शाति और समताको कायम रखनेमे अुपयोगी सिद्ध हो सकता है और भेदका ज्ञान अुसे जगत्की अुचित रीतिसे सेवा करने लायक बना सकता है।

व्यावहारिक प्रश्न यह है कि मूल-सबधी विज्ञान और विस्तार-सबधी विज्ञानमे से किस विज्ञानको कितना महत्त्व देना चाहिये।

अिस बारेमें विचार करनेसे अेक बात हमारे ध्यानमें आयेगी। किसी भी चीजके मूलका विचार करनेके लिअे भी असके विस्तारका कुछ विचार करना ही पडता है। नदीका मूल खोजनेवालेको कुछ हद तक नदीके विस्तारका ज्ञान मिल जाता है, या करना पडता है। नदीके मूलकी ओर जानेवाला मनुष्य यदि आखे बन्द करके न चले, तो आसपासके प्रदेश, भूमिकी रचना, नदीकी गहराअी, वनस्पति, हवा, अुपजाअूपन, रेत-मिट्टी आदिकी विशेषता तथा जलचरो, भूचरो, नदीसे आकर मिलनेवाली दूसरी नदियो, अिन सबके पानीका शरीर वगैरा पर होनेवाला प्रभाव आदि सबधी कुछ विज्ञान प्राप्त किये बिना वह रह ही नही सकता। जहा दूसरी नदी मिलती मालूम हो, वहा सहायक किसे मानना और मूल नदी किसे मानना, यह निर्णय करनेके लिअे भी थोडा विशेष ज्ञान प्राप्त करना पडेगा। अिस प्रकार विस्तारकी दिशामे नदी-सबधी जो भी ज्ञान प्राप्त होगा, वह सहज ही मिलने-वाला विज्ञान है। यह विज्ञान अुपयोगी भी होगा, और फिर भी नदीका मूल खोजनेमे रुकावट नही डालेगा। परतु मूलको खोजने निकला हुआ मनुष्य यदि रास्तेमे दिखाअी देनेवाले अैसे अनेक पदार्थोंके बारेमे स्वतत्र रूपसे खोज करने बैठ जाय, या पानीके बहावकी दिशामे चलने लगे, तो मूलकी खोज अेक ओर रह जायगी और अुसका ध्येय सिद्ध नही होगा।

किसी वस्तुका मूल खोजनेका ध्येय निश्चित रखते हुअे जिस प्रयत्नमे अुसके विस्तारका विशेष ज्ञान प्राप्त हो, वही वैज्ञानिक प्रयत्न अुचित माना जायगा। लेकिन ध्येय चूक जानेकी भूल बार-बार होती रहती है। मनुष्य नादका मूल खोजते-खोजते स्वरोंके सौन्दर्यमें लुभा जाता है, चित्तका शोधन करते-करते सिद्धियोमे मोहित हो जाता है, नदीका मूल खोजते-खोजते रगबिरगे ककर-पत्थर या मछलियां अिकट्ठी

करने लग जाता है, या आसपासके प्रदेशमे कोअी रिक्तता देखता है, तो वहा अपनी सत्ता जमानेमे लग जाता है, या अैसे ही किसी दूसरे कारणसे बीचमे ही रुक जाता है।

यह विश्व अत्यन्त आश्चर्यकारक हे। कोअी छोटा या बडा पदार्थ अथवा अुसका गुण, क्रिया या दूसरा कोअी धर्म अैसा नही होता, जिसके मूलकी खोज करके अुसके आदिकारण तक न पहुचा जा सके। साथ ही अैसे कोअी छोटे-बडे पदार्थ, गुण, क्रिया या धर्म नही है, जिनमे बीचमे ही मनुष्यको रोक रखनेवाली अनन्त प्रकारकी विविधता न हो। जिस तरह किसी मूल पुरुषके हजार पुत्र हो और अुनमे से हरअेकके हजार-हजार पुत्र हो और अिस तरह अेक हजार पीढी तक प्रत्येक वशजकी हजार-हजार पुत्रोकी परपरा चले, अुसी तरहका यह ससाररूपी वृक्ष है। फिर भी यह वृक्ष अैसा अनोखा है कि अुसकी हजारवी पीढीकी ठीक ठीक खोज करे, तो अुसमे भी मूल पुरुषका पूर्ण बीज अच्छी तरह अुतरा हुआ मालूम होगा। अिस-लिअे यदि केवल मूल चीजकी ही शोध करनी हो, तो यह बात महत्त्वकी नही मानी जायगी कि किस पीढीके कौनसे वशजको शोधका विषय बनाया जाय। चाहे जहासे शोध आरभ करके हम मूल बीजको पहचान सकते हे। लेकिन मूल बीजको खोजकर यदि अुसकी सहा-यतासे अुस सारे कुटुम्बके साथ कोअी मीठा सबध बनाये रखना हो, तो हमारी खोज विशेष ढगसे ही होनी चाहिये।

और विज्ञान तथा तालीमके बीच यही भेद है। किसी भी पदार्थको खोजका विषय बनानेवाला मनुष्य विज्ञानशास्त्री तो अवश्य है; अिससे वह मूल कारण तक भी शायद पहुच जाय; अुसकी खोजका दुनियाके लिअे कोअी लाभ भी हो सकता है। परतु सभव है विज्ञानकी जो शाखा विज्ञानशास्त्रीको शाति देनेवाली और समाजको सुखी बनानेवाली हो सकती है, अुस शाखाका काम यह विज्ञानशास्त्र

न भी करे। अिस प्रकार तालीम विज्ञानकी विरोधी नही, परतु विज्ञानसे कुछ अधिक है।

विज्ञानकी जिस शाखाके बिना तालीम अधूरी कही जायगी, वह चित्तकी भावनाओंके विकासकी और अुस दृष्टिसे चित्तके मूलकी शोधकी शाखा है। भावनाओकी शुद्धि, विकास और चित्तकी शोध—यह विज्ञान तालीमका मुख्य अग है। अिसके सिवा दूसरा विज्ञान प्रकृतिके नियमोंके ज्ञानका और अनुभवोका भडार बढा सकता है, लेकिन अुसके विषयमे निश्चित रूपसे यह नही कहा जा सकता कि वह हमे शाति प्रदान करेगा या अुससे हमारा जीवन सुखी बनेगा। अिसके विपरीत शापरूप बननेकी भी अुसके भीतर शक्ति होती है।

यद्यपि विज्ञानसे तालीम पूर्ण नही होती, फिर भी मै यह भार-पूर्वक कहना चाहता हू कि विज्ञानके सस्कारोके बिना तालीमका काम चल नही सकता। विज्ञानके सस्कारोका अर्थ है अवलोकन करने और तुलना करनेका अभ्यास। अवलोकन और प्रज्ञाके अभ्याससे ही विज्ञानका अुदय होता है।

५

तालीम और विवेकबुद्धि

विवेकबुद्धिको मैं अिष्ट देवताकी तरह पूज्य मानता हू। कर्म, भक्ति, ध्यान, ज्ञान, अभ्यास, तप आदि विविध साधनो द्वारा व्यावहारिक जीवनमे मुझे यदि कोअी प्राप्त करने जैसी वस्तु मालूम होती हो, तो वह है विवेकबुद्धिका विकास। किसी देवी-देवताके दर्शनकी या ऋद्धि-सिद्धियोकी मुझे लालसा नही है। परतु यदि भक्ति, ध्यान आदि साधनोसे देव सतुष्ट हो, तो मै यही चाहूगा कि वे मेरी विवेक-बुद्धिको शुद्ध और विकसित करे।

अिस विवेकका अर्थ क्या है?

यह तो शायद ही कहनेकी जरूरत हो कि यहा विवेकसे मेरा मतलव सभ्यता या शिष्टाचारसे नही है, जो कि अुसका प्रचलित और परपरागत अर्थ है। विवेकका शब्दार्थ होगा विशेष या सूक्ष्म विचार। हम जो कुछ करते है, सीखते है या मानते है, वह क्यो करते, सीखते या मानते है, अिसका विचार हम हमेशा नही करते। हो सकता है कि अत्यन्त तुच्छ या अत्यन्त गभीर क्रियाओ, मान्यताओ और सीखी जानेवाली वातोमे से कअीके वारेमे हमे कभी कोअी विचार ही न सूझा हो। हममे वोलने या वरताव करनेकी कितनी ही अैसी आदतें होती है, जो दूसरोंके ध्यानमे तो आ जाती है, परतु हमे अुनके अस्तित्वका पता ही नही चलता। मेरे मित्र कहते है कि मुझे वोलते समय 'है सो' जैसे निरर्थक शब्द वोलनेकी आदत है। यह आदत मुझमे है, अिसका अभी तक मै निश्चय नही कर पाया हू। क्योकि मै सावधानी रखकर वोलता हू तव मेरी जवान पर ये शब्द नही आते, और जव असावधानीसे वोलता हू तव ये शब्द मेरे ध्यानमे नही आते। जिस हद तक अैसा होता है, अुस हद तक यही कहा जाना चाहिये कि हमारी क्रियाअें, मान्यताअें और शिक्षा विवेकरहित है। अिसका मतलव यह हुआ कि हमारे अुतने कार्य, मान्यताअें आदि असावधानीके द्योतक और यह वतानेवाले है कि अुनके वारेमे हमने पहलेसे कोअी विचार नही किया है।

विना विचारे हुअे कार्य, मान्यताअे या शिक्षा वुरे या गलत ही है, अैसा नही कहा जा सकता। परतु सुकर्म, सुशिक्षा और सुश्रद्धा भी यदि विचारपूर्वक न हो, तो अुनमे दो दोष रहते है। अेक, विचारपूर्वक किये गये कर्म, शिक्षा आदिमें जिन गुणोको प्रकट कराने और दृढ वनानेकी शक्ति होती है वह विचारहीन कर्म, शिक्षा आदिमें नही होती। दूसरा, चाहे जितनी पुरानी आदत हो, फिर भी संगतिका दोष अुसे आघात पहुचा सकता है। अुदाहरणके लिअे, मेरा कीड़ियों और मकोड़ोको भी न मारना अवश्य अेक सुकर्म है। लेकिन

यह सुकर्म करनेकी आदत अगर मुझे केवल परपरागत सस्कारोंसे, गुरुजनोंके डरसे, नरकमे मिलनेवाले दडके भयसे या स्वर्गमें मिलनेवाले सुखके लालचसे पडी हो और अिस वारेमे मैंने स्वय किसी स्वतंत्र दृष्टिकोणसे विचार न किया हो, तो अिस कर्मसे जिस गुणकी वृद्धि होनी चाहिये वह नही होगी। अर्थात् मैं कीडी-मकोडेको मारू भले नही, लेकिन हो सकता है कि अुनके त्राससे तग आकर मै अुन्हें मनमें कोसे बिना और शाप दिये बिना न रहू, और जानसे न मारकर दूसरी कोअी सजा अुन्हे दे डालू। यह दूसरी सजा अैसी हो सकती है, जो अन्तमे प्राण लेनेसे भी अधिक कठोर और निर्दय साबित हो। यदि मेरी यह अहिंसात्मक आदत सिर्फ कीडो-मकोडो तक ही सीमित हो, तो यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता कि वह मुझे मकडी, साप या बिच्छूको —— या शायद किसी मनुष्यको भी —— मारनेसे रोकेगी। अुससे मेरा क्रोध कम न होगा। अुसके कारण मै वैल या नौकरसे मरते दम तक काम लेनेमें सकोच नही करूगा। अुसके कारण अपने अधीन वने हुअे किसी आदमीके साथ अितनी सख्ती करते भी मैं नही हिचकिचाअूगा कि अुसका सब-कुछ छिन जाय। और अन्तमें बुरी सगतिके असरसे मैं अिन कीडो-मकोडोके वारेमें भी लापरवाह बन जाअूगा।

अिसी तरह दान करना भी अवश्य अेक सत्कर्म है। परतु जव तक दान देनेवाला दानके गुणोंके बारेमे स्वय विचार नही करता, बल्कि केवल चली आयी रूढिके कारण अथवा अिस श्रद्धासे दान करता है कि अमुक स्थान पर अमुक वस्तुका अमुक मनुष्यको दान करनेसे अमुक फल मिलता है, तो यह विश्वासके साथ नही कहा जा सकता कि दानकी यह क्रिया दानीको अुदार वनावेगी ही। रूढ वने हुअे मार्गोंमे अुसके दानका प्रवाह बहेगा, परतु यह नही कहा जा सकता कि वह आवश्यक मार्गोंमे भी बहेगा। हो सकता है कि अुदार चित्तसे अथवा रहमदिलीसे दानकी तरफ प्रवृत्ति होनेके वजाय यह

क्रिया माथेके तिलककी तरह या भीतरके रोगोके वाहरी अुपचारकी तरह केवल अूपरी सस्कार ही रहे। और किसी कारणसे अिस रूढि या श्रद्धाके सस्कारोका लोप हो जाय, तो माथेके तिलककी तरह अिस दानकी क्रियाकी आदत भी मिट जाय।

साराश यह कि जब तक मेरे कर्मोके पीछे रहनेवाले गुणो या अिच्छाके वीजके विषयमे मेरे अपने हृदयमे विवेक-विचार न अुत्पन्न हो, तब तक मुझमे अुन गुणोका सब कामोमे विस्तार करनेकी, अथवा क्या करना और क्या न करना — अिस वारेमे अुन गुणोमे स्थिर रहकर विचार करनेकी, अैसा करते हुअे होनेवाले कष्टोको धीरजसे सहन करनेकी, सगतिका दोष न लगने देनेकी, और दोषपूर्ण गुणो, अिच्छाओ या आदतोसे बचनेकी शक्ति नही आ सकती।

जान-बूझकर होनेवाले सारे व्यवहारोकी बुनियाद सही या गलत विवेक है। विवेकमे चार वस्तुओका समावेश होता है। अवलोकन, प्रज्ञा, भाव और सावधानता। अवलोकनका अर्थ है, जो जो विषय अनुभवमे आवें अुनकी शोध। किसी भी पदार्थ*का स्वरूप क्या है, अुसके धर्म कौनसे हैं और वे वैसे ही क्यो हैं — अिसकी शोध ही अवलोकन है।

प्रज्ञा अर्थात् अनुभवोको तोलनेकी शक्ति जिस शक्तिकी सहायतासे हम गुड और शक्करके वीचका, सा और रे के वीचका, दया और प्रेमके बीचका, मान और अपमानके वीचका भेद जान सकते है, वह अनुभवतोलक शक्ति। यह शक्ति विषयोके बीचके भेद दिखाती है।

भावका अर्थ है किसी पदार्थके सबधमे हमारा दृष्टिबिन्दु। भाव अनेक है, परतु सब भावोका विश्लेपण करने पर अुनका तीन मूल

* यहा पदार्थ शब्दका बहुत व्यापक अर्थमें अुपयोग किया गया है। सजीव-निर्जीव, स्थावर-जगम, स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त जो भी पदार्थ विचारके विपय बन सकते है, वे सब अिसमें आ जाते है।

भावोमें समावेश हो जाता है। विषमभाव, समभाव और अैक्यभाव। यह पदार्थ और मै अेक-दूसरेसे भिन्न है, अुसका हित अलग है, मेरा हित अलग है—यह है विषम, पर या द्वैतभाव। यह पदार्थ और मै दोनो अेकसे है, जैसा मेरा सुख है वैसा ही अुसका है—यह सम या विशिष्टाद्वैत भाव है। यह पदार्थ और मै अेक ही है, अुसका हित ही मेरा हित है—यह है अैक्य या अद्वैतभाव।*

सावधानताका अर्थ है सपूर्ण जागृति, कार्य करनेके पहले ही आत्मस्मृति। खाते समय खानेका, बैठते समय बैठनेका—अिस तरह प्रत्येक कार्य करते समय अुसे करनेका भान होना सावधानता है।

अवलोकन, प्रज्ञा आदि चारमे से कौन किसका कारण है, यह निश्चय करना कठिन है। अिन चार वस्तुओकी थोडी-बहुत विरासत तो हरअेकको जन्मसे ही मिली होती है। प्रज्ञाके सूक्ष्म होनेसे भाव

---

* भावोके फलस्वरूप किसी पदार्थके प्रति जो वृत्ति पैदा होती है वह भावना या विकार है। साधारण तौर पर अच्छी वृत्तिके लिअे भावना शब्द काममे लिया जाता है और बुरी वृत्तिके लिअे विकार शब्द काममे लिया जाता है। प्रत्येक प्राणीमे कम-ज्यादा मात्रामे तीनो भाव रहते है। जैसे, शरीरके अवयवोके प्रति अैक्यभाव, सगे-सबधियो, कुटुम्बीजनो और मित्रोके प्रति समभाव, पदार्थो और पराये लोगोके प्रति विषम या परभाव। किसी विशेष पदार्थके कारण नही, बल्कि स्वभावके रूपमे ही दृढ बनी हुअी वृत्ति गुण कहलाती है। अुदाहरणके लिअे, अमुक व्यक्तिके मेरा अमुक काम बिगाडनेसे जो विकार अुत्पन्न हो वह क्रोधकी वृत्ति है। किसी समय, कोअी भी व्यक्ति मेरी किसी योजनाको बिगाडे, अुस समय यही विकार अुत्पन्न होनेकी आदतको क्रोधका गुण कहते है। भाअीको दुखमे देखकर जो भावना पैदा हो, वह दयाकी वृत्ति है। किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका दुख भोगते देखकर यह वृत्ति पैदा होनेका स्वभाव पड जाय तो अुसे दयाका गुण कहेगे।

स्पष्ट होते है। सूक्ष्म प्रज्ञा और स्पष्ट भाव अवलोकनको स्पष्ट वनाते हैं; स्पष्ट अवलोकन सच्चे निर्णयके लिअे आवश्यक है; और सावधानता अिन तीनो पर अपना असर डालती है। अिन सवके फलस्वरूप निर्णय करानेवाला जो विचार अुत्पन्न होता है, वह है विवेक। और यह विवेक फिर अवलोकन, प्रज्ञा और भावकी शुद्धि तथा सावधानताका पोषण करता है। अिन चारमे से कोअी भी अग अधूरा रहता है, तो अुससे विवेकमे कमी आती है।

मनुष्य अवलोकन करनेवाला हो, लेकिन यदि अुसके भाव योग्य न हो या प्रज्ञा जड हो, तो वह केवल स्थूल, ओछी दृष्टिके या काल्पनिक सिद्धान्त वनानेवाला होगा, तात्त्विक विचारकी असल वुनियाद अुसके हाथ नही लगेगी। ठीक समय पर अुपयोगमे लायी जा सकनेवाली निर्णयशक्ति अुसमें पैदा नही होगी।

यदि केवल अुसकी प्रज्ञा ही सूक्ष्म हो, तो वह पदार्थोंके अूपरी भेदो और स्वरूपोमे ही रमा रहेगा, लेकिन पदार्थोंके वन्धनोंसे मुक्त नही हो सकेगा।

मनुष्यमे अवलोकन और प्रज्ञा हो परन्तु योग्य भाव न हों, तो अुसका तत्त्व-विचार अुसमे वल नही पैदा कर सकता, अुसके जीवनमे कोअी परिवर्तन नही कर सकता।

और, यदि योग्य भाव हो, परन्तु अवलोकनकी कमी हो या प्रज्ञा मन्द हो, तो वह पदार्थोंकी काल्पनिक कीमत आकेगा, जल्दीके निर्णय करेगा, अुसका विकास अेकागी रहेगा, अपने आचरण पर अुसका अधिकार नही रहेगा, और तारतम्यको समझनेकी अुसमें कमी दिखाअी देगी। अर्थात् साधारण भाषामे जिसे नादानीभरा या वेढंगा व्यवहार कहते है, वैसा अुसका व्यवहार मालूम होगा। अुसे सतुलन कायम रखते नही आयेगा।

मनुष्यमें सव कुछ हो, लेकिन सावधानता न हो तो अुसे वारवार यह कहनेका मौका आयेगा : 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति'।

जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति.॥' (मैं धर्मको जानता हू, परन्तु मैं अुसका आचरण नही कर सकता; अधर्मको जानता हू लेकिन अुससे मुक्त नही हो सकता।)

कला, कौशल, पाडित्य, सौन्दर्य, बल या केवल भक्ति, केवल कर्म-परायणता, केवल तप, केवल ज्ञान (जानकारी और तर्कशक्ति) या केवल ध्यानकी पूर्णतासे जीवनमे पूर्णता नही आ सकती। परन्तु यह कहना गलत नही होगा कि विवेककी पूर्णता और जीवनकी पूर्णता अेक ही चीज है। जैसे बिना प्राणका शरीर ही शव कहलाता है, वैसे ही मुझे लगता है कि बिना विवेकका जीवन ही अमानवता है।

केवल विवेकबुद्धिकी सहायतासे हम भक्तिमार्ग, तपमार्ग, कर्म-मार्ग या ध्यानमार्गका फल प्राप्त कर सकते है। परन्तु केवल विवेक-विचार पर टिके रहना कठिन होता है, अिसलिअे भक्ति, तप आदि मार्गोंका आधार लेना ठीक है। लेकिन विचार करनेसे मालूम होगा कि मनुष्यकी अुन्नतिका अेक भी अैसा साधन नही, जिसमे विवेक-विचारकी आवश्यकता न रहती हो। और जितने ज्ञानी या सन्त पुरुष भूतकालमे हो गये है या वर्तमान कालमे होगे, अुनमे सबसे बडी समानता यही पायी जायगी कि अुनके जीवनमे विवेकबुद्धि सतत जाग्रत रही या रहती है। जिस हद तक अुनमे विवेककी पूर्णता होगी, अुसी हद तक अुनका जीवन वास्तवमे महान होगा। अन्य सब सामग्रिया तो अिस विवेकके अलकारमात्र है।

भले अिष्टदेवका दर्शन हुआ हो, समाधि-लाभ हुआ हो, तप सिद्ध हुआ हो, अनेक प्रकारकी विद्याओंमे पारगतता प्राप्त हुअी हो या वैराग्यवृत्ति हो, परन्तु यदि मनुष्यमे विवेकका अुत्कर्ष न हुआ हो, तो वह अिन सबको पचा नही सकता, और अुसका अध पतन भी हो सकता है। अिसके विपरीत, यदि केवल विवेक-विचार जाग्रत रखनेकी ही शक्ति प्राप्त की जा सके, तो अुतनेसे ही वह स्थायी शान्ति पा

सकता है। मेरे विचारसे पूर्ण शुद्ध विवेकी जीवन ही जीवन्मुक्तिका प्रत्यक्ष लक्षण है।

विवेकके अुत्कर्षको मैं जीवनका और अिसलिअे तालीमका अन्तिम ध्येय मानता हू और तालीमके ये विभाग करता हू : अवलोकन (शोधकी जिज्ञासा और सूक्ष्मता), प्रज्ञाकी तीव्रता, योग्य भावोके पोषणके फलस्वरूप भावना-विकास और सपूर्ण जागृतिका अभ्यास।

दृढ़ता–धृति

अूपर जो कुछ लिखा है, अुसमे थोडा जोड़नेकी जरूरत है। केवल विवेकबुद्धि — सारासारकी ठीक समझ और निर्णय करनेकी शक्ति — अेक गुणके विना असफल भी सिद्ध हो सकती है। और वह गुण दृढता या धृतिका — जिस वस्तुको विवेकसे योग्य ठहराया हो, अुससे लगनके साथ चिपके रहनेकी शक्तिका है। यह दृढता या धृति ही मनोबल, आत्मबल आदि शब्दोसे पहचानी जाती है। यह दया, क्रूरता आदिकी तरह भावना नही है, लेकिन जैसे बलवान मनुष्यके स्नायुओ और कमजोर मनुष्यके स्नायुओकी गठनमें जन्मजात अथवा तालीमसे पडा हुआ भेद रहता है, अुसी तरह चित्तकी गठनमें तालीमसे पडनेवाला या जन्मसे रहनेवाला यह भेद है। तालीमसे जैसे मनुष्यके स्नायु मजबूत वन सकते है, अुसी तरह धृति भी वलवान हो सकती है।

६

तालीम और अभ्यास

तालीममे अभ्यासके महत्त्वको पूरी तरह समझे विना काम नही चल सकता। अभ्यासका अर्थ है, अेक ही कामको बार-बार करना। खेतमे सब जगह घास अुगी हो और आप कभी अेक स्थान पर और कभी दूसरे स्थान पर घूमे, तो वहा किसी तरहकी निशानी मालूम नही पडेगी। परन्तु अेक ही स्थानसे चलनेका नियम रखे, तो थोडे समयमे वहां साफ पगडडी दिखाअी पडेगी। हमारे शरीरमे भी अिसी तरह होता है। हम किसी दिन हाथकी, किसी दिन पावकी, और किसी दिन कमरकी कसरत करे और अुसमे किसी भी तरहका निश्चित अभ्यास न रखे, तो हमारा अेक भी स्नायु भलीभाति विकसित नही होगा। अुसी तरह यदि हम किसी दिन चरखा चलाये, किसी दिन पावसे चलाये जानेवाले यत्र पर बैठे, किसी दिन चित्र बनाये, किसी दिन सगीत-क्लासमे जाये और किसी दिन ध्यान करने बैठे, तो हमे अेक भी काममे सफलता नही मिलेगी।

शारीरिक या मानसिक, कोअी भी शक्ति प्राप्त करनेके लिअे अर्थात् अुस शक्ति पर पूरा पूरा काबू पानेके लिअे अभ्यासके विना काम नही चल सकता।

हमारे देशमे अभ्यासका महत्त्व बहुत लम्बे समयसे समझ लिया गया है, लेकिन अभ्यासके साथ जो दूसरे अग जुडे हुअे है, अुन पर किसीका ध्यान नही गया है। अनुभवसे यह पता चला कि अभ्यासके विना सस्कार दृढ नही होते। अिसलिअे हम किसी न किसी ढगसे अभ्यास करानेका प्रयत्न करते है। प्रत्येक क्रिया तीन प्रकारसे की जा सकती है भयसे, लालचसे और क्रियाके प्रति रहे प्रेमसे। भय

और लालचसे भी संस्कार डाले जा सकते हैं। और अधिकतर अिन दोमें से अेकके या दोनोंके जरिये अभ्यास कराया जाता है। अिस तरह अभ्यास कराना अभ्यास करानेवालेको आसान पडता है, अुसमें अभ्यास करनेवालेकी विवेकबुद्धिको विकसित नहीं करना पडता। सरकसके मालिक जानवरोंको भयसे ही तालीम देते हैं। शालाओंमें शिक्षक भी यही तरीका अपनाते हैं। बहुतेरे सम्प्रदायोंके प्रवर्तकोंने भी बार-बार भय या आशा बताकर जनतामें अच्छी आदतें पैदा की हैं। ये आदतें कभी-कभी मजबूत तो हो जाती हैं, परन्तु मूढ़-भावसे। अुनका रहस्य समझमें नहीं आता। जो भय या आशा बताअी गअी हो, अुसकी चिन्ता या श्रद्धा मिट जाने पर सदियों पुरानी आदतें भी थोडे समयमें नष्ट हो सकती हैं। कुछ वर्षोंके अंग्रेजी विद्याके संस्कारोंने हमारी जनतामें पडे हुअे सदियों पुराने संयमके संस्कारोंको नष्ट कर दिया। अिसके कारणकी जांच करेंगे, तो मालूम होगा कि संयमके संस्कार यमदण्डके भय या स्वर्गसुखकी आशासे डाले गये थे। किसी भी कारणसे अिस भय और आशा परसे श्रद्धाके अुडते ही और स्थूल दृष्टिसे संपूर्ण दिखाअी पडनेवाले आधिभौतिकवाद पर श्रद्धा जमते ही वह संयम चला गया। शुष्क वेदान्तका भी कअी लोगोंके जीवन पर यही परिणाम होता है। जैनधर्म तप और संयम पर बेहद जोर देता है। फिर भी कुछ जैन साधुओं और गृहस्थोंमें चरित्रभ्रष्टता घृणा अुत्पन्न करनेकी हद तक बढ़ी हुअी सुनी गअी है। अिसका कारण यही हो सकता है कि तप और संयम पर प्रेम अुनका मूल्य समझकर नहीं रहा होगा, परन्तु अुनके द्वारा कोअी भय दूर करनेकी या सुख प्राप्त करनेकी आशा रही होगी। और यह भय और सुख काल्पनिक हैं, अैसा लगते ही तप और संयम पतझडके पत्तोंकी तरह खिर गये होंगे।

अिसलिअे अभ्यासके साथ अभ्यासकी क्रिया पर प्रेम हो, तो ही अभ्यास मनुष्यको लाभ पहुंचा सकता है। यह ज्यादा कठिन बात

है। अिसमें अभ्यासीकी विचारशक्ति जाग्रत होनी चाहिये। अभ्यासकी क्रिया पर प्रेम हो सके, अिसके लिअे अुस दिशामे अुपयोगी गुणोका विकास हुआ होना चाहिये। अिस प्रकारका अभ्यास अत्यंत धीमी गतिसे ही हो सकता है।

परन्तु आज तो अभ्यासकी आवश्यकता पर ही कुछ लोगोको अश्रद्धा होने लगी है। वे अभ्यासके बदले साहचर्यके नियम पर जोर देते हैं। अैसी अश्रद्धा होनेका कारण है अभ्यासके नियमके बारेमे हमारी शालाओमें पोषित हुआ गलत खयाल। शालाओमे अभ्यासका जाना हुआ अुपयोग अक, पहाडे या कविता रटनेमे होता है। शिक्षकोका यह खयाल है कि रटनेसे पहाडे और कविता याद रह जाते हैं। अत. याद रखनेके लिअे रटनेकी (अभ्यासकी) जरूरत है।

साहचर्यका नियम जाननेवाले कहते हैं कि यह निरा भ्रम है। हमारी स्मरणशक्ति मूलसे ही अितनी पूर्ण है कि अेक बार किसी चीजको अच्छी तरहसे जान लेनेके बाद वह अिस तरह याद रहती है कि कभी भुलाअी ही नही जा सकती। परन्तु जो कुछ याद रखना हो, अुसे ठीक-ठीक स्मरणमे भरते आना चाहिये। अुदाहरणके लिअे, मेरी टोपी कही रख दी गअी हो और अुसे ढूढना हो, तो मै क्या करूगा? मैने आखिरी बार कब निश्चित रूपसे टोपी पहनी थी, अुस समय मै कहा था, बैठा था या खडा था, मेरे साथ दूसरा कौन था, वहासे मै कहा गया, वहा क्या किया, टोपी सिर परसे मैने क्यो निकाली आदि आदि टोपीके साथ दूरका या पासका सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-छोटी बातोको मै याद करूगा। अिस तरह आसपासकी छोटी-छोटी बातें याद करनेसे मुझे यह याद आ जायगा कि मैने टोपी कहा रखी थी। आस-पासकी ये बातें सहचारी (साथकी) बाते कही जाती हैं। टोपी कहा रखी थी, यह मै भूला हरगिज नही था। क्योकि रखते समय ही मेरे दिमाग पर अिस रखनेकी क्रियाका सस्कार पड गया था। परन्तु पूरी तरह सावधान न रहनेके कारण मै अुस सस्कारको तुरन्त जाग्रत

नही कर सका था। अुसे जाग्रत करनेके लिअे मेरा आसपासकी बातोंका स्मरण करना काफी होगा।

अिस परसे यह नियम बनाया जाता है कि किसी चीजको याद रखनेके लिअे केवल अुसी चीजको याद रखनेका प्रयत्न करना बेढंगी पद्धति है। सरल बात यह है कि हरअेक क्रिया करते समय आसपासकी सब चीजों पर नजर डाल लेनी चाहिये। सूअी रखने जाय तो सूअीके साथ दूसरी क्या चीजें पडी हैं यह ध्यानसे देख लिया जाय। अुसका डिब्बा कहा रखा है, अुसके साथ और क्या क्या है, यह भी देख लिया जाय। अैसा करनेसे सूअी कहा रखी है अिसका विचार करते ही आसपासकी चीजोंका स्मरण जाग्रत हो जायगा और सूअीका स्थान याद आ जायगा। अिसी तरह पाच-चोक-बीस यह बीस बार रटाकर याद रखानेके बजाय पाच-पाच मनकोंके चार ढेर करके अुन्हें विद्यार्थीसे गिनवाया जाय, तो पाच-चोक पूछते ही बालककी स्मृतिमें पाच-पाच मनकोंके चार ढेर और अुस समय की हुअी क्रिया खडी होगी और वह पाच-चोक-बीस तुरन्त याद कर सकेगा। पाच-चोक-बीस हम भले बीस बार रटें, लेकिन बीसों बार हमारा ध्यान यह चीज रटनेमें ही नही रहता। अिसलिअे पाच-चोक कहते ही बीस शब्द मुह पर आ ही जाय, अैसी जीभके स्नायुको भले आदत पड जाय, लेकिन यह मान्यता गलत है कि अिससे स्मरणशक्तिका विकास होता है।

यह आपत्ति गलत नही है। किसी भी चीजको स्मृतिमें भरनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत नही। स्मृति पर अेक ही प्रयत्नसे कभी न मिटनेवाली छाप पड सकती है। और यह कोअी विरला अवधानी (अेकाग्रताकी शक्तिवाला) ही कर सकता है, अैसा नही; बल्कि यह स्मरणशक्तिका स्वभाव ही है।

फिर भी अभ्यास व्यर्थ नही जाता। अभ्यासका काम दूसरा ही है। अभ्यासका सम्बन्ध खास करके शरीरके स्थूल अंगोंके साथ होता है। स्थूल अंग शरीरके वे भाग हैं, जो अपने-आप या साधनोंकी मददसे

शरीरमे प्रत्यक्ष दिखाओी दें या भूख-प्यासकी तरह् अनुभव किये जा सके। अुदाहरणके लिअे, स्नायु, ज्ञानतन्तु, मस्तिष्क वगैरा। अिन सबको किसी भी प्रकारकी दृढ आदत डालनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत रहती ही है।

स्मृति पर किसी वस्तुकी छाप डालनेके लिअे अेक सस्कार काफी है। अुस छापका यदि हमे बार-बार अुपयोग करना पडे, तो विना प्रयत्नके अभ्यास हो जायगा। यानी हमारे स्थूल अगोको अमुक दिशामे काम करनेकी आदत पड जायगी। अुदाहरणके लिअे, अगर मै किसी किरानेके व्यापारीके यहा नौकर होअू, तो कौनसी चीज कहा रखी है, अिसकी छाप मै अेक ही बारमे डाल लूगा। साहचर्यके नियमसे मै अुन चीजोको खोज लूगा। परन्तु रोज रोज अुन चीजोका काम पडनेसे थोडे दिनोमे विना प्रयत्नके अुन चीजोके स्थान याद रखनेका अभ्यास हो जायगा। अैसा नही है कि अिस क्रियामे साहचर्यके नियमका अमल होगा ही नही। परन्तु अुस नियमके अमलकी गति अितनी बढ जायगी कि चीज और अुसके स्मरणके बीच साहचर्यके नियमका समय ध्यानमे ही नही आयेगा। जो क्रिया बार-बार करनेकी हो या भविष्यमे करनेकी हो, अुसकी गति बढानेका काम अभ्यासका है। फिर वह क्रिया स्मृतिकी हो या अन्य प्रकारकी — जैसे सूत कातनेकी—हो।

यह सच है कि स्मृति पर अेक ही बारमे किसी चीजकी छाप पड सकती है। परन्तु अुस छापको जागत करनेमे समय न जाय, अिस तरहकी आदत डालनेके लिअे अुसका अभ्यास करना पडता है। फिर सस्कार ग्रहण करनेका भी अैसा अभ्यास होना चाहिये जिससे अेक ही सस्कारसे जाग्रत की जा सकनेवाली छाप अुसके सहचारी सम्बन्धोके साथ स्मृति पर पडे।

अूपर कहा गया है कि क्रियाकी गति बढानेके लिअे अभ्यासकी जरूरत है। परन्तु गति तो बादमे आती है। अुसके पहले अुस क्रिया

पर धीरे-धीरे काबू पानेके लिअे, क्रिया अपने-आप करना आनेके लिअे भी पहले क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् बार-बार सावधानीसे प्रयत्न करना चाहिये। अैसे बार-बारके प्रयत्नसे क्रिया पर काबू पाया जाता है, और क्रियाके अभ्याससे गति बढ़ती है।

साहचर्यका नियम कहता है कि कोअी नअी चीज जल्दी सीखनी हो, तो अुसके लिअे अत्यत सावधान वृत्तिका होना आवश्यक है। सारा ध्यान अुसीके पीछे लगा होना चाहिये। अभ्यासका नियम कहता है कि सीखी हुअी चीजको दृढ बनानेके लिअे और जरूरत पड़ने पर अुसका अुपयोग कर सकनेके लिअे अुसकी बार-बार आवृत्ति होनी चाहिये।

सद्गुण और दुर्गुण अभ्याससे बढते हैं; अुसी तरह अच्छे काम करनेकी आदत तथा बुरे काम करनेकी आदत सब अभ्याससे पडती है। केवल विवेकसे अच्छे कामोंके लिअे आदरबुद्धि पैदा हो सकती है, अुनका महत्त्व समझमें आ सकता है, अच्छे-बुरेके बीचका भेद समझा जा सकता है। लेकिन जिस अच्छी चीजका ज्ञान हुआ हो अुसका अमल करनेके लिअे और जो चीज बुरी लगती हो अुससे बचनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत है। यह अभ्यास यदि बलात्कार या लालचसे हो, तो यह नही समझना चाहिये कि अुससे अुन्नति होगी ही। यानी यह अभ्यास क्रियाके ही खयालसे और अुसीके प्रति रहे प्रेमसे होना चाहिये। परन्तु अभ्यासके बिना तालीम पूरी हो ही नही सकती। यानी अभ्यासके बिना विचारी हुअी चीज पच नही सकती, जीवनके साथ ओतप्रोत नही हो सकती।

७

अिन्द्रियोंकी तालीम

[शिक्षणमें बालकोंकी अिन्द्रियोंकी तालीमके बारेमें कुछ विचार किया गया है। संयमके लिअे प्रयत्न करते रहनेवाले पुरुष अिन्द्रिय-दमनके बारेमें काफी विचार करते हैं। अैसा भास होता है कि ये दो विचार परस्पर विरोधी हैं। मुझे लगता है कि अिन दोनों विचारोंमें कुछ अस्पष्ट विचारसरणी काम करती है। अिसलिअे अिस विषयमें मुझे जो दिशा प्राप्त हुअी है, अुसके अनुसार अिस लेखमें कुछ विचार प्रकट करनेकी अिच्छा है। अैसा नहीं मानना चाहिये कि अिस लेखमें अुन विचारोंका अन्त आ गया है — बल्कि केवल आरंभ ही है। परन्तु यहां जो विचार मैंने रखे हैं, वे तालीममें रस लेनेवालों तथा आत्मार्थी पुरुषोंके लिअे अुपयोगी सिद्ध होंगे, अैसा मेरा विश्वास है।]

यह बात बहुत कम लोगोंके खयालमें आयी होगी कि ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि या सूक्ष्मता और ज्ञानेन्द्रियोंकी रसवृत्तिमें भेद है। अिस विषयको यहां कुछ स्पष्ट करनेका मेरा विचार है।

यह कहा जा सकता है कि ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धिका अर्थ है ज्ञानेन्द्रियोंकी नीरोगिता और पूर्णता। यदि किसी मनुष्यके कान पतली और मोटी आवाजोंको सुन सकते हों, अुनके भेदको भलीभांति समझ सकते हों, आवाज परसे अुसकी दिशा जान सकते हों और अुसकी सुननेकी शक्ति बुढ़ापे तक बनी रहे, तो कहा जा सकता है कि अुनकी कर्णेन्द्रिय शुद्ध है।

यदि कोअी मनुष्य नादप्रिय हो यानी अलग-अलग तरहकी आवाजें, वाद्य, गायन वगैरा सुननेमें आनन्द मानता हो, अुससे अुसकी अच्छी या बुरी वृत्तियां अुत्तेजित होती हों, तो यह कहा जा सकता है कि अुसकी कर्णेन्द्रियकी रसवृत्ति जाग्रत है।

अिसी तरह नाककी सूक्ष्म और अुग्र गंधोंको परखनेकी शक्ति और अुस शक्तिका अन्त तक बना रहना, जीभ और त्वचाकी अन्त तक बनी रहनेवाली तेजस्विता, अुस अुस ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धिकी

निशानिया है। और गध, रूप, रस, स्पर्श आदिके अलग-अलग शौक अुस अुस ज्ञानेन्द्रियकी रसप्रियता है।

ज्ञानेन्द्रियोकी शुद्धि और रसवृत्तिके वीच थोडा सवंध है, थोड़ा विरोध है और ये दोनों अेक-दूसरीसे थोडी स्वतत्र भी है।

यदि ज्ञानेन्द्रिय शुद्ध न हो, तो अुसमे अधिक रसवृत्ति नही हो सकती। वहरेको सगीतसे खुश होते हम नही देख सकते, या जन्मसे अधा व्यक्ति रूपके रसका भोक्ता नही वन सकता। अुसी तरह नाकको तालीम न मिली हो, यानी वह गधके भेदोंको पहचाननेकी शक्ति न रखती हो, तो सुगधसे अुसका अधिक रजन नही हो सकता। जीभ जड वन जाय, तो वह अनेक तरहके व्यजनोका स्वाद समझ नही सकती। अिसलिअे जिस हद तक ज्ञानेन्द्रिय शुद्ध होगी, अुसी हद तक वह रसिक बनने योग्य होती है। अिस तरह ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धि और रसवृत्तिके वीच थोडा सवध है।

परतु रसवृत्ति ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धिकी विरोधी भी है। जिस प्रकार आहारके विना स्वास्थ्य नही वना रह सकता, लेकिन अतिआहारसे स्वास्थ्य निश्चित रूपसे विगडता है, अुसी प्रकार अलग-लअग अिन्द्रियोंके वारेमे भी समझना चाहिये। रसनेन्द्रिय थोडी सूक्ष्म हो, तो ही वह मीठे और फीकेके वीचका भेद पहचान सकती है। भेद पहचाननेसे ही मीठेके वारेमे अुसकी रसवृत्ति जाग्रत होगी। लेकिन मीठे स्वादको आनन्दरूप मानकर मीठेके पीछे पड जाय, तो मनुष्य जीभकी शक्तिको भी खोता जायगा। मीठा खानेकी आदत डालनेसे अुसकी जीभ अितनी जड़ हो जायगी कि थोडी मिठासको अुसकी जीभ पहचान ही नही सकेगी। कोअी चीज काफी मीठी हो तभी अुसे लगेगा कि वह मीठी है। सच पूछा जाय तो मिठासका शौकीन गेहूके आटेमे थोडी शक्कर मिलाकर आटेको मीठा वनाकर नही खाता, वल्कि शक्करमे आटा मिलाकर शक्करको थोडी फीकी वनाकर खाता है। अुसकी जीभमें मीठेके सवधमे रसवृत्ति — मीठा खानेकी लालसा — मौजूद है, लेकिन

अुसने जीभकी शुद्धि कम कर दी है। अिस तरह ज्ञानेन्द्रियकी रसवृत्ति अुसकी शुद्धिकी विरोधी है।

अिन्द्रियोकी शुद्धिका विकास और रसवृत्तिका विकास कुछ वातोमें अेक-दूसरेसे स्वतन्त्र है। जिस प्रकार आरोग्य नष्ट हो जाने पर भी खाने-पीनेकी लोलुपता वढ सकती है, अुसी प्रकार अिन्द्रियोकी शुद्धि न रहने पर भी अुनकी रसवृत्ति वढती रह सकती है। वहुतेरे लोगोके वारेमे देखा जाता है कि वुढापेमे अिन्द्रियोकी शक्ति नष्ट हो जानेके वाद भी अिन्द्रियोके भोगोके लिअे अुनका शौक वना रहता है। अिसका कारण यह है कि अिन्द्रियोकी शुद्धि और रसवृत्तिका पोपण करनेवाले तत्त्व अलग अलग है।

अिन्द्रियोकी शुद्धि शरीरके स्वास्थ्य और अुस अुस अिन्द्रियके व्यायाम पर आधार रखती है। जिस तरह किसी मनुष्यकी भुजाअे वलवान होनेके लिअे अुसका साधारण स्वास्थ्य अच्छा होना ही चाहिये और भुजाओके स्नायुओको खास तालीम मिलनी चाहिये, अुसी तरह अुसकी आखोकी तेजस्विता और शुद्धिके लिअे भी अुसका सावारण स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिये और आखोको तालीम मिलनी चाहिये। बुढापेमे मनुष्यकी ज्ञानेन्द्रियोकी शक्ति घट जाती है, क्योकि अुसका साधारण स्वास्थ्य भी घट जाता है। जुकामसे नाक वद हो जाती है और कान जड हो जाते है। वीमारीमें जीभकी रुचि मर जाती है और अजीर्णसे आखे आ जाती है। अैसे अनुभव सभी लोगोंके होगें। अत जिस तरह कर्मेन्द्रियोकी शक्ति टिकाये रखनेके लिअे साधारण स्वास्थ्य जरूरी है, अुसी तरह ज्ञानेन्द्रियोकी शक्तिके लिअे भी वह जरूरी है।

कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोंके बीच दूसरी भी समानता है। वहुतसे लोगोके दाहिने हाथमे जितनी ताकत होती है, अुतनी वाये हाथमें नही होती और पावके स्नायु जितने वलवान होते है अुतने हाथोके नही होते। कुछ लोगोके बारेमे अिससे अुलटा भी हो सकता है। अिसका कारण अुस अुस स्नायुको मिलनेवाली कसरत है। दाहिने हाथसे काम

करनेकी आदत होनेसे दाहिना हाथ जितना बलवान रहता है, अुतना बाया नही रहता; क्योकि अुसके स्नायुओको कसरत नही मिलती। अिसी प्रकार किसी गवैयेके कान जितने तेज होते हैं, अुतनी ही तेज अुसकी आखे भी होगी, यह निश्चयके साथ नही कहा जा सकता। निशानेबाजकी आखोमे जितना तेज होता है, अुतना सभव है अुसकी नाक और कानोमे न भी हो। शिकारी जानवरोकी घ्राणेन्द्रिय (नाक) तेज होती है और अुनके शिकार बननेवाले जानवरोके कान तेज होते है। **जिस अिन्द्रियके विकासके लिअे जितनी स्वाभाविक रूपमें या जानबूझकर मेहनत की गअी हो, अुतनी अुस अिन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है।**

परतु यहा मेहनतका अर्थ समझ लेना चाहिये। मेहनतका अर्थ सिर्फ अिन्द्रियोका अुपयोग नही, बल्कि अुनका व्यवस्थित ढगसे किया जानेवाला अुपयोग है। जिस प्रकार अनाजके बुवाअीके लिअे होनेवाले अुपयोगमें और किसी दावतमे होनेवाले अुपयोगमें भेद है, अुसी तरह किसी अिन्द्रियके विकासके लिअे किये जानेवाले अुसके अुपयोगमे और शौकके लिअे किये जानेवाले अुपयोगमे भेद है। खेतमें डाला गया अनाज योजनापूर्वक, योग्य समय पर, किफायतके साथ और अनेक गुना अनाज पानेके अुद्देश्यसे काममे लिया गया है। अिस क्रियामे अनाजका अुपयोग तो किया गया है; परतु यह अुपयोग अधिक अनाज वापस लानेवाला है। अुसी तरह किसी अिन्द्रियके विकासके लिअे की जानेवाली मेहनत — व्यायाम — में अिन्द्रियका अुपयोग होता है; परतु वह भोगके लिअे किये जाने-वाले अुपयोग जैसा नही है। व्यायाम योजनापूर्वक, अुचित समय पर और सयमके साथ — किफायतशारीसे किया जाता है। अुसके लिअे की जानेवाली थोडी मेहनतके फलस्वरूप अिन्द्रियमें मेहनतकी अपेक्षा अधिक शक्ति अुत्पन्न होनी चाहिये। जिस तरह व्यायाम साधारण तौर पर शरीरको शुद्ध बनाकर अुसमें स्फूर्ति लाता है और कर्मेन्द्रियोकी शक्ति बढाता है, अुसी तरह ज्ञानेन्द्रियां भी अुपयोगमें आनेसे शुद्ध बनकर स्फूर्तिवाली और ज्यादा काम देनेकी शक्तिवाली हो सकें, तो कहा जा

सकता है कि अिससे अुन अिन्द्रियोका विकास होता है या अुन्हे तालीम मिलती है। लेकिन शराब जिस तरह शरीरमें स्फूर्ति लानेवाली मालूम होती है, फिर भी वह स्फूर्ति शरीरको (स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी) अशुद्ध बनाती है और अुसकी क्रियाशक्तिको बिगाड कर अन्तमें अुसका नाश करती है तथा बुद्धिको भी भ्रष्ट करती है, अुसी तरह यदि किसी अिन्द्रियका कोअी अुपयोग आरभमे अुसमे स्फूर्ति लानेवाला मालूम हो, लेकिन अन्तमे अुसे अशुद्ध और अशक्त बनावे और आखिर अुस अिन्द्रियके द्वारा होनेवाले ज्ञानके बारेमे बुद्धिको जड बनावे, तो अुसमे अिन्द्रियको तालीम नही मिलती बल्कि अुसका अनुचित अुपयोग होता है।

बेशक, हरअेक मनुष्यकी साधारण शक्तिके प्रमाणमें प्रत्येक अिन्द्रियकी शक्तिकी भी सीमा होती है। किसी मनुष्यके पैर ज्यादा ताकतवर हो, तो वह दूसरे मनुष्यसे ज्यादा चल सकता है। लेकिन अन्तमे अुसकी भी चलनेकी शक्ति खतम हो जाती है। अुस सीमाके आ जानेके बाद भी यदि वह चलता ही रहे, तो अुसके बादकी कसरत अुसके पैरोको ताकतवर बनानेके बजाय कमजोर ही बनायेगी। यही बात ज्ञानेन्द्रियोके अुपयोग पर भी लागू होती है। आखे अच्छी होने पर भी यदि हम अुनका अमर्यादित अुपयोग करे, तो अुन्हे नुकसान ही पहुचेगा।

हमारे शरीरकी तुलना पानीकी अेक टकीसे की जा सकती है। अुस टकीमे से कअी नल निकलते है। किसी भी नलके द्वारा टकीका अुपयोग छ प्रकारसे बढाया जा सकता है १ टकीमे पानीकी मात्रा बढानेसे, २ जिस दबावसे पानी नलोमे अुतरता है, अुस दबावको बढानेसे, ३ पानीकी मात्रा, दबाव तथा कार्यकी जरूरत कितनी है, अिसका विचार करके किफायत और नियत्रणके साथ नलोका अुपयोग करनेसे, ४. बडा नल लगानेसे, ५ नलके सामने तेजीसे पानी खीचनेवाला यत्र रखनेसे; और ६ दूसरे नल काट डालनेसे।

अिसी प्रकार किसी भी अिन्द्रियकी शक्ति छ प्रकारसे बढाअी जा सकती है: १. खूनकी मात्रा बढानेसे, २ जिस दबावसे खून

नसोंमे घूमता है, अुस दबावको बढानेसे, ३ खूनकी मात्रा तथा दबाव और कार्यके महत्त्वकी तुलना करके सयमपूर्वक अिन्द्रियका अुपयोग करनेसे, ४ अुस अिन्द्रियके स्नायुओं और ज्ञानतंतुओको विशेष प्रकारकी तालीम देनेसे, ५. अुस अिन्द्रियके सामने दबाव बढानेसे; तथा ६ दूसरी अिन्द्रियोका नाश करनेसे।

सोचनेसे मालूम होगा कि आखिरी दो मार्ग अिन्द्रियके विकासके मार्ग नही कहे जा सकते। वे तो अुस अिन्द्रियका या दूसरी अिन्द्रियोका दिवाला निकालनेके मार्ग है। पहले चार मार्गोको ही तालीमके लिअे अुपयोगी माना जा सकता है। और अुनमे चौथे — किसी अिन्द्रियके स्नायुओ और ज्ञानततुओको खास प्रकारकी तालीम देनेके — मार्ग या अुपायका आधार पहले तीन मार्गो या अुपायो पर है। खूनकी मात्रा, दबाव और सयमकी अुपेक्षा करके यदि कोअी मनुष्य अेकाध अिन्द्रियको खास तालीम देनेका प्रयत्न करे, तो अिसमे अुसे बडी सफलता नही मिल सकती।

अिसलिअे अिन्द्रियोकी शुद्धिके तीन योग्य अुपाय माने जायगे: स्वास्थ्य (जिसमे खूनकी मात्रा और दबाव दोनो आ जाते है),* अिद्रियोका सयमके साथ अुपयोग और स्नायुओं तथा ज्ञानततुओकी तालीम। अेकाध अिन्द्रिय पर ज्यादा तनाव डालना या दूसरी अिन्द्रियोमें दोष पैदा करना अिन्द्रिय-शुद्धिका सही अुपाय नही कहा जा सकता। जिस तरह केवल आग बुझानेके लिअे ही टकीके दूसरे नल काटना या जरूरत पडने पर अेक नलके सामने पप भी लगाना अुचित हो सकता है, अुसी तरह किसी खास संकटको टालनेके लिअे ही किसी

---

* अिन दोनोंके मिलनेसे जो शक्ति पैदा होती है, वह मनुष्यकी प्राणशक्ति कही जा सकती है; खूनका अर्थ शुद्ध खून ही समझना चाहिये। शरीरमे किसी भी जगह जम जानेवाले चरबी या दूसरे अशुद्ध तत्त्व खून नही है, नियमित रूपसे घूमते रहकर शरीरके काम आ चुके या घिस चुके तत्त्वोको हटा कर नये तत्त्व दाखिल करनेवाला भाग ही खून कहा जायगा।

अेक अिन्द्रिय पर विशेष तनाव डालना या दूसरी अिन्द्रियोंमे दोष पैदा करना (या पैदा होने देना) अुचित कहा जा सकता है।

अितने स्पष्टीकरणके बाद हम यह समझ सकेंगे कि किसी अिद्रियकी रसवृत्तिका अुसकी शुद्धि पर कैसा असर होता है।

सबका यह अनुभव है कि किसी भी अिन्द्रियका जब अिच्छा या अनिच्छासे किसी विषयके साथ सयोग होता है, तब अुस अिन्द्रियके स्नायुओ पर तनाव पडता है। जब हम हाथ पर कोअी वजन रखते है, या पावसे किसी चीजको दबाते है, या आखोसे किसी चीजकी जाच करते है, तब अिस तनावका हमें अच्छी तरह अनुभव होता है। लेकिन बारीकीसे देखने पर मालूम हो जाता है कि थोडे सयोगमे भी अिन्द्रिय पर तनाव पडता है। जिस तरह लकडी तोलनेकी तराजू ४–६ तोलोका फर्क नही दिखा सकती, लेकिन सोना तोलनेकी तराजू चावल भर वजनसे भी हिल जाती है, अुसी प्रकार कुछ मनुष्योके और प्रत्येक मनुष्यकी कुछ अिन्द्रियोके स्नायुओ और ज्ञान-तन्तुओसे सूक्ष्म तनाव परखा नही जाता, और कुछ अुसे परख लेते है। जब वह तनाव खतम हो जाता है, तब स्नायु आराम या प्रसन्नताका अनुभव करते है। जिस मनुष्यकी जिस अिन्द्रियके स्नायु लबे समय तक अैसा तनाव सहन कर सकते है और ज्ञानततु सूक्ष्म तनाव परख सकते है, वह मनुष्य तनाव खतम हो जाने पर अधिक प्रसन्नता अनुभव करता है।

अेक बार अेक विषयके सयोगसे अुत्पन्न होनेवाला तनाव और अुस तनावके खतम होनेके बादका आराम अच्छी तरह अनुभव कर लिया गया हो, तो फिर अुस विषयका स्मरण भी थोडा-बहुत तनाव पैदा करता है। अुदाहरणके लिअे, किसी पदार्थको देखकर अेकाअेक खूब डर लगा हो या अत्यन्त हर्ष हुआ हो, तो अुसका स्मरण भी डर या हर्ष पैदा करता है। यह चीज सबके अनुभवकी है, अिसलिअे अिसे अधिक विस्तारसे समझानेकी जरूरत नही।

यहा यह याद रखना चाहिये कि किसी भी तनावके जारी रहते हुअे प्रसन्नताका अनुभव नही होता; बल्कि तनाव खतम होने पर स्नायुओके मूल स्वरूपमे आनेके बाद प्रसन्नता होती है। अिसलिअे, हर्षका तनाव हो या शोकका तनाव हो, क्रोधका तनाव हो या दयाका तनाव हो, सारे तनावोका अन्त या अुतार स्नायुओको स्वस्थ बनाकर आरामका अेकसा अनुभव कराता है। और अिसी कारणसे हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदिके तनावोंका खूब अनुभव होने पर सब समान ढगसे आसू, पसीना वगैरा पैदा करते है और अन्तमे मनको 'अुन्मुक्त' बनाते है, और सीमासे बाहर हो जाय, तो मूर्छा, पागलपन या मृत्युके भी कारण बनते है।

हमारे स्नायु और ज्ञानतंतु रबरकी तरह लचीले होते है। अनेक दिशाओमे वे खीचे जा सकते है, और फिरसे अपनी मूल स्थितिमें आनेके लिअे प्रयत्नशील रहते है। परंतु यदि अेक ही दिशामे अुन पर बार बार जोर पडे, तो कुछ समय बाद वे फिर मूल स्थितिमे आ ही नही सकते और अुनका स्वरूप बदल जाता है। अुसके बाद अुनकी विरुद्ध दिशामे अुन्हें बडे प्रयत्नके बिना नही खीचा जा सकता। परंतु जिस दिशामे खीचे जानेकी अुन्हे आदत पडी होती है, अुस दिशामें थोडे प्रयत्नसे भी ज्यादा खिंच जाते है। अिस तरह मनुष्यकी आदतें, स्वभाव और वृत्तिया दृढ बन जाती है।

स्नायु और ज्ञानतंतु जिस दिशामे खिचनेके लिअे अनुकूल बने रहते है, वह खिचाव जिस विषयके संयोगसे हो सके, अुस विषयके लिअे साधारण तौर पर अुन्हें रस रहता है; फिर वह रस शुद्ध हो या मलिन, स्वास्थ्य बढानेवाला हो या स्वास्थ्यका नाश करनेवाला हो।

हर चीजका संयोग हमारे स्नायुओ पर दो तरहका असर डालता है। अेकको कुदरती या नैसर्गिक असर और दूसरेको कल्पना-मिश्रित या सविकल्प असर कहा जा सकता है। अुदाहरणके लिअे, बरफ या राअीका तेल चमडी पर अेक तरहका कुदरती असर पैदा करता है।

यह असर साधारण तौर पर कुदरतके नियमके अनुसार ही होता है। जिस तरह चूने पर पानी गिरनेसे वह गरम होकर अुवलने लगता है, अुसी तरह राअीका तेल या बरफ मनुष्यकी चमडी पर अेक विशेष असर पैदा करता है। यह असर अुस समय अनुकूल हो तो अच्छा लगता है और प्रतिकूल हो तो कष्ट पैदा करता है। यह असर अधिकतर जड तत्त्वोंके नियमके अनुसार ही होता है और अुसका सभीको अेकसा अनुभव होता है।

लेकिन अिसके अलावा दूसरा अेक कल्पना-मिश्रित तनाव भी अनुभव किया जाता है। अिस सविकल्प असरको हम रस कहते हैं। अुदाहरणके लिअे, अेक मासकी दुकानके सामनेसे मासाहारी और शाकाहारी दो व्यक्ति गुजरते है, तब दोनोको अेकसे तनावका अनुभव नही होता। मासाहारीके स्नायु अिस विषय-सयोगके अनुकूल बने रहते हैं, अिसलिअे मासको देखकर अुसे किसी तरहका कष्ट नही होता, परतु शाकाहारीके स्नायु अिस तनावके प्रतिकूल होते हैं, अिसलिअे वह मासको देखते ही बेचैन हो जाता है। मासाहारीमें अनुकूल वृत्ति अुत्पन्न होनेका कारण यह है कि अुसके दिमागमे मासके साथ खुराककी कल्पना जुडी होती है, जब कि शाकाहारीके मनमें अुसके साथ अपवित्रताकी या घृणाकी कल्पना जुडी होती है। अिसी प्रकार अेक मनुष्यको किसी स्त्रीका नाच देखकर आनन्द होता है और दूसरेको घृणा होती है। क्योंकि पहलेके मनमे नाचके साथ कुछ कलाकी कल्पना रहती है, और दूसरेको यह कल्पना असह्य मालूम होती है कि किसी स्त्रीको अपनी जीविका चलानेके लिअे अेक बडे जनसमुदायके बीच निर्लज्ज बनकर नाचना पडता है और अिसीलिअे वह दृश्य अुसमे घृणा पैदा करता है।

दुनियाके लगभग सारे विषयोंके बारेमें अच्छे, बुरे, तटस्थ और अुसमे भी अुत्तम, मध्यम और कनिष्ठ आदि भेदोवाले मत हमने बना रखे हैं। ये मत बनानेमे कभी-कभी अुन विषयोंका शरीर पर

होनेवाला नैसर्गिक असर भी कारणभूत होता है। अुदाहरणके लिअे, साप या बिच्छूका काटना, सर्दियोमें तापना, गर्मियोमें ठडक वगैराके बारेमे हमारे मत। अिस प्रकारके मतोमे अधिकतर कोअी भेद नही होता, क्योकि अुनका सवध शरीर पर होनेवाले कुदरती असरोंके साथ होता है।

लेकिन कअी वार ये मत कायम करनेमें केवल परम्परासे चले आये सस्कार ही कारण वनते है। हम वचपनसे जिन लोगोंके सपर्कमे आते है, वे लोग जिस पदार्थको अच्छा कहते है, अुसे हम पसन्द करना सीखते है। और जिसे वे खराब कहते है, अुसे धिक्कारना सीखते है। अैसा नही होता कि ये मत अुस पदार्थकी शरीरका पोपण करनेकी या दूसरेका दु:ख कम करनेकी शक्तिके साथ सवध रखते ही है। वहुत वार अैसे पदार्थोंके वारेमें हमारा वडा अूचा मत होता है, जो शरीर, अिन्द्रियो या मन पर वडा हानिकारक असर पैदा करते है, और लाभकारक असर पैदा करनेवाले पदार्थोंके प्रति हमारी अरुचि रहती है। अुदाहरणके लिअे, यह नही कहा जा सकता कि जरीके कपडोंके वारेमें हमारा जो अूचा मत होता है, अुसका कारण यह है कि वे कपडे शरीरके स्वास्थ्यको वढानेवाले होते है। अुसी तरह जूतोंकी अमुक वनावट, कुर्तेका अमुक काट, पगडी वाधनेका अमुक ढग, आख और टोपीके वीच सावधानीसे रखा जानेवाला अमुक कोण, शाल ओढनेका अमुक ढग, या साडीका अमुक रंग सुन्दर है — ये सब वाते अुनका हमारी या दूसरोंकी सुविधा और स्वास्थ्य पर जो असर होता है, अथवा पदार्थके सच्चे स्वरूपका अनुभव लेनेमें अुनकी जो मदद मिलती है अुसका विचार करके निश्चित नही की जाती, वल्कि अिस विषयमे हम कुछ प्रतिष्ठित लोगोकी कल्पनाओको ही स्वीकार कर लेते है।

रवडी-पूरी और शाक-रोटी ये दो चीजें जवान पर अलग-अलग असर पैदा करती हैं। जिस समय हमारी ज्ञानशक्ति मन्द न हो या

अुसका निरोध न किया गया हो, अुस समय यह भेद समझमे आये विना नही रहता। लेकिन रवडी-पूरीको सुन्दर भोजन और शाक-रोटीको मामूली भोजन ठहरानेमें केवल प्रतिष्ठित लोगो द्वारा अिस विषयमे प्रचलित किया हुआ मत ही कारणभूत होता है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तो रवडी-पूरी वुरा भोजन और शाक-रोटी सुन्दर भोजन माना जाना चाहिये। अिसलिअे यदि हमारी रसनेन्द्रियको सही तालीम मिली हो, तो हमे शाक-रोटीके बनिस्वत रबडी-पूरी खानेमे जल्दी अूव जाना चाहिये।

अिसलिअे किसी पदार्थके संयोगसे जो कुदरती वृत्ति पैदा होती है, अुसकी अपेक्षा अुसके विषयमे हमारी सविकल्प या कल्पना-मिश्रित वृत्ति वहुत वार कही अधिक बलवान होती है। **अिन्द्रियोके विषयोके साथ जुडा हुआ कल्पनाबल ही अिन्द्रियोकी रसवृत्ति है।**

अूपर कहा गया है कि हरअेक पदार्थका सयोग हमारे स्नायुओ पर तनाव डालता है। अिस तनावका बल अुनकी कुदरती शक्ति पर और अुस पदार्थके विषयमे हमारी रसवृत्ति पर आधार रखता है। यदि अुस पदार्थके सबधमें हमारे मनमे अतिशय राग भरा हो तो अुसे भोगनेका और यदि द्वेष भरा हो तो अुसे दूर हटानेका हम प्रयत्न करते है। भोगनेके वादका या दूर हटानेके बादका परिणाम मदा आरामकी प्रसन्नता ही पैदा करता है। लेकिन रागके कारण अुस प्रसन्नतामे हर्ष आदिका पूर्वस्मरण मिलता है। जिस पदार्थके बारेमे हमारे मनमें अेक बार राग हो, अुसी पदार्थके बारेमे बादको द्वेप पैदा हो, तो अुसके सयोगके बाद शोकका तनाव पैदा होता है, यद्यपि शरीर पर असर करनेकी अुसकी शक्तिमें कोअी फर्क नही पडता।

फिर, जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, हमारे स्नायु और ज्ञानतन्तु रबरकी तरह लचीले होते है। अेक निश्चित सीमा तक अुन्हें खीचा जाय, तो अुनका अुपयोग अच्छी तरह होता है, लेकिन अुस सीमाको पार कर जाय और अुन्हें आराम ही न लेने दे, तो वे

बिगड जाते है। अुसी तरह अेक ही प्रकारका तनाव बार-बार अुन पर डाला जाय, तो वे वापस अपनी मूल स्थितिमे नही आ सकते। अिसी प्रकार किसी अिन्द्रियका अमुक हद तक अुपयोग किया जाय, तो वह अच्छा काम देती है, और आराम मिलते ही अपनी मूल स्थितिमे आ जाती है। अुस हदको लाघ जाने पर या हमेशा अुस पर तनाव डालनेसे वह निकम्मी हो जाती है और अुसके स्नायु मूल स्थितिमे नही आ पाते। अर्थात् कभी पूरा आराम नही भोग सकते। नतीजा यह होता है कि वह अिन्द्रिय सदा अतृप्त ही रहती है। अुसे विषयका थोडा भी आघात लगते ही वह जाग्रत हो जाती है और अुस दिशामे झुक जाने या खिच जानेके लिअे हमेशा तैयार रहती है। अेक बार अैसी स्थिति हो जाने पर अुस विषयके अुपभोगसे दूर रहना अिन्द्रियके लिअे लगभग असभव हो जाता है। अपनी रसवृत्तिके कारण मनुष्यको अैसा लगता है कि अुस विषयका भोग अुसे सुखी बनाता है, परतु सच पूछा जाय तो जैसे-जैसे वह भोग भोगता जाना है, वैसे-वैसे अुसके स्नायु मूल स्थितिमे आनेके लिअे अयोग्य बनते जाते है और अुसे प्रसन्नताका अनुभव करने ही नही देते। अुस पदार्थके बारेमे रागात्मक कल्पना होनेके कारण अुसे अैसा आभास होता है कि विषयके सयोगसे अुसे शाति और सतोष मिलता है। यदि किसी विचारसे भोग भोगनेवालेकी कल्पनामे परिवर्तन हो, तो अुसे यह अनुभव होते देर नही लगेगी कि अिस विषयके सयोगमे — स्मरणमे — भी सुख नही है। अेक बार अेक तरहका अिन्द्रियभोग खूब भोग लेनेके बाद सयमका प्रयत्न करनेवालेको अतिशय कष्ट अुठाना पडता है, अुसका यही कारण है। जिस समय वह भोगको बढा रहा था, अुस समय अुसे भोगके बारेमें रागात्मक कल्पना थी। अुस समय अुसने अिस अिन्द्रियके स्नायुओ पर तनाव डालकर अुसे काफी बिगाड डाला। अब अुस अिन्द्रियको अुस विषयके स्मरणसे भी अुत्तेजित होनेकी आदत पड गअी। अुसके बाद असके शरीरनाशक

परिणामोंके कारण या सद्‌विचार पैदा होनेके कारण अुस विषयमे अुसे दोष दिखाओी देने लगा। अब वह सयमका पालन करना चाहता है। लेकिन अुसकी अिन्द्रियको तो जाग्रत होनेकी आदत पड गअी है। अुस जागृतिको रोकनेकी शक्ति वह आसानीसे नही प्राप्त कर सकता। वह जागृतिको रोकनेका विचार करता है, तो भी अुसमे विषयका स्मरण होनेसे यह अुपाय अुसे अपाय जैसा मालूम होने लगता है। अिस तरह अब दोषबुद्धि अुत्पन्न होनेसे विषयका अुपभोग भी अुसे सुखी नही बनाता, और अिन्द्रियकी मूल स्थितिमे आनेकी असमर्थताके कारण प्रसन्नता भी नही पैदा कर सकता।* अिसके फल-स्वरूप अुसका यह काल अत्यन्त मानसिक क्लेशमे व्यतीत होता है। परतु यदि वह धैर्यके साथ अिस कालको पार कर जाता है, तो अन्तमे विजय अवश्य प्राप्त करता है।

लेकिन अितना धैर्यबल सबके पास नही होता। और हो तो भी विचारणीय प्रश्न यह है कि अुसके क्लेशका कारण गलत कल्पनाको सही मानकर विषयके लिअे पोसी हुअी अुसकी रागपूर्ण कल्पना ही होती है। जिस तरह रागपूर्ण कल्पना हानिकारक विषयमे प्रीतिरस पैदा करती है, अुसी तरह द्वेषपूर्ण कल्पना योग्य विषयके प्रति अरुचिकी वृत्ति पैदा करती है। और अुसकी भी आदत पड जानेके बाद योग्य विषयको स्वीकारनेका अभ्यास डालनेमे अुतना ही दु ख होता है। अुदाहरणके लिअे, अन्त्यज अछूत है, अिस कल्पनाका हमने अितने लबे समय तक पोषण किया है और अुनके प्रति रहनेवाली अरुचिके हम अितने ज्यादा आदी हो गये है कि अब अुस कल्पनाको भूलभरी समझ लेनेके बाद भी अन्त्यजको छूनेमें हमें अनजाने ही सकोचका अनुभव होता है और अिस वृत्तिमे रहे घोर अन्यायका भान

---

* यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित ।
अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन.।। (गीता २–६०)

होने पर असी वृत्ति अुत्पन्न होनेका दुःख भी होता है। दूसरा अुदाहरण: मेरे बचपनमें ड्रिल और ड्रिलके साथ हो सकनेवाली कसरत शालामें अनिवार्य थी। लेकिन मुझे स्मरण है कि अुस अुपयोगी और स्वास्थ्य बढ़ानेवाली कसरतके साथ अितना त्रास जोड़ दिया गया था और कसरतका महत्त्व मेरे मन पर बैठाते समय भी असे मर्मभेदी कटाक्ष किये जाते थे कि ड्रिल और कसरतके नामसे ही मेरा मन सन्तापसे भर जाता था। ड्रिल और कसरतके प्रति मेरी अरुचि अितनी ज्यादा बढ़ गअी थी कि बादमें अुनका महत्त्व समझ लेने पर भी अुस अरुचिको मैं पूरी तरह मिटा नहीं सका। और अुनके सुपरिणामोंका अनुभव करने पर भी व्यायाम शुरू करते हुअे पहली वृत्ति संताप या अरुचिकी ही पैदा होती है।

अिस परसे मालूम होगा कि रसवृत्तिके पोषणमें पदार्थकी नैसर्गिक योग्यताकी अपेक्षा समाज द्वारा पोषित कल्पनायें ज्यादा महत्त्वका काम करती हैं। अिससे शुद्ध रसवृत्ति और अशुद्ध रसवृत्तिके बीच भेद करनेकी कुंजी हमें मिल जाती है. वह यह है कि किसी भी पदार्थके बारेमें की हुअी कल्पना ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धिकी विरोधी न हो, तो ही अुससे संबंध रखनेवाला रस शुद्ध माना जा सकता है। सोचनेसे पता चलेगा कि अिन्द्रियोंकी शुद्धि बनाये रखनेके लिअे (१) अिन्द्रियोंका आवश्यक अुपयोग कारणके लिअे ही और संयमपूर्वक किया जाना चाहिये, अथवा विशेष तालीम देनेके लिअे अुनका अुपयोग होना चाहिये, (२) अिन्द्रियोंके विषयोंकी मात्रा तीव्र नहीं होनी चाहिये —यानी अतिशय तीव्र स्वाद, अत्यन्त गहरे रंग, अत्यन्त बारीक या मोटी आवाजें, अत्यन्त तीव्र स्पर्शो या गंधोंका अभ्यास अिन्द्रियोंकी शक्तिको कुंठित कर डालते हैं; (३) किसी भी विषयका रस हमारे स्नायुओं और ज्ञान तंतुओंको विवश बना देने जितना शक्तिमान नहीं होना चाहिये। किसी भी विषयके बारेमें हमारी रसवृत्ति अितनी शुद्ध होनी चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर या अकस्मात् अुसका

अुपभोग कर लेनेके वाद अुसका स्मरण व्यर्थका तनाव न पैदा करे, अुपभोगके समय कुदरती असरसे भिन्न प्रकारका तनाव न पैदा करे और अुस अुपभोगके वाद स्नायु विकृत न रहे। और अिसके लिअे हरअेक विषयके संबधमें हमारी कल्पना यथार्थ होनी चाहिये।* अिन नियमोंके पालनसे जो स्थूल चिह्न दिखाअी देंगे, अुनमें से कुछ ये है. (१) परिमित अुपभोगसे तृप्ति, (२) हर्ष या शोकके स्मरणसे रहित शुद्ध प्रसन्नता, (३) वार वार अुपभोग करनेकी आतुरताका अभाव, (४) शोक या कष्टके विना विषयका त्याग करनेकी शक्ति, (५) अिन्द्रियोंकी तेजस्विताकी वृद्धि न हो तो भी निश्चित रूपमें स्थिरता।

शुद्धि और रसवृत्तिके बीच दूसरा भेद यह है कि अेक अिन्द्रियकी शुद्धि दूसरी अिन्द्रियकी शुद्धिमें वाधा नही डालती। आखोंको अधिक तालीम देनेसे कानोंके वहरे हो जानेका डर नही रहता। लेकिन अेक अिन्द्रियकी लोलुपता दूसरी सारी अिन्द्रियों पर प्राप्त किये हुअे सयमको शिथिल बना देती है।

मनु भगवान कहते है·

अिन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा धृते पादादिवोदकम्॥

जिस तरह पखालका अेक पाव (मुह) खुला रह जाय तो अुसके जरिये सारा पानी वह जाता है, अुसी तरह सारी अिन्द्रियोंमें से अेक

---

* अिन्द्रियस्येन्द्रियार्थेषु रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥
(गीता ३–३४)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
(गीता २–६४)

भी अिन्द्रिय यदि खुली छोड दी जाय तो असुके जरिये सारी प्रज्ञा-शक्ति वह जाती है। *

स्नायुओका विश्राम ही यदि प्रसन्नताका कारण हो, तो अैसा लगना सभव है कि सच्चा सुख अिन्द्रियो पर बिलकुल तनाव न पडने देनेमे ही है, पहले तनाव पडने देना और वादमे विश्राम भोगना यह तो अुलटी रीति कही जायगी। सत्य तो यही है। परतु जब तक शरीरमे प्राण चलता है, तब तक अिन्द्रियोका विश्राम अखडित नहीं रखा जा सकता। और प्राणका चलना कुछ समयके लिअे भले बन्द रखा जाय, परतु मृत्युके बिना सदाके लिअे बन्द नही किया जा सकता। अिसलिअे साधारण जीवनके लिअे तो अिन्द्रियोकी शक्तिकी और रसकी शुद्धि ही अेकमात्र मार्ग रह जाता है। जिस प्रकार धनकी वृद्धि भी अन्तमे खर्च करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिअे ही होती है, अुसी प्रकार शरीर या अिन्द्रियोकी शक्तिका सचय भी अन्तमे खर्च कर डालनेके लिअे ही है। लेकिन जैसे अिकट्ठे किये हुअे धनका भोग-विलासमें किया हुआ खर्च अुचित नही माना जा सकता, बल्कि अुसकी किफायतशारी ही सद्‌गुण मानी जायगी, वैसे ही अिन्द्रियोके बारेमे भी कहा जा सकता है। सचय और किफायतशारी सद्‌गुण है और व्यय

---

* अिन्द्रियोकी शुद्धि और रसवृत्तिके मार्मिक अुदाहरणके रूपमे श्री काकासाहब कालेलकरने पृथ्वीराज चौहानका दृष्टान्त अेक वर्गमें दिया था। पृथ्वीराजकी कर्णेन्द्रिय अत्यन्त शुद्ध और अत्यन्त रसिक भी थी। अपनी गान-तानकी लोलुपताके कारण राजकार्यके प्रति अुसकी रुचि नही थी। नतीजा यह हुआ कि अुसने राजपाट सब खो दिया और देश पर विदेशी सत्ता स्थापित करा दी। लेकिन कर्णेन्द्रियकी अुसी शुद्धिसे अुसने अन्धा हो जानेके बाद भी (दतकथाके अनुसार) शत्रुका नाश किया। यदि अुसने कर्णेन्द्रियकी रसवृत्तिको संयममे रखा होता तो!

विनाशक है। फिर भी जिस तरह सत्कार्यके लिअे किया जानेवाला सारे धनका त्याग दुर्गुण नही बल्कि सद्‌गुण है, अुसी तरह दूसरोका दु ख दूर करनेके लिअे या दूसरी किसी जरूरी सेवाके लिअे अिन्द्रियोकी सारी शक्तिया खर्च हो जाय, तो वह दुर्गुण नही बल्कि वडा सद्-गुण ही माना जायगा। और अैसे कार्यके लिअे अुपयोगी हो सके अिस ढगसे वढाये हुअे तीव्र रस — मृत्युके समीप ले जानेवाले हो तो भी — न केवल शुद्ध ही माने जायगे, वल्कि अशुद्ध रसोमे से पीछे लौटनेके लिअे अुपयोगी साधन भी माने जायेंगे। दया, करुणा, सहानुभूति, शौर्य आदि रस अैसे ही हैं।

यदि यह विचार-परपरा ठीक हो, तो माता-पिता, शिक्षक, मित्र, नेता वगैरा जो कुछ कहते या सिखाते है, अुससे जनतामें किस प्रकारकी और कितने तीव्र रूपमें कल्पनायें और भावनायें पैदा होती है और वढती है, अिसका विचार करनेकी अुन पर भारी जिम्मेदारी आती है। अिन्द्रियोकी तालीमके नाम पर, रसवृत्तिके विकासके नाम पर, कलाकी वृद्धिके नाम पर या किसी दूसरे रूपमें हम विश्वकी सजीव-निर्जीव सृष्टिके प्रति किस तरहके रागद्वेप पैदा करते है, और अुसके फल-स्वरूप जनताकी कितनी सेवा करते है अथवा स्वय अपनी कितनी अुन्नति साधते हैं, अिसका जितना विचार करे अुतना थोडा ही है। जिन विषयो या विचारोकी तरफ अिन्द्रियोकी दौड दूसरोका हित सिद्ध किये विना केवल हमारा नाश करनेवाली है, अुन विषयो या विचारोमें चाहे जितनी करामात या तार्किक सूक्ष्मता हो, फिर भी वह अशुद्ध रस है। सव कुछ गलत या अनुचित ही होता है, अैसा मेरा कहनेका आशय नही, न मै यही मानता हू कि सव कुछ अुचित ही होता है। मेरा कहना तो अितना ही है कि जिस दृष्टिसे मैंने अिसका विचार किया है, अुस दृष्टिसे अिन्द्रियोकी तालीमका, रस-विकासका या कलावृत्तिका शायद विचार नही किया गया है। क्योकि मुझे लगता है कि यह दृष्टि यदि भलीभाति समझी और स्वीकारी

जाय, तो हमारी शालाओंमें पढाओी जानेवाली पुस्तकोके अनेक पाठों, अभ्यासक्रमों, संमेलनों, अुत्सवों आदिकी योजनामें असाधारण या क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पडेगे। अपनी शक्तिके अनुसार मैंने यह दृष्टि प्रस्तुत करनेका नम्र प्रयत्न किया है।

८

कल्पनाशक्तिकी तालीम

वालककी मानसिक तालीममे कल्पनाशक्तिकी तालीम अेक वडे महत्त्वका विषय है। टॉल्स्टॉयको अपने विद्यार्थियोकी कल्पनाशक्ति वढानेमें वडा आनन्द आता था। शिक्षाके वहुतसे विषय अैसे है कि जिनमें कल्पनाशक्तिके योग्य विकासके विना अधिक प्रगति नही की जा सकती।

लेकिन कल्पनाशक्ति तीन प्रकारकी है· सर्जक, समाधानकारक और अनुभवशोधक।

कवियो, अुपन्यासकारो वगैराकी कल्पनाशक्ति सर्जक होती है। वे अनुभव न की हुअी वातोकी कल्पना करते हैं, या अनुभव की हुअी अनेक वातोका अेक-दूसरेके साथ अैसा मिश्रण करते है कि वे न अनुभव की हुअी जैसी ही वन जाती है। शिक्षक जव वालकोंको कहानी कहने लगता है, तव सर्जक कल्पनाका ही सहारा लेता है। अिस सर्जक कल्पनामे चातुर्य काफी हो सकता है; अुसमे चमत्कारके जैसा आश्चर्य अुत्पन्न किया जा सकता है, अुसमें विविध रस अुत्पन्न किये जा सकते हैं। और अिसलिअे अैसी कल्पनाओमे विताया हुआ समय आनन्ददायक मालूम होता है।

गंभीर विचारोको साधारण मनुष्योकी वुद्धि आसानीसे समझ नही सकती। अमूर्त (निराकार) भावोको किसी तरहके दृष्टान्तों द्वारा मूर्त (साकार) वनाये विना साधारण मनुष्य अुन्हे समझ नही

सकते। यदि हम किसीको सत्यकी महिमा 'विदुरनीति' जैसे ग्रन्थके श्लोको द्वारा समझाये, तो वह अुसे झट समझ नही सकता। और समझ नही सकता, अिसलिअे जहा अुस विपयका विवेचन चलता है, वहा वह सो जाता है। परतु यदि कडीसे कडी कसौटीके समय भी सत्यका पालन करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रकी कहानी द्वारा सत्यकी महिमा समझाअी जाय, तो सत्यके आदर्शका चित्र साधारण मनुष्यके हृदय पर भी अच्छी तरह अकित हो सकता है।

अिस कारणसे प्रत्येक धर्ममे और प्रत्येक राष्ट्रमे सर्जक कल्पनाका बहुत ज्यादा सहारा लिया गया है। चतुर कवियोने खुदको अच्छे लगनेवाले भावोको अनेक प्रकारकी कहानियोमें गूथकर लोगोको समझाया है। लोककथाओं, पौराणिक कथाओंके कुछ भागो, देवादिके स्वरूपो, वृत्तातो, काव्यो, हितोपदेश, औसप-नीतिसे लेकर आजके जमानेके अुपन्यासो तकका साहित्य सर्जक कल्पनाके ही स्वरूपका है।

अिस तरह सर्जक कल्पनाने मनुष्यकी शिक्षामें बहुत वडा भाग लिया है, अैसा कहा जा सकता है। और लोगोने सर्जक कल्पना-कारोका अनेक प्रकारसे आदर भी किया है।

फिर भी, सर्जक कल्पनाके विकासको मैं तालीमका आवश्यक अग नही मानता। मुझे अिस विषयमें शका है कि वालकको तालीम देनेमे सर्जक कल्पनाका आधार लेना अुचित है या नही। श्री गिजु-भाअी कहते है कि डॉ० मॉन्टेसोरी भी काल्पनिक वार्ताओकी विरोधी है, और स्माअिल्स भी अपनी 'कर्तव्य' (Duty) नामक पुस्तकमे करुणा, दया आदिके कोमल भाव पैदा करनेवाली होने पर भी काल्पनिक वार्ताओकी निन्दा करनेवाला शार्पका अेक वाक्य अुद्धृत करते है।* यहा मैंने सावधानता-सूचक 'शका' शब्दका अुपयोग नही

---

* शार्प कहता है कि, "करुण रस पैदा करनेवाली काल्पनिक कथाओंके विषयमे वडीसे वडी आपत्ति यह है कि अुनसे दयाकी या

किया होता; लेकिन टॉल्स्टॉय और गिजुभाओी जैसे समर्थ शिक्षक अिसका समर्थन करते है, अिसलिअे अिस वारेमे अधिक विचार जाननेकी मै छूट रखता हू।

सर्जक कल्पनाके लिअे मेरी मुख्य आपत्ति यह है कि वह असत्यके कलकसे दूषित है। अवलोकन और अनुभवसे अैसा मालूम होता है कि सर्जक कल्पनाअे करनेकी और सुननेकी वृत्ति करनेवाले और सुननेवाले दोनोको असत्यकी ओर ले जाती है और दोनोंको धोखा देती है। वह कविको किसी भी भूमिका पर स्थिर नही होने देती। और वह श्रोताके मनमें या तो अैसा भ्रम अुत्पन्न करती है कि अिस कहानीमे अैतिहासिक सत्य है, अथवा वह झूठी है अैसा जान लेने पर भी श्रोता अुसमें से अपने व्यवहारके लिअे कुजीरूप वन सकनेवाला अुपदेश नही ग्रहण करता। अिस तरह वह कहानी वेकार जाती है।

अिसके अुदाहरण लीजिये :

अगर चिडा-चिडीकी कहानीको वालक सच्ची मानता है, तो भ्रममे रहता है। यह भ्रम थोडे समय बाद भले मिट जानेवाला हो, परंतु अेक क्षणके लिअे भी असत्य ज्ञान देना — यानी अज्ञान देना — ज्ञानदाता शिक्षकका धर्म नही है। अिसका कारण स्पष्ट है। बालक चिडा-चिड़ीकी अमुक वार्ताको असत्य रूपमें परखना सीख जाय, तो भी सभव है भ्रममें रहनेकी आदत दूसरी किसी जगह अपना काम करे। शायद योगवासिष्ठ पढते समय किसी चिरजीवी काकभुशुडीकी वार्ताओमे या सन्यासीके स्वप्नोकी वार्ताओमे सचाअीकी श्रद्धा रहे — यानी वे भी सर्जक कल्पना ही है अैसा पहचान न सके।

अन्यायके प्रति द्वेप करनेकी निकम्मी भावना पैदा होती है। यह भावना निकम्मी अिसलिअे है कि अुसके साथ भावना रखनेवालेमें दु ख या अन्याय दूर करनेका पुरुषार्थ पैदा नही होता।" सात्त्विक भाव पैदा होकर जहाका वहा शान्त हो जाता है और चित्तमें केवल अेक प्रकारका खेद ही रह जाता है।

पुराणोमे कअी स्थानों पर यह साफ साफ कहा भी गया है कि सरस्वती, गणपति, विष्णु, विराट अित्यादि देवताओंके स्वरूप अमुक भावोको स्थिर बनानेके लिअे की गअी सर्जक क्रल्पनाये है। फिर भी, न केवल साधारण लोगोमे वल्कि विद्वानोमे भी अिस मान्यताने जड़ जमा ली है कि पुराणोकी कथाओमे प्राचीन कालका अितिहास है। अिसलिअे वह अेक सर्जक कल्पना ही है, यह वचन भुला दिया जाता है और कल्पनाका मोहक रूप श्रोताके मन पर स्थायी असर डालता है। लोगोमे भ्रम, पराधीन बुद्धि, अन्धविश्वास और अज्ञान कायम रखनेमे अैसी कथाये कारण वनती है।

दूसरी तरफ, ये वार्ताअें काल्पनिक है अैसा ज्ञान होने पर अुनमें की सारी वस्तुको छोड देनेकी वृत्ति पैदा होती है। चिडा-चिडीकी वार्ता झूठी है, अैसा जाननेके वाद यह अुपदेश कौनसा वालक लेता है कि 'झूठ नही बोलना चाहिये'? अिसलिअे वार्ता कहनेका हेतु निष्फल जाता है। केवल मनोरजन ही अुसका अेकमात्र हेतु रह जाता है।

स्वय कविके लिअे भी यह वृत्ति कुल मिलाकर धोखा देनेवाली ही सिद्ध होती है। सर्जक कल्पनाकी जवरदस्त वाढ आने पर कवि भले विश्वव्यापी प्रेमका गीत रचे, सत्यकी पराकाष्ठा दिखानेवाले पात्र चित्रित करे, दयाकी अूचीसे अूची भूमिकाका अुदाहरण पेश करे, मूर्तिमन्त क्रूरताका दर्शन करावे, यह सिद्ध करे कि अनीति और अन्यायसे विनाश होता है और सत्यकी जय होती है, या यह गावे कि सारा जगत् अीश्वरमय है। यह सब रचते समय कवि कमसे कम थोडे समयके लिअे तो अिन सब अुदात्त भावोंके साथ तद्रूप हो जाता है। परतु यदि वह कविके साथ साधक भी हो, तो अुसे यह भी लग सकता है कि अव तो मै विश्वप्रेमी हो गया हू, सत्य और दयाकी अूचीसे अूची दशाको मैने प्राप्त कर लिया है, मै नीतिका पुजारी और अनीतिका शत्रु हू, मै सारे जगत्को अीश्वररूप देखता हूं — आदि आदि। सच पूछा जाय तो कवि थोड़े समयके लिअे

ही अिन अुदात्त भावोके साथ तद्रूप होता है, और अुन भावोंका आवेग अुतरते ही पुनः साधारण मनुष्य वन जाता है। लेकिन अिस कल्पनाकी वाढके समय वह जो खुमारी और मस्ती अनुभव करता है, अुसके कारण वह दूसरोमे थोडी मात्रामे परतु वास्तवमे रहनेवाले प्रेम, सत्य, दया आदि भावोका मजाक करनेके लिअे भी ललचाता है। यह मस्ती, जैसा कि पहले दी गअी अेक टिप्पणीमे अुद्धृत शार्पके वाक्यमें बताया गया है, केवल पुरुषार्थहीन और निकम्मी होती है।

अिसके अलावा, अनेक पाठक भी अिससे धोखा खाते हैं। क्योकि वे मान लेते है कि लेखक खुद अपने चित्रित किये हुअे भावोमें स्थिर हो गया होगा।

'दूधका जला छाछको भी फूककर पीता है', अिस कहावतके अनुसार मै अिस वारेमे अत्यन्त कडी परीक्षा करनेकी वृत्तिवाला वन गया हू। वहुतसी अच्छी और हितकारी वाते समझानेके लिअे भी अैसी कल्पनायें सामने रखनेकी मेरी अिच्छा नही होती, जो थोडी भी असत्य या भ्रममे डालनेवाली हो या वादमे जिनका निषेध करना पडे। पहले अैसी भ्रामक कल्पनाओंका पोषण करना और वादमें अुनका निषेध करना, यह द्राविडी प्राणायाम जितना रुके अुतना ही अच्छा है।

श्री रामनारायण पाठक*ने थोडे दिन पहले महाविद्यालयके विद्यार्थियोंके सामने अेक वडी सत्य वात कही थी जव मुझमे वृत्तिके अनुसार आचरण करनेका पुरुषार्थ कम हो जाता है, तब मै कल्पनाके क्षेत्रमें विहार करने लगता हू। जब मै आचरणमे विश्वप्रेम नही बता सकता, तब विश्वप्रेमका गीत रचता हू। वीरता नही वता सकता, तव वीररसके काव्यकी रचना करता हू। राज्यका मत्री नही वन सकता, तव राज्य कैसे चलाना, अिसके बारेमें अुपन्यास लिखता हू। आदर्शो पर पूरा अमल नही कर सकता, तव आदर्शका चित्रण करता हू।

* स्व रामनारायण विश्वनाथ पाठक, गुजरातके समर्थ विवेचक, कहानीकार, कवि, हास्यलेखक और पिंगलकार।

अेक साखीमें भी कहा गया है कि क्षत्रियोमें वीरता पैदा करनेवाले और अुन्हे जोश चढानेवाले चारण रणक्षेत्रसे भागनेमें सबसे पहले होते है।

लेकिन अिसका यह अर्थ नही कि कल्पनाशक्तिकी देन चित्तको व्यर्थ मिली है। तीव्र कल्पनाशक्तिके अभावमे अनेक कर्तव्योका पालन नही हो सकता, भावनायें जाग्रत नही हो सकती, नअी खोजोमे वुद्धि नही चल सकती और स्मृति शुद्ध नही हो सकती।

समाधानकारक कल्पना अैसी ही अेक अुपयोगी कल्पनाशक्ति है। जगत्‌में अैसे कअी अनुभव हमे होते है, जिनका स्पष्टीकरण अिन्द्रियो द्वारा प्रत्यक्ष रूपमें हमें नही मिलता। तेजका स्वरूप क्या है, विजलीका स्वरूप क्या है, जगत्‌में मालूम होनेवाली विषमताका कारण क्या है, वगैरा विज्ञान और तत्त्वज्ञानसे सबध रखनेवाले अनेक प्रश्नोका प्रत्यक्ष प्रमाण हमे नही मिलता, या लबे समय तक नही मिल पाता। जब तक प्रत्यक्ष प्रमाण न मिले, तव तक अिन प्रश्नोंके प्रति हमसे अुदासीन भी नही रहा जा सकता। बुद्धिको किसी भी तरहका स्पष्टीकरण तो चाहिये ही। अिसलिअे मनुष्य अलग-अलग समझमे आने लायक कल्पनायें करता है। अिन्हे वाद (Theory, Hypothesis) कहते है। विकासवाद, पुनर्जन्मवाद, मायावाद, अणुवाद, तरगवाद (Theory of Vibrations) वगैरा विज्ञान या तत्त्वज्ञानसे सबध रखनेवाले प्रत्येक शास्त्रमे पाये जानेवाले वाद प्रत्यक्ष परिणामोंके अप्रत्यक्ष कारणोकी कल्पनायें ही है। विशेष अनुभव प्राप्त करनेके लिअे तथा अनुभवसिद्ध स्पष्टीकरण न मिलने तक बुद्धिकी भूख मिटानेके लिअे अैसी कल्पनायें पैदा होती है। अिस कल्पनाका स्वरूप भी सर्जक ही है; अथवा अैसा कहे तो भी चल सकता है कि अूपर बताअी हुअी सर्जक कल्पनाकी यह जननी है। लेकिन अिस कल्पनाका अुपयोग और अुद्देश्य सर्जक कल्पनासे भिन्न है। और दूसरी तरफ अिसका सवध अनुभवशोधक कल्पनाके साथ है, अिसलिअे अिसकी अलगसे गिनती करना ठीक होगा।

अिस तरहकी कल्पनाका अंतिम ध्येय सत्यकी शोध है। यह दूसरे क्षेत्रोंके अनुभवोंसे अुत्पन्न होती है। आकाशमे विजलीके साथ हुअी गर्जना हमे कुछ क्षण बाद सुनाअी देती है। लेकिन आवाज सुनाअी देनेका मतलब यह नही होता कि आकाशमे से बारीक रज जैसी चीजके हमारे कानमे आकर घुसनेका अनुभव हमें होता है। आवाज अमुक गतिसे आगे बढती है, यह भी जब हमने प्रयोग द्वारा खोज निकाला, तब सवाल अुठा. अिस तरह अेक जगह होनेवाली आवाजके अमुक गतिसे दूसरी जगह पहुचनेका कारण क्या है? —अिसकी हमे खोज करनी है। किस तरहके प्रयत्नसे हम यह खोज कर सकते है? आवाजकी गतिका कारण अमुक वस्तु हो, तो अुसे हम प्रत्यक्ष देख नही सकते। वह अमुक गतिका अनुभव हो, तो अुस गतिको भी हम अपनी आखोसे प्रत्यक्ष देख नही सकते। तब क्या हमने अैसी कोअी गति आखोंसे देखी है, जिसकी अुपमा आवाजकी गतिको दी जा सके? अिस तरह सोचते-सोचते विज्ञानशास्त्री जगत्‌की सारी स्थूल गतियोकी जाच करता है और अैसा लगता है कि पानीकी तरगकी चालमें अुसे आवाजकी चालकी अुपमा मिल जाती है। अुस परसे वह कल्पना करता है कि अेक स्थान पर दो चीजोके टकरानेसे हवामें किसी तरहकी तरगें फैलती होगी। बादमे अिस कल्पनाके आधार पर वह आवाजके बारेमें ज्यादा अध्ययन करता है और सोचता है कि यह कल्पना यदि सही हो तो क्या परिणाम आने चाहिये, और यह निरीक्षण करता है कि वैसे परिणाम सचमुच आते है या नही। अुसमे होनेवाले अनुभवके आधार पर वह अिस कल्पनाके स्वरूपमे परिवर्तन करता है और अपनी खोजको आगे बढाता है। अनेक देवोमे से दैवी सपत्ति और आसुरी सपत्तिके अधिष्ठाता दो देवोकी और अुनमे से अेक देवकी, अनेक तत्त्वोमे से दो तत्त्वोकी और अुसमें से अेक तत्त्वकी, नियतिमें से कर्मफलकी—अिस तरह विचार-सरणियोका आधार लेकर अुनका अनुभव करता हुआ, अनुभवको समझानेके लिअे कल्पना

करता हुआ, कल्पनाके आधार पर पुनः शोध करता हुआ और अुसमें से फिर नअी कल्पनायें करता हुआ मनुष्य विज्ञानशास्त्र और तत्त्व-ज्ञानमे आगे बढा है।

अिस तरहकी समाधानके लिअे की गअी कल्पनामें से ही सर्जक कल्पनाकी अुत्पत्ति हुअी है। लबे समय तक टिकी हुअी किसी समाधानकारक कल्पनाको जब हम साधारण जनोको समझानेके लिअे अधिक मूर्त स्वरूप देना चाहते है और अिस कारणसे अुसका विस्तार करते है, तब वह सर्जक कल्पनाका रूप लेती है। अुदाहरणके लिअे, शीतलाके अुपद्रवको समझानेके लिअे किसी आसुरी देवीकी कल्पना की जाय और बादमे अुस कल्पनाको सर्वमान्य बनानेके लिअे अुसकी कहानिया रची जाय। *

अब तीसरे प्रकारकी कल्पनाका विचार करें।

अुसके कुछ अुदाहरण ले।

चीन, मलबार, हरिद्वार वगैरा जगहोमे जलप्रलय हुआ, जापानमे भूकम्प हुआ, लडाअीमें लाखो मनुष्योका सहार हुआ; अिन सारी घटनाओके साक्षी बननेका मौका कुछ ही लोगोको मिला। ये घटनायें अैसी है, जिनमे सुरक्षित रही सारी जनताका विपत्तिमे पड़ी हुअी जनताकी सहायता करना जरूरी माना जायगा। यह सहायता करनेकी वृत्ति कैसे पैदा हो और किसमें पैदा हो? जिसकी कल्पनाशक्ति अुस भयकर बाढको, अुस भूकम्पसे पैदा होनेवाली

---

* डार्विनके विकासवादको समझानेके लिअे 'Before Adam' नामका अुपन्यास आधुनिक कालका अैसा अेक पुराण कहा जा सकता है।

यह समाधानकारक कल्पनाशक्तिका दुरुपयोग है। अिससे यह मान्यता बनती है कि अब तककी विकासवादकी कल्पनामे कुछ घटाने-बढानेकी जरूरत ही नही है। अैसी मान्यता बादमे सत्यकी शोध और प्रचारमें बाधक सिद्ध होती है।

नगरव्यापी आगको और लडाअीके भयानक दृश्यको अपनी दृष्टिके सामने चित्रित कर सकती है, वही अैसे समय अपने पर आनेवाली जिम्मेदारीको भलीभाति समझ सकता है। पानीमें वह जानेका क्या अर्थ है, घरबार बरबाद हो जानेका, अुसके भस्म हो जानेका, अुसके मलबेमें दब जानेका, धुअेमे दम घुटनेका, लडाअीमे गोली लगनेका, हाथ-प्रावके टूट या कटकर अलग हो जानेका, बच्चोका अपने माता-पितासे जुदा पड जानेका, शरीर पर केवल पहने हुअे कपडोके साथ अपनी रक्षाके लिअे जहा भागा जा सके वहा भाग जानेका क्या अर्थ होता है—अिन सब बातोका और अिनमे रहे दु ख-दर्दका चित्रण न कर सके, अैसी मन्द जिस मनुष्यकी कल्पनाशक्ति है, अुसे ये सब समाचार सुनकर अपने सिर कोअी जिम्मेदारी आ पडनेका भान नही हो सकता। भावना और कर्तव्यबुद्धि जाग्रत होनेके लिअे कल्पनासे अिस दृश्यका अनुभव करनेकी अुसमे शक्ति होनी चाहिये।

बहुत बार हम लोगोको अुनकी निर्दयताके लिअे दोष देते है, न सिर्फ़ दूसरोकी वेदनासे अुनके हृदयके तार नही हिलते, बल्कि अुससे वे अुलटे आनन्द मनाते दिखाअी देते हैं। गहरी छानबीनसे मालूम होगा कि अैसे लोगोकी कल्पनाशक्ति ही बहुत मन्द होती है। आख फोड़नेसे क्या होता है, पाव लगडा होनेसे कैसी वेदना होती है, दाढ दुखनेसे कैसा अनुभव होता है, भुखमरीका क्या अर्थ है—अिसका वे कल्पनासे अनुभव नही कर सकते। और वेदना भोगनेवाला जब कराहता या चिल्लाता है, तब दया अनुभव करनेके बजाय वे अुससे अूब जाते है; अथवा लगड़े या अधे मनुष्यके असाधारण व्यवहारसे अुन्हे आश्चर्य और आनन्द होता है।

अिसी तरह विज्ञानशास्त्रोकी विविध शाखायें कल्पनाशक्तिके अभावमें आगे नही बढ सकती। विद्यार्थीको जोडकी सख्यायें सीधी तरह लिखानेसे वह तुरन्त अुसका अुत्तर निकाल लेता है। लेकिन अुन्ही सख्याओको अितने आम, अितने जामुन वगैरा पेचीदा तरीकेसे

सिखाया जाय, तो वह अुलझनमें पड जाता है। अिसका कारण यह है कि व्यवहारोके निगाहके सामने होनेकी कल्पना करनेकी अुसमे शक्ति नही होती। कितने ही विद्यार्थी भूमिति (ज्यॉमेट्री) के सिद्धान्तोको पुस्तकमें दिये हुअे तरीकेसे अच्छी तरह सिद्ध कर बताते है; लेकिन अुन परसे निकलनेवाले अुपसिद्धान्तोको सिद्ध करके नही बता सकते। वे बीजगणित या त्रिकोणगणित (Trigonometry) के गुरुसूत्रो (formulae) को सिद्ध कर सकते है, लेकिन व्यावहारिक गणितमें अुनका अुपयोग नही कर सकते। अिस सबका कारण यही है कि अुन सिद्धान्तो और गुरुसूत्रोंके पीछे रहे सत्य व्यवहारोकी वे कल्पना नही कर सकते। वे सिद्धान्त और गुरुसूत्र अुन्हें केवल तार्किक कसरत जैसे लगते है, और परीक्षामे पास हुअे बिना काम चल नही सकता, अैसा सोचकर वे अुतनी रटाअी करके किसी तरह गाडी आगे बढाते है।

लेकिन अिस सारी कल्पनाशक्तिके पीछे जिस मानसिक शक्तिका अुपयोग होता है अुसमे और अूपर बताअी हुअी सर्जक कल्पनामे भेद है। अिस कल्पनाशक्तिका अर्थ केवल अनुभवको तीव्रतासे जाग्रत करने-वाली और अुसका विस्तार (magnification) करनेवाली शक्ति है। स्पष्ट स्मृति और अिस अनुभवमूलक कल्पनाशक्तिमें थोडा ही भेद है।

देखी हुअी चीजकी हूबहू तस्वीर, सुनी हुअी आवाज मानो फिरसे सुन रहे हो अैसी भनक, खाअी हुअी चीज मानो अिस क्षण भी हमारे मुहमे हो अैसी धारणा — अिन सबको यथार्थ कल्पना भी कहा जा सकता है और स्पष्ट स्मृति भी कहा जा सकता है। केवल अनुभव किये हुअे विषयकी और अनुभव जितनी ही कल्पना स्मृति कही जायगी। अैसी स्पष्ट स्मृति सात्त्विकता हो तभी होती है, और अिसका जितना विकास हो अुतना ही अच्छा है। किसी बालकको अेक नअी चीज दिखाअी जाय, वह अुसका भलीभाति अवलोकन कर

ले और फिर जब अुस चीजको वहासे हटा दिया जाय, तब अुसे अैसा लगे मानो अुस चीजको वह अपनी नजरके सामने देख रहा है, तो अुसकी यह स्मृति अुपयोगी शक्ति मानी जायगी। अैसी स्मृति अनेकावधानमे (अनेक विषयोको अेक साथ याद रखनेमे) और अेकाग्रतामे अुपयोगी होती है। अैसी स्मृतिके विना चित्रकारका काम नही चल सकता।

अिसी स्मृतिका थोडा विस्तार या संकोच किया जाय, तो वह अनुभवशोधक कल्पनाशक्ति हो जाती है। अेक अकाल पीड़ित मनुष्य या पशुके अनुभव परसे अैसे सैकडो मनुष्यो या पशुओकी कल्पना होना; थोडी वेदनाके अनुभव परसे अुसी प्रकारकी तीव्र वेदनाकी कल्पना होना भी मनुष्यके अेक-दूसरेके सुख-दु:खमे सहानुभूतिपूर्वक भाग लेनेके लिअे जरूरी है।

यह भी अेक तरहकी सर्जक कल्पना ही है। लेकिन अिसका अुपयोग केवल कानोसे सुनी हुअी सच्ची घटनाओका अच्छी तरह भान होनेके लिअे है।

अेक तरहसे तो सर्जक कल्पना भी अनुभवमूलक कही जा सकती है; क्योकि अन्तमे तो विचारमात्रका आधार अनुभव ही होता है। लेकिन अिसमे पहले अेक अनुभवशोधक कल्पनाका विस्तार किया जाता है; बादमें दूसरी अनुभवशोधक कल्पना ली जाती है। फिर दोनोके बीच कुछ सबध जोडनेका प्रयत्न किया जाता है। अिसलिअे अनेक अलग अलग सत्य स्मरणोको असत्यकी डोरीमे गूथ दिया जाता है। अिस तरह किसी घटी हुअी घटनाको पहचाननेके लिअे नही, बल्कि अनुभवशोधक कल्पनाओका मिश्रण करके मनोरजनके लिअे अेक खेल खेला जाता है। यह खेल चित्तको अेक प्रकारकी कसरत देता है। जिस हद तक ताशपत्तोका खेल या चौपड़का खेल अुपयोगी माना जा सकता है, अुसी हद तक अिस खेलका कल्पना करनेवालेके लिअे अुपयोग हो सकता है। लेकिन जिस तरह ताश या चौपड़के खेलमें

फुरसतवाला आदमी ही ज्यादा समय दे सकता है, अुसी तरह अिसमे भी समझना चाहिये। अलबत्ता, ताश या चौपड खेलनेवालेको समाज पैसा नही देता। लेकिन चूकि अैसी सर्जक कल्पनाओंसे दूसरे लोगोका भी कुछ मनोरजन हो सकता है, अिसलिअे अिसमें कुछ धन भी मिल सकता है। लेकिन मनुष्यत्वके विकासकी दृष्टिसे अिसकी कीमत बहुत ज्यादा नही मानी जा सकती।

टिप्पणी – १

श्री गिजुभाअीने अेक चर्चामे काल्पनिक वार्ताओंके पक्षमे तीन मुद्दे पेश किये थे:

पहला मुद्दा यह कि विकासशास्त्र द्वारा निश्चित किये हुअे सिद्धान्तोंके अनुसार बालक अपने पूर्वजोकी आदिअवस्थाका प्रतिनिधि है। अेक बार जिस स्थितिमे मानव-समाजके बडी अुमरके मनुष्य भी थे, अुसी स्थितिमें आज बालक है। मानव-समाजकी आदिअवस्थामे मनुष्य कल्पनावश थे। वे जानवरोको मनुष्यो जैसी बोलनेकी शक्तिवाले मानते थे। कुदरती घटनाओके बारेमे मानते थे कि वे अुनके पीछे रहे देवताओकी अिच्छासे होती है। बालक भी अिसी अवस्थामे होता है। बालक लकडीकी गुडिया या लकडीकी चिडियाको लकडी नही मानता, वह अुसके साथ बाते करता है, अुसे प्यार करता है, धमकाता है और अुसके साथ अैसा बरताव करता है मानो वह अुसके जैसा मनुष्य हो। आगे चलकर वह अपने-आप अिस स्थितिमें से बाहर निकल जाता है। फिर वह दूसरे प्रकारकी सृष्टिमें मग्न होता है। अिस कालमें अुसे पराक्रम, चालाकी वगैरासे भरी हुअी कथा-कहानियो और साहसपूर्ण कार्योंमे मजा आता है। क्योंकि मानव-जाति आदि-अवस्थामें से निकलनेके बाद अैसी अवस्थामे से गुजरी थी। अिस कालमे नैतिक विचारोका अुसके जीवनमें प्रधान स्थान नही होता। बल्कि

तेज — ओजकी प्रधानता होती है। अिसके बाद शृगार अुसके चित्तको आकर्षित करता है। अित्यादि।

अिस कारणसे बालकको अुसकी योग्यताके अनुकूल खुराकसे दूर रखना अुचित नही। बालककी जितनी योग्यता होती है, अुससे अूची बातें अुसके साथ करनेमे वह अुनमे कोअी रस नही ले सकता। और अपनी योग्यताके अनुसार वस्तु प्राप्त करनेके लिअे आडे-टेढ़े रास्ते अपनानेका प्रयत्न करता है। अिससे वह नुकसान भी अुठाता है।

मै स्वीकार करता हू कि यह दलील सोचने जैसी है। अिस विषयमे अधिक विचार जाननेकी छूट मै रखता हू, अैसा मै अूपर कह चुका हूं। अिसलिअे यदि मुझे अपने विचारोमें परिवर्तन करना पडे, तो वैसा करनेमे मुझे कोअी सकोच नही होगा।

परतु जैसा कि आगे आनेवाले विकासवाद सबधी लेखोमें मैंने बताया है, अिस दलीलमे विकासके सिद्धान्तका अेकतरफा अवलोकन है। बालकके शारीरिक विकासका क्रम जाचनेसे मालूम होगा कि वह पहले निराधार स्थितिमे जमीन पर पड़ा रहता है, फिर करवट लेना सीखता है, बादमे बैठना, फिर घुटने चलना, फिर खड़ा होना, फिर मदद लेकर चलना और अन्तमे बिना किसीकी मददसे स्वतंत्र रूपसे चलना सीखता है। यह सच है कि हर बालकको अिन सब हालतोमें से गुजरना जरूरी होता है। किन्तु यदि बालक नीरोग बना रहे और बढता जाय, तो अिन सारी हालतोमे से अपने-आप वह आगे बढेगा। यदि माता-पिता अिस क्रममे कुछ हस्तक्षेप करे तो अितना ही कि वे अुसे अूपरकी भूमिकामे ले जानेका और निचली भूमिकामें यथासभव कम समय रखनेका प्रयत्न करेंगे। बच्चेके पैदा होनेके दूसरे ही महीने माता-पिता अधीर होकर अुसकी करवट बदलनेकी जल्दी नही करेंगे। लेकिन कोअी मजबूत बालक अगर दूसरे महीनेमें अैसा प्रयत्न करने लगे, तो माता-पिता अुसके लिअे वैसी अनुकूलता कर देंगे — अुसे रोकेंगे नही। बालक खडा होनेका प्रयत्न करे तो माता-

पिता तुरन्त अुसे अैसा करनेमे मदद करेंगे, रोकेंगे नही। माता-पिताकी अिच्छा रहेगी कि बालक निचली दशामे कमसे कम समय रहे।

फिर, बहुतेरे बच्चे जीवनमे अेक समय मिट्टीमे खेलने और मिट्टी खानेकी स्थितिमे से गुजरते है। लेकिन कोअी माता-पिता अुनके लिअे मिट्टी खानेकी सुविधा नही कर देते। अुलटे, वे यही चिन्ता रखते है कि अुनका बच्चा अिस स्थितिमे से झट निकल जाय।

यही नियम मानसिक विकास पर भी लागू होता है। बालक भले पक्षियो और परियोकी कल्पनाकी भूमिकामे कुछ समय रहे। लेकिन शिक्षकका कर्तव्य अुसे अिस भूमिकामें से बाहर निकालनेका है, अुसके भ्रमोको कायम रखने या बढानेका नही। बादलोकी गड-गडाहट सुनकर बालक भले यह कल्पना करे कि कोअी बडा राक्षस जोरोसे चिल्ला रहा है, अथवा बरसातकी धाराये पडती देखकर भले यह कल्पना करे कि आकाशमें से बड़े बडे पीपोका पानी छलनी द्वारा खाली किया जा रहा है। भले वह तुलसीके पौधेके साथ या खटियाके पावके साथ लडने बैठे, या गुडियोको झूलेमे सुलाकर अुसे चलाने लगे। लेकिन शिक्षकका कर्तव्य अुसकी अिस कल्पनासृष्टिका पोषण करना नही है। अुस सृष्टिका जबरन् नाश करना भी अुसका कर्तव्य नही है। शिक्षककी अिच्छा तो बालकको अिस भ्रमसे निकालकर अुसे सत्यका अवलोकन करानेकी होनी चाहिये। बालकका बालोचित कल्पना करना अेक बात है और शिक्षकका अैसी कहानिया कह कर अुसकी अिस आदतका पोषण करना दूसरी बात है।

अिसके अलावा, अेक दूसरी बात भी विचारणीय है। जिस जमानेमें जानवरोकी कहानियो और परियो अथवा देवताओकी कल्पनाओकी अुत्पत्ति हुअी, अुस जमानेमे सारी अुत्पत्ति मनोरजनके लिअे ही नही हुअी थी। यह बात सच नही है कि अुस जमानेके बडे लोगोको अैसी कहानियोमें आनन्द आता था, अिसलिअे अुन्होने अैसी कहानियोकी रचना की। बल्कि यह कहना चाहिये कि जानवरोकी क्रियाओ, कुदरती

घटनाओ वगैराका अवलोकन करनेवाले लोगोंको अुनके कारणोकी खोज करते हुअे अपनी बुद्धिके अनुसार जो स्पष्टीकरण सूझे, अुनसे अिन कहानियोकी अुत्पत्ति हुअी है। अमुक रोगके जोरोसे फैलनेके पीछे या अेकाअेक अनेक प्राणियोका नाश कर डालनेवाली वर्षाके पीछे किसी विशेष देवताका हाथ होना चाहिये; अैसी कल्पना की गअी; और अुससे सबध रखनेवाली कहानिया रची गअी। वे देव और जानवर अुन लोगोको अपने जीवनके साथ ओतप्रोत हुअे लगते थे; अुसमें केवल कहानियोका रस ही नही था। अुसी तरह यह बात भी सही नही कि पराक्रमके युगमे हमारे पुरखे पराक्रमकी बाते सुननेके रसिया थे। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि साहस और पराक्रम अुनके दैनिक जीवनके अभिन्न अग थे। अुनके जीवनको देखते हुअे साहस और पराक्रमकी वृत्तिको वढानेवाली बातें अुनके लिअे ठीक थी। वे बाते अुनके लिअे झूठी नही, वल्कि सच्ची थी। शिवाजी महाराजके लिअे रामायण-महाभारतकी बातें केवल मनोरजन नही थी। बल्कि अुनसे शिवाजीके जीवनको पोषण मिलता था। अिस न्यायसे बालक जब कल्पनाके युगकी भूमिकामें हो, तब भले अुसे प्राणियो और कुदरतके साथ मिलाया जाय, अुसे अिनका अवलोकन कराया जाय और अिस तरह अुसका मार्गदर्शन किया जाय कि अिनके सबंधमे अपनी बालबुद्धिसे वह स्पष्टीकरण पानेकी कोशिश करे। भले वह अैसे स्पष्टीकरण निकाले, जो हमारी आजकी वैज्ञानिक दृष्टिसे गलत हो। लेकिन अुसके लिअे वे जानबूझ कर की हुअी झूठी कल्पनायें नही होगी। बादमे शिक्षाशास्त्रीका कर्तव्य यह रहेगा कि वह बालकको प्राणियो और कुदरतका ज्यादा अवलोकन करा कर अुसकी गलतियोकी तरफ अुसका ध्यान खीचे और भ्रमपूर्ण कल्पनाये छुडवा दे। लेकिन जब शिक्षक खुद अुसके मनोरजनके लिअे जानवरो और परियोकी कहानिया कहने बैठे, तब कहा जायगा कि वह जानबूझ कर बालककी बुद्धिमे झूठी कल्पनायें भरता है।

अिसी तरह जब बालक पराक्रमकी भूमिकामे हो, तब अुसे पराक्रम और साहसके जीवनकी तरफ ले जाना अुपयोगी माना जायगा। लेकिन वास्तवमे अैसा होता नही। बालक केवल पराक्रम और साहसकी कहानिया ही सुनता है, मनमे वडी बडी कल्पनाओके घोडे दौडाता है, लेकिन जब सपनोकी दुनियासे जागकर देखता है तो पिजरे जैसे अीट-चूनेके मकानमे पलथी मारकर बैठे हुअे शिक्षकसे या दादी मासे केवल काल्पनिक 'कहानिया' ही सुनता रह जाता है। बालकका रोजका जीवन तो बस्तेका बोझ सिर पर रखकर शालासे सीधे घर जानेका ही होता है। अुसके जीवन और अुसकी कहानियोके बीच जरा भी मेल नही होता। यदि विकासशास्त्रके सिद्धान्तोमे हमारी श्रद्धा हो, तो अच्छा तरीका यह होगा कि अुसके लिअे साहसका जीवन बितानेकी अनुकूलता पैदा कर दी जाय, अुसके जीवनमे साहसका सचार किया जाय। वह थोडे समय तक साहसका जीवन बिताकर अपने-आप आगेकी दशामे चला जायगा। लेकिन अैसे जीवनके अभावमे केवल साहस और पराक्रमकी कहानियोसे, शार्पके कहे अनुसार, बालकमे 'व्यर्थकी भावना पैदा होती है।'

लेकिन श्री गिजुभाअीका दूसरा मुद्दा यह था कि हमारे पूर्वजोके जीवनमे कुछ अशुद्ध भी था। अुन्होने अुस तरहके जीवनमे कितने ही अैसे काम किये होगे, जो हमारी आजकी नैतिक भावनाको आघात पहुचायेगे। अुस जीवनमे बालकको प्रत्यक्ष रूपसे घसीटना हमे पुसा ही नही सकता। आजकी सस्कृतिके लाभसे अुसे दूर तो हरगिज नही रखा जा सकता, अैसा डॉ० मॉन्टेसोरी भी कहती है। अितना बन्धन तो अुसके सिर पर होना ही चाहिये। और अिसमे भी शक नही कि पराक्रमकी भूमिकामे से बालकको गुजरना तो पडेगा ही। अैसी हालतमे बीचका ही मार्ग लेना पडेगा। वह यह कि अुस युगकी वृत्तियोका बालक मानसिक अुपभोग करे। वह कुछ समय तक वनराज*की तरह दूसरे छोकरोकी टोली बनाकर गावको परेशान करे, यह क्या नागरिकोके अिस

---

* गुजरातके प्रसिद्ध चावडा वशका राजा, जिसका बचपन जगलमे बीता था।

युगमे चल सकता है? अिसलिअे सुरक्षित मार्ग यही है कि वालकको मानसिक सृष्टिमे ही वनराज और शिवाजीका जीवन विताने दिया जाय। सच है। अिसमे सुरक्षितता जरूर है, लेकिन किसके स्वार्थकी दृष्टिसे? नागरिकोके स्वार्थकी दृष्टिसे या वालकोके स्वयविकासकी दृष्टिसे? सही तरीका तो यह होगा कि वालकके लिअे साहस और पराक्रमका जीवन वितानेके अुचित मार्ग खोजकर हम अुसे वताये और अैसी योजनाये खोजे, जिनकी मददसे अुस जीवनकी गलतियोकी तरफ अुसका ध्यान जल्दी खिचे। अस्तु।

श्री गिजुभाअीका तीसरा मुद्दा यह था कि स्वय कहानी कहनेवालेके जीवनकी दृष्टिसे भी काल्पनिक कहानिया कही जानी चाहिये। यह सच है कि मनुष्यका विकास अुत्तरोत्तर होता है, लेकिन अिससे अुसकी पिछली दशा विलकुल छूट नही जाती, अुलटे, हरअेक मनुष्य अपने पिछले जीवनमे जानेकी वार-वार अिच्छा करता है। अिसे श्री गिजुभाअी जीवका वालस्वभावके प्रति रहनेवाला झुकाव कहते है। वूढा आदमी वालक जैसा वन जाता है। वीमार आदमी वालक वनकर 'ओ मा', 'ओ वाप' चिल्लाता है। माता-पिता वच्चेके सामने वच्चे वननेकी चेष्टा करते है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कमजोरीके समय पुरुषत्वका घमड छोडकर वालवृत्ति धारण करनेके लिअे अुत्सुक रहता है। यह अेक नियम ही है, और शिक्षक भी अिस नियमका त्याग नही कर सकता। शिक्षककी भी वालक वननेकी अिच्छा होती है, और अिसीसे वच्चोके लायक कहानिया कहने और जोडनेकी अुसे प्रेरणा होती है।

मै स्वीकार करता हू कि यह अवलोकन सही है। लेकिन अैसा नियम ही है — यानी कभी कभी वालक जैसा वने सिवा चल ही नही सकता अैसा कोअी अटल नियम है, अिस वारेमे मुझे शका है। लेकिन अैसा नियम है यह मान ले तो भी हमे याद रखना होगा कि अिस नियमका अमल निर्वलताके समय ही होता है। मनोवल काम देता है, तब तक वीमार आदमी भी वालक जैसे वरताव पर अकुश रखता है; वालक जैसा वरताव करनेका अुसे अभिमान नही होता, वल्कि

अुससे वह शरमाता है। जो लाचारी अुसे वतानी पडती है, अुसका अुसे दुख होता है। अेक समझदार विकास पाया हुआ मनुष्य बालस्वभावकी सरलता, स्वाभाविकता और निरभिमानताको तो जीवनमे सदा बनाये रखनेकी कोशिश करता है, लेकिन वालस्वभावकी निर्वलता, अज्ञान या अनियत्रित व्यवहारको कायम रखनेकी कोशिश नही करता। शिक्षकको यदि काल्पनिक कहानियोमे खूब रस आता हो तो अिसे वह अपनी निर्वलता माने, अिसमे अपना विकास न समझे। निर्वलताका व्यवहार आदर्श व्यवहार नही कहा जा सकता।

अिसके साथ ही अेक अन्य मित्र द्वारा पेश किये हुअे चौथे मुद्दे पर भी मैं यहा विचार कर लेता हू। अुनका यह कहना है कि असत्यको जब हम सत्यके रूपमे मनवानेका प्रयत्न करते है तब जरूर सत्यका भग होता है। लेकिन किसी काल्पनिक कहानीको वालक काल्पनिक समझ कर ही सुनता है, तब अुसमे धोखा नही है। यानी अुसे सत्य न कहा जाय तो असत्य भी नही कहा जा सकता। सब बातोके सत्य और असत्य —अैसे दो ही विभाग करनेकी जरूरत नही। अेक तीसरा विभाग भी हो सकता है, जो न सत्य हो और न असत्य। असत्यको असत्यके रूपमे पहचान कर और असत्यके रूपमे ही प्रस्तुत करके जो कल्पना सामने रखी जाय, वह अिस तीसरे विभागमे रखी जानी चाहिये।

महान सिद्धान्तोको समझानेमे अैसी काल्पनिक कहानियोका वडा महत्त्व है। टॉल्स्टॉयने छोटी छोटी कहानियो द्वारा अपने किये हुअे गूढ विचारोको कितने मार्मिक और प्रभावकारी ढगसे समझाया है? पुराणकारोके प्रयत्न अिस दिशामे कअी स्थानो पर अतिकी सीमाको पहुच गये है, फिर भी अुन्होने वार्ताओ द्वारा कितने ही अूचे सस्कार जनताको दिये है। आजके अितिहास-सशोधक कहते है कि रामायण वाल्मीकिकी कोरी कल्पना ही होगी, अुसका वास्तविकतामे कोअी सबध नही होगा। यह कथन सच हो तो भी रामायणने आर्योको सस्कारी बनानेमे कितना वडा हिस्सा लिया है?

सच पूछा जाय तो हम जिस नियमका अपने व्यवहारमे बहुत बार छोटे पैमाने पर अुपयोग करते है, अुसका थोडा ज्यादा अुपयोग

ही कल्पनाकार अिसमे करता है । क्या बहुत बार अैसा नही होता कि हम अेकाध सच्ची घटी हुअी घटना दूसरेको सुनाना चाहते है, लेकिन अुससे सबधित पात्रोके जीवित होनेसे हम अुनके असल नाम बताना नही चाहते ? अुसमे जीवित पात्रोकी कमजोरी खुल जानेके खयालसे, अुनकी बात दूसरोको मालूम हो जानेसे अुन्हे दु ख होगा अिस खयालसे या दूसरे किसी कारणसे क्या हम अैसा नही कहते कि अिस घटनाके पात्रको हम 'क' या कल्याणजीके नामसे पहचानेंगे ? घटनाके वर्णनमे बाते तो सब सच्ची होती है, परतु नाम बदल दिये जाते है । नाम बदले गये है, यह आप जानते भी है। तो फिर अिसमे सत्यका भग कहा हुआ ? अिसी तरहसे टॉल्स्टॉयकी किसी कहानीको लीजिये । अुदाहरणके लिअे, अुनकी 'मनुष्य कितनी जमीनका मालिक हो सकता है ?' शीर्षक कहानी काल्पनिक है। जिस सिद्धान्तको समझानेके लिअे अुसकी रचना की गअी है, वह सिद्धान्त सत्य है । अुस पर रची हुअी कहानी काल्पनिक है, और वह काल्पनिक है अैसा आप भली-भाति जानते है । आपको अेक क्षणके लिअे भी भ्रममे नही रखा जाता। तो अुसमे सत्यका भग कहा होता है ?

अिस प्रश्नका अुत्तर देना मुझे बडा कठिन मालूम होता है । कारण यह है कि सर्जक कल्पनाके बारेमे तात्त्विक दृष्टिसे मेरा चाहे जो मत बना हुआ हो, फिर भी दरअसल अैसी कहानियोमे मुझे रस आता है । अैसी कुछ कहानियोने मेरे जीवन पर भी गहरा प्रभाव डाला है।

लेकिन अूपरके मुद्देमे अेक मान्यता गलत है। किसी भी वस्तुके साथ चित्त जब तदाकार हो जाता है, तभी अुस वस्तुका हम पर गहरा असर पडता है, और अुस वस्तुकी असत्यताको भूले बिना चित्त अुसके साथ तद्रूप नही हो सकता। बहुतेरे लोगोने यह देखा और अनुभव किया होगा कि हरिश्चन्द्र या दूसरा कोअी करुण रसमे भरा नाटक देखकर प्रेक्षकोकी आखोसे आसू बहने लगते है। जिस क्षण आसू बहने लगते है अुस क्षण प्रेक्षक अिस सत्यको भूल जाते है कि 'यह तो अेक नाटक है, यह हरिश्चन्द्र और तारामती केवल अभिनय करनेवाले

दो नट-नटी है और पैसेके लिअे ही अभिनय कर रहे है।’ अिस सत्यको भूलकर ही प्रेक्षकगण अिन पात्रोंके साथ तदाकार हो सकते है। अुनकी आखोसे आसू बह रहे हो, अुस समय कोअी यदि अुनसे कहे कि ‘अरे भाअी, यह तो नाटक है, आप रोते क्यो है?’ तो अुनके आसू और आसुओंके साथ अुनका रस भी अुड जाता है। और अिसके साथ ही नाटकका नैतिक प्रभाव भी मिट जाता है।

अिसी तरह काल्पनिक कहानी काल्पनिक है, अैसा भले ही सुननेवाला पहलेसे या बादमे जाने, लेकिन वह कहानी अुसके मन पर असर तभी डाल सकती है, जब वह अिस बातको बिलकुल भूल जाय कि वह झूठी है। अुसे सच्ची माने बिना चित्त अुसके साथ तद्रूप हो ही नही सकता। और जिसे असत्यमे सत्यका भ्रम रखनेकी आदत पड जाती है, अुसे आप कहानीके प्रत्येक वाक्य पर ‘भाअी, यह कल्पना है’, ‘भाअी, यह कल्पना है’ कहे, तो भी या तो वह आपकी बातको भूल जायगा या अुस कहानीसे अुसे कोअी लाभ नही होगा।

किसी सिद्धान्तको कहानीके जरिये समझानेवालेकी भी अैसी ही दशा होती है। यदि वह अपने सिद्धान्तको अपने जीवनमे अुतारना चाहता हो, तो अैसा कल्पना-विलास अुसे थोडे समय तक स्वप्नसृष्टिमे रखता है, परतु अपनी जाग्रत सृष्टिमे — प्रत्यक्ष जीवनमे — वह अुस सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप देनेमे सफल नही होता।

अलबत्ता, अैसे किसी अुदात्त सिद्धान्त पर रचे गये जीवन-चित्रकी कल्पनामे केवल कल्पनासे कुछ अधिक जरूर होता है। वह अेक सकल्पका बीज है, और वह सकल्प किसी न किसी समय दुनियामें स्थूल रूपमे सिद्ध होनेवाला है। कहानीके रूपमे अैसी कल्पना क्रियाके भूतकालके रूपोका प्रयोग करके लिखी जाती है, परतु वस्तुत वह भविष्यवाणी होती है। फिर भी जिस हद तक अुसमे अयथार्थता आती है, अुस हद तक वह कल्पना करनेवालेको, कहनेवालेको और सुननेवालेको कुछ न कुछ भ्रममें डाले बिना नही रहती और सपूर्ण रूपमें भविष्यवाणी नही हो सकती। भले अितने भ्रममे रहे सिवा कोअी चारा न हो, या अितना भ्रम नजरअन्दाज करना

जरूरी हो, लेकिन यह तो स्वीकार करना ही होगा कि अुसमे कुछ दोप है, कुछ असत्य है। और यह जानते हुअे भी अुसमे जो रस आता है वह मोह है, अैसा मानना पडता है।

अूपरके मुद्दो पर मुझे अिस तरहके विचार सूझते है। लेकिन अेक बात मै यहा स्पष्ट कर देना चाहता हू। कहानियोके खिलाफ किसी तरहका आन्दोलन खड़ा करनेकी अिच्छासे मैने अपना यह निवध नही लिखा है। मेरा अपना भी कहानियोका शौक — रस जाग्रत है।

मै कल्पनाशक्तिका विरोधी नही हू। अत करणकी अेक अद्भुत शक्तिका विरोधी बनकर मै विकासकी अिच्छा कैसे रख सकता हू? लेकिन यहा मैने कल्पनाशक्तिकी तालीमके बारेमे अिसी दृष्टिसे विचार किया है कि वह मनुष्यकी आध्यात्मिक अुन्नतिमे, अुसके सर्वांगीण विकासमे और अुसकी सत्यकी शोधमे किस प्रकार और किस हद तक सहायक हो सकती है, और अिस दृष्टिसे मुझे अैसा लगा है और कहना पडा है कि अिस तालीममे जिस हद तक जानवूझ कर असत्यका पोपण करनेकी आदत डाली जाती है, अुस हद तक वह सत्यकी शोधमे और आत्मोन्नतिमे बाधक होती है।

अेक स्नेही मित्रने अैसी टीका की है कि अेक तो गुजराती भाषामे कहानियोका आवश्यक भडार ही नही है, अुस पर यदि आप कोअी कहानी सच्ची है या झूठी यह तय करनेकी जिम्मेदारी शिक्षको पर डालेगे, तब तो कहानी कहनेवालेका दिवाला ही निकल जायगा। यह सच है। व्यापारी भी कहते है कि सत्यका भग व्यापारमे हरगिज नही किया जा सकता, अैसा लफडा अगर आप हमारे छोकरोके पीछे लगा देगे तो हमारा दिवाला ही निकल जायगा। लेकिन क्या अिस डरसे वालकोको यह कहा जा सकता है कि व्यापारमे झूठ वोला जा सकता है? अुसी तरह कहानियोका दिवाला निकल जानेके डरसे क्या अैसा कहा जा सकता है कि कहानीमें तो झूठ वोला जा सकता है? हमे यदि सत्यके अुपासक वनना हो, तो कजूसकी तरह सत्यकी आराधना और सेवा करनी होगी।

टिप्पणी – २

अूपर व्यक्त किये गये विचारोमे थोडा सुधार करनेकी गुजाअिश मुझे मालूम होती है। ‘दूधका जला छाछको भी फूक-फूक कर पीता है’ यह सच हो सकता है, लेकिन यह पीनेवालेकी बुद्धिमानी नही बताता। अुसे मुहसे लगानेके पहले ही यह पहचानते आना चाहिये कि प्यालेमे दूध है या छाछ और वह गरम है या ठडी।

दूसरे, कल्पनाके दूसरे दो प्रकारोका अुपयोग हो, तो अुससे सर्जक कल्पनाका क्या सबध? अिस शक्तिका भी अुपयोग होना ही चाहिये। जिस मनुष्यमें सर्जक कल्पनाका अभाव हो, वह सच्चे जीवनमें भी कुछ नया सर्जन नही कर सकता। अिसलिअे वहा तो अुसका अुपयोग है ही, और वह अच्छेसे अच्छा भी हो सकता है। लेकिन साहित्यकी दिशामे भी अुसका अैसा अुपयोग होना चाहिये, जिससे वह मनुष्यके विकासमे सहायक सिद्ध हो। सारी शक्तियोका अमुक मर्यादामे रहकर अुपयोग किया जाय, तो ही वे हितकर सिद्ध होती हैं। अुसी तरह साहित्यमे सर्जक कल्पनाकी भी मर्यादा होगी। अुस मर्यादाको खोजना और बताना चाहिये। लेकिन साहित्यके क्षेत्रमे अुसे स्थान ही न देना ठीक नही होगा।

धार्मिक क्षेत्रमे सर्जक कल्पनाका दुरुपयोग हुआ है। अिसके दो कारण है (१) रची हुअी कथाओको सच्ची घटनाओके रूपमे स्वीकार करानेका कथाकारोका प्रयत्न, वे झूठी हैं और अुनमे से अुचित बोध ही लेना चाहिये, अैसा न कभी कहा गया और न मानने दिया गया है। (२) अेक खास श्रद्धासे अुनका कथन और श्रवण। सभव है अधविश्वासो, भ्रमो वगैराका पोषण करनेमे काल्पनिक कथा-वार्ताओके बजाय अिन दो कारणोका ज्यादा हाथ रहा हो।

सामान्य जीवनमे सर्जक कल्पनाका दुरुपयोग मनुष्योके हलके विकारो, आलस्यपूर्ण मनोरजन और अुद्देश्यहीन वाणी-विलासका पोषण करनेमें हुआ है।

लेकिन यह अनुभवकी बात है कि जिस तरहका जीवन बितानेकी मनुष्यकी अिच्छा हो और अुसके जीवनकी जो आकाक्षाअे हो, अुन्हे पूरा करनेमे सच्चे जीवन-चरित्रोकी तरह काल्पनिक कथा-वार्ताअे (वे काल्पनिक है अैसा जानते हुअे) भी मदद कर सकती है। अैसी वार्ताअे बालकोके लिअे भी अुपयोगी हो सकती है।

अिनकी कीमत सच्चे चरित्रोके बनिस्बत हमेशा कम ही रहेगी। अिसके अलावा, अुनमे नीचेके खतरे भी है

(१) कथा-कहानी लिखनेवाला जिस प्रकारका जीवन-चरित्र चित्रित करता है, अुसका यदि अुसे व्यक्तिगत अनुभव न हो और वह कल्पनासे ही अुसे चित्रित करनेका प्रयत्न करता हो, तो सभव है अुसका चित्रण बहुत गलत हो। अैसा हो तो सुननेवालेके मनमे भी गलत या असत्य चित्र पैदा हो सकता है। और यदि वह बहुत ज्यादा आकर्षक हो, तो सुननेवालेको भ्रममें भी डाल सकता है। अुदाहरणके लिअे, सरस्वतीचद्र*। अिसमे जीवनके कुछ आदर्श खडे करनेका प्रयत्न किया गया है। लेकिन सभव है वैसे जीवनका थोडा भी अनुभव गोवर्धनराम भाअीको न हुआ हो। अुन आदर्शोकी अुन्होने कल्पना की, कही भी अुनका अनुभव नही किया, फिर भी अद्भुत ढगसे अुन्हे चित्रित किया है। अिस कारणसे अनेक युवक और युवतिया विचित्र वृत्तियोको आदर्श समझकर अुनका पोषण करने लगे।

(२) किसी कथामे बताया गया जीवन प्रत्यक्ष जीवनसे बहुत भिन्न प्रकारका और अेकतरफा चित्रित किया गया हो, केवल आदर्श ही हो, तो जीवनमें अुसका अमल करनेका प्रयत्न करनेवाला मनुष्य अव्यावहारिक बननेकी भूल कर सकता है। अेकाध गुणके अतिरेकसे जीवन नही चलता, परतु अनेक अूचे गुणोंके अुचित मेलसे जीवन व्यावहारिक दृष्टिसे अुपयोगी बनता है। आदर्श चित्रित करनेवाली कथाये मनुष्यको अिस सचाअीका परिचय नही कराती।

---

* गुजरातीके महान अुपन्यासकार श्री गोवर्धनराम त्रिपाठीका अेक प्रसिद्ध अुपन्यास।

(३) अनुभव और कल्पनाके बीच बहुत बडा भेद है। कल्पना सुन्दर और आकर्षक लगती है, क्योंकि वह अच्छे पहलूको ही देख सकती है, कठिनाअियोकी पूरी पूरी कल्पना नही हो सकती। लेकिन जब मनुष्य अनुभव लेना शुरू करता है, तब असके सामने अनसोची कठिनाअिया खडी होती है। अिसलिअे जिस मनुष्यको अनुभव नही, असकी चित्रित कल्पना मार्गदीप बननेके बजाय भ्रामक ही होती है।

अिसलिअे मै अितना स्वीकार करता हू कि जिस प्रकारका जीवन चित्रित किया जाय, असके अनुभवी द्वारा लिखी हुअी अैसी वार्ताअें श्रोताओके लिअे अपयोगी सिद्ध हो सकती है, जो केवल अेकतरफा नहीं है और अनिष्ट नही है।

काल्पनिक कथा-वार्ताओका अनिष्ट स्वरूप धार्मिक साहित्यमे ज्यादासे ज्यादा प्रकट होता है। साधारण साहित्यके बनिस्बत धार्मिक साहित्यके श्रवण, वाचन और अध्ययनमें विशेष प्रकारका आदर, श्रद्धा और गभीरता मनुष्यके चित्तमे होती है। और वह साहित्य बहुत बडे अधिकारी पुरुषो द्वारा सच्चा अितिहास और आदर्श पेश करनेके लिअे खास तौर पर लिखा गया है, अैसी मान्यता होनेके कारण असे जैसेका तैसा स्वीकार कर लेनेकी लोगोकी वृत्ति होती है। बादमे जैसे जैमे अपनी बुद्धि चलानेकी शक्ति बढती जाती है, वैसे वैसे अन कथाओको गले अुतारनेमे देर लगती है। जो पहले सीधा-सादा सत्य मालूम होता था, वह बादमे वैसा नही लगता। वे किसी तरहके रूपक होगी अैसा मानकर अनके अर्थ स्पष्ट करनेके प्रयत्न होते है। परन्तु जब सारे पहलुओंसे मेल खानेवाले रूपक नही मिलते, तब यह प्रयत्न भी शिथिल हो जाता है और अनके प्रति अरुचि पैदा होती है। बादमे, अिसमें से धर्मके प्रति ही अरुचि पैदा होती है। यह स्वीकार किये बिना नहीं रहा जाता कि विभिन्न धर्मोके धार्मिक साहित्यमे घुलमिल जानेवाली काल्पनिक कथा-वार्ताअे अस अस धर्मके प्रति अरुचि पैदा होनेका अेक बडा कारण है।

९

प्रज्ञा

मै नही जानता कि अिन्द्रियोकी और कल्पनाशक्तिकी तालीमके बारेमे व्यक्त किये गये मेरे विचारो पर कितने शिक्षको या विचारकोका ध्यान आकर्षित हुआ होगा। मुझे लगता है कि जिन्होने अिन लेखोको ध्यानसे पढा होगा, अुन्हे विचारके लिअे काफी मसाला मिला होगा। और जिन्हे अिन विचारोमे कोअी भूल न मालूम हुअी हो, अुन्हे शिक्षण-सबधी और आत्मोन्नति-विषयक विचारोमे बहुत फेरबदल करने जैसा लगा होगा। मेरे विचारोका शिक्षको और विचारको पर अैसा असर होगा या नही, यह कहना कठिन है। लेकिन मनुष्यके सच्चे विकासमे ये विचार अुपयोगी सिद्ध होगे, अैसा माननेके कारण ही मैने अुन्हे यहा पेश किया है।

बौद्धिक शिक्षणके खिलाफ चाहे जितने आरोप लगाये जाय, फिर भी यह निश्चित है कि आज शालाओमे अिस प्रकारके शिक्षण पर ही जोर दिया जाता है। अेक तरफ यह कहा जा सकता है कि बुद्धिकी जितनी महिमा गायी जाय अुतनी थोडी है; दूसरी तरफ आजका बौद्धिक शिक्षण दोषभरा मालूम हुआ है। अिन दो परस्पर विरोधी बातोका कारण जाननेकी जरूरत है। जिस विचारसरणीका मैने अिन्द्रियोकी और कल्पनाशक्तिकी तालीममे अुपयोग किया है, अुसी विचारसरणीसे मै बौद्धिक शिक्षणके प्रश्न पर भी विचार करना चाहता हू। वह है अनुभव और कल्पनाके बीचका भेद स्पष्ट करनेवाली विचारसरणी।

बुद्धिका विचार करनेके लिअे अत करणकी शक्तियोका ज्यादा सूक्ष्म विचार करना होगा। पाठक यदि धीरजके साथ यह विचार करनेके लिअे तैयार होगे, तो ये लेख समझनेमे अुन्हे कोअी कठिनाअी नही होगी।

अन्त करणकी तीन शक्तियोके लिअे आम तौर पर बुद्धि जैसा अेक ही शब्द काममे लिया जाता है। ये तीन शक्तिया है प्रज्ञा, तर्क

और निर्णय-शक्ति। अिनमें से तीसरी शक्तिको ही बुद्धिके नामसे पहचानना ठीक है। और अिन लेखोमे अब बुद्धिका अर्थ निर्णय-शक्ति ही समझना चाहिये।

अिन तीन शक्तियोमे से आजके शिक्षणमे जिसे महत्त्वका स्थान प्राप्त हुआ है, और जो होना सतोपजनक नही मालूम होता, वह तर्क शक्तिकी तालीम है। और तार्किक तालीम ही प्राय बौद्धिक तालीमके नामसे पहचानी जाती है।

अब हम अिन तीन शक्तियोके स्वरूपकी जाच करे। जिस शक्तिकी मददसे हम शक्कर और गुड़के स्वादका, सा और रे की आवाजका, गुलाब और मोगरेकी सुगधका, ठडी और गरम चीजके स्पर्शका, लाल और गुलावी रगका तथा दया और क्रोधकी भावनाका भेद पहचान सकते है, वह हमारी प्रज्ञाशक्ति है। प्रज्ञाशक्तिके कार्यमे दो क्रियाअे होती है पहली, अिन्द्रियो या भावनाके किसी प्रकारके अनुभव (या वेदना या सस्कार) का अवलोकन (अथवा निरीक्षण या ग्रहण), और दूसरी, अुसी वर्गके दूसरे अनुभवोका स्मरण करके अुनके साथ तुलना। हम शक्करका अनुभव कर चुके है, अुस अनुभवको हमने याद रखा है। बादमे हम गुडका अनुभव करते है। दिमागकी तराजूमे अिन दो अनुभवोके बीच तुलना होती है, और ये दो अनुभव अलग अलग है, अैसा मालूम होने पर दोनोको हम अलग अलग नाम देते है। जिस तरह अेक होशियार बोहरा टीनकी चद्दरमे से बडी तेजीसे और प्रकार (कपास) की मददके बिना, अेकसे गोल टुकडे काट लेता है, अुसी तरह साधारण तौर पर ये दो क्रियाअे (नया अनुभव और पिछले अनुभवके साथ अुसकी तुलना) अितनी तेजीसे होती है कि अैसी दो अलग क्रियाअें होनेका हमे भान ही नही रहता। लेकिन अेक बार देखे हुअे किसी आदमीको जब लम्बे समयके बाद हम देखते है, तब अुसे पहचाननेमे हमे जिस तरह कभी कभी यादको ताजा करना पडता है, अुस परसे अिन दो क्रियाओका भेद मालूम होता है।

अिस प्रज्ञाशक्तिमें अनुभवका मुख्य स्थान है, यह अुसके स्वरूपको जाचते ही मालूम हो जाता है। अवलोकनमे अनुभव होता है और

तुलनामे पिछले अनुभवका स्मरण। अिसलिअे प्रज्ञाशक्तिका आधार अनुभव है। ज्ञानेन्द्रिया और ज्ञानतंतु अनुभवोको प्रज्ञाशक्ति तक पहुचानेवाले दूत-मात्र है। ज्ञानेन्द्रियोमे जितनी खराबी होगी, अुतनी ही खराबी सही अनुभव करनेमे होगी। अिसलिअे प्रज्ञाशक्तिकी जडताका अेक कारण ज्ञानेन्द्रियोकी खराबी हो सकता है। ज्ञानेन्द्रिया अनुभव लेनेमें जितनी भूल करेगी, अुतनी ही प्रज्ञाशक्तिकी क्रिया भूलवाली होगी। प्रज्ञाकी खराबीके अिसके सिवा दूसरे कारण भी है, जिन पर आगे विचार किया जायगा। लेकिन अिस परसे हम प्रज्ञाके दो भाग कर सकते है. ऋत (अथवा सत्य) प्रज्ञा[1] और अनृत (अथवा असत्य) प्रज्ञा। प्रज्ञाका आधार अनुभव है यह ध्यानमे रखे, तो अनुभवके यथार्थ अनुभव[2] और अयथार्थ अनुभव जैसे दो भेद होगे।

प्रज्ञाशक्तिका कार्य अनेक प्रकारसे होता है। अिसलिअे ऋत प्रज्ञाको अलग अलग बताना कठिन है। लेकिन अनृत प्रज्ञाको दिखाकर ऋत प्रज्ञाकी बाकी निकाली जा सकती है। प्रज्ञाशक्ति अवलोकन और स्मृतिकी सहायतासे कार्य करती है, अिसलिअे यह स्पष्ट है कि अिन दोनोमे से अेककी भी अयथार्थता प्रज्ञाको अनृत बना सकती है। अिस तरह अनृत प्रज्ञाके निम्नलिखित प्रकार होते है

(१) ज्ञानेन्द्रियोकी कुदरती खामीके कारण होनेवाले अयथार्थ अनुभव। (जैसे, कम-ज्यादा अधापन, बहरापन वगैरा।)

(२) बाहरी निमित्तो, कामक्रोधादि विकारो, अेकाग्रताके अभ्यास वगैरासे अुत्पन्न होनेवाला विपर्यय-ज्ञान (hallucinations) अुदाहरणके

---

१ अधिक निश्चित शब्दोका प्रयोग करना हो, तो ऋत प्रज्ञाके स्थान पर सावधानता-सूचक ऋतभरा (अतिशय सत्याशवाली) प्रज्ञा कहना चाहिये।

२ 'सत्य अनुभव' ये शब्द पर्यायवाचक जैसे है और 'असत्य अनुभव' परस्पर विरोधी शब्द मालूम होते है। अिसलिअे अनुभवको सत्य या असत्य नही कहा जा सकता, बल्कि यथार्थ या पूर्ण और अयथार्थ या अपूर्ण कहना चाहिये।

लिअे, अंधेरेके कारण डोरीमे सापका अनुभव, चित्तभ्रमके कारण लकडीके टुकडेमे मरे हुअे पुत्रका अनुभव, कामादि विकारोके कारण मुर्देमे काठका अनुभव या सापमे डोरीका अनुभव (जैसा कि बिल्व-मगल या तुलसीदासको हुआ कहा जाता है), जिस पदार्थका डर मनमे घुस गया हो, अुसका बार-बार भास, अेकाग्रताके अभ्यासके दिनोमे ध्येय पदार्थका सर्वत्र भास, वगैरा। यह विपर्यय-ज्ञान अुन अुन निमित्तोके हट जानेसे नष्ट हो जाता है और पुन ऋत प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। अिसमें अवलोकन तो यथार्थ है, परन्तु तुलना करनेके लिअे पैदा होनेवाले स्मृतिके सस्कार अयथार्थ है।

(३) विविध प्रकारके सकेतो या कल्पनाओके सस्कारोके कारण पदार्थोमे अुनके वास्तविक धर्मोके अलावा होनेवाला दूसरे धर्मोका भास (विकल्पवृत्तिके सस्कार) जैसे, देवमूर्तिमे अुसके बाहरी स्वरूप और आकारके अलावा होनेवाला देवत्वका भास, झडेमें कपडे और चित्रके अलावा देशाभिमानकी प्रेरणा देनेवाले धर्मोका भास, आदि। अिसमे आवश्यक अवलोकन और स्मृतिके अलावा सकेतोके कारण दूसरी स्मृतिया जागती है और अुनमें से विशेष प्रकारकी प्रज्ञा होती है। जिस पेर अिन सकेतोका सस्कार नही होता, अुसे अैसी विशेष प्रज्ञा नही होती। तात्त्विक दृष्टिसे यह अनृत प्रज्ञा ही है।*

---

* 'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प' १–९ — योगशास्त्रमें विकल्प वृत्तिकी अैसी व्याख्या की गअी है और अुसके प्रसिद्ध अुदाहरणोके रूपमे 'पुरुषका चैतन्य', 'राहुका सिर' जैसे दृष्टान्त दिये जाते है। ये और अूपर दिये गये अुदाहरण अेक ही प्रकारके है। पुरुप और चैतन्य, नामधारी और अुसका सिर अिन दोको अलग समझनेका पहला सस्कार अैसा शब्दप्रयोग कराता है। यद्यपि पुरुप और चैतन्य तथा राहु और सिर अेक ही चीज है, फिर भी साधारण तौर पर पुरुप तथा नाम-धारीमे चैतन्य और सिरके अलावा अन्य अवयवो और धर्मोका आरोपण करनेकी आदत होनेसे अैसा शब्दप्रयोग होता है। अनृत प्रज्ञाके सस्कारोके कारण गलत शब्दयोजना हो, तो कोअी आश्चर्यकी बात नही।

(४) निद्रा या तन्द्राके कारण वस्तुओका अयथार्थ अवलोकन। अिसमे अवलोकन और स्मृति दोनोकी अयथार्थता है।

(५) स्मृतिदोषके कारण होनेवाली अनृत प्रज्ञा : अुदाहरणके लिअे, पहले देखे हुअे आदमीको न पहचानना या अुसे कोअी दूसरा आदमी मान लेना। विपर्यय-ज्ञानमे जो कारण होते है, वैसे कोअी कारण यहा मालूम नही होते, केवल स्मृतिके जाग्रत न होनेका ही दोष रहता है।

अिस प्रकार, ज्ञानेन्द्रियोकी, ज्ञानततुओकी और स्मृतिकी जाग्रति और सूक्ष्मता हो, तथा अुनकी खामी या कठिनाअी पैदा करनेवाले बाहरी निमित्त, कामक्रोधादि विकार, विकल्पोके सस्कार तथा निद्रा, तद्रा वगैरा विघ्न न हो, तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञा ठीक कार्य करती है, सत्यकी ओर मुडी हुअी है। ऋत प्रज्ञाके मार्गमे सबसे बडा विघ्न विकल्पोके सस्कारोका होता है। दूसरे सब विघ्न तो आते-जाते रहते है। लेकिन कल्पनाके सस्कार, जब तक अुन्हीके सबधमे विचार न किया जाय तब तक, गहरी जड जमाअे रहते है। कअी बातोमे हमारे अैहिक हानि-लाभका सबध अिन सस्कारोके साथ होता है, और अिसलिअे विकल्पोका हम प्रयत्नपूर्वक पोषण करते है। बहुत बार फर्क भी किया जाता है तो सिर्फ अितना ही कि अेक विकल्पको हटाकर अुसके स्थान पर दूसरा रख दिया जाता है। विकल्पोके सस्कारोका पूर्णरूपसे नाश किया जा सकता है या नही, यह अेक प्रश्न ही है। अिसलिअे केवल दो मार्ग रह जाते है विकल्पोकी निरतर शुद्धि की जाय और विकल्पोको विकल्पोके रूपमे ही पहचाना जाय। अुदाहरणके लिअे, बाहरसे अेकसे दिखाअी देनेवाले ब्राह्मण और अछूतको देखकर सनातनी हिन्दूको दो अलग प्रकारके अनुभव होते है, अेकके प्रति पूज्यभावका और दूसरेके प्रति अरुचि या घृणाका। किसीके लिअे पूज्यभावका सस्कार जाग्रत होनेमे दोष नही है, लेकिन अरुचि या घृणाका सस्कार दोषपूर्ण है। अिसलिअे अिसके सबधमे पोषित विकल्पको शुद्ध करना पडता है।

प्रज्ञाके ऋत और अनृतके अलावा पर और अपर जैसे दूसरे भी दो भेद हो सकते है। ज्ञानेन्द्रियोके विषयोके भेदोंको पहचाननेवाली

प्रज्ञा अपर है। ज्ञानेन्द्रियोकी शुद्धि और सूक्ष्मताके अनुपातमे प्रज्ञाकी सत्यता और असत्यतामे फर्क पडता है।

अन्त करणके विषयोको पहचाननेवाली प्रज्ञा पर है। अन्त करणके विषय ये है.

(१) हर्ष-शोक, सुख-दु ख, राग-द्वेष, दया-वैर आदि वृत्तिया।

(२) ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अनुभव किये हुअे विषयोके प्रत्यक्ष जैसे स्मरण अुदाहरणके लिअे, स्वप्न, भास आदि।

(३) अनुभवोके अभावोके स्मरण अुदाहरणके लिअे, निद्रा, मूर्छा, चित्तका लय आदि।

(४) सुने हुअे या श्रद्धासे माने हुअे अथवा तर्कसे अुपजाये हुअे विषयोकी कल्पनाका साक्षात्कार।

(५) सचमुच अनुभव किये हुअे नही, बल्कि किसी प्रकारके भ्रमसे अनुभव किये हुअे विषय, जैसे सन्निपात, नशे वगैरासे होनेवाले भ्रम।

अन्त करणके विषयोको पहचाननेवाली प्रज्ञाओमे से अन्तिम दो अनृत प्रज्ञाये है, और पहली तीन स्मृतिकी शुद्धिके अनुसार कम-ज्यादा ऋत है।

जब तक अनृत प्रज्ञाके विषयोमे सत्यताकी भावना रहती है, तब तक बुद्धि अशुद्ध रहती है और ऋत प्रज्ञा तक दृष्टि ही नही पहुचती। यानी प्रज्ञाके जैसी कोअी अनुभवमूलक शक्ति है, अैसा भान ही नही होता। हम स्वादो और स्वरोको पहचानते हैं, वृत्तियोका अनुभव करते है, लेकिन यह सब अुन विषयोके साथ अेकरूप होकर ही। जिसकी बदौलत यह सब पहचाना जाता है, अुस प्रज्ञा तक हमारा ध्यान ही नही जाता।

अैसी यह प्रज्ञाशक्ति है। वह हमारे शरीरमे रहनेवाली अनुभव लेनेकी और पहलेके अनुभवोके साथ नये अनुभवोकी तुलना करनेकी शक्ति है। अुसके साथ होनेवाले विकल्पवृत्तिके सयोगको हम दूर कर सके, तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञा केवल प्रत्यक्ष प्रमाणकी वृत्ति या शक्ति है। अनुभव ही अिस शक्तिका आधार-स्तभ है। अपर प्रज्ञाकी सूक्ष्मता और शुद्धिके आधार पर भौतिकशास्त्रोका विकास

हुआ है। पर प्रज्ञाके विकास और परिचयके प्रयत्नमे से मानसशास्त्र और राजयोगकी अुत्पत्ति हुअी है। और तत्त्वज्ञान भी अधिकतर अिसी शक्तिका विचार करके आगे बढता है। ज्ञानेन्द्रियोकी शुद्धि (रसवृत्ति नही), कल्पनाशक्तिकी योग्य तालीम और सद्‌भावनाओकी सूक्ष्मता अिस शक्तिके विकासमे महत्त्वके अग है।

१०

तर्कशक्ति

साधारण भाषामे हम तर्क शब्दका दो अर्थोमे अुपयोग करते हैं। जहा धुआ दिखाअी देता है वहा अग्नि होगी, अैसा जो अनुमान हम निकालते है वह अेक प्रकारका तर्क है। स्वर्ग और नरक, यमराजकी न्याय-पद्धति, अीश्वरके यहाका राज्य-विधान, श्रेष्ठ धाम वगैरा कैसे होगे, अिस विषयकी कल्पना दूसरे प्रकारके तर्क हैं।

अब हम देखे कि अिन दो प्रकारके तर्कोमे क्या भेद है। जहा धुआ है वहा अग्नि होनी चाहिये, अिस अनुमानमे धुअेको अेक जगह देख कर (अनुभव करके) हम भूतकालमे बार बार हुअे अपने अिस अनुभवको याद करते है कि जहा धुआ होता है वहा अग्नि होती ही है; और अिन दो अनुभवो परसे धुअेवाली जगह पर किस वस्तुका अनुभव होना चाहिये, अिसकी कल्पना करते है। अिस कल्पनाके सच होनेमें कोअी शका अुठावे, तो हम अुसे अुस जगह ले जाकर अग्निको प्रत्यक्ष दिखा कर विश्वास करा सकते हैं।

अवलोकनसे हम किसी पदार्थका साक्षात् — प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं; अुसके साथ स्मृतिके मिलनेसे वह प्रज्ञा हो जाता है, और प्रज्ञासे हम अिस अनुभवका नाम निश्चित करते है। अुसके बाद स्मृतिको ज्यादा ताजी करके यह सोचते हैं कि अिस अनुभव किये हुअे पदार्थके साथ दूसरा कौनसा पदार्थ अनिवार्य रूपसे होना चाहिये। यह तर्क या विचार ही अनुमान है। अनुमान सच्चा है या नही, अिसका आधार अुसकी प्रत्यक्ष

अनुभव करानेकी शक्ति पर होता है। प्रत्यक्ष अनुभव किये जानेवाले पदार्थको पहचाननेमे हमारी कोअी भूल हो रही हो -- अर्थात् हमारी प्रज्ञा अनृत हो, या अुसके साथ दूसरा कौनसा पदार्थ होता है, अिस सम्बन्धकी हमारी स्मृतिमे कोअी दोप हो — तो हमारा अनुमान गलत होगा, यानी अुसका प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिल सकेगा। दूसरे शब्दोमे कहे तो धुअे और अग्निका अमुक तरहका साथ बार बार अनुभव किया होनेसे धुआ हो वहा अग्नि होनी चाहिये, अैसी जो अत्यन्त सभवनीय श्रद्धा बधती है वह अनुमान है। सच्चा अनुमान अेक अैसी श्रद्धा है, जिसका आप प्रत्यक्ष प्रमाण पा सकते है। लेकिन अुसे पाना आप अिस क्षण जरूरी नही मानते, क्योकि आपको अपने भूतकालके अनुभवोकी स्मृति पर पूरा विश्वास है। यह अनुभव कहिये, तर्क कहिये, या श्रद्धा कहिये — सब भूतकालके अनुभवके आधार पर बधा हुआ आत्म-विश्वास है और अिसकी परीक्षा प्रत्यक्ष अनुभव लेकर की जा सकती है। जो अनुमान, तर्क या श्रद्धा प्रत्यक्ष अनुभव करानेकी कसौटी पर खरी न अुतरे वह सच्ची नही है।*

अब हम दूसरे प्रकारके तर्कोका विचार करे।

---

* प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे अितनी कसौटी काफी नही होती। हमने जिस आदमीको हमेशा काला कोट पहनते ही देखा हो, अुसे हम अेक जगह बैठा हुआ देखते है। और अुस परसे यह अनुमान करते है कि वह काला कोट पहनकर ही आया होगा। हमारा यह अनुमान प्रत्यक्ष जाच करने पर सच्चा साबित हो, तो भी प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे यह कसौटी काफी नही है। प्रमाणशास्त्र तो अुसी अनुमानको सच्चा कहता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण केवल आज ही नही, बल्कि किसी भी समय वैसा हा मिल सके। काले कोटका अनुमान दस बार सच्चा साबित हो, तो भी, हर बार वह केवल सभवनीय वस्तु होता है, सच्चा अनुमान नही। अिसलिअे जो निशानी देखकर हम अनुमान करे, अुस निशानी और अनुमानके बीच किसी तरहका कार्य-कारण-भाव जैसा दृढ सबध होना चाहिये।

देवताओंकी राज्य-पद्धति, अिन्द्रकी राजधानी, देवोंके भोग-विलास वगैराके बारेमें अलग अलग धर्मके लोगोंमें अलग अलग मान्यता चली आती है। देवलोकके अस्तित्वके बारेमें हमें श्रद्धा है और अुसके स्वरूपके बारेमें हमें अनुमान है।

धुअेवाली जगह पर अग्नि होनी ही चाहिये, अैसी श्रद्धा बधनेका कारण हमारा पहलेका यह अनुभव है कि जहां जहां हमने धुआं देखा है, वहां वहां अग्नि भी देखी है। और धुअेकी निशानीसे हमें अग्निका अनुमान होता है।

देवलोकके अस्तित्वसे संबंध रखनेवाली श्रद्धा अिससे भिन्न प्रकारकी है। हम जो अच्छे कर्म करते हैं, अुनका फल हमें न मिला हो तो वह मिलना ही चाहिये, अैसी हमें अिच्छा और आशा भी होती है। हम अपने मनको अिस तरह समझाते हैं कि अिस लोकमें अगर हमें अच्छे कर्मोंका फल न मिला, तो अैसी कोअी जगह होनी चाहिये जहां वह हमें मिलेगा। और अिस आश्वासनमें से देवलोकके अस्तित्वमें हमारी श्रद्धा बधती है। यह श्रद्धा होनेमें शायद अैसे दूसरे कारण भी हो सकते हैं। लेकिन अिन सारे कारणोंकी जांच करनेसे मालूम होगा कि अुनमें पहलेके अनुभव और किसी प्रकारकी प्रत्यक्ष निशानी कारण-रूप नहीं है।

अुसी प्रकार देवलोकके स्वरूपके बारेमें हम जो अनुमान बांधते हैं, वे हमारी आशाअें हैं। हमें यह दुनिया सब तरहसे अच्छी नहीं लगती। हमें सब अनुभव अच्छे ही मिलें अैसी अति तृष्णा होती है। किसे अच्छा और किसे बुरा कहना, अिस विषयमें हमारे संस्कार अलग अलग होते हैं। हमारी तृष्णाके अनुसार हमें जो अच्छीसे अच्छी लगे, वैसी किसी सृष्टिके साथ देवलोकको जोडकर हम देवलोकके स्वरूपकी कल्पना करते हैं। अिसमें भी पहले अनुभव की हुअी किसी प्रत्यक्ष निशानीसे देवलोकके अिस स्वरूपका अनुमान हुआ है, अैसा नहीं कहा जा सकता।

कोअी शकाशील मनुष्य धुअेवाली जगहमें अग्नि होगी अैसा माननेको तैयार न हो, तो हम अुसे वहां ले जाकर प्रत्यक्ष अग्नि दिखा सकते हैं।

लेकिन देवलोकके बारेमें अुसे अिस तरहका विश्वास हम तब तक नही करा सकते, जब तक अुसके चित्त पर हमारा काबू न हो जाय।

अिस तरह देखनेसे मालूम होगा कि तर्कशक्तिका सच्चा क्षेत्र वही तर्क हो सकता है, जो पहलेके अनुभवो पर रचा गया हो, जिसके मूलमें कोअी प्रत्यक्ष निशानी हो और जिसका प्रमाण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त किया जा सके।

अिस प्रकारका यह तर्क यदि वर्तमान कालकी किसी वस्तु या घटनाके बारेमे हो, तो अुसकी प्रत्यक्ष प्रतीति तुरन्त ही मिल सकती है; भविष्यकालके बारेमें हो, तो भविष्यमे मिलनी चाहिये। यह तर्क यदि परोक्ष भूतकालसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी बातके बारेमे हो, तो अुसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना असभव है। अिसलिअे अैसे तर्कोंके बारेमे ज्यादासे ज्यादा सावधानी यही रखी जा सकती है कि वे अपने समयके अनेक अनुभवोके आधार पर रचे हुअे हो। लेकिन चाहे जितनी सावधानी क्यो न रखी गअी हो, फिर भी परोक्ष भूतकालके बारेमे सिर्फ अितना ही कहा जा सकता है कि सभवत अैसा हुआ होगा। निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। अुसी प्रकार प्रत्यक्ष जीवनके द्वारा अनुभव न किये जा सकनेवाले भविष्यके बारेमे सभवनीय आशा ही रखी जा सकती है।

अूपर दिया हुआ धुअें और अग्निका अुदाहरण बिलकुल सादा है। लेकिन हम जीवनमे तर्कशक्तिका अुपयोग बडे कठिन विषयोकी खोजमें करते है। जिन विषयोका पहले अनुभव न किया गया हो, अैसे विषयोकी खोजमे भी तर्कशक्तिका अुपयोग किया जाता है। अुदाहरणार्थ, रसायनशास्त्रियोने कुछ न देखी हुअी धातुओके अस्तित्वके बारेमे पहले तर्क किया और बादमे अुन्हे खोजा। ज्योतिषियोने युरेनस और नेपच्युनको देखनेसे पहले अुनके अस्तित्वके विषयमे तर्क किया। अिस तरह तर्कशक्तिका व्यापार सीधा-सादा नही है।

फिर भी, अिस व्यापारका चाहे जितना विकास किया जाय और वह चाहे जितना पेचीदा हो तो भी, यदि यह चीज हमेशा ध्यानमे रखी जाय कि पग-पग पर अुसका आधार अनुभव पर ही होना

चाहिये और अुसके फलस्वरूप जो तर्क हो अुसे भी अनुभवसे सिद्ध करना ही चाहिये, तो अनेक वाद-विवाद, मत-मतांतर, भ्रम वगैराके झगडे कम हो जाय और तर्कशक्तिका अुपयोग वकीलोकी तरह अपने अपने पक्षोके समर्थनके लिअे नही, बल्कि सत्यकी खोजके लिअे ही हो। अिस प्रकारकी तर्कशक्तिकी तालीम लेनेवाले या देनेवालेके लिअे कभी असन्तोषजनक नही साबित होती।

हम अपने मनमे बातचीत चलानेका जो व्यापार करते है, अुसे साधारण तौर पर हम कल्पना, विचार वगैरा नामोसे पहचानते है। यह स्थूल दृष्टिसे ही सच है। सच पूछा जाय तो प्रज्ञाके अधिक अटपटे व्यापार द्वारा विचार पहले पैदा होते है और बादमे भाषा द्वारा वे कठमे रखे जाते है। जिस तरह प्रज्ञाशक्तिको पहचाननेकी हद तक हमारी दृष्टि नही पहुचती, अुसी तरह प्रज्ञाका व्यापार भी हमारे अवलोकनमे नही आता। और अुसका कारण यह है कि अपने अन्तःकरणकी शक्तियोका अुपयोग सत्यकी शोधके लिअे ही करनेका और अपनी श्रद्धाओको अनुभवसे सिद्ध करनेका हमारा आग्रह नही होता, बल्कि चित्तके रागद्वेषोको पोसनेका ही हमारा आग्रह होता है।

विश्वासके लायक मनुष्यके (या शास्त्रोके) शब्द किस हद तक माने जाने चाहिये, अिसका सम्बन्ध अिस विषयके साथ ही होनेसे अिस बारेमे दो शब्द कहकर मै तर्कशक्तिका विषय पूरा कर दूगा।

जिस प्रकार तर्क — अनुमानका आधार पहलेका अनुभव और वर्तमानमे प्रत्यक्ष देखी हुअी निशानी होती है, अुसी प्रकार दूसरेका शब्द भी अुसके द्वारा किया हुआ अनुभव ही है। हम सब सखियाको खुद खाकर या किसीको खिला कर यह विश्वास नही करते कि वह जहर है, लेकिन विश्वास करने लायक मनुष्योके वचनमे विश्वास रखते है। क्योकि हमे लगता है कि अुन्होने अैसे अनुभव किये है और अिसीलिअे यह कहा है। लेकिन जिस तरह अेकाध तर्कके बारेमें किसीको श्रद्धा न बैठे तो वह अुसे प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकता है, अुसी तरह यदि किसीको सखियाके जहर होनेके बारेमे विश्वास न बैठे तो अुसके लिअे सखिया खाकर अनुभव लेनेका दरवाजा खुला है। जिस प्रकार

तर्ककी अन्तिम कसौटी अनुभवसे की जानी चाहिये, अुसी प्रकार दूसरेके शब्दोकी कसौटी भी अनुभवसे ही की जानी चाहिये। जो चीज अनुभवमे अुतारी जा सकती है, अुस चीजकी तरफ ले जाना ही शब्दप्रमाणका सच्चा अुपयोग है, और अितना ही अुसका सच्चा अुपयोग है।*

* पाठक देखेगे कि मैं सच्ची और दृढ श्रद्धा अुसीको कहता हू, जिसका आधार अनुभव पर हो। साधारण तौर पर हमे अैसा अुपदेश मिलता है कि "श्रद्धा रखो तो अनुभव होगा।" अिसमें अनुभवसे पहले श्रद्धाकी माग की जाती है। सच पूछा जाय तो अुपदेशकको अैसा कहना चाहिये "आप अिसे मान न सके तो अनुभव कीजिये। अुससे श्रद्धा बैठेगी। या धीरज रखिये, आपको यह अनुभव होगा, मेरे या दूसरे किसीके शब्दोको ही मान लेनेकी जरूरत नही।" लेकिन "श्रद्धा रखो तो अनुभव होगा" यह वाक्य दूसरे अर्थमें सच भी है। वहा "श्रद्धा रखो" का अर्थ होगा "अनुभव लेनेके लिअे लगनसे परिश्रम करो।" अगर कोअी कहे कि 'सामने जहा धुआ निकलता है, वहा अग्नि होगी ही यह मैं नही मानता', और अपनी अिस मान्यताके लिअे अुसका अितना आग्रह हो कि विश्वास करनेके लिअे वह हमारे साथ आनेसे भी अिनकार करे, तो अुसे अनुभव नही कराया जा सकता। अुसे धुअेकी जगह जानेका कष्ट करने जितनी श्रद्धा (या अश्रद्धाका अभाव) रखना चाहिये। लेकिन श्रद्धाके अिस अर्थमे बधनका, निश्चयका या कृतार्थताका भाव नही है। दूसरे प्रकारकी (अनुभव-सिद्ध) श्रद्धामें निश्चय या कृतार्थताका भाव है। लेकिन "श्रद्धा रखो" के साधारण अुपदेशमे बधनका भाव है।

११

बुद्धि

प्रज्ञा और तर्कके बीचका भेद अच्छी तरह समझ लिया गया हो, तो बुद्धिशक्तिको पहचाननेमें ज्यादा आसानी होगी। बुद्धिको मैंने निर्णय करनेवाली शक्ति कहा है।

तर्कशक्ति और बुद्धिके बीचका भेद पहले स्पष्ट होना चाहिये।

सामान्य भाषामें हम तर्कको भी निर्णय ही कहते हैं। धुअेवाली जगह पर अग्नि है, अैसा तर्क होता है। अुसे हम सामान्य भाषामें अैसा भी कहते है कि 'वहा अग्नि है अैसा मैं निर्णय करता हू'; और कहते हैं कि यह बुद्धिका व्यापार है।

लेकिन किसी जगह अग्नि है अैसा तर्क होनेके बाद, वहा आग लगी है अिसलिअे दौड़कर जाना चाहिये, यह निर्णय होनेके बीच दूसरे मानसिक-व्यापार होते हैं। और ये बुद्धिके व्यापार हैं। जिसकी बुद्धि जाग्रत न हो, परन्तु केवल तर्कशक्ति ही जाग्रत हो, अुसकी वृत्ति अग्नि है अैसा तर्क करनेके बाद शान्त हो जाती है।

कर्मेन्द्रियका व्यापार करनेकी प्रेरणा होनेके पहले अुपयोगमें आनेवाली शक्ति बुद्धि है, अैसा भी साधारण तौर पर कहे तो चल सकता है। कोअी काम करनेकी अिच्छा हो, अुसके पहले बुद्धिको जाग्रत होना पड़ता है। सही या गलत रूपमें बुद्धिका कार्य पूरा होनेके बाद ही कर्म करनेकी प्रवृत्ति होती है।

कुछ अुदाहरणोंसे यह चीज स्पष्ट हो जायगी। रास्तेमें जाते हुअे अेक नाला आता है। हम अुसे कूद कर लाघ जानेकी अिच्छा करते हैं। दो क्षणके लिअे खड़े रहकर हम नालेकी चौडाअी देखते हैं, आसपासकी जगह देखते हैं और फिर मनमें निश्चय करते है कि अमुक जगहसे नालेको लांघना ज्यादा आसान होगा। फिर हम वहा जाकर खड़े रहते हैं और कूदनेके लिअे कितना जोर लगाना होगा अिसका मनमे निर्णय करते

है। अिस निर्णयको हम भाषामें व्यक्त नही कर सकते, लेकिन अपने मनमे हम अुसे अच्छी तरह समझ सकते है। निर्णय होते ही जरूरी जोर लगाकर हम छलाग मारते है। मनका यह सारा व्यापार ज्यादा अभ्याससे अेक क्षणमे हो जाय या अुसमे देर लगे, लेकिन अैसा कोअी व्यापार हरअेक काम करनेसे पहले हमे करना पडता है।

कभी हम अैसे निर्णय पर पहुचते है कि नालेको कूदकर लाघने जितना जोर हम नही कर सकते, अिसलिअे हम लाघनेका प्रयत्न नही करते। अैसे निषेधात्मक निर्णयमें सच पूछा जाय तो बुद्धि पूरा काम नही करती, कितना जोर लगाना होगा अिसका निश्चय वह नही कर पाती, बल्कि अैसा अपक्व निश्चय या शका करके रुक जाती है कि हम जितना जोर लगा सकते है वह नाला लाघनेके लिअे काफी नही होगा।

अेक दूसरा अुदाहरण लें।

असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ है। नेतागण सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड देनेकी प्रेरणा करते है। हमारे मनमे कुछ विचार—आवेग पैदा होते है। मनमे कुछ—भाषा द्वारा वर्णन न किया जा सकनेवाला—निर्णय होता है और हम सरकारी स्कूल या कॉलेज छोड देते है। यह निर्णय करनेमे हम कुछ अपनी भावनाओका निरीक्षण करते है, कुछ अपने आसपासकी परिस्थितियोका निरीक्षण करते है, कुछ कल्पनायें करते है, और तर्क दौडाते है, अपनी ताकतकी जाच करते है, और अन्तमे छोडनेके निर्णय पर आते है। यह निर्णय बुद्धिने सही किया हो या गलत, लेकिन अुसने कार्य किया है।

दूसरा आदमी अैसे ही सारे मनोव्यापार करनेके बाद अिस निर्णय पर आता है कि शालाका त्याग नही करना चाहिये, अितना ही नही, अिस बातका विरोध करना चाहिये, और वह अैसा करनेमे लग जाता है। अुसने भी सही या गलत तौर पर बुद्धिका व्यापार चलाया ही है।

लेकिन अेक तीसरे आदमीके मनोव्यापार किसी निर्णय पर नही पहुचते। असहयोगकी प्रवृत्ति अुससे हो नही सकती, वह विरोध करने जैसी है, अिसका भी निर्णय वह नही कर पाता। कहा जा सकता है कि यहा बुद्धिका व्यापार अधूरा रहता है।

तात्पर्य यह कि बुद्धि निर्णय करनेवाली शक्ति है; और यह शक्ति अपना पूरा पूरा काम करे, तो किसी भी कर्ममे हमारी प्रवृत्ति* होनी चाहिये। यह मनकी शक्ति है, वाणीको नही। प्राणीमात्रमे यह शक्ति कम-ज्यादा रूपमे खिली हुअी होती है।

यदि अिस शक्तिको ही हम बुद्धिके रूपमे पहचानें, तो अिस बुद्धिकी तालीम अत्यन्त अिष्ट वस्तु है।

अब तीन बातोका विचार करना रह जाता है · १ पाडित्य और बुद्धिके बीचका भेद, २ बुद्धिकी तालीमके अग, और ३ बुद्धिके निर्णयकी सत्यासत्यता जाननेका मार्ग अथवा बुद्धिशक्ति सही दिशामे ही काम करे अिस तरहकी अुसकी तालीम।

पहले हम पाडित्य और बुद्धिके बीचका भेद समझ ले।

मान लीजिये, दो भाअी आपसमें अिस प्रश्नकी चर्चा करते है कि जगत् सत्य है या मिथ्या। और चर्चाके अन्तमे अेक कहता है कि जगत् सत्य है और दूसरा भाअी कहता है कि जगत् मिथ्या है। मान लीजिये कि अिस चर्चामे दोनोका आधार पुराने शास्त्र और आचार्योंके भाष्य हैं और अुन शास्त्रो और भाष्योका अर्थ लगानेके फलस्वरूप ही अैसे दो पक्ष हो जाते हैं। किसी न किसी तरह अेक भाअी जगत्को सत्य ठहराकर अलग होता है और दूसरा भाअी जगत्को मिथ्या ठहराकर अलग होता है।

मान लीजिये कि अिस निर्णयके फलस्वरूप दोनोके जीवनमें कोअी फर्क नही पडता। जैसा पहले चलता था वैसा ही दोनोका जीवन चलता रहता है। जगत्को सत्य माननेवाला भाअी जगत्में चिरकाल तक कायम रहनेवाला कोअी लाभ प्राप्त करनेका प्रयत्न नही करता और अुसे मिथ्या माननेवाला तुच्छ-सी चीजको भी छोड नही सकता।

---

* कोअी चल रहा काम करते-करते रुक जाना या जो काम किया जाता है वह ठीक ही है अैसा बार बार निर्णय होना और अिस कारणसे अुसमे ज्यादा दृढता आना भी कर्ममें प्रवृत्ति ही कही जायगी। प्रवृत्तिके विस्तारकी अमुक मर्यादा ही होनी चाहिये, अैसा नही।

यह सारा व्यापार केवल पाडित्य है, बुद्धि नही। क्योकि पहले तो दोनोका व्यापार केवल शाब्दिक है। अुसमें जगत्को स्वय जाचकर निर्णय करनेका प्रयत्न नही है। दूसरे, जिस शाब्दिक निर्णय पर वे पहुचते है, अुसके फलस्वरूप भी अुनकी प्रवृत्तिमे कोअी फर्क नही पडता।

अैसा वाणी-विलास बुद्धिका निर्णय नही है।

अिसी तरह, मान लीजिये कि हम रसायनशास्त्री नही है, कभी प्रयोग करके देखनेका हमारा विचार नही है, और फिर भी हम अिस चर्चामे पडते है कि कोयला और हीरा अेक ही तत्त्व है या अलग अलग। दोनो अेक तत्त्व है, अैसा ठहराकर हम हीरेको सिगडीमे डालनेवाले नही है और दोनोको अलग तत्त्व ठहराकर भी कोअी प्रयोग करनेवाले नही है। अत हमारी यह चर्चा केवल पाडित्य मानी जायगी, अिसमे बुद्धि नही है।

वुद्धि प्रत्यक्ष आ पडनेवाले कर्मको दिशा बतानेके लिअे — हमारे प्रत्यक्ष जीवनको मार्ग दिखानेके लिअे अुत्पन्न हुअी शक्ति है।

अब हम बुद्धिकी तालीमके अगोका विचार करें।

बुद्धिकी शक्ति प्रज्ञाशक्ति और तर्कशक्तिसे ज्यादा अूची है। अिसलिअे यह कहनेकी जरूरत न रहनी चाहिये कि बुद्धिकी तालीमके लिअे प्रज्ञा और तर्कशक्तिकी तालीम जरूरी है। और प्रज्ञा तथा तर्कशक्तिमें जितना असत्य होगा, अुतना बुद्धिके कार्यमे दोष आवेगा ही, यह भी स्पष्ट है। अिसके अलावा, वुद्धिके व्यापारमे हमारी कर्तृत्वशक्तिका, भावनाओका* तथा जीवनके साथ अेकरस बने हुअे आजसे पहलेके निश्चयो और अुनके कारण दृढ वने हुअे रागद्वेषोका भी हिस्सा होता है।

प्रज्ञा और तर्कके दोष दूर हो गये है, अैसा मानकर हम अलग अलग अुदाहरणोके साथ अिसका विचार करें।

अेक नाराज हुअे वालकको जिमानेके लिअे अुसकी मा मनाने जाती है। अेक तरफ तो बालकमे स्वाभिमान और क्रोधके विकार है,

---

* दया, प्रेम, स्वाभिमान, कुलाभिमान, मद, वैर, क्रोध, भय, अीर्ष्या आदि अच्छी-बुरी भावनायें है।

दूसरी तरफ वह भूखसे व्याकुल है, और तीसरी तरफ माके प्रति अुसका प्रेम है। अुसे यह निर्णय करना है कि स्वाभिमानकी रक्षा की जाय या खाना खाया जाय। अन्तमे भूखकी व्याकुलतासे कर्तृत्वकी भावना कम हो जाती है, माका मनाना विकारोको शान्त कर देता है और वह खानेका निर्णय करता है।

अेक आदमी रातमें धुआ देखकर यह तर्क करता है कि फला घरमे आग लगी है, लेकिन वह अधेरेसे डरता है और अिस कारणसे कुछ न करके बैठा रहता है।

दूसरा आदमी डरता नही और वहा जाता है। जाते जाते अुसे मालूम होता है कि जिस घरको आग लगी है वह अुसके शत्रुका घर है, यह सुनते ही वह लौट आता है।

तीसरा आदमी जाता है और शत्रुके घरको आग लगी है यह देखता है। लेकिन अुसमे कुछ दयाकी, शत्रु पर कुछ अुपकार करके अुसे अुपकारके बोझसे दबानेकी भावना पैदा होती है, अिसलिअे वह मदद करने दौडता है।

अिन अुदाहरणोसे यह मालूम होता है कि अलग अलग भावनाओ, कर्तृत्व-शक्ति और रागद्वेषके बलोके कारण बुद्धिके निर्णयोमे कैसा फर्क पडता है।

कुछ दूसरे ज्यादा अटपटे अुदाहरण ले।

'क' और 'प' अेक कपडेकी दुकानमे जाते है। दुकानदार हाथ-कते सूतकी अेक सादी धोती बताता है। 'क' को लगता है कि खादी पहनना अच्छा है, लेकिन अुसे बारीक धोती ही चाहिये, अिसके अलावा अुसे जामुनी रगकी आमकी किनारीवाली धोती पहननेका शौक है। 'प' रग, डिजाअिन और पोतके बारेमे अुदासीन है। लेकिन अुसे 'गाधी-मत' से नफरत हो गअी है, अिसलिअे अुसने यह हठ पकड लिया है कि गाधी कहे वैसा हरगिज न किया जाय। नतीजा यह है कि अलग अलग विचार होते हुअे भी दोनो हाथ-कते सूतकी धोती नही खरीदते।

और अेक अुदाहरण लीजिये।

'व' और 'ह' रेलमे यात्रा कर रहे है। अेक आदमी डिब्बेके भीतर आनेकी कोशिश करता है। अुसके चेहरे और पोशाकसे दोनो यह अनुमान करते हैं कि वह कोअी अछूत जातिका आदमी है लेकिन सरकारी अफसर है। 'व' को अछूतके स्पर्शसे कोअी अेतराज नही है और अस्पृश्यता-निवारणके लिअे अुसका आग्रह भी है। 'ह' अिसके बहुत खिलाफ है। लेकिन अिसके साथ ही 'व' अिस बातकी बडी चिन्ता रखता है कि खुदको बैठनेकी तकलीफ न हो। और फिर अुसने अेक अैसा सिद्धान्त बना लिया है कि अफसरोके सामने अकडकर ही रहना चाहिये। अिसके विपरीत, 'ह' खुद चाहे जितना कष्ट अुठाकर भी किसीके लिअे जगह कर देनेवाला है, और अफसरोके लिअे अुसके मनमें अैसा भय रहता है कि वह 'सत्ताके सामने सयानपन' नही दिखा सकता।

फलस्वरूप 'व' अस्पृश्यता-निवारणमे विश्वास रखते हुअे भी अपनी सुविधाके खयालसे और अफसरोसे द्वेष रखनेके कारण बैठनेवालेको अदर आनेसे रोकनेका प्रयत्न करता है, और 'ह' अस्पृश्यताको धार्मिक वस्तु मानते हुअे भी सौजन्य और भयके कारण अुसे आनेसे नही रोकता।

अिस तरह रागद्वेष, पहलेके निश्चित सिद्धान्त और कर्तृत्व — ये तीनो बुद्धिके निर्णयमे हाथ बटाते है। अिनमे से किसी अेकमें अगर कोअी दोष होगा, तो भी निर्णयमे दोष आयेगा। अिसके अलावा, भीतर आनेवाला यात्री अछूत है या सरकारी अधिकारी है, यह अनुमान करनेमे कोअी गलती हुअी, तो भी निर्णयमे दोष आयेगा।

अिसलिअे बुद्धिकी तालीमका अर्थ होगा प्रज्ञा और तर्कशक्तिकी तालीमके अलावा हमारे रागद्वेषोकी शुद्धि, पूर्वसिद्धान्तोकी बार-बार परीक्षा और कर्तृत्व-शक्तिकी वृद्धि।

अब बुद्धि सही दिशामे ही काम करे, अिस प्रकारकी अुसकी तालीमका मार्ग विचारना चाहिये। यह प्रश्न अितना बड़ा है कि अिसका विचार दूसरे लेखमे करना ही ठीक होगा।

१२
सत्य निर्णय

अब बुद्धि सही दिशामे ही काम करे, अिस प्रकारकी अुसकी तालीमका मार्ग विचारे।

बुद्धिकी अेक मर्यादा पहलेसे ही जान लेना आवश्यक है। मै अेक बार फिर यह याद दिला दू कि बुद्धिका अर्थ है निर्णय करनेवाली शक्ति। किसी प्रसग पर मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह निर्णय करनेके लिअे जो मानसिक व्यापार होते है, वे बुद्धिके व्यापार है। चूकि आ पडनेवाले अवसर पर ही बुद्धि काम करती है, अिसलिअे अुसके निर्णयोको तीनो कालोके लिअे सत्य मानना गलत होगा। स्थूल व्यवहारके निर्णय तीनो कालोके लिअे अेकसे होगे ही, अैसा नही कहा जा सकता। आज अेक बालकको मै खेलनेके लिअे प्रोत्साहन दू और कल अुसे खेलनेसे रोकू। आज मै अेक बालकको आग्रहसे खिलाअू और कल अुसे ही भूखा रहनेको समझाअू। आज अुसे विद्यामे अेकाग्र होनेको कहू और कल कर्ममे अेकाग्र होनेको कहू। आज मै छुतहे रोगके रोगीके ससर्गमे अपनेको बचाअू और कल अुसी रोगीकी सेवा-शुश्रूषामे लग जाअू। आज जिस देशमे सरकार जुल्म करती हो अुस देशको छोड देनेका निर्णय सही माना जा सकता है, और कल अुस जुल्मको सहकर भी देशमे रहनेका निर्णय सही माना जा सकता है। अिस तरह बुद्धिके सारे निर्णय विशेष अवसरोके लिअे ही ठीक माने जा सकते है, और अवसरके भेदोके कारण अैसे अेक-दूसरेके विरुद्ध निर्णय भी सही हो सकते है।

लेकिन अेक ही विषयमे अलग अलग आदमी अलग अलग निर्णयो पर पहुचते है, तब दोनो निर्णय कैसे सही हो सकते है, यह प्रश्न सोचने जैसा है। गाधीजी स्वराज्यकी सिद्धिके लिअे अेक मार्ग बतावे और श्री केलकर शायद दूसरा और अुससे अुलटा मार्ग बतावे, गाधीजी हिन्दू-मुसलमानोकी अेकताके लिअे अेक मार्ग सुझावे और श्रद्धानन्दजी या किचलू दूसरा मार्ग सुझावे, गाधीजी अस्पृश्यता-निवारणको धर्म कहे

और शास्त्री लोग अुसे अधर्म कहे, गाधीजी चरखेके गुणगान करे और कविवर रवीन्द्रनाथ अुसका मजाक अुडाये। तो ये दोनो प्रकारके निर्णय अेक ही समयमे सही कैसे हो सकते है?

बुद्धिका कार्य किस तरह होता है, अिस विषयमे पिछले प्रकरणोमें जो कुछ कहा गया है, अुसे देखनेसे जान पडेगा कि जहा जहा मत-भेद है, वहा वहा प्रज्ञा (अवलोकन, अनुभव और तुलना), तर्क, राग-द्वेषो, पूर्वसिद्धान्तो और कर्तृत्व-शक्तिके भेद मौजूद है।

अिनमे से प्रज्ञा और तर्कके दोष प्रमाणोसे दूर किये जा सकते है, कुछ हद तक रागद्वेषो और पूर्वसिद्धान्तो पर भी अिसका असर पडेगा। लेकिन केवल प्रमाणोसे रागद्वेषो, पूर्वसिद्धान्तो और कर्तृत्व-शक्तिके भेद टाले नही जा सकते। अैसी परिस्थितियोमे साधारण मनुष्य कैसे जाने कि किसके निर्णयोके पीछे रहनेवाले रागद्वेष विशुद्ध है, पूर्वसिद्धान्त अचूक है और कर्तृत्व-शक्तिवाले है? और वह अपने निर्णयोकी सत्यता या असत्यताकी जाच किस तरह कर सकता है?

अिन प्रश्नोके अुत्तर देना भी बडा कठिन है, क्योकि मै किसी अेक रीतिके सही होनेका निर्णय करू, तो अुस निर्णयके पीछे मेरे राग-द्वेषो, पूर्वसिद्धान्तो और कर्तृत्वका रग अवश्य होगा। अिसलिअे जिस निर्णयको मैं सत्य कहू, अुसे अपने रागद्वेपादिकी दृष्टिसे ही सत्य कह सकता हू। अिसलिअे अभी तकके लेखोमें जिस तटस्थ-वृत्तिसे चर्चा करना सभव था, वह तटस्थता अब नही रह सकती। जिसके साथ मेरे राग-द्वेपादिका मेल बैठे, अुसीको मेरे निर्णय सत्य मालूम हो सकते है। दूसरेको न भी मालूम हो।*

विकास-विचारके प्रकरणमें हम देखेंगे कि विकासके दो महत्त्वपूर्ण प्रकार है १ प्राणका सूक्ष्म विकास, और २ गुण-विकास। और दूसरे

---

* क्या अिसीसे 'कि कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता।' कहना पडा होगा? 'तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।' अैसा प्रतिपादन करने पर भी अिसी श्लोकका अर्थ बैठानेमे और अुस परसे गीताका रहस्य खोजनेमे कितना मतभेद है!

प्राणियोसे मनुष्यकी विशेषता अुसके गुण-विकासके कारण ही है। सब मनुष्य अेक ही योनिके प्राणी है, फिर भी अुनमे जो अपार विविधता देखी जाती है, अुसका मुख्य कारण गुण-विकासका भेद है। मनुष्य मनुष्यतामे कितना आगे बढा है, यह अुसके गुण-विकास परसे जाना जा सकता है।

गुणोका बुद्धि पर सीधा असर पडता है। मानव-जाति पर अपार प्रेम होनेके कारण ही गौतम बुद्ध 'यह ब्राह्मण है और यह शूद्र' के वचनोको नही मान सके। दीनबधु अेन्ड्रूज अिसी कारणसे अपने जातिभाअियोके ही पक्षमे नही रह सकते। अेक-दो शुभ गुणोका भी खूब विकास हो जाय, तो बुद्धिको बधनमे रखनेवाले आवरण खुल जाते है। फिर वह सकुचित क्षेत्रमे ही विहार नही करती, वह विशाल दृष्टिसे विचार करने लगती है। जब तक गायको हम भक्ष्य वस्तु मानते है, स्त्रीको विषय-वासनाकी तृप्तिका साधन मानते है या दोनोको अपना गुलाम मानते है, तब तक गोरक्षा, स्त्रियोकी अुन्नति या मूक प्राणियो पर दयाकी भावना रखनेके विषयमे हम अमुक मर्यादामे रहकर ही विचार कर सकते है। अधिकसे अधिक हमारी बुद्धिकी दौड हमारा कार्य सिद्ध करने तक और अुनका दु ख थोडा कम करने तक ही सीमित रहेगी। अिन भावनाओसे मुक्त होकर जब हम सबके प्रति मैत्री, करुणा या समानताकी भावनाको दृढ बनायेंगे, तब हम अिनसे सबंध रखनेवाले प्रश्नोके बारेमे जो विचार करेंगे, वह बिलकुल भिन्न प्रकारका होगा।

जब दो आदमियोके बीच झगडा होता है, तब अुसका फैसला करानेके लिअे किसी तटस्थ और निष्पक्ष आदमीका सहारा लिया जाता है। हम जानते है कि वह आदमी जितना अधिक तटस्थ होगा, अेक या दूसरेकी जीतके बारेमे जितना अधिक अुदासीन होगा, अुतना ही वह फैसला करनेके लिअे अधिक योग्य माना जायगा। अुसकी बुद्धि राग-द्वेषसे मुक्त होनेके कारण सत्य खोजनेके लिअे अधिक अनुकूल होगी। अिस तरह सत्य खोजनेके लिअे मनकी वृत्तिका तटस्थ होना बहुत जरूरी है। तटस्थ वृत्तिका अर्थ है पूर्वग्रहसे अधिकसे अधिक मुक्त स्थिति, किसी विशेष प्रकारके निर्णयका आग्रह न रखना।

लेकिन तटस्थ मनुष्य समभावी (सहानुभूतिवाला) या असमभावी हो, तो भी निर्णयमे बडा फर्क पड जाता है। दो आदमियोके वीच झगडा हो और अुसका फैसला करनेका काम मुझे सौपा जाय, और यदि अुनमे से अेकके प्रति मेरी सहानुभूति या समभाव हो, तो मै पूरा पूरा तटस्थ नही रह सकता, दोनोके प्रति सहानुभूति या सम-भावका मुझमे विलकुल अभाव हो — अुदाहरणके लिअे, मेरा यह खयाल वन गया हो कि दोनो झूठे या तर ्टबाज है, तो मै तराजूमे तौलने जैसा शुद्ध न्याय भले दे सकू, लेकिन अुस न्यायसे दोनोमे से किसीका या मेरा समाधान नही होगा। यह निर्णय विचारदोपसे मुक्त लग सकता है, परतु अुससे मेरी भावनाको सतोष नही होगा, और अिस कारणसे अुसमे कोअी न कोअी दोष महसूस हुअे विना नही रह सकता। लेकिन यदि दोनोके प्रति मेरी अेकसी समभावना या सहानुभूति हो, दोनोके लिअे मेरी हितकी ही दृष्टि हो, तो मेरा निर्णय कुछ दूसरे ही प्रकारका होगा। अुसमे तराजूका स्थूल न्याय भले न हो, परतु मौलिक न्याय अवश्य होगा। अिस प्रकार जिस वस्तुके बारेमे निर्णय करना है, अुसके बारेमे अुस समय मुझमें जो गुण होगा, अुसका मेरे निर्णयमे महत्त्वपूर्ण भाग होगा।

तटस्थता और समभावका अभाव कअी तरहसे हो जाता है। दूसरे गुणोका बल अिन दोनो पर असर डालकर वुद्धि पर परोक्ष असर डालता है। केवल अेक विषयका रस भी अुस विषयके बारेमे तटस्थ भावसे निर्णय करनेमे वाधा पहुचाता है। जैसे, अेक आदमीको गायनमे अत्यन्त रस है। अव यदि अुसकी बुद्धि अुसे अैसे निर्णयोकी तरफ खीचे, जिनसे गायन-कलाका महत्त्व घट जाय, तो वह अिसे सहन नही कर सकता। अिसी तरह यदि अुसे गायन-कलाका खडन करनेमें ही रस आने लगे, तो भी अिस विषयका वह शुद्ध विचार नही कर सकेगा।

यह अिस बातका विवेचन हुआ कि वुद्धिके निर्णयो पर गुणोका किस तरह असर पडता है। लेकिन वुद्धिके सूक्ष्म होनेमे भी गुणोका विकास ही प्रधान साधन होता है। सामान्यत हमारा यह खयाल होता

है कि बाह्य जगत्के अध्ययन, अवलोकन और अनुभवसे बुद्धि सूक्ष्म बनती है। हम बहुत बार देखते हैं कि अैसे मनुष्य भी सूक्ष्म विचार कर सकते है, जिनका चरित्रबल बहुत बढ़ा हुआ नही होता। और अिसलिअे हमे अैसा नही लगता कि गुण-विकास और बुद्धि-विकासके बीच कोअी संबंध है। अुलटे, हमारा यह खयाल है कि बुद्धिका संबंध अेकाग्रताके साथ है, और अैसा माना जाता है कि अेकाग्र होनेके लिअे जितने गुणोकी आवश्यकता है, अुतने गुण अेकाग्रताकी सिद्धि होने तक ही बने रहे तो भी काम चल सकता है।

किन्तु यह सूक्ष्मता अुस अर्थमे बुद्धिका विकास नही है, जिस अर्थमे मैं अुसे बुद्धिका विकास मानता हूं। यह तो प्रज्ञाशक्ति (अनुभव और तुलनाशक्ति) और तर्कशक्तिकी ही सूक्ष्मता है। अमुक अवसर पर किस तरहका व्यवहार करना चाहिये, यह निर्णय करनेवाली शक्ति मेरे अर्थमें बुद्धिशक्ति है, और अिस शक्तिका विकास गुणोके विकासके बिना असंभव है।

अेकाग्रता, वृत्तियोके निरोध आदिके अभ्याससे मैं प्रज्ञा और तर्ककी सूक्ष्मता साधकर क्षणभरके लिअे भले प्रत्यक्ष रूपसे अद्वैत तत्त्वको जानू, आत्माकी अमरताको पहचानू, सत्य और अहिंसाकी पराकाष्ठाकी कल्पना करू, सत्याग्रहका सिद्धान्त समझू, या साम्यवादी (सोशलिस्ट) बन जाअू; अुससे मैं भले वेदान्तके तत्त्वको सिद्ध कर सकू, सत्य और अहिंसाकी पराकाष्ठा दिखानेवाली कथा रच सकू, सत्याग्रहकी मीमांसा लिख सकू, या साम्यवाद पर ग्रंथकी रचना कर सकू; लेकिन मेरे और पडोसीके बालकोंके बीच अभेदभावसे व्यवहार करनेमे, पडोसीकी सहायता करते समय मेरे शरीरको खतरेमे डालनेमे, कसौटीके समय सत्य पर डटे रहनेमे, परेशान करनेवाली बिल्ली या कुत्ते पर नाराज न होनेमें, विरोध टालनेके लिअे सत्याग्रह करनेमे या मेरे नौकरको अपनी बराबरीमे बैठने देनेमे तर्कशक्ति या प्रज्ञासे किये अथवा माने हुअे विचार या कल्पनाये बहुत सहायक नही होती। केवल प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति, तेज, सत्य, प्रामाणिकता, शौर्य आदि विशिष्ट गुणोंका अुत्कर्ष ही अिसमे सहायता करता है।

वावलाकी* हत्या होते समय जिन अंग्रेजोने अपने प्राणोकी बाजी लगाकर अुसे बचानेका प्रयत्न किया, अुन्होने आत्माकी अमरता या अद्वैत सिद्धान्तके बारेमें शायद स्वप्नमे भी विचार नही किया होगा। भगीके बच्चेको स्तनपान करानेवाली स्वर्गवासी मलबारीकी माने साम्य-वादका शब्द भी कभी सुना न होगा। प्रसूतिके समय कुत्तीकी अपनी पुत्रीके जैसी सार-सभाल करनेवाली और बीमार बदरीकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली मेरे मित्रकी अेक पत्नी है, अुनकी तर्कशक्ति या प्रज्ञा-शक्ति सूक्ष्म है, अैसा कोअी नही कह सकता। "मै झूठ नही बोल सकता, मैने पेड काटा है," यह वाक्य जार्ज वाशिंग्टन जिस अुम्रमें बोला था, अुस अुम्रमे अुसने सत्यकी महिमाका शायद ही विचार किया होगा। लेकिन अैसे अवसरो पर कैसा व्यवहार करना चाहिये, अिसका निर्णय ये सब लोग विशिष्ट गुणोके विकाससे ही तुरन्त कर सके।

जिस प्रकार कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोके कार्य कर्म है, अुसी प्रकार अन्त करणके कार्य भी कर्म ही है। अेक ही तरहके कर्मके अभ्याससे जिस तरह कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोमें कुशलता आती है, प्रज्ञा और तर्कशक्तिमें कुशलता आती है, अुसी तरह बुद्धिमें भी कुशलता आती है। जिस मनुष्यने जिस गुणका खूब विकास किया होगा, अुसके प्रत्येक निर्णयमे अुस गुणकी छाप स्वभावत दिखाअी देगी। जिसने सत्यकी खूब सावधानी रखी होगी, अुसके विना सोचे-विचारे किये हुअे निर्णयोमें भी सत्य या सत्यकी ओर झुकाव दिखाअी देगा। जिसने सत्यके लिअे कम चिन्ताकी होगी, अुसके खूब सोच-विचार कर किये हुअे निर्णयोमें भी शका और अनिश्चितता मालूम होगी। जिसने जान-बूझकर असत्यका ही आचरण किया होगा, अुसके निर्णयो पर असत्यकी, लुच्चाअीकी छाप मालूम पडेगी। जिसने परोपकारके गुणका

* कुछ बरस पहले बम्बअीमें वावला नामक अेक मुसलमान गृहस्थकी रास्ते पर दौडती हुअी मोटरमें हत्या हुअी थी। अुस समय प्राणोकी बाजी लगाकर भी अेक-दो अंग्रेजोने अुसे बचानेका प्रयत्न किया था। अिस हत्यामें अिन्दौरके राजा तथा बडे अधिकारियोका हाथ मालूम हुआ था, और अिन्दौरके राजाको गद्दी छोड़नी पडी थी।

विकास किया होगा, अुसके अनायास किये हुअे निर्णयोका झुकाव भी दूसरेके हितकी ओर ही होगा। जिसने स्वार्थ साधनेका ही ध्यान रखा होगा, अुसके निर्णयोंमें अपना हित देखनेकी ही दृष्टि सर्वोपरि रहेगी।

जिस मनुष्यमे कोअी गुण अत्यन्त विकसित हुआ होगा, अुस मनुष्यकी वुद्धि अैसी हो जाती है कि वह अुस गुणका पोपण करने-वाला चित्त-प्रकृतिका नियम (अुस गुणका पोपण करनेवाली फिलासफी) तुरन्त समझ सकता है। जिसने लोभको वढाया होगा, वह पूजीवादी अर्थगास्त्रके सिद्धान्त अच्छी तरह समझ सकेगा और अुसीमें अुसे फिला-सफीकी पूर्णता लगेगी; 'धनाद्धर्मस्तत सुखम्' यह अुसे सवसे वडा सिद्धान्त मालूम होगा। जिसने अिन्द्रियोके विपयोके आनन्दका पोपण किया होगा, वह विज्ञान द्वारा खोजे हुअे साधनो, कलाओकी महिमा तथा अुसका पोपण करनेवाली दलीलोको तुरन्त समझ सकेगा। और जीवनके विकासका यही पहलू अुसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जान पड़ेगा। जो दर्शन (तत्त्वज्ञान) भोग और मोक्ष दोनोंका समर्थन करता है, वह दर्शन अुसे सर्वांगपूर्ण लगेगा। सोने और कला-कौशलसे सजे हुअे देव-मदिरों और सिंहासनों, फूलोंसे सुगोभित झूलो और झाकियों, अनेक प्रकारके भोजनो और वस्त्राभूपणों तथा दीपमालाओ, ध्वजा-पताकाओ आदिकी रचनामे वह भक्तिमार्ग देखेगा। देलवाड़ाके मदिरोंसे जैन धर्मका और अजताकी गुफाओंसे वौद्ध धर्मका अुत्कर्ष हुआ मानेगा। अुसी मार्गसे वह अपने संप्रदायका अुत्कर्ष साधनेका प्रयत्न करेगा। अनन्त काल तक लक्ष्मीनारायणका चतुर्भुज पार्षद या सेवक वनने, गोलोककी कृष्णलीलामें भाग लेने, या अक्षरधामके समेलनमें जाकर वैठनेका मोक्ष अुसे पसन्द आयेगा। जिसने परोपकार-वृत्तिका विकास किया होगा, अुसे दानधर्म, सेवाधर्म और दयाधर्मकी महिमा गानेवाले वुद्धिवाद सच्चे लगेंगे। जिसने असत्य, लुच्चाअी वगैराका पोषण किया होगा, अुसे 'दुनिया चलाना मक्रसे'* अिस सूत्रमें ही सारे सिद्धान्तोका सार मालूम होगा।

जिस मनुष्यने जिस गुणका थोडा वहुत भी पोषण नही किया होगा, अुसे अुस गुणसे अुत्पन्न हुआ दर्शन — वह चाहे जितना विद्वान

* छल-कपटसे।

हो तो भी — समझमें नही आयेगा। असत्यमें निष्ठा रखनेवाले मनुष्यको हरिश्चन्द्रका या राजपूतोका व्यवहार मूर्खताका प्रदर्शन लगेगा; लोभी आदमीको देशबधु दास या जमनालाल बजाजके त्यागमे व्यवहार-ज्ञानका अभाव मालूम होगा; व्यवहार-कुशल कहे जानेवाले मनुष्योको सत तुकाराम या रामकृष्ण परमहसके बारेमें पागलपनका शक होगा। आर्य-दर्शनके अेक प्रसिद्ध आचार्यने मुझे अपनी सस्थाका परिचय देते हुअे बताया कि हमारा अुद्देश्य आर्य-दर्शन और पाश्चात्य दर्शनका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन करके दुनियाके सामने आर्य-दर्शनकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दिखानेका है। बादमे सत्याग्रह आश्रमके बारेमे बात चलने पर अुन्होने कहा "आपको बुरा न लगे तो मैं आपसे कहू कि मैं गाधीजीका सत्य और अहिंसाका सिद्धान्त नही समझ पाता। मैं तो 'शठ प्रति शाठ्यम्' में विश्वास रखनेवाला हू। गाधीजीके सारे विचार अव्यावहारिक होते हैं। आप गुजराती लोग भावुक होते है। आप अैसी बातोमें विश्वास कर सकते हैं। परतु हम तो व्यवहार-सिद्धिकी तरफ ध्यान देनेवाले ठहरे, हमारे गले गाधीजीके सिद्धान्त नही अुतरते।" तर्कभेदके पीछे भी गुणभेद रहता है, अिसका यह आचार्य मुझे ज्वलत अुदाहरण मालूम पडा। जिन गुणोका विकास न हुआ हो, अुन गुणोके परिशीलन-मात्रसे विकास पानेवाली बुद्धि अुन गुणोसे सबध रखनेवाले दर्शनको समझ ही नही सकती। जिसके पास अुन गुणोका थोडा भी बल होगा, वह अुनकी दलीलको समझ सकेगा, और जिसमें ये गुण परिपक्व हो गये होंगे, वह अुन पर अमल कर सकेगा।

अिसलिअे यद्यपि अैसा कहनेमें धृष्टता या साहस हो सकता है कि अमुक पुरुषके विचार या अमुक निर्णय सत्य ही हैं, असत्य नही, फिर भी यथाशक्ति सत्य निर्णयोकी तरफ झुकनेका मार्ग अनिश्चित नही है। जो सत्यका ही पालन करनेका प्रयत्न करता है,* सत्यकी ही जिज्ञासा

* सत्य क्या अैसी कोअी निश्चित वस्तु है, जिसका पालन किया जा सके? सारे सत्य सापेक्ष हैं और जो मनुष्य यह दावा करता है कि 'मैं करता हू वही सत्य है', वही असत्यवादी है। अेक दृष्टि अेक मनुष्यको सत्य लग सकती है, और दूसरेको असत्य लग सकती है,

रखता है, अुसकी तर्कशक्ति और प्रज्ञा सत्यको ही परखनेकी तरफ और बुद्धि सत्य निर्णय करनेकी तरफ ही झुकी हुअी होगी। यह आज सत्य लग सकती है और कल असत्य। अिसलिअे किसके पालनका आग्रह रखा जाय? अैसी शका कुछ लोग अुठाते है। सच पूछा जाय तो अैसी कठिनाअी पैदा करनेकी जरूरत नही है। जो चीज आज मुझे सत्य या असत्य लगती है, वह मेरे लिअे आज वैसी ही है। आज मेरे लिअे मन, वाणी और कर्मसे व्यवहार करनेका नियम अिस मान्यताके अनुसार ही हो सकता है। अिस बारेमे दूसरेका दृष्टिकोण चाहे जो हो, और कल मेरा दृष्टिकोण भी भले बदल जाय। जो वस्तु मुझे सत्य मालूम हो, वह दूसरेको यदि असत्य लगती हो, तो अुस परसे अुस वस्तुके बारेमें ज्यादा गहरा विचार करनेका मुझे सकेत मिलता है। क्योकि संभावना यह है कि दोनोमें से किसी अेककी दृष्टि गलत या अधूरी हो। अिस कारणसे अैसे मामलोमे अपनी दृष्टिके अनुसार आचरण करानेके लिअे मै शायद किसी पर दबाव नही डालूगा। फिर, यह याद रखकर कि आज तकके समयमे मेरे विचारोमें कितना ही परिवर्तन हो गया है, और यह भी याद रखकर कि अुत्तम गुणोके विकासके बिना तर्कशक्तिसे किये हुअे विचारोको स्वीकार कर लेना बहुत महत्त्व नही रखता, अपने मतोके अनुसार किसीको तालीम देनेका या अुनमें किसीको शामिल करनेका मैं आग्रह नही रखूगा। आवश्यक हुआ तो अपना दृष्टिकोण समझानेका मैं प्रयत्न करूगा, लेकिन अुसे स्वीकार करानेका आग्रह रखना अनुचित माना जायगा। और यदि किसी कारणसे मुझे बोलना ही पडे, तो मुझे जो गलत लगता हो अुसे गलत ही कहना होगा। जो चीज मुझे असत्य लगती है अुसे मै 'अज्ञानी लोगोके सतोषके लिअे', 'बालकोके मनोरजनके लिअे' या 'थोडी देरके लिअे बालक बन जानेकी अिच्छासे' अिस तरह नही पेश कर सकता कि लोग अुसे सत्य समझ ले। यदि मुझे अैसा लगे कि दूसरे लोग मेरा दृष्टिकोण नही समझ सकेंगे, या अुनमें अैसा बुद्धिभेद पैदा होगा कि बडे सत्यको समझनेकी योग्यताके अभावमें वे छोटे सत्यको भी छोड देंगे, या समझ न सकनेके कारण मेरे आचरणसे अुन्हें दु ख होगा, तो मुझे कभी मौन रखनेका या अुनसे अलग

प्रश्न अलग है कि वह सत्य प्रिय है या अप्रिय, सुख देनेवाला है या दु ख, हर्ष अुत्पन्न करनेवाला है या शोक तथा अुससे प्रेय सिद्ध होता है या नही। लेकिन जो लोग सत्यको ही श्रेय मानते हो और श्रेयको

हो जानेका रास्ता भी अख्तियार करना पडे। यदि मेरे दृष्टिकोणमें सत्य होगा, तो कभी न कभी लोगोको अुसे स्वीकार करना ही पडेगा, और यदि वह सत्य न हो तो अुसमें रही भूलका नुकसान मुझे अकेलेको ही अुठाना होगा, अैसी मेरी निष्ठा होनी चाहिये। प्रचारके लिअे नही, बल्कि अेक शोधकके नाते ही मै कोअी विचार पेश कर सकता हू। मुझे जो मिथ्याचार या मिथ्या-भाषण लगता हो, अुसका मै समर्थन नही कर सकता। अमुक दृष्टिवालेको वह मिथ्या न लगे यह मै समझ सकता हू। परतु यदि अुस दृष्टिको बदलना कठिन समझू, तो अुसके साथ मै खडन-मडनके वाद-विवादमें नही पडूगा।

अिसके सिवा, असत्य शब्द दो अर्थवाला है। सत्यसे अुलटा या झूठा, मिथ्या भी असत्य कहा जाता है और अधिक सत्यकी दृष्टिसे कम सत्य भी असत्य कहा जाता है। अेक वस्तु अेक ही समयमें झूठी और सच्ची दोनो नही लग सकती। जिस समय मुझे किसी कमरेमें सापका भास हुआ हो, अुस समय यदि मै किसीसे कहू कि अिस कमरेमें साप है, तो मेरा कथन झूठ नही है। लेकिन अुस भासको मिथ्या जाननेके बाद किसीको डरानेके लिअे या विनोदके लिअे मै अैसा कहू तो वह झूठ होगा। लेकिन लोहेके फावडे, हथौडी और कुदाली तीनोको मै भिन्न कहू और तीनो लोहा ही है अिस दृष्टिसे अुन्हें अेक कहू, तो यहा मै न्यून या स्थूल सत्यका और अधिक या सूक्ष्म सत्यका भेद करता हू। फावडे, हथौडी और कुदालीकी अेकता सूक्ष्म सत्य है, और अुनका भेद तो स्थूल रूपमें सत्य ही है। अुनकी अेकता और भेद दोनोको मै अेक ही समयमें ग्रहण कर सकता हू। आवश्यकताके अनुसार कभी मै अुनके भेद पर जोर दे सकता हू और कभी अुनकी अेकता पर। अेकता पर जोर देनेके समय मैं अैसा भी कह सकता हू कि भेद सब औपाधिक, गौण या मिथ्या (नगण्य, immaterial) है।

ही प्रेय मानते हो, अुन्हे अिस श्रेय और अुस श्रेयमें जितना प्रेय होगा अुतना तो मिलेगा ही।

अिसी प्रकार अमुक पुरुषके विचार सच्चे ही है अैसा कहना धृष्टतापूर्ण हो सकता है। परतु यदि हम यह जानते हो कि वह पुरुष हमेशा सत्यका ही अनुशीलन करनेका और सत्यका ही जिज्ञासु बननेका प्रयत्न करता है, तो हम यह आशा रख सकते है कि अुसके विचारोका झुकाव सत्यकी ओर ही होगा।

अिस तरह सत्य निर्णय करनेकी शक्ति, अपना और दूसरोका कल्याण साधनेवाली तर्कशक्ति और प्रज्ञा, तथा अैसे तत्त्वज्ञानको समझनेकी शक्ति सत्य, प्रेम, दया आदि गुणोके विकासके विना असभव है। अिंद्रियोकी शक्तिया सूक्ष्म हो, कल्पनाशक्ति तीव्र हो, तर्कशक्ति कुशाग्र हो, चित्तको तुरन्त अेकाग्र करनेकी शक्ति भी सिद्ध हो गअी हो, परतु यदि अुत्तम गुणोका विकास न हुआ हो तो मनुष्यमे सही निर्णय करनेकी शक्ति नही आ सकती। अुसकी बुद्धिका विकास अधूरा ही रहेगा।

अूपरकी चर्चासे यह भी नही मान लेना चाहिये कि सूक्ष्म अवलोकन, तर्कशक्ति आदिका कोअी महत्त्व नही है। जैसे जैसे अवलोकन सूक्ष्म होता है, तर्कशक्ति गहरी होती है और पिछले अनुभवोकी स्मृति स्पष्ट होती है, वैसे वैसे विचारशक्ति शुद्ध होती है। और विचार गुणोको बढाने या वदलनेका अेक महत्त्वपूर्ण साधन है। विचारोसे गुणोका विकास होता है; और विचार भी अन्तमे तो अनुभव पर ही आधार रखता है। अिस तरह ये वल कुछ हद तक अेक-दूसरे पर आधार रखते है, कुछ हद तक अेक-दूसरेमे स्वतत्र है और कुछ हद तक अेक-दूसरेके विरोधी भी है।

अिसके आगेके प्रकरणोमें यह विषय अधिक स्पष्ट होगा।

१३

श्रद्धा

आज अनेक स्थानो पर अेक ओर श्रद्धाकी महिमा गाओी जाती है, तो दूसरी ओर अुसका जडमूलसे खडन होता भी देखा जाता है। कौनसी वस्तु श्रद्धाके योग्य है और कौनसी नही, अिस बारेमें बुद्धिमान लोगोमे भी भारी मतभेद पाया जाता है। अिस कारणसे और श्रद्धाका बुद्धिके साथ घनिष्ठ सबध होनेसे श्रद्धाकी थोडी चर्चा की जा सके तो ठीक होगा।

श्रद्धा शब्दका हम अनेक अर्थोमें प्रयोग करते है· जैसे (१) किसी महान भावना, व्यक्ति या कार्यके लिअे तीव्र आदर या प्रेमके अर्थमें, गीतामे 'श्रद्धावाल्लभते ज्ञानम्', 'श्रद्धावाननसूयश्च' आदि स्थानो पर श्रद्धा शब्द अिसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। तथा कठोपनिपद्में जहा कहा गया है कि नचिकेता बालक था, तो भी दक्षिणा ले जाओी जाती देखकर अुसके हृदयमे श्रद्धा पैठी', अथवा 'विद्यार्थी श्रद्धावान होते है', अथवा 'विद्यार्थियोको श्रद्धावान होना चाहिये' आदि वाक्योमें जो भी महान अुद्देश्यवाला कार्य, भावना या व्यक्ति हो, अुसके लिअे अत्यन्त आदरकी — प्रेमकी या कोमलताकी भावना, यही श्रद्धाका अर्थ हो सकता है।[२] (२) शक्तिसे मिलते-जुलते अर्थमें, जैसे 'अब

---

१ त ह कुमार सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश, सोऽमन्यत। (कठ० १–१–२)

२ किसी मनुष्यके विचार जो स्वीकार किये जाते है, अुसमें अुन विचारोके पीछे रहनेवाले सत्य, दलीलोके औचित्य आदिके साथ-साथ अुस मनुष्यके प्रति सुननेवालेके आदरका भी बहुत बडा भाग होता है। कोओी सामान्य मनुष्य कोओी विचार बतावे तो अुसे नही माना जाता, लेकिन वही विचार किसी शास्त्रमें मिल जाय या कोओी प्रसिद्ध पुरुष कहे, तो अुसे तुरन्त मान लिया जाता है। अिसका कारण यह है कि

मेरी अधिक चलनेकी श्रद्धा नही है।' (३) विश्वास, निष्ठा या मान्यताके अर्थमें, जैसे 'मुझे अिस मनुष्यमे बहुत श्रद्धा है', 'अुसकी ओश्वर पर अखूट श्रद्धा थी', 'यह अपनी अपनी श्रद्धाकी बात है।' (४) आत्म-विश्वासके अर्थमे, जैसे 'तिलक महाराज अपना काम पूर्ण श्रद्धासे करते और अन्त तक अुस पर डटे रहते थे।' (५) प्रकृतिके किसी प्रकारके साथ दृढ बने हुअे आत्मभावके अर्थमें — जिस शक्तिमे मनुष्यका दृढ निश्चय हो वह शक्ति; जैसे गीताके १७ वें अध्यायके आरभमे श्रीकृष्ण कहते हैं: 'प्रत्येक मनुष्यकी श्रद्धा स्वभावत अुसके सत्त्वके अनुसार होती है, जिस मनुष्यकी जैसी श्रद्धा, वैसा ही वह कहा जाता है। आसुरी संपत्तिमे जिसका निश्चय हो, वह तामसी कहा जाता है।' (६) दृश्य परिणामोंके अदृश्य कारणोंके लिअे किये गये अनुमानमे रहनेवाली निष्ठाके अर्थमे; जैसे प्लाचेट-जैसे साधनसे जो कुछ लिखा जाता है, वह मृत पुरुषोके जीव लिखते हैं, यह श्रद्धा।

✓ ये सारे अर्थ अैसे मालूम होते हैं, जो श्रद्धाके अन्तिम अर्थ निष्ठा (अथवा निश्चय) में से निकाले जा सकते हैं। अिसलिअे अिसी अर्थमें श्रद्धाके विषयकी चर्चा करनेका मेरा अिरादा है।

अुस सामान्य मनुष्यकी बुद्धि, चरित्र आदिके लिअे लोगोंमें जो आदर होता है, अुससे अधिक किसी शास्त्रकार या महात्माकी बुद्धि, चरित्र आदिके लिअे अुनका आदर होता है। महात्मा पुरुष जो कुछ कहता है वह सब सामान्य मनुष्योको सच मालूम होता है। लेकिन अुसके समकक्ष कहे जा सकनेवाले लोगोको अुसके विचार अुतने ही मान्य नहीं होते। क्योकि साधारण मनुष्योको अुसकी बुद्धिके लिअे जो आदर होता है, वह आदर अुसके समकक्ष लोगोको नहीं होता। साधारण लोग महापुरुषके चरित्रके लिअे आदरभाव रखनेके कारण अुसकी बुद्धिके लिअे भी आदर रखते है। लेकिन समकक्ष लोग अुसकी बुद्धि और चरित्रके बीच भेद करके अुसके चरित्रके लिअे आदर रखते हुअे भी बुद्धिके लिअे आदर नहीं रख सकते। 'घरका आदमी बैल बराबर' या 'महात्माको अुसके पासके लोग नही पूजते' — ओसाके अिन वचनोंके पीछे यह अनादर अेक महत्त्वका कारण है।

मुझे लगता है कि पहली बात तो हमें यह समझ लेनी चाहिये कि श्रद्धा चित्तकी अेक अैसी प्रकृति है, जो छोडी नही जा सकती। यानी श्रद्धाका अभाव कभी हो ही नही सकता। श्रद्धाकी शुद्धता और अशुद्धतामें भेद हो सकता है, अुसमे तीव्रता और मदताका भेद हो सकता है, वुद्धियुक्त या बुद्धि-रहित श्रद्धा हो सकती है, अनुभव-युक्त या अनुभव-रहित श्रद्धा हो सकती है, श्रद्धाके विषयोमे भी भेद हो सकता है, परतु अश्रद्धा जैसी कोअी वस्तु है ही नही। अैसा कोअी मनुष्य देखनेमें आ सकता है, जिसकी अेकाध विषयमे ही जीती-जागती श्रद्धा हो। लेकिन अैसे प्राणीका होना असभव है, जिसकी किसी विषयमें किसी तरहकी श्रद्धा ही न हो। अिसलिअे 'अश्रद्धा' शब्दका अर्थ केवल अितना ही है कि अमुक विषयमें अश्रद्धा या मामूली श्रद्धा।

श्रद्धा प्राणीके मुख्य गुणको स्थिर बनानेवाली वृत्ति है। जिस मनुष्यकी जैसी श्रद्धा होगी, वैसा अुसका चरित्र बनेगा। हम किसी मनुष्यको लोभी या कजूस कहे, तो अुसका अर्थ यह होता है कि अुसकी धनकी शक्तिमे तीव्र श्रद्धा है, भक्तकी अपने अिष्ट देवमें तीव्र श्रद्धा होती है, अभिमानी मनुष्यकी अपनी किसी स्थितिमे तीव्र श्रद्धा होती है, समदृष्टिवाले पुरुपकी जगतकी अेकतत्त्वतामे श्रद्धा होती है, शूर-वीरकी अपनी वीर्यशक्तिमें तीव्र श्रद्धा होती है, कायर मनुष्यकी जीवनमें तीव्र श्रद्धा होती है। अिस तरह हरअेक मनुष्य (और प्राणी) के मुख्य गुणसे अुसकी श्रद्धाका पता चल जाता है।

यदि श्रद्धामे फर्क पड जाय तो मनुष्यके चरित्रमे भी फर्क पड जाता है। किसी मनुष्यकी पैसे परकी अपार श्रद्धा वदल कर परमेश्वरमें वैठ जाय, तो तुरन्त अुसका चरित्र वदल जाता है। भोग-विलासमे श्रद्धा रखनेवाले मनुष्यकी श्रद्धा मोक्ष पर वैठते ही अुसकी विपय-परायणताका लोप हो जाता है।

अिस तरह किसी मनुष्य या वालकका स्वभाव वदलनेका अर्थ है अुसकी श्रद्धाका विपय वदलना। हृदय-परिवर्तनका भी यही अर्थ है। अेकसी तर्कशक्तिवाले मनुष्योंके मतभेदकी जाच करे, तो मालूम पडेगा कि अुसके पीछे श्रद्धाभेद होता है। मेरी तर्कशक्ति चाहे जितनी सूक्ष्म

हो, लेकिन यदि अमीरीमें ही मेरी अतिशय श्रद्धा हो, तो मैं टॉल्स्टॉयके अुत्पादक श्रम (bread labour) से ही जीनेके शास्त्रको स्वीकार नही कर सकता। यदि मेरी विषय-सुखमे अतिशय श्रद्धा हो, तो त्याग या संयमका महत्त्व मेरे गले नही अुतरेगा। यदि अधिकार या सत्तामें मेरी श्रद्धा हो, तो मैं न्यायवृत्तिका पालन नही कर सकता और प्रतिष्ठा (prestige) का विचार नही छोड सकता। यदि मुझे कुल या वर्णमें श्रद्धा हो, तो मैं अभेद दृष्टिके सिद्धान्त पर अमल नही कर सकता। तर्कशक्ति और बुद्धि चाहे जितनी सूक्ष्म हो जाय, तो भी वह हमेशा श्रद्धाका ही अनुसरण करती है। जिस विषयमें मनुष्यकी दृढ श्रद्धा होती है, अुस विषयका विभिन्न प्रकारसे समर्थन करनेमें तर्कशक्ति वकीलका काम करती है। जिस क्षण मेरी श्रद्धा विषय-सुख परसे अुठ जायगी, अुसी क्षणसे मेरी तर्कशक्ति त्याग और संयमको बल पहुंचानेमें अपनी सारी शक्ति खर्च करने लगेगी।

अिस परसे हमें अेक नियम मिल जाता है. जहा यह देखनेमे आवे कि मतभेद नही टाला जा सकता, वहा मूलमें श्रद्धाभेद है अैसा निश्चित समझना चाहिये। अिसलिअे संभव हो तो किसी भी अुपायसे सामनेवाले आदमीके श्रद्धाके विषयको ही बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यह न मान लेना चाहिये कि अिस नियमको समझ लेनेसे सफलतापूर्वक अिस पर अमल भी किया ही जा सकता है। क्योंकि यह नियम भी चित्त-विकासके अनेक नियमोके आधार पर काम करता है, परन्तु यदि दूसरी परिस्थितियां अनुकूल हो, तो यह नियम अपना काम अवश्य करता है।

अिस प्रकार मतभेद दूर करनेका शुद्ध अुपाय यही है कि अयोग्य विषय पर बैठी हुअी श्रद्धाको या किसी विषय पर बैठी हुअी अयोग्य श्रद्धाको शुद्ध बनाया जाय। जब तक यह नही होता तब तक अपनी श्रद्धाके विषयका प्रतिपादन व्यर्थ जाता है।

अिस तरह श्रद्धा और अश्रद्धाकी जाच करनेसे हम अंधश्रद्धाके बारेमें कुछ विचार कर सकते हैं।

अघश्रद्धा अेक प्रकारकी सदोष श्रद्धा है। यहा श्रद्धाका अर्थ विश्वास या मान्यता ही हो सकता है। किसी पदार्थमें अुसके स्वाभाविक धर्मोके वदले या अुन धर्मोके अुपरात दूसरे धर्मोका आरोपण करना अथवा किसी परिणाममें अुसके कुदरती कारणोके वदले दूसरे कारणोका आरोपण करना सदोष श्रद्धा है। कअी बार अधूरे अवलोकनके फलस्वरूप अैसी सदोष श्रद्धा पैदा होती है। अुदाहरणके लिअे, रस्सीमें सापके धर्मोका आरोपण करके अुसे डरका कारण मानना सदोप श्रद्धा है। अिसी तरह, प्रतिबिम्बको बिम्ब मान लेनेकी गलतीसे मृगजलमे जलका होना मान लिया जाता है। ये तो कभी-कभी होनेवाली घटनाओके अुदाहरण है। किन्तु व्यवहारमे और खास करके सूक्ष्म विपयोमे हम वार वार यह गलती करते है। हमारे भीतरकी अनेक शक्तियो या कमियोके कारण हमें जीवनमे जो यश-अपयश मिलता है, अुसका कारण हम बहुत बार किसी बाह्य सत्त्वमे निहित शक्तिको मान लेते है, और अुस बाह्य सत्त्वमे हम अपनी श्रद्धा बैठाते है। फिर, वहुत वार जिन कार्योसे हमारी अुन्नति होती है, अुन कार्योमे हम सारे जगतका कल्याण देखते है, अिसलिअे अैसे कार्योमे जगहितकी दृष्टिसे हमारी श्रद्धा दृढ होती है। अिसका अेक सुन्दर अुदाहरण हमें महात्मा टॉल्स्टॉयकी 'तव करेंगे क्या?' पुस्तकमे मिलता है। मनुष्यमें रही हुअी दया और परोपकार-वृत्तिके पूर्ण विकासमे अुसकी अुन्नति समाअी हुअी है। जव तक यह गुण पूर्णताको न पहुचे, तव तक मोक्ष चाहनेवालेको अिन वृत्तियोका विकास करनेकी स्वाभाविक प्रेरणा होती है। अिसलिअे दया और परोपकारके कामोमे अुसकी श्रद्धा वैठे बिना नही रह सकती। अुसके लिअे अिन वृत्तियोका पोषण आवश्यक होनेमे जिस पर वह दया या अुपकार करता है, अुसका अिन कामोसे भला ही होगा, अैसी अुसकी दृढ श्रद्धा जमती है। टॉल्स्टॉयके विपयमें भी अैसा ही हुआ था। परन्तु जव पूर्णताको पहुचनेके वाद ये गुण सहज स्वभावका रूप ले लेते है तव मालूम पडता है कि अुपकार स्वीकार करनेवाले आदमीका भला अुन गुणोसे हुआ या नही, यह विश्वासके साथ नही कहा जा सकता। हम मानते है कि सत्कर्मसे दूसरोका हित होता

है; दूसरोका हित हो या न हो, परन्तु सत्कर्म करनेवालेकी तो अुन्नति होती ही है और दूसरोको अुतने समय तक सन्तोष मिलता है। लेकिन जैसे किसीके दियासलाअी मागने पर दियासलाअी देनेमें हमें कोअी परोपकार करनेका भान नही होता, अुसी प्रकार वडेसे वडा दान करनेमें भी हमें कोअी विशेषता न लगे, अैसा जब तक सद्‌गुणोका विकास न हो तब तक हममे यह श्रद्धा बनी रहती है कि सत्कर्मसे दूसरोका हित होता है। ये सब अधूरे अवलोकनके परिणाम हैं।

दूसरा अुदाहरण लीजिये। मूर्तिको अपने अिष्टदेवकी स्मृतिको जाग्रत करनेवाला और अिस तरह ध्यानाभ्यासमे सहायता करनेवाला साधन समझना श्रद्धा है। मूर्तिके कारण पवित्रता और पूज्यताका जो भाव अुत्पन्न होता है, अुसका कारण अुसके साथ जुड़ी हुअी अिष्ट-देवकी स्मृति है। अिस प्रकार अुस मूर्तिके प्रति आदर और भक्तिका भाव अुत्पन्न हो यह अुचित है। लेकिन मूर्तिके बारेमें मनुष्यके भावोकी कल्पना करके अुसकी अुपचार-विधि करना, सर्दीसे बचानेके लिअे अुसे रजाअी ओढाना, गर्मीसे बचानेके लिअे चन्दनकी अर्चा लगाना, भूख-प्यासके वश होनेवाली मानकर अुसे भोग लगाना —अिन सबमे भक्तिनिष्ठा है, अिससे अिनकार नही किया जा सकता। लेकिन यह भक्ति सदोप श्रद्धासे प्रेरित है। जो धर्म मूर्तिमें नही है, प्रकृतिके नियमसे मूर्तिमे हो नही सकते, अुनका मूर्तिमें आरोपण करके यह पूजा होती है; और अुसके द्वारा जो चमत्कार अनुभव किये जाते मालूम होते हैं, अुनमें किसी प्रकारका अधूरा अवलोकन होता है।

अिसी तरह गाधीजीने खादीके बारेमे कुछ लोगोकी सदोष श्रद्धाका निषेध करते हुअे बताया था कि खादीमे देशका धन बचानेकी शक्ति है यह श्रद्धा ठीक है, लेकिन अैसा मानना सदोप श्रद्धा है कि अुसमे चरित्रको शुद्ध करनेकी कोअी विशेष शक्ति है। खादीका स्वदेशी धर्मके साथ सम्बन्ध होनेके कारण और सब धर्मोका अन्तमें चरित्र-शुद्धिके साथ सम्बन्ध होनेके कारण जब तक खादीमें नवीनता

मालूम हो और स्वदेश-प्रेमके कारण असकी महिमा समझमें आती हो, तब तक सभव है असका चरित्र पर भी अच्छा प्रभाव पडे। लेकिन यह परिणाम अुत्पन्न करना खादीकी अगभूत प्रकृति नही है। अूपर बताअी हुअी मूर्तिकी पूजानिष्ठामें और खादीमें रही चरित्र-शुद्धिकी निष्ठामें प्रतिविम्बको बिम्ब माननेका अधूरा अवलोकन है। मनुष्यके भीतरकी आध्यात्मिक अुन्नति करनेकी वलवान अिच्छा कोअी निमित्त या आलम्वन खोजती है, और मूर्ति या खादी यह निमित्त अथवा आलम्बन बन जाती है। अिसकी वदौलत चित्तका विकास बडी तेजीसे होने लगता है। अिस परसे मनुष्य अिस आलम्बन या सहारेको ही चित्तका विकास करनेवाला मानता है।

अधूरे अवलोकनसे जिस प्रकार सदोष श्रद्धा अुत्पन्न होती है, अुसी प्रकार कभी कभी योग्य पदार्थमें भी अश्रद्धा रहती है, और जिसे अैसी अश्रद्धा न हो, अुस पर अधश्रद्धाका दोप लगाया जाता है। अुदाहरणके लिअे, श्रद्धाके बलको ही लीजिये। कोअी मनुष्य आग पर चल सकता है, अैसा माननेसे वहुतेरे लोग अिनकार करेंगे। किसीको अैसा करते देखें भी तो यह मानेंगे कि वह पावमें कोअी दवा लगाता होगा या दूसरी चालाकी करता होगा, और जो लोग अिस बात पर श्रद्धा रखते है अुन्हे अधश्रद्धालु कहेगे। अवलोकनके अभावमें हठयोगकी, तत्रविद्याकी और मत्रविद्याकी अनेक शक्तियोंके बारेमें अिस प्रकार अश्रद्धा रखी जाती है, और अुनमें श्रद्धा रखने-वाले अधश्रद्धालु माने जाते है।

अैसी अश्रद्धाको हमेशा दोषरूप नही माना जा सकता। कोअी भी मनुष्य जव तक स्वय अनुभव न कर ले, तव तक किसी वस्तुमें श्रद्धा न रखनेका अुसे अधिकार है। अुसके द्वारा दूसरो पर लगाया जानेवाला अधश्रद्धाका आरोप यदि गलत हो, तो अवलोकन कराकर अुसकी गलती दूर की जा सकती है। फिर, वहुत वार अैसा होता है कि जिस पर मनुष्य अधश्रद्धाका दोप लगाता है, वह सचमुच ही अधश्रद्धालु होता है। अिसलिअे यह भी हो सकता है कि श्रद्धा रखनेवालेकी श्रद्धाके पीछे कोअी भी अवलोकन या अनुभव न हो।

भूतयोनि जैसी चीज वास्तवमे हो, और अुसका अनुभव कर चुके लोग अुसमें श्रद्धा रखे, तो हो सकता है वह अधश्रद्धा न हो। परन्तु मुझे यदि अैसा कोअी अनुभव न हुआ हो, किसी अनुभवी और विश्वास-पात्र मनुष्यसे अैसे अनुभवके बारेमें मैंने विस्तृत जानकारी भी हासिल न की हो, परन्तु केवल लोकज्ञानके रूपमे ही मैं अुस पर श्रद्धा रखू, तो अिस श्रद्धाका विषय सच्चा होने पर भी अुसके बारेमें मेरी दृष्टि अधश्रद्धावाली ही मानी जायगी।

कअी बार अधश्रद्धाका अेक लक्षण यह होता है कि अधश्रद्धालु मनुष्य दुनियामे दो शक्तियोका अस्तित्व मानता है . (१) प्राकृतिक शक्तियोका, और (२) प्रकृतिके नियमोसे परे, प्रकृतिके नियमोको तोड कर घटनाओको जन्म देनेवाली दैवी शक्तियोका। प्रकृतिके नियमो और शक्तिका अधूरा ज्ञान होनेके कारण जो घटनायें समझमें न आ सकनेवाले ढगसे घटती है, अुनके बारेमे हमे चमत्कारकी निष्ठा होती है। अिसलिअे अुन घटनाओके प्राकृतिक कारण खोजनेकी झझटमे न पडकर हम यह मान कर सन्तोष कर लेते है कि कोअी दैवी शक्तिया अुन्हे जन्म देती है। अनुभवका कोअी भी विषय प्रकृतिके नियमोसे परे नही हो सकता, अिस श्रद्धा या निष्ठाका अभाव कुछ सदोष श्रद्धाओका कारण होता है।

श्रद्धा और गुणका बहुत निकटका सम्बन्ध है। जिस क्षत्रियमें शौर्यका गुण बलवान है अुसके लिअे जीवनको अत्यन्त प्रिय समझना या जिस वैश्यमें अीमानदारीका गुण बलवान है अुसके लिअे धनको अत्यन्त प्रिय समझना अशक्य है। जिसमें प्रेमवृत्तिका गुण बलवान है, अुसकी अहिंसामें श्रद्धा होना स्वाभाविक है। जिसके स्वभावमे ही सत्य भरा है, अुसे सत्यकी अपेक्षा दुनियाकी चीजोमें या कल्पनाओमें कभी अधिक श्रद्धा हो ही नही सकती।

परन्तु भावनावश होनेका और सदोप श्रद्धाका भी निकट सम्बन्ध है। भावनाकी अुत्कटता श्रद्धाका पोषण करती है। परन्तु जहा भावनाके साथ विवेक या सावधानी जुडी हुअी न हो, जहा विकारकी तरह

भावना चित्त पर अधिकार कर लेती है, वहा वह अधश्रद्धाका पोषण करती है। भयभीत मनुष्य परछाअीसे डरता है, झाडके ठूठको भूत या चोर मानता है। भयके साथ यदि थोडी सावधानी हो, तो वह परछाअी या झाडसे नही डरेगा, हा, साप या बाघसे जरूर डरेगा। निर्भय मनुष्य सर्प या सिहको साथ लेकर सोनेकी हिम्मत कर सकता है। लोभकी भावनाकी अुत्कटताके साथ यदि मै विवेकी भी होअू, तो पैसा पानेके लिअे खूब मेहनत करूगा, मेरा लोभ कितना ही बलवान क्यो न हो, अपने मनका कावू मै खो नही दूगा। परन्तु मुझमें यदि विवेकका अभाव हो और केवल लोभ ही भरा हो, तो मै शेखचिल्ली बन जाअूगा। मनमे अुत्पन्न होनेवाली तरगो या सपनोको मै सत्य मान बैठूगा। दूसरे शब्दोमे यह कहा जा सकता है कि जिस तरह अधे मनुष्यका अर्थ है बिना आखका मनुष्य, अुसी तरह अधश्रद्धाका अर्थ है विवेकचक्षु-रहित श्रद्धा।

जिस प्रकार कभी कभी अुचित श्रद्धा पर अधश्रद्धाका दोष लगाया जाता है, अुसी प्रकार कभी पूर्व-श्रद्धा पर भी यह दोष लगाया जा सकता है, अिसलिअे अिन दोनोका भेद भी समझ लेना चाहिये। श्रद्धा-मात्रका अन्तिम प्रमाण और आधार तो अनुभव ही है। जिस प्रकार श्रद्धा अेक ओर तर्कका अनुसरण करती है, अथवा श्रद्धा और तर्क दोनो साथ-साथ चलते है, अुसी प्रकार दूसरी ओर वह अनुभव या बुद्धिके पहले आती है। अुदाहरणके लिअे, बालक खूब मेहनतसे विद्या सीखता है। विद्याके लाभका अुसे अनुभव नही होता। अुसने केवल कुछ तर्कसे अुसके लाभकी कल्पना की है। यह तर्क सच्चा है, अिस श्रद्धासे वह विद्या प्राप्त करनेका प्रयास करता है। विद्या प्राप्त करके यदि अुसके लाभका अनुभव करता है, तो विद्याके प्रति अुसकी श्रद्धा दृढ होती है, वर्ना खतम हो जाती है। अिसी प्रकार विज्ञानशास्त्री अपनी प्रत्येक खोजके लिअे परिश्रम करनेसे पहले तर्क द्वारा सत्यकी कुछ कल्पना करता है और फिर अुस कल्पना पर श्रद्धा रखकर अुसका अनुभव करनेका प्रयत्न करता है। अुस अनुभवमे यदि वह सफल होता है, तो अुसकी यह श्रद्धा सिद्धान्तका रूप लेती है। अैसी पूर्व-श्रद्धा (अनुभवके पहले

रहनेवाली, 'कच्ची' या कामचलाअू श्रद्धा) आवश्यक होती है। अुसके बिना जीवनमें कोअी भी कार्य सिद्ध नही किया जा सकता।

अूपर अधश्रद्धाको सदोष श्रद्धा कहा है। परतु मेरे कहनेका यह अर्थ नही कि प्रत्येक सदोष श्रद्धा मनुष्यको नीचे ही गिराती है। पूर्व-श्रद्धा और सदोष श्रद्धाके बीच यह भेद किया जा सकता है कि जब विशेष अवलोकन और अनुभव हमारी पूर्व-श्रद्धाको दृढ बनावे और सिद्धान्तका रूप दें तो कहा जा सकता है कि वह सच्ची श्रद्धा थी, जब विशेष अवलोकनसे पूर्व-श्रद्धाके प्रकारमें महत्त्वका परिवर्तन हो जाय और अुसका स्वरूप बदल जाय, जब पूर्व-श्रद्धा गलत मालूम हो और अुसका स्थान नअी श्रद्धा ले ले, तो माना जायगा कि वह सदोष श्रद्धा थी। पूर्व-श्रद्धा सदोष है या सच्ची, यह अुन्नतिके लिअे महत्त्वकी चीज नही है। महत्त्वकी बात तो यह है कि अुसके साथ अवलोकन करने और अनुभव प्राप्त करनेकी वृत्ति — विवेक — है या नही। वह न हो तो बादमें सत्य सिद्ध होनेवाली श्रद्धा भी अुसके लिअे अधश्रद्धा है और असत्य सिद्ध होनेवाली श्रद्धा भी अधश्रद्धा है।

यह विचारसरणी यदि निर्दोष हो, तो अिसमें से नीचेके नियम सामने आते है

१. गुण और श्रद्धाका निकट संबध है।

२ गुणकी अुत्कटता श्रद्धाका पोषण करती है, परतु भावना-वशता — अर्थात् विवेकहीन भावना — अंधश्रद्धाको जन्म देती है।

३ श्रद्धा प्राणीके चित्तका स्वभाव ही है, अिसलिअे श्रद्धाका अभाव कभी सभव ही नही होता। अत अश्रद्धाका अर्थ है श्रद्धाकी कमी या दूसरे किसी विषयमें श्रद्धा।

४ मतभेदकी जड है श्रद्धाभेद और श्रद्धाभेदकी जड है गुणभेद। केवल दलीलोंसे गुणभेद नही टाला जा सकता और अिसलिअे मतभेद भी नही टाला जा सकता। श्रद्धाका पोषण करनेवाला गुण निर्माण हो सके अैसा अनुभव करा दिया जाय तो ही मतभेदको दूर करनेकी दिशामें कदम अुठाया जा सकता है।

५ श्रद्धा मनुष्यके व्यक्तित्वको स्पष्ट करनेवाली चीज है।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स अेव स ।।* (गीता १७–३)

६ सदोष श्रद्धाका अर्थ है अधूरे अवलोकनवाली श्रद्धा, और अंधश्रद्धाका अर्थ है अवलोकनका अभाव होते हुअे तथा अनुभव प्राप्त करनेकी वृत्तिके बिना रखी गअी श्रद्धा। किसी पदार्थमें प्रकृतिगत धर्मोंसे भिन्न या अुनके अतिरिक्त दूसरे धर्मोंका आरोपण, अथवा दैवी शक्तिका आरोपण, या अेक शक्तिका दूसरी शक्तिके रूपमे अवलोकन और ग्रहण आदि सदोष श्रद्धाके कुछ लक्षण है।

७ श्रद्धाके दो विभाग हैं कच्ची या अनुभवसे पहलेकी श्रद्धा और पक्की या अनुभवसे दृढ बनी हुअी श्रद्धा।

८ पूर्व-श्रद्धाका फल सिद्धान्त है, अिसलिअे श्रद्धाका विषय अनुभवसे सिद्ध हो, तभी श्रद्धा कसौटी पर खरी अुतरी कही जा सकती है।

९ तर्कशक्ति श्रद्धाकी वकील है और अुसका समर्थन करनेका प्रयत्न करती है। परतु वह बुद्धिके आगे चलती है और अुसकी ओर अनुभवको ले जाती है।

१० श्रद्धाकी शुद्धिका अर्थ है किसी भी विषयमे रहनेवाली अंधश्रद्धाको तथा अयोग्य विषयमें रहनेवाली श्रद्धाको दूर कर दिया जाय, सदोष श्रद्धाको सुधारा जाय और योग्य विषयमे श्रद्धाको बैठाया जाय। श्रद्धाकी शुद्धि अुन्नतिकारक है; अश्रद्धा या अंधश्रद्धा अुन्नतिकारक नहीं है।

---

* हे भारत, प्रत्येक मनुष्यकी श्रद्धा अपने अपने सत्त्व — भावना और बुद्धि — के अनुसार होती है। मनुष्यमात्र मूर्तिमान श्रद्धा ही है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह बनता है।

१४

विकासके प्रकार

शिक्षाशास्त्री बार बार कहते है कि शिक्षाकी योजना अिस प्रकार की जानी चाहिये कि जिससे बालककी शक्तिया खिले, अुनका विकास हो। अिसके लिअे यह भी सुझाया जाता है कि बालकको हमारे विचारोसे पढानेका प्रयत्न न किया जाय, बल्कि अिस बातका पता लगाया जाय कि अुसमे क्या पढनेकी शक्ति है, और फिर वही अुसे पढाया जाय।

अिस कथनमे अेकतरफा सत्य है। अिसलिअे जीवनके विकासका अर्थ क्या है, अिसका थोडा विचार करना आवश्यक मालूम होता है।

आमके जिस पेड परसे पाव भर वजनका अेक अेक फल अुतरता हो, अुस परसे दुगुने वजनका फल अुतरे अिस तरह अुसे सुधारना आमका अेक प्रकारका विकास है।

अुसका गूदा बढाकर गुठली छोटी करना दूसरे प्रकारका विकास है।

अुसके अेक सेर रसमे पाच प्रतिशत मीठा तत्त्व हो, तो अुसके बजाय सात प्रतिशत मीठा तत्त्व करना अुसका तीसरे प्रकारका विकास है।

अिसी तरह हम प्राणियोके विकासका विचार करे। कीडेकी अत्यन्त बडी आवृत्ति सर्प कही जा सकती है, बिल्लीकी बडी आवृत्ति बाघ है। अिस तरह कीडे और बिल्लीके बनिस्बत साप और बाघका विकास अधिक हुआ है। दोनोके अवयव, स्वभाव और बल अेक ही प्रकारके हैं। लेकिन दोनोका खूब विकास हुआ है। कीडे और बिल्लीके प्रत्येक अगकी वृद्धि होनेसे वे साप और बाघ बने अैसा कहा जा सकता है। यह अेक प्रकारका विकास है।

साप बहुत बडा और बलवान प्राणी है; कीडी बहुत छोटा और कमजोर प्राणी है। परतु कीडीके जो अग प्रकट रूपसे फूटे है, वे सापके नही फूटे। कीडी पावसे चलनेवाला प्राणी है, साप पेटके बल चलने-वाला प्राणी है। साप बडा हुआ, परतु कीडा ही बना रहा, कीडी

छोटी रही, परतु कीडेकी दशाको छोडकर दूसरी जातिके प्राणीकी पक्तिमें मिल गअी। अुसने वजन ढोनेकी शक्ति प्राप्त की है, साथ मिलकर काम करनेकी शक्ति प्राप्त की है और समाज बनानेकी शक्ति प्राप्त की है। अुसमें घर बनाकर रहनेकी और अन्नका सग्रह करनेकी वृत्ति है। सापमे अैसा कुछ नही है। अिस तरह बल और शरीरकी दृष्टिसे सापके सामने कीडीकी कोअी बिसात नही है, फिर भी अनेक गुणोकी दृष्टिसे कीडी सापसे अधिक विकास पाया हुआ प्राणी है। अिस तरह कीडीका विकास भिन्न प्रकारका है।

अब तीसरे प्रकारका विकास लें। हाथीने अपने प्रत्येक अगको बढाया है, परतु अुसने दो दातो और नाकको लबा बनानेमें तो कोअी हद ही नही रखी है। खडे खडे ही जमीन तक पहुचनेवाले दात और नाक दूसरे किसी प्राणीने नही बढाये। अिसके विपरीत, साधारण बडे प्राणियोमें मनुष्यकी नाक और दात अत्यन्त छोटे है। यदि शरीरकी स्थूलतासे तथा दात और नाकके बल और लम्बाअीसे विकासका नाप निकाला जाय, तो हाथी बहुत विकसित प्राणी माना जायगा।

हाथीके सामने बदर राक्षसके सामने बौने जैसा लगता है, परतु हाथी चाहे जितना बडा हो, तो भी वह सीधा नही बैठ सकता। अगले दो घुटनोका आधार अुसे लेना ही पडता है। अुसके पाव थभे जैसे होते है, परतु किसी चीजको पकडनेके लिअे अुसकी अगुलिया बेकार होती है। बन्दर सीधा बैठ सकता है, दो पावोसे चल सकता है और अगुलियोका अुपयोग कर सकता है। अिस तरह बन्दरका विकास हाथीसे भिन्न प्रकारका है।

गाय-भैसकी दूध धारण करनेकी शक्ति कितनी बढी हुअी है? और गाय अपने बच्चे पर जो हेत और ममता रखती है, अुसने कहावतका रूप ले लिया है। फिर भी गाय दूसरी किसी गायके बछडे पर ममता नही रख सकती, अुसे मारने ही दौडती है। अगर भूलसे दूसरी गायका बछडा अुसका दूध पीने चला जाय तो वह अुसे लात मारती है।

कुत्ते अपने छोटे बच्चोके साथ खेलते है, अुन्हे प्यार करते है। बडे कुत्ते आपसमें लडते है, लेकिन छोटे बच्चोको प्राय. नही छेडते।

अेक बडा कुत्ता दूसरे वडे कुत्तेको कोअी चीज खाने नही देता, अुससे छीन भी लेता है। लेकिन खुद भूखा हो तो भी वह छोटे वच्चोंके भागको नही छूता।

वन्दर अिससे भी आगे वढे हुअे है। हम जिस तरह दूसरोके वच्चोको खेलानेके लिअे लेते है, गोदमें अुठाते है, अुसी तरह वन्दर दूसरे वानर-वच्चोको खेलाते है, अुठाते है, छातीसे लगाते है और कोअी वच्चा अपनी मासे अलग पड गया हो तो अुसे मांके पास पहुचाते है। यह पाचवे प्रकारका विकास है।

कहा जाता है कि शुतुरमुर्गने मेल ट्रेन जितनी दौड़नेकी शक्ति वढाअी है। अुसके पख केवल शोभा वढानेवाले होते हैं, और अिसीलिअे अुसके नाशके कारण वनते है। चिडियाके पाव और पंख दोनो कमजोर होते है, फिर भी चिडियाके पख शुतुरमुर्गके पखोकी तरह निकम्मे नही हो गये है। शुतुरमुर्गने अपनी अेक अिन्द्रियकी अुपेक्षा की है और दूसरी अिन्द्रियको वलवान वनाया है। यह छठे प्रकारका विकास है।

अव हम मनुष्यका विचार करें।

सुतार और लुहारकी भुजायें वलवान होती है और हरकारेके पाव वलवान होते है। समुद्रमें से मोती निकालनेवालेमे सास रोकनेकी जवरदस्त ताकत होती है। मोती पिरोनेवालेकी आखे तेज होती है। सुनारकी छोटेसे छोटे वजनको पहचाननेकी शक्ति वढी हुअी होती है; और कुशल शस्त्र-चिकित्सकमे वारीक कारीगरी करनेवाले सुतार, लुहार, सुनार, दरजी सवकी शक्ति होती है। वारीक कारीगरी करनेवालोंमें शस्त्र-चिकित्सक शायद सवसे विकसित कारीगर कहा जा सकता है। स्थूल स्नायुवलमे पहलवानोका विकास हुआ होता है। गवैये, हलवाअी, गवी, चित्रकार, तीरदाज आदि लोग भिन्न भिन्न ज्ञानेंद्रियोकी शक्ति काफी वढा लेते है।

वेकनमें किसी भी विद्याको समझ लेनेकी महान शक्ति थी। टॉल्स्टॉयमे काल्पनिक कहानिया रचनेकी अद्‌भुत शक्ति थी। रवीन्द्र-

नाथ, शेक्सपियर आदिकी कल्पनाशक्ति असाधारण कही जायगी। राजचन्द्र*की स्मरणशक्ति अनोखी थी।

बेकन अत्यन्त बुद्धिमान था, लेकिन यह माना गया है कि अुसमें प्रामाणिकताकी वृत्तिका विकास नही हुआ था। औरंगजेब धर्मनिष्ठ माना जाता था, परतु पितृभक्ति और बन्धुप्रेमका अुसमें अभाव था। अुसकी तेज बुद्धि कपटके रास्ते ही चलती थी। युरोपके अनेक कवि अत्यन्त अुच्च कोटिके माने जाते है, परतु अुनमे पत्नीव्रतके विचारका सपूर्ण अभाव पाया जाता है। भारतके अनेक पुरुष वेदान्तके विषयमें निपुण माने गये है, परतु अुनमें नैतिक चरित्रके विकासका अभाव था।

रामकृष्ण परमहस और तुकाराममें अीश्वरके अनुरागकी वृत्तिका अपार विकास हुआ था, परतु वे बेकन जैसे समर्थ विद्वान नही माने जा सकते। महावीरकी भूतदया पराकाष्ठाको पहुची हुअी थी। बुद्धके मानव-प्रेमका कोअी पार नही था।

मनुष्यको छोडकर दूसरी किसी अेक ही जातिके प्राणियोके विकासका नियम लगभग अेकसा होता है। किसी बिल्लीके अमुक अवयव जितने विकसित होगे, अुतने ही दूसरी सारी बिल्लियोके भी विकसित हुअे मालूम होगे। किसी बिल्लीके अगले पजे मजबूत और किसीके पिछले मजबूत, अैसा नही होगा। यह भी नही होगा कि किसी बिल्लीकी पूछ लबी तो किसीकी मूछ लबी है।

मनुष्य-जातिमें विविधताका कोअी पार नही है। सारे मनुष्योके सारे अवययोमें अेकसा बल नही होता। किसीका दाहिना हाथ बहुत मजबूत होता है, तो किसीका बाया। किसीके पाव मजबूत होते है, किसीकी अगुलिया, तो किसीकी भुजायें। कोअी मोटरको रोक सके अितना बलवान होता है। किसीकी बुद्धि तेज, किसीकी भावनाये तेज तो किसीकी कल्पनाशक्ति तेज होती है। कोअी शब्दोसे चित्र अकित करनेवाला होता है, तो कोअी तूलिकासे। कोअी अूची कोटिका सत्यनिष्ठ

---

* बम्बअीके अेक शतावधानी, जिन्होने अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक वृत्तिके कारण गाधीजीके प्रारभिक जीवन पर बहुत असर डाला था। 'आत्मकथा' मे गाधीजीने अिनका परिचय दिया है।

होता है, तो कोओी जबरदस्त ठग। किसीमे बेहद लोभवृत्ति है, तो किसीमें बेहद अुदारता। कोओी क्रोधकी मूर्ति है, तो कोओी दयाकी मूर्ति। रूप, रग, आकृति, वजन, बल, स्फूर्ति (smartness), अवयव, हड्डिया, स्नायु, ज्ञानतंतु, कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति, ग्रहणशक्ति, स्मृति, विकार, शुभ वृत्ति, अशुभ वृत्ति आदिमे जो प्रकृति जन्मसे प्राप्त हुअी हो, अुसमें वृद्धि करना ही यदि विकास शब्दका अर्थ समझा जाय, तो विशेष चरबीवालेका और चरबी बढाना, बडी हड्डियोवालेका अुन्हे और बडा करना, अेक मोटर रोक सकनेवालेका दो मोटरे रोकना, अेक कविता रचनेवालेका अनेक कविताये रचनेकी शक्ति प्राप्त करना, अेक भाषा सीखनेवालेका अनेक भाषाये सीखना, थोड़े क्रोधीका अधिक क्रोधी बनना, थोडे लोभीका बहुत ज्यादा लोभी बनना, चोरनेकी वृत्तिवालेका अुसीमे प्रवीणता प्राप्त करना, झूठ बोलनेकी वृत्तिवालेका बिना प्रयास झूठ बोल सकनेकी शक्ति बढाना — यह सब विकास ही माना जायगा।

लेकिन स्पष्ट है कि यदि विकासका केवल अितना ही अर्थ किया जाय, तो अुसके अुलटे परिणाम आयेंगे।

अूपरके विवेचनसे मालूम होगा कि विकास छ प्रकारका है। विकास स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारका हो सकता है। स्थूल विकासका अर्थ है किसी भी मूल शक्तिका स्वरूप कायम रहते हुअे अुस शक्तिमें वृद्धि होना; सूक्ष्म विकासका अर्थ है अुस शक्तिका किसी दूसरी जातिकी शक्तिमें रूपान्तर होना।

(१) अिस प्रकारके स्थूल विकासोमें पहला कद-विकास माना जा सकता है। जैसे, बिल्ली और कीडेकी तुलनामें बाघ और सापका विकास। जो अवयव, स्वभाव आदि बिल्ली और कीडेमे है, वे ही बाघ और सापमें हैं। लेकिन प्रत्येकका कद बडा बना हुआ है।

(२) दूसरा विकास अवयवोका होता है। अूटकी गर्दन खूब बढी हुअी होती है। दूसरे प्राणियोकी तुलनामें हाथीकी नाक और दात असाधारण लम्बे होते हैं। बन्दरकी पूछ लबी होती है। बन्दर और मनुष्यकी अगुलिया भी लबी कही जायगी। खरगोशके कान लबे होते है। बगलेकी चोच लबी होती है। अलग अलग धधा करनेवाले लोगोकी

धधेमें काम आनेवाली कर्मेन्द्रियो या ज्ञानेन्द्रियोके कद वढे हुअे होते है। यह अिन्द्रियोका स्थूल विकास कहा जा सकता है।

लेकिन चीलकी निगाह तेज होती है। मकडीकी स्पर्शशक्ति तेज मानी जाती है। खरगोशके कान तेज होते है। कुछ प्राणियोकी घ्राण-शक्ति तेज होती है। पोपटकी वाणीमें विशेषता होती है। घोडे और शुतुरमुर्गके पावोमें विशेष बल होता है। अिस तरह अवयवोके स्थूल कदमें नही, बल्कि अुन अवयवो द्वारा बल दिखानेकी शक्तिमें वृद्धि होना अिन्द्रियोका सूक्ष्म विकास कहा जा सकता है।

(३) चीटी और पतग पहले अडेमे से अिल्लीका और अिल्लीमें से परिवर्तन पाकर चीटी और पतगका रूप लेते है। मेंढक, पक्षी, मनुष्य आदि प्राणियोमें अिससे भी अधिक परिवर्तन होते है। कुछ परिवर्तन अडेमें या गर्भमें होते है, कुछ बाह्य जगत्मे होते हैं, कुछ अग नप्ट हो जाते हैं, कुछ नये आते है। अिस तरह स्थूल रूपमें परिवर्तन होता है।

मनुष्यके स्वभावमें भी अैसा अद्भुत परिवर्तन होता है। वह चोरसे साधु बनता है, जडसे बुद्धिमान बनता है; अुपद्रवीसे शान्त वन जाता है, अुतावलेमे गभीर बनता है। जिस तरह प्रत्येक बालक पूर्वजोके शरीरोमें हुअे रूपान्तरके क्रमसे गुजरता है, अुसी प्रकार पूर्वजोके स्व-भावके रूपान्तरका क्रम भी प्रत्येक बालक कम या अधिक समयके लिअे वताता है। माता-पिताके बचपनके दोष अुनकी वडी अुम्रमे सर्वथा दूर हो चुके हो, तो भी वे बालकमे कुछ समय तक वैसे ही दिखाअी देते हैं।

शरीर और स्वभावके अैसे परिवर्तन स्थूल या सूक्ष्म परिवर्तन — विकास — कहे जा सकते है।

(४) चौथा विकास आयुकी मर्यादाका है। सामान्यत विभिन्न प्राणियोकी आयु-मर्यादा निश्चित होती है। अुतने समयमे ये प्राणी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थाके खेल पूरे कर जाते है। अलग अलग कारणोंसे यह मर्यादा कम-ज्यादा होती है।

(५) गाय और भैसकी खुराक और अुनके पालनका तरीका अेकसा ही होता है। भैस ज्यादा ताकतवर दिखती है, फिर भी गाय चचल और तेजस्वी तथा भैस जड मालूम होती है। तालीम

पाये हुअे कुत्ते और जगली कुत्तेके तेजमे भेद होता है। सुसस्कारी और कुसस्कारी मनुष्यके तेजमे भेद होता है। बन्दरके हाथ-पाव मनुष्यके हाथ-पावसे बहुत छोटे, पतले और नाजुक मालूम होते है, फिर भी वह अुनसे अिस तरह काम लेता है मानो वे फुटबॉलकी तरह हवासे भरे हुअे हो। मनुष्य अितनी चपलता नही दिखा सकता। कोअी मनुष्य पतला दिखता है, परतु मोटे मनुष्यको हरा सकता है। यह बताता है कि अुसके शरीरके तत्त्व मोटे मनुष्यसे अधिक शुद्ध है। अूपर कहा जा चुका है कि जिस आमके सेरभर रसमें से पाच प्रतिशत मीठा तत्त्व मिलता हो, अुसमे अैसा सुधार करना कि सात प्रतिशत मीठा तत्त्व मिले, यह अेक प्रकारका विकास है। अुसी तरह शरीर या अिन्द्रियोके कदमे फर्क न पडने पर भी अुनके तत्त्वोकी शुद्धि बढे और अुससे शरीरकी या चित्तकी शक्ति बढे, तो यह पाचवे प्रकारका विकास है। अिसे तेजविकास या प्राणविकास कहा जा सकता है।

(६) कुत्ते और घोडेमे स्वामिभक्तिकी भावनाका विकास हुआ है, चीटी, मधुमक्खी आदिमे समाज-रचना और अुद्यमशीलताकी भावना विकसित हुअी है, और सापमें वैरकी तीव्र वृत्ति है, अैसा कहा जाता है। कुछ पक्षियोमें सुन्दरताकी असाधारण दृष्टि होती है। मनुष्योको देखे तो किसीमे द्वेषवृत्ति बलवान होती है तो किसीमें प्रेमवृत्ति, किसीमे झूठी बाते बनानेकी अजीब करामात होती है तो किसीमे अत्यन्त सत्यनिष्ठा, कोअी पराक्रमी होता है तो कोअी कायर, कोअी अुदार है तो कोअी कजूस। अिस तरह विविध गुणोका विकास हुआ दिखाअी देता है। अिसे भावना-विकास या गुणविकास कहा जा सकता है।

अब हम अिसकी चर्चा करेंगे कि अिन छ प्रकारके विकासोमे किस प्रकारका कितना विकास मनुष्यके लिअे वाछनीय जीवन-विकास माना जायगा।

अिसका हम अनुक्रमसे विचार करे।

(१) कद-विकास — मनुष्य कितना अूचा और मोटा हो सकता है, अिसकी किसी प्रकारकी मर्यादा होनी ही चाहिये, अैसा माननेका कोअी कारण नहीं। परतु प्रत्येक युग और देशके लोग अपने समयके

लिअे अेक खास कदको ठीक मानते है, अुससे कम या ज्यादाको ठीक नही समझते। बहुत अूचे मनुष्यको ताड-जैसा कहकर, बहुत ठिगनेको बौना कहकर, बहुत मोटेको हाथी जैसा कहकर और बहुत दुबले-पतलेको बासकी अुपमा देकर हमने कदके प्रमाणकी अमुक मर्यादा बना ली है। अुतने कदको पहुचना हम सबके लिअे वाछनीय समझते है और अुतने कदको अुस युग और देशके लिअे काफी मानते है। अुससे अूची मर्यादाको सारी जाति पहुचे तो अुसे बुरा नही मानते, परतु अेकाध व्यक्तिका अिस दिशामे अपवादरूप विकास आदर्श नही माना जाता। अिस तरह कद-विकासकी मर्यादा बध चुकी है। कद-विकासकी दृष्टिसे जीवन-विकासका अर्थ हमने निश्चित किया है—अुस बधी हुअी मर्यादा तक पहुचना। कद-विकासकी मर्यादा न बाधना और अुसे अमर्यादित रूपमे बढानेके लिअे अपना सारा पुरुषार्थ लगा देना किसीको ध्येयके रूपमें स्वीकारने जैसा नही लगता।

(२) अब अिन्द्रिय-विकासका विचार करे। मनुष्यकी प्रत्येक अिन्द्रियके विकासकी कोअी सामान्य मर्यादा निश्चित नही की जा सकी है। अत्यन्त नाटा या अत्यन्त अूचा कद जिस तरह अच्छा नही लगता और मजाक अुडाकर अुसके प्रति अनादर दिखाया जाता है, वैसा सारे अिन्द्रिय-विकासके लिअे नही है। शरीरके अवयवोके कदके लिअे—अिन्द्रियोके स्थूल विकासके लिअे—अमुक मर्यादा अवश्य मानी गअी है। गरदन, अगुलिया, आखें, कान, नाक आदि बहुत लबे या बहुत छोटे हो, तो अुनकी टीका की जाती है। परतु अिन अिन्द्रियोकी शक्तिके लिअे कोअी मर्यादा नही तय की जाती। शक्तिकी दृष्टिसे अुनका असाधारण विकास आदरपात्र माना जाता है। पहलवानकी कुश्ती लडने, मोटर रोकने, भारी वजन छाती पर अुठाने या साकल तोडनेकी शक्ति, निशानेबाजकी आखोकी तेजी, गायक या वक्ताका आवाज पर प्राप्त किया हुआ अधिकार, कवि या नाटककारकी अतिशय कल्पनाशक्ति, शतावधानीकी अद्भुत स्मरणशक्ति, वकीलकी तर्कशक्ति और वैज्ञानिककी अवलोकन-शक्ति जितनी अधिक हो अुतनी वाछनीय समझी जाती है। और अिस कारणसे साधारणत यह माना गया है कि

वालककी जिस अिन्द्रियकी शक्तिमे विशेषताकी ओर जानेका झुकाव मालूम होता हो, अुसीको प्रोत्साहन देना ठीक है।

मेरी नम्र रायमे अिस मान्यता पर तीन दृष्टियोसे विचार किया जाना चाहिये।

साधारणत हमारा यह खयाल होता है कि हममें अनेक प्रकारकी स्वतत्र शक्तिया हैं, अलग अलग कर्मेन्द्रियोकी शक्ति या अलग अलग ज्ञानेन्द्रियोकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतत्र है, कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतत्र है, ज्ञानेन्द्रियो और अन्त.करणकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतत्र है। अन्त करणकी कल्पनाशक्ति, स्मृतिशक्ति, तर्क-शक्ति आदि अेक-दूसरेसे स्वतत्र हैं। अिसलिअे अेकका अधिक विकास करनेसे दूसरी किसी वाहरी या भीतरी अिन्द्रियके कुठित होनेका भय रखनेकी जरूरत नही।

यह खयाल मुझे गलत मालूम होता है।* मुझे लगता है कि किसी अेक समयमें प्रत्येक मनुष्यके पास समग्र शक्तिका अेक निश्चित भडार होता है। हर मनुष्यका यह भडार कम-अधिक हो सकता है; जीवनके अलग अलग समयमें अेक ही मनुष्यका यह भंडार कम-अधिक हो सकता है। वचपनमे वढ सकता है, बुढापेमें घट सकता हैं, वीमारी, भुखमरी वगैराके कारण घट सकता है। व्यायाम, प्राणायाम, अन्न, औपधि आदिसे वढ सकता है। यह अेक ही भडार अलग अलग अिन्द्रियोमे वटा हुआ होता है। यह वटवारा कम-ज्यादा अशमें हुआ रहता है। किसी मनुष्यकी अेक कर्मेन्द्रियमे अिसका वडा अश होता है तो किसीकी दूसरीमे। किसीकी कर्मेन्द्रियमे तो किसीकी ज्ञानेन्द्रियमें। किसीकी अेक ज्ञानेन्द्रियमे तो किसीकी दूसरी ज्ञानेन्द्रियमें। किसीकी अेक कर्मेन्द्रिय और अेक ज्ञानेन्द्रियको अुसका अधिक अश मिला होता है, तो किसीकी अन्तरिन्द्रियोको अुसका विशेप अश मिला होता है। अिस समग्र भडारमें वृद्धि हुअे विना किसी अेक

* अिस विषयमें मेरा अवलोकन पूर्णताको पहुच गया है, अैसा विश्वास न होनेके कारण मै यहा निश्चयात्मक क्रियापदोका प्रयोग नही करता।

अिन्द्रियका अधिक विकास दूसरी किसी अिन्द्रियमें न्यूनता अुत्पन्न किये बिना नही हो सकता। अिसलिअे यदि किसीमे गानेकी या चित्र बनानेकी विशेष शक्ति हो और अपनी समग्र शक्तिके भडारमे वृद्धि हुअे बिना वह केवल अपनी अिस शक्तिको ही बढावे, तो दूसरी किसी अिन्द्रिय या अन्त करणकी शक्तिमें कमी हो सकती है।*

यह अेक बात हुअी।

मनुष्यका स्वाभाविक झुकाव अैसा मालूम होता है कि अुसे भरे हुअेमे अधिक भरना ज्यादा अनुकूल लगता है। अिसलिअे जीवनमे मालूम होनेवाले दूसरे दोषोको दूर करनेके अुपायके रूपमें वह अैसा करता है और यह अुसे सुखपूर्ण लगता है। अुदाहरणके लिअे, मान लीजिये कि अेक मनुष्यकी समग्र शक्ति १०० तोला है। अुसमें से २५ तोले अुसकी आखोमे, २५ तोले अुसकी अगुलियोमें, २५ तोले कल्पनाशक्तिमे और बाकीके २५ तोले दूसरी कर्मेन्द्रियो, ज्ञानेन्द्रियो तथा अन्त करणमे हैं। अपनी आखो, अगुलियो और कल्पनाशक्तिको २५–२५ तोलेके बजाय ३०–३० तोले देना अुसके लिअे आसान है, परतु वहा २०–२० तोलेका प्रवाह भेजकर दूसरी अिन्द्रियोको १५ तोले ज्यादा देना अधिक कठिन

* यह बात लिखनेके बाद शरीर-विज्ञान (Physiology)की अेक पुस्तक पढनेसे मुझे मालूम हुआ कि अूपरका कथन बेबुनियाद नही है। शरीरशास्त्री मानते हैं कि हमारे शरीरकी कुछ गाठें हड्डिया बढानेवाली है, कुछ मास, चरबी, शक्ति आदि बढानेवाली हैं। अमुक आयु तक हड्डिया बढानेवाली गाठें अितनी खाअू होती हैं कि हम जो कुछ खाते-पीते है, अुसका अधिक भाग ये गाठें ही चूस लेती है, यहा तक कि दूसरी गाठें भूखो मरती है। किसी किसी प्राणीको खुराक न मिलती हो, तो भी अुसकी हड्डिया बढती मालूम होती है। यदि अन्नमें से रस न मिले, तो शरीरमे जो थोडा-बहुत मास होता है, अुसे भी चूस कर ये गाठें हड्डिया बढानेका काम करती हैं। अिसी तरह कुछ लोगोके सब रसोको चरबीमे बदलनेवाले भाग खूब क्रियाशील होते है, और कुछके दूसरे भाग। यही नियम अिस विषयमें भी लागू होता दिखाअी देता है।

और विशेष प्रयासके विना असाध्य होता है। अिसलिअे अुसे २५ के वजाय ३० तोले देना अधिक सुखकारक और विकास करानेवाला लगता है। अिस तरहका विषम वटवारा यह भान कराये विना नही रहेगा कि जीवनमे कुछ कमी है। लेकिन मनुष्यके अिस झुकावके कारण अुसे अैसा लगता है कि यह कमी दूर करनेका अुपाय ३० तोलेके वजाय ३२ तोले करनेमे है। अिस तरह मनुष्य अपनी अिन्द्रियोके झुकावका अधिकाधिक आग्रहपूर्वक अनुसरण करता है। वुद्धिमान मनुष्य मानता है कि मेरे जीवनमें मालूम होनेवाली कमी वुद्धिको ही ज्यादा कसनेसे पूरी होगी। कल्पनाशील मनुष्य कल्पनामें अधिक रमता है। ध्यानी ध्यानमें रत रहनेका प्रयत्न करता है। पहलवान यह मानता है कि जीवनमें मालूम होनेवाला असतोष ज्यादा कुश्तिया लडनेसे दूर होगा। गायक गा-गा कर दु ख मिटानेका प्रयत्न करता है। डॉक्टर किसी वुद्धिजीवीसे पढना वन्द करनेको कहता है, तो वह अुसे ज्यादा कठिन मालूम होता है, और वह अैसा मानता है कि अिससे तो मै अुलटा जल्दी मर जाअूगा। यह वात कौन नही जानता ?

यह हुअी दूसरी वात।

स्वाभाविक झुकावका पोषण करनेके सिद्धान्तके पीछे यह खयाल है कि अनुकूल परिस्थितिया ही विकासके लिअे अुपयोगी है। विकासके अूपर वताये हुअे प्रकारोका विचार करनेसे मालूम होगा कि किसी विकासके लिअे अनुकूल परिस्थितिया जरूरी होती है, तो किसी विकासके लिअे असह्य न लगनेवाली प्रतिकूल परिस्थिति या आघात आवश्यक होता है। किसी विकासके लिअे शक्तिका अुपयोग हो अैसा श्रम करना आवश्यक होता है। और किसी विकासके लिअे शक्तिके खर्चको रोकना — अुसे सयममे रखनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। अेक छोटा वच्चा भी घोडेको दौडा सकता है, परतु अुसे रोकनेके लिअे होशियार आदमीकी जरूरत पडती है। ट्रामका ब्रेक दवाते समय ही मालूम होता है कि अुसे चलाना कमजोर आदमीके वूतेका काम नही है। रेलगाडीकी पटरीका साधा वदलनेमें वहुत जोर लगाना पडता है। अुसी प्रकार अेक ही दिशामें वहते रहनेवाले शक्तिके प्रवाहको

रोककर दूसरी दिशामें मोडना कठिन है, लेकिन विकासके लिअे वहुत जरूरी है।

यह तीसरी बात हुअी।

गुणविकास — भावना-विकास — का विचार करते समय अिन बातोका महत्त्व अधिक मालूम होगा।

अिन तीन बातोका विचार करने पर यह जरूरी मालूम होता है कि जिस तरह कद और अिन्द्रियोके स्थूल विकासकी मर्यादा वाधनी चाहिये, अुसी प्रकार अिन्द्रियोके सूक्ष्म विकासकी भी मर्यादा बाधनी चाहिये। मै शरीरको बलवान वनाअूगा। किस हद तक? हाथोको बलवान बनाअूगा। कहा तक? सास रोकनेकी शक्ति बढाअूगा। किस दर्जे तक? मै कानो और आखोको तेज बनाअूगा, वक्तृत्व-शक्ति प्राप्त करूगा, गानेकी कलाका विकास करूगा, चित्रकला सीखूगा; तर्कशक्ति, कल्पनाशक्ति और स्मरणशक्ति तेज करूगा। परतु सब कहा तक? शरीर, अिन्द्रिया, अन्त करण सबका बलवान या तीव्र होना जरूरी है। परतु किसी अेक अगके अपार बल या तीव्रतामें जीवनकी पूर्णता नही है। अपने देश, काल, जाति, वय, परिस्थिति आदिका ध्यान रखकर किसी अगका कहा तक विकास किया जाय, अिसकी कोअी सीमा तो होनी ही चाहिये। प्रत्येक गनुप्यमे कुछ अगोका दूसरे अगोसे अधिक विकास होगा ही। सुतारकी आखो, हाथो वगैराका विकास होगा ही। हरकारेके पाव अवश्य मजबूत वनेंगे। केवल परिस्थितिके कारण ही अिस तरह अिन अिन्द्रियोको मिलनेवाला शक्तिका अधिक प्रवाह अनिवार्य और अनिष्ट नही होता। परतु तालीमकी वुद्धिपूर्वक योजना वनानेवालेके लिअे केवल वालकके स्वाभाविक झुकावको पोपण देनेकी दृष्टि रखना अुचित नही होगा।

कद-विकासके वारेमें साधारणत यह कहा जा सकता है कि अेक अुम्रके वालक अेक ही वर्गमें आते है। अुनके लिअे समान व्यवस्था की जा सकती है। अमुक अुम्र तक अनिवार्य रूपसे कद-विकास करनेका नियम वनाया जा सकता है। लेकिन अिन्द्रिय-विकासके वारेमें वर्ग बनाना कठिन होता है। अेक ही अुम्रके दो वालकोका अिन्द्रिय-

विकास अेकसा नही होता। किसी वालककी कोअी अिन्द्रिय जन्मसे ही अत्यन्त विकसित हो सकती है, और सभव है किसीकी वह अिन्द्रिय जरा भी विकसित न हो। जिसकी जो अिन्द्रिय विकसित होगी, अुसकी वह अिन्द्रिय सामान्य कद-विकासके साथ और शक्तिका कुल भडार बढनेके साथ अधिक बलवान होगी। जिस वालकका अैसा न हो, अुसे अुस अिन्द्रियके विकासके लिअे विशेष प्रकारकी सुविधा देनी पड़ सकती है। अिसलिअे अैसा भी हो सकता है कि वालकका स्वाभाविक झुकाव जो चीज चाहे, वह चीज अुसे देनेकी व्यवस्था करनेके वजाय (कमसे कम अुसके साथ-साथ) शिक्षकका कर्तव्य अुसमे जो कमी हो अुसे पूरा करनेका हो जाय।*

(३) परिवर्तन-विकास — जगतकी विभिन्न प्रजाओ द्वारा किये गये स्वर्गोके वर्णनोमें चार या चारसे ज्यादा हाथो, पैरो और अनेक आखोवाले शरीरकी कल्पना की गअी है। नरकके वर्णनमें

---

* यह माननेका कोअी कारण नही मालूम होता कि जिस अिन्द्रियको जन्मसे ही विशेष शक्ति प्राप्त हुअी है, अुस पर कम ध्यान देनेसे वह शक्ति घट जायगी। दूसरी अिन्द्रियोकी ओर शक्तिका प्रवाह मोडनेमें श्रम करना पडता है, क्योंकि बलवान अिन्द्रिय अधिक विरोध करती है। 'अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन ।' बलवान पौधे या बलवान प्राणीकी अुपेक्षा करें, तो भी अन्तमे तो वही बडा हिस्सा दवा जानेवाला है। मेरे कहनेका यह आशय नही कि अिन्द्रियोंकी स्वाभाविक शक्तियोकी वृद्धिको कृत्रिम तरीकोसे रोका जाय, या किसीमे गानेकी शक्ति मालूम हो तो अुसके लिअे न गानेका नियम वना दिया जाय और अुस शक्तिको कुठित करनेका प्रयत्न किया जाय। अितनी अनुकूलता अुत्पन्न कर देना काफी होगा, जिससे वह शक्ति अपने ही प्रयाससे विकसित हो सके। लेकिन शिक्षाशास्त्रीको वालककी दूसरी अिन्द्रियो पर अधिक ध्यान देना चाहिये। अिसके लिअे आवश्यक होने पर वह गानेकी प्रवृत्ति पर नियत्रण भी रखेगा। अेक वात हमेशा याद रखना चाहिये कि सारे प्रयत्नोंके वावजूद जो प्रकृति वलवान होगी, वह अपना स्वभाव पूरी तरह नही छोडेगी। 'प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह. कि करिष्यति?'

सीगवाले, पेटमे आखो या मुहवाले और अुलटी अेडियोवाले यमदूत चित्रित किये गये है। अिसलिअे चतुर्भुज, अष्टभुज, अुड सकनेवाले, सहस्राक्ष आदि प्राणियोमे रूपान्तर पानेकी अिच्छा कुछ लोगोको अच्छी मालूम होती है। और विकृत — विपरीत — विकास (अुलटा विकास) क्या होता है, अिसकी भी कल्पना की गयी है। परतु साधारण मनुष्य, कमसे कम अिस जीवनमे, स्थूल परिवर्तनकी अिच्छा नही रखते और आज मनुष्य जितने और जैसे अवयवोवाला प्राणी है, अुससे सतुष्ट मालूम होते है। अिसलिअे स्थूल परिवर्तन-विकासका विचार करनेकी आवश्यकता नही रह जाती।

लेकिन सूक्ष्म परिवर्तन-विकास अत्यत महत्त्वपूर्ण और चिन्ता अुत्पन्न करनेवाला है।

अेक छोटे बारीक कीडे जैसे जलचर जन्तुमे से लबे समयके बाद जमीन पर फुदकनेवाले मेंढकका रूपान्तर होना चाहे जितना आश्चर्यजनक मालूम हो, फिर भी हमारा विश्वास है कि यह रूपान्तर धीरे धीरे — परिवर्तनकी गति निगाहसे न पकडी जा सके अिस तरह — हुआ है। नाटकमे पिस्तौलके धडाकेके साथ जिस तरह दृश्य-परिवर्तन किया जाता है, वैसे यह परिवर्तन अेकाअेक नही होता। जमीन पर हाथ-पैर मारने-वाला और रोनेके सिवा दूसरी आवाज न निकाल सकनेवाला बालक धीरे धीरे बैठने, घुटने चलने, खडा होने और चलने लगे तथा मामूली आवाजें करते-करते बडोकी तरह स्पष्ट बोलने लगे, तब तक हम धीरज रख सकते है। परतु स्वभाव-परिवर्तनके बारेमे हम अितना धीरज नही दिखाते। कोअी हमसे कहे कि अेक बालक परसो पैदा हुआ, कल घुटने चलने लगा और आज दौडने लगा है, तो हम अिसे अद्भुत मानकर अुसकी तरफ कोअी ध्यान नही देंगे। लेकिन जिस बालकको आज चोरी करनेकी आदत है, दूसरे ही दिन अुसके सुशील बन जानेकी आशा हम छोड नही सकते। हमारी अैसी मान्यता दिखाअी देती है कि स्वभावके परिवर्तनमे मानो कोअी क्रम ही नहीं है, जादूके खेलकी तरह वह अेकाअेक हो जाता है। पिता स्वय जिस हठ, कुटेवो और दुर्गुणोका शिकार हो चुका हो, अुनका दर्शन बालकमें

होने पर वह अधीर बन जाता है और अुनसे बालकको छुडानेके लिअे जमीन-आसमान अेक कर डालता है। लेकिन स्वभावका जो परिवर्तन माता-पितामे हुआ होगा, वह परिवर्तन यथासमय — कोअी खास रोकनेवाले कारण न हो तो — बालकमे हुअे बिना नही रहेगा। अुससे अधिक परिवर्तन होनेमे अिससे ज्यादा लबा समय लगेगा, और अुसका परिणाम बहुत लबे समयके बाद देखनेमे आयेगा। स्वभावके परिवर्तनकी गति अितनी सूक्ष्म होती है कि स्थूल दृष्टिसे तो अैसा ही लगता है कि मूल स्वभाव कभी मिट ही नही सकता।

सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।। (गीता ३—३३)

(ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभावके अनुसार ही व्यवहार करता है। प्राणीमात्र अपनी प्रकृतिकी तरफ ही जाते है, निग्रह क्या कर सकता है ?)

फिर भी, यह अतिम सत्य नही है। धीरे धीरे ही क्यो न हो, स्वभावमें परिवर्तन अवश्य हो सकता है। और जान-अनजानमे अिस बातको हम जानते भी है, तभी तो अिस दिशामे अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिया होती रहती हैं। शालाओ, जेलो, रिफॉर्मेटरियो, धार्मिक सप्रदायो तथा सामाजिक और राजनीतिक सुधारके आन्दोलनोका हेतु व्यक्ति या प्रजाके स्वभावमे परिवर्तन करानेका ही होता है। अिस तरह सूक्ष्म भूमिकाके विकासमे हम किसी प्रकारकी मर्यादा नही बाधते।

(४) आयु-विकास — अिस विषयमें कुछ लोगोकी महत्त्वाकाक्षा शरीरको अमर बनाने तक पहुची है। लेकिन साधारणत १०० वर्षकी आयुको हमने अत्यन्त सतोपकारक और ७५ वर्ष तक पहुचनेमें सतोष माना है। केवल दीर्घायु वाछनीय भी नही लगती। दीर्घायुके साथ शरीरकी, अिन्द्रियोकी, बुद्धिकी शक्तिया बनी रहें, नये सस्कार प्राप्त करनेकी शक्ति कुठित न हो और जिन साथियोके साथ हमारा जीवन बीता हो वे हमे छोडकर चले न जाय, तो ही दीर्घायु स्वागतके योग्य मालूम होती है। अिसलिअे आयु-विकासके बारेमें भी हमने आकाक्षा-को मर्यादित रखा है।

(५) अब तेज या प्राण-विकासके प्रश्न पर विचार करें। गुजरातीके कवि नानालालने गाधीजीकी दुर्बलताको ध्यानमे रखकर अुन्हे 'मानव तिनका'—तिनके जैसा मानव—कहा है। गाधीजी शरीरकी शोभा बढानेके लिअे कोअी मेहनत नही करते। अुनकी चमडी भी गोरी नही है। फिर भी अुनके मुह पर आखोमे समा जानेवाली काति दृष्टि-गोचर हुअे विना नही रहती। अुनके अग-प्रत्यगसे जैसा जीवन फूटता दिखाअी देता है, वैसा बहुतसे व्यायाम करनेवालोमे भी नही दिखाअी देता। अुनकी वुद्धि कभी कुठित नही होती। सूक्ष्म और पेचीदा बातोके पीछे रहे तत्त्वको भी वे तुरत समझ लेते है। दूसरी ओर देखें तो अनेक विषयोमे अुनकी जानकारीका भडार अुससे बहुत कम है, जिसकी अपेक्षा अैसे महान कार्य करनेवाले पुरुषसे रखी जा सकती है। जानकारीके भडारका अर्थ यदि हम ज्ञानकी समृद्धि करे, तो बहुत वार गाधीजीका अज्ञान आश्चर्यजनक माना जायगा। अुनकी काम करनेकी शक्ति पहलवानोको भी शरमानेवाली है। सारे दिन काम करने पर भी न तो अुनका मन थकता है और न शरीर। कमसे कम आरामसे अुनका काम चल जाता है। सख्तसे सख्त बीमारीके बाद भी वे तेजीसे स्वास्थ्य-लाभ कर सकते है। यह सब बताता है कि गाधीजीकी प्राण-शक्ति अत्यन्त बलवान है। यदि गेहू और बादामकी अुपमा काममे ली जाय, तो कह सकते है कि अनेक लोगोके शरीरमे यदि गेहूके तत्त्व होते है, तो गाधीजीके शरीरमे बादामकी गिरी भरी हुअी है।

वोझ ढोनेवाले घोडे और सवारीके घोडे, भैस और गाय, भेड और बकरी, कायर और शूरके बीच अैसा प्राण-विकासका भेद ही समझा जा सकता है।

कद-विकास और अिन्द्रिय-विकाससे भी प्राण-विकासका अधिक महत्त्व है।* शक्तिके भडारकी वृद्धि, अिन्द्रियोकी शक्तिकी वृद्धि और

---

*अैसा नही समझना चाहिये कि किसी भी प्रकारका विकास दूसरे प्रकारके विकाससे विलकुल स्वतत्र है। प्रत्येक विकास कुछ हद तक दूसरे विकास पर आधार रखता है, कुछ हद तक स्वतत्र रूपसे सिद्ध किया जा सकता है और कुछ हद तक अेकका विकास दूसरेके विकासका विरोधी होता है। अिसकी अधिक चर्चा अन्यत्र की गअी है।

प्राणशक्तिकी वृद्धि अेक ही है, अैसा नही मानना चाहिये। अहमदाबादमे मैंने अेक अैसा शक्तिशाली पहलवान देखा है, जो मेरे जैसोके हड्डे केवल दो हाथोके वीच दबाकर ही तोड सकता था। परन्तु मैंने देखा कि मेरे जैसा ही दुबला-पतला अेक कारकुन अुसके साथ अितनी अुद्धततासे बात करता था कि वह अुसे सह कैसे सकता होगा, यह मेरी समझमे नही आता था। पहलवानकी शक्तिमे तेजस्विता नही थी। कोयलेका पूरा थैला अेक ही वारमे सुलगा दे, तो भी अुसके प्रकाशमे पढा नही जा सकता। परन्तु अेक छोटीसी मोमवत्तीके प्रकाशमे पढा जा सकता है। अर्थात् दोनोके तेजधर्मी होते हुअे भी दोनोमे गुणभेद है। मोमवत्तीकी तेजशक्ति अधिक शुद्ध है। अिसी तरह बालकका प्राण-विकास हो, अुसकी सारी शक्तिया अधिक तेजस्वी बने, यह महत्त्वकी चीज है।

लेकिन अतिशय प्राण-विकास भी मनुष्यताका विशेष लक्षण नही कहा जा सकता। बाघ और सिह भी अतिशय तेजस्वी प्राणी हैं। यह कहा जा सकता है कि जहा जहा पराक्रम है, वहा वहा प्राणकी अधिकता है। परन्तु अैसे अनेक पराक्रमी पुरुष है, जिन्हे अधम पुरुष कहा जा सकता है। परशुराम और रावण अथवा सिकदर और नेपोलियन प्राणवान मनुष्योकी अूची श्रेणीमे रखे जा सकते है, परन्तु वे आदर्श नही कहे जा सकते।

(६) अन्तमे गुण-विकासके प्रश्न पर विचार करना चाहिये।

सभव है अिन्द्रिय-विकासके विपयमे मैंने जो दृष्टि सामने रखी है, वह अरुचिकर मालूम हो। किसी वालकका किसी विशेप अिन्द्रियकी शक्तिकी ओर स्वाभाविक झुकाव मालूम होता हो, तो अुसीके पोपणके लिअे अनुकूलता अुत्पन्न करनेके वदले किसी अन्य अिन्द्रियके विकासके लिअे परिश्रम करना कुछ लोगोके विचारसे अनुचित है। परन्तु अिसी सिद्धान्तका गुण-विकासके सम्वन्धमे अमल करनेसे कितना विपरीत परिणाम आयेगा, यह आसानीसे समझा जा सकता है। मनुष्यको जिस तरह अिन्द्रियोकी शक्तिकी अत्यन्त विविध प्रकारकी विरासत मिली होती है, अुसी तरह गुणोकी विरासत भी अत्यन्त विविध होती है। बहुत अंश तक यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्यकी विशिष्टता

अिन दो कारणोसे है। कोअी बालक वचपनसे ही क्रोधी होता है और कोअी क्षमाशील होता है, कोअी अुदार होता है तो कोअी कजूस, और कोअी परोपकारी होता है। क्रोधीके क्रोध गुणका और कजूसके अनुदारता गुणका विकास करना क्या अुचित होगा? अथवा अुसकी क्रोधवृत्तिको किसी दूसरे गुणकी ओर मोडनेका प्रयत्न अुचित माना जायगा?

अभ्यास—अर्थात् अेक ही प्रकारका सतत परिश्रम—अेक ही शक्तिको वढाता और दृढ करता है, आगे चलकर वह अितनी दृढ हो जाती है कि यत्रकी तरह अुसका अुपयोग किया जा सकता है। टाअिपिस्ट आख मीचकर टाअिप कर सकता है। कपोजीटर आख मीचकर टाअिप जमा सकता है। कर्मेन्द्रियोके सम्बन्धमे अिन्द्रियोकी अैसी दृढ आदत वन सकती है, अिसमे हमे कोअी शका नहीं होती। परन्तु यह नियम ज्ञानेन्द्रियो और अन्त करणको भी लागू होता है। आखोको सीधा-टेढा देखनेकी ठीक तालीम मिल जानेसे वे तुरन्त सीधे और टेढेको पहचान सकती हैं, अेक क्षणमे लक्ष्यको अच्छी तरह वीध सकती हैं। अन्त करणके व्यापार भी अिसी नियमसे चलते हैं। झूठी वाते वनानेकी आदत डालते डालते विना प्रयास झूठी वाते गढ लेनेका अभ्यास हो जाता है। कल्पनाये करनेका स्वभाव वनाते वनाते विना प्रयास मनमे नअी नअी कल्पनाये स्फुरित होनेकी आदत पड जाती है। शब्दालकारवाले वाक्य वोलनेकी आदत डालने पर अुसमे भी कुशलता प्राप्त हो जाती है। जिस दिशामे विचारोके प्रवाहको मोडे, अुस दिशाके विचार स्वय स्फुरित होते मालूम होते हैं। दलीलके भीतर रही हुअी गलती आसानीसे खोजी न जा सके अिस प्रकार दलील करनेका अभ्यास वकील लोग करते है, और कुछ समय वाद वह अुनका दृढ स्वभाव वन जाता है। वादमे अनजाने भी प्रत्येक विपयमे अुन्हे शब्दोकी गहराअीमें अुतर कर वालकी खाल निकालनेकी आदत हो जाती है। स्मृतिको कसते कसते अुसमे भी अनोखी प्रवीणता प्राप्त हो जाती है।

यही वात गुणोको भी लागू होती है। क्रोध करते करते मनुष्य हवाके साथ भी लड पडे अैसा क्रोधी वन जाता है। लोभ वढाते

बढाते अितना वढ सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य पा लेने पर भी सन्तोष न हो।

जो बात दुर्गुणोके लिअे सच है, वही सद्‌गुणोके लिअे भी है। 'अुत्तर-रामचरित'मे अिस आशयका अेक श्लोक है कि सामान्य मनुष्योकी वाणी घटनाओका वर्णन करती है, परन्तु सत्पुरुषोकी वाणीके पीछे घटनाये आती है। सत्यकी अुपासना करते करते अैसा स्वभाव वन जाता है कि अनायास वोला हुआ वाक्य भी सत्य ही निकले। अहिंसाकी अुपासना करते करते अहिंसा ही मनुष्यका स्वभाव वन जाती है। किसीके साथ विरोधका प्रसंग अुत्पन्न होने पर हमे खोजने पर भी सत्याग्रहके अुपाय नही सूझते; किसी क्रोधयुक्त विरोधका ही मार्ग सूझता है। और गाधीजीको, मानो विचार किये विना ही, सत्याग्रही अुपाय ही सूझते हैं।

✓ हमारी प्रत्येक छोटी-मोटी क्रिया और हम पर वाहरसे पडनेवाला प्रत्येक छोटा-वडा सस्कार केवल हमारी अिन्द्रियो अथवा अन्त.करणको ही किसी प्रकारका मोड नही देते, वल्कि हममे किसी गुणका सस्कार भी डालते हैं। अेक ही प्रकारका अैसा सस्कार पडनेसे वह गुण दृढ वनता है, और समय पाकर वह हमारी दृढ प्रकृति वन जाता है। प्रत्येक मनुष्यकी अैसी दृढ प्रकृति ही अुसका स्वभाव है। ✓

हमारी अपनी अुन्नति-अवनति, सुख-दु:ख, शान्ति-व्यथाका आधार हमारे कद-विकास, अिन्द्रिय-विकास या प्राण-विकाससे अधिक हमारे गुण-विकास पर होता है। हम जिस समाजमे और जिन प्राणियोके बीच रहते हैं, अुनकी अुन्नति-अवनति, सुख-दु:ख और अुनकी शान्ति-व्यथाका आधार भी हमारे गुण-विकास पर ही रहता है। प्रेमल और ममतालु मनुष्य स्वय ही सुखका अनुभव नही करता, परन्तु अपने पडोसियोको भी सुख देता है, दयालु मनुष्य स्वयं ही सात्त्विक आह्लाद अनुभव नही करता, दया लेनेवालेको भी सुखी करता है। व्यवस्थित मनुष्य स्वयं ही व्यवस्थाके लाभ नही अुठाता, वल्कि आसपासके सभी लोगोको अुसका लाभ मिलता है। जिस प्रकार अूची जातिके परन्तु छोटे आमका मीठा रस जो स्वाद दे सकता है, वह वडा लेकिन

खट्टा आम नही दे सकता, अुसी प्रकार नाटा, छोटी अुमरका, विकलेन्द्रिय, बहुत शक्ति न रखनेवाला परन्तु मीठे स्वभावका मनुष्य जो सतोप दे सकता है, वह सतोष शक्तिशाली, सारी अिन्द्रियोमे परिपूर्ण और अत्यन्त प्राणवान होते हुअे भी दुर्वासा जैसा क्रोधी मनुष्य नही दे सकता।

अिस तरह विचार करने पर पता चलता है कि सद्‌गुणोका विकास अेक अैसी चीज है, जिसके साथ यदि अन्य प्रकारका विकास हुआ हो तो अधिक अच्छा फल अवश्य मिलता है, परन्तु सद्‌गुणोके विकासके विना अन्य सारे प्रकारोका विकास न केवल जीवनको या समाजको सुख-शान्ति देनेमे निष्फल सिद्ध होता है, बल्कि अभिशापका रूप भी ले सकता है। गीताके श्लोकार्धमे थोडा परिवर्तन करके कहा जा सकता है

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य कल्याणाय भवेत् सदा।

(अिसका अल्पाश भी कल्याणको देनेवाला ही होता है।)

किसी अेक ही सद्‌गुणका अतिशय विकास मनुष्यको अेकागी और अेक दृष्टिवाला बना सकता है, अुतने अश तक अुसमे अपूर्णता भी रह सकती है। फिर भी अेक ही सद्‌गुण अुसे और समाजको सुखी बनानेमे अवश्य हाथ वटाता है। अैसे अनेक गुणोका विकास अुसे मनुष्योमे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कराता है।

विचारनेसे मालूम होता है कि मनुष्यके मनुष्यत्वका विकास अुसके गुणोत्कर्षमें है, अुसके स्नायुबल, कारीगरी, कल्पनाशक्ति या सूक्ष्म वुद्धिमें भो नही है।

अिसलिअे विकासमे गुण-विकासका सवसे वडा महत्त्व है। अुसके साथ अन्य सब प्रकारका विकास आशीर्वादरूप हो सकता है। वह हो तो फिर प्राण-विकास कितना भी वढाया जा सकता है, अिन्द्रियों और कदका विकास भी अनुकूलताके अनुसार वढ सकता है। परन्तु गुण-विकासके अभावमे मनुष्य या तो असुर रहेगा या पशु रहेगा।

१५

विकासके मार्ग

विकासके विषयका विचार करते हुअे मुझे अैसा लगा कि विकासवादके शास्त्रियोने जितना कद-विकास, अिन्द्रिय-विकास और परिवर्तन-विकासका विचार किया, अुतना प्राण-विकास और गुण-विकासका नही किया है। और अिसलिअे दूसरे विकासो पर होनेवाले अुनके परिणामोका भी विचार नही किया है।

अिसके सिवा, विकासका अवलोकन तो हुआ है, परन्तु अुसके कारणोका बहुत विचार नही किया गया। अेक कोषके 'अेमीवा' का विकास होकर वह दो कोषवाला प्राणी बना यह बात तो कही गअी, परन्तु अिस बातका विचार किया मालूम नही होता कि अिस तरह अेक कोषवाले प्राणीके दो कोषवाला हो सकनेका कारण क्या है।

अुसी प्रकार बिल्ली अितनी छोटी क्यो रही और बाघ अितना बडा कैसे हो सका, वानर और मनुष्यके बीच भेद निर्माण होनेका कारण क्या है—अिस पर भी कोअी विचार किया गया हो अैसा मालूम नही होता। गुण-विकासके प्रश्नको तो छुआ ही नही गया है।

विकासके कारणोमे भी बाह्य परिस्थितियोके कारण विकास पर जो असर होता है अुस असरका जितना विचार किया गया है, अुतना प्राणीके आचरणका विचार नही किया गया। देश, हवा, ऋतु, सुकाल, दुष्काल, अनुकूलता, प्रतिकूलता अित्यादिके परिणामोका विचार तो किया गया है, परन्तु प्राणीके स्वतत्र आचरणके परिणामोंका विचार नही किया गया।

अिसका अेक कारण तो यह मान्यता रही है कि प्राणी केवल बाह्य परिस्थितियोके दबावसे अुत्पन्न होनेवाली प्रेरणा (instinct) से चलनेवाले जीव है। यह स्वीकार नही किया गया कि अुनमे सयम अथवा आत्म-नियमन (self-regulation) की कोअी शक्ति है।

मनुष्योके वारेमें यह सच नही है, अैसा जरूर माना गया है, परन्तु अन्य प्राणियोके विषयमे भी यह सोलह आने सच नही है।

फौलादको लोहचुम्बकके साथ घिसा जाय तो वह स्वय लोहचुम्बक बन जाता है। कच्चे लोहेको घिसा जाय तो जितने समय तक वह लोहचुम्बकके साथ जुडा हुआ रहता है अुतने समय तक अुसमे लोहचुम्बकके धर्म पाये जाते है, परन्तु अुससे अलग करने पर वह फिर अपनी मूल स्थिति ग्रहण कर लेता है। लोहचुम्बककी शक्तिको वह अपने भीतर टिकाये नही रख सकता। लोहेमे लोहचुम्बककी शक्ति प्रकट करनेकी शक्ति होती है, परन्तु कच्चे लोहेमे और साधारण फौलादमे वह शक्ति साम्यावस्था (equilibrium) में रहती है। अुत्तरमुखी और दक्षिणमुखी शक्तिया अिस तरह स्थित हैं कि वे अेक-दूसरेके कार्यको पूरी तरह मिटा देती है। दूसरे लोह-चुम्बकके समीप आनेसे यह साम्यावस्था भग हो जाती है और अुत्तर-मुखी शक्ति अेक तरफ और दक्षिणमुखी शक्ति दूसरी तरफ व्यवस्थित हो जाती है। कच्चा लोहा तत्काल तो अिस नअी व्यवस्थाके वशमें हो जाता है, परन्तु अुसे पचा नही सकता। लोहचुम्बकको दूर हटानेसे वह पुन साम्यावस्थामें चला जाता है। फौलाद अिस नअी व्यवस्थाको सदाके लिअे पचा लेनेकी क्षमता रखता है, परन्तु अेक वार पास आने पर वह तुरन्त ही लोहचुम्बक नही वन जाता। समान रूपमे वार वार यह क्रिया अुस पर करनेसे धीरे-धीरे अुसके कण नअी व्यवस्था स्वीकार करते जाते है और अतमे वह स्वय लोहचुम्बक वन जाता है। अैसा कहा जा सकता है कि लोहचुम्बककी शक्ति प्रकट करनेमे कच्चे लोहेके कणोकी अपेक्षा फौलादके कण अधिक विकसित होते है, और फौलादकी अपेक्षा लोहचुम्बक वने हुअे फौलादमें ये कण विशेष व्यवस्थित रूपमे होते हैं। अिसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि फौलादमे अपनी स्थिति वनाये रखनेकी शक्ति कम है। वह न केवल वाह्य आघातके वश हो जाता है, वल्कि अुससे अुसके स्वरूपमें स्थायी परिवर्तन हो जाता है। अिसके विपरीत साधारण लोहा वाह्य आघातके तुरन्त वश होता दिखाअी देते हुअे

भी अुस आघातके दूर होने पर तुरन्त अपनी मूल स्थितिको अुसी प्रकार स्वीकार कर लेता है, जिस प्रकार वाढमें अथवा जोरकी आंधीमें वडे वडे वृक्ष बह जाते या टूट कर गिर जाते हैं, परन्तु वारीक और कोमल घास तुरन्त नम गयी मालूम होते हुअे भी अपनी मूल स्थिति कायम रखती है। अिस तरह फौलादकी अपेक्षा लोहा अधिक शुद्ध है, अैसा कहा जा सकता है।

लोहेमें किसी प्रकारका वल नहीं मालूम होता, लोहचुम्बक वने हुअे फौलादमें वल प्रकट रूपमें अुत्पन्न होता है, क्योंकि चुम्बक फौलादकी अेक विशेष अवस्था (व्यवस्था) है। परन्तु लोहेमें चुम्वकके वलके सामने अपने रूपको कायम रखनेकी शक्ति है, जब कि फौलाद आघातके वश हो जाता है।

अिसी प्रकार विकास-विचारके भी दो पहलू हैं (१) आघातोंके सामने टिके रहनेकी शक्ति, और (२) वलको प्रकट करनेकी शक्ति। वलको प्रकट करनेमें व्यवस्थितताका विकास होता है।

व्यवस्थितताका विकास स्वरूप-स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका विरोधी है, अैसा पहली दृष्टिमें मालूम होगा। परन्तु स्वरूप-स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका नाश नहीं होता। नया स्वरूप ग्रहण करनेके वाद अुस नअी स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका नाश नहीं होता, परन्तु वह शक्ति बादमें अुस नअी स्थितिको टिकाये रखनेका काम करने लगती है।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो, शक्ति पहले प्रतिकूल परिस्थिति पर विजय पानेका प्रयत्न करती है। यदि अिसमें वह असफल रहती है, तो नअी परिस्थितिके अनुकूल हो जाती है। परन्तु जब फिरसे दूसरे प्रकारकी प्रतिकूल परिस्थिति अुत्पन्न होती है, तब वह शक्ति अुसका विरोध करनेके लिअे कटिबद्ध हो जाती है। अिस प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

आघातोंके विरुद्ध अपना स्वरूप कायम रखनेकी योग्यता जितनी अधिक होगी अुतना प्राण-विकास अधिक शुद्ध माना जायगा और

जितनी बलको अधिक प्रकट करनेकी योग्यता होगी अुतना प्राण-विकास अधिक बलवान माना जायगा। अिन दोनोंका प्रमाण जितना यथायोग्य होगा, अुतना ही विकास अधिक पूर्ण माना जायगा।

मिट्टीके ढेले पर घूसा मारे तो वह बदलेमे अितने जोरका आघात करता है कि हमारे हाथको चोट पहुचती है, परन्तु साथ ही ढेलेका अैसा चूरा हो जाता है कि अुसका मूल स्वरूप नष्ट हो जाता है। पानी पर घूसा मारे तो जवाबमे अुसका आघात अुतना प्रबल नही होता, परन्तु वह केवल थोडा अुछलकर फिर जैसेका तैसा हो जाता है। वायुका प्रत्याघात अिससे भी कम बलवान होता है, परन्तु वह न तो अितनी अुछलती है और न अुसके स्वरूपमे किसी तरहका परिवर्तन होता है। आकाश प्रत्याघात करता है, अैसा कहा भी नही जा सकता, अुसी तरह वह स्वय हिलता भी नही। पृथ्वीका बल देखनेमे बहुत जबरदस्त मालूम होता है, परन्तु अुसकी जीवन-शक्ति कम है। पानी अुसे काटकर अन्दर चला जाता है, वह क्षारोके अेक-अेक कणको अलग कर देता है और अुन्हे घुलाकर अदृश्य बना देता है। वायु तो पानीमे भी प्रवेश कर जाती है, और आकाश सबको व्याप्त कर लेता है। बल जितना अधिक सूक्ष्म होगा अुतनी अुसकी शुद्धि अधिक होगी, परन्तु बाहरी दिखाव कम होगा। बल जितना अधिक स्थूल होगा अुतना अुसका बाहरी दिखाव अधिक होगा, परन्तु शुद्धि कम होगी। पदार्थकी रचना जैसे जैसे व्यवस्थित और सूक्ष्म बनती जायगी, वैसे वैसे अुसका प्राण अधिक शुद्ध और बलवान बनेगा। बल जितना अधिक सूक्ष्म होगा, अुतना दिखावमे कम और अधिक अदृश्य रूपमे काम करनेवाला होगा।

जिस प्रकार जड सृष्टिमे यह नियम काम करता दिखाअी देता है, अुसी प्रकार चेतन सृष्टिमें भी काम करता है। हाथीका स्थूल बल दिखनेमे मनुष्यसे बहुत ज्यादा होता है, फिर भी मनुष्य हाथीका स्वामी है, हाथीका शरीर सिंहसे बहुत बडा होता है, परन्तु सिंहका बल अधिक सूक्ष्म होनेसे वह हाथियोके समूहकी भी परवाह नही करता।

मनुष्य मनुष्यके बीच पाये जानेवाले भेदमे भी यही नियम है। अेक तिनके जैसा दुबला-पतला मनुष्य अनेक मनुष्योको घबरा सकता है, अनेकोको अपने वशमे रख सकता है। जड मनुष्य जिस रिवाजको पकड रखता है, अुसे न छोडनेके लिअे काफी बल काममे लेता है, परन्तु जब हार जाता है तो अिस तरह नये रिवाजके वश हो जाता है कि अुसे भी अुतने ही आग्रहसे पकड रखता है।

यह प्राण-विकासका विशेष विवेचन हुआ। परन्तु यह प्रश्न तो खडा ही है कि अैसे विकासका साधन क्या है।

यत्रोके विकासमे हम देखते है कि ज्यो-ज्यो अुनमे सुधार होता जाता है, त्यो-त्यो अुनके भीतर अुन्हे व्यवस्थित रखनेकी क्रियाअे, जिनके लिअे पहले मनुष्यको सावधानी रखनी पडती थी, अपने-आप होने लगती है। यत्र केवल हमारा काम ही नही करते, परन्तु अुसका नियमन भी अपने-आप करते है। आजके अेजिनमे भाप प्रवेश करनेका द्वार जब खुलना चाहिये तब वह अपने-आप खुल जाता है, और जब अुसे बन्द होना चाहिये तब वह अपने-आप बन्द हो जाता है। तेलके छिद्रमे तेल अपने-आप नियमित रूपमे टपकता रहता है। कोअी चीज कम-ज्यादा हो तो अुसका सकेत वह कर देता है। यत्र जितने अधिक आत्म-नियामक (automatic) होते है, अुतने ही वे यत्रकलाकी दृष्टिसे अधिक विकसित माने जाते है।

जीवनके अधिकाधिक विकासमे भी अैसा ही होता है। कुछ प्राणियोके चित्तमें अिच्छा अुत्पन्न होते ही वे तुरन्त अुसके वश होकर क्रिया करते है। धीरे-धीरे वह चित्त विशेष व्यवस्थित बनता है; वह क्रियाको रोक सकता है, अिच्छाका परीक्षण कर सकता है, स्वय अपना नियमन कर सकता है, अपनेको पहचान भी सकता है। अैसा कहा जा सकता है कि ज्यो-ज्यो चित्तमे आत्म-नियमनकी शक्ति बढती है, त्यो-त्यो अुसका विकास अधिक होता है।

हम देख सकते है कि आत्म-नियमनकी यह शक्ति निरोध या सयमसे अुत्पन्न होती है। अिच्छाके अुद्भवके साथ ही क्रियाकी प्रेरणा होती है; अिस क्रियाकी प्रेरणाका किसी भी कारणसे सयम या

निरोध हुआ कि तुरन्त वह शक्ति कोअी दूसरा मार्ग ग्रहण करती है। यह सयम या निरोध अिच्छाके विरुद्ध किसी प्रबल कारणसे हो तो वह मृत्युकी ओर भी ले जा सकता हे। परन्तु अुसमे अिच्छा मिल जाय तो वह विकासके मार्ग पर ले जाता है।

अिस प्रकार यह देखा जा सकेगा कि विकासका अेक कारण सयम है। अुदाहरणोके साथ हम अिस पर विशेष विचार करे।

बिल्ली और बाघ अथवा वानर और मनुष्यमे अेक भेद यह दिखाअी देगा कि बिल्ली और वानरमे बाघ और मनुष्यकी अपेक्षा काम-विकार अधिक जल्दी अुत्पन्न होता है। बिल्ली और बाघके बारेमे हमारा अवलोकन नही है, परन्तु वानरके बारेमे हम जानते हैं। किसी भी क्रियाकी प्रेरणा होने पर क्रियाको रोकनेकी शक्ति वानरकी अपेक्षा मनुष्यमे बहुत अधिक होती है। वानरके स्नायुओमे बहुत बल होता है, चपलता होती है, किन्तु अुसमे आत्म-नियमनका विकास नही हुआ है।

अेक ही जातिके परन्तु कदमे और आयु-मर्यादामे भेद रखनेवाले प्राणियोको देखनेसे पता चलेगा कि बडे और दीर्घायुषी प्राणीमे विकारोको वशमे करनेकी शक्ति अधिक होती है, अुनकी पौगण्डावस्था (puberty) देरसे आरभ होती है और लम्बे समय तक टिकी रहती है। अिस पौगण्डावस्थाके समयमे प्राणियोके कद, बल और आयुकी वृद्धि बडी तेजीसे होती देखनेमे आती है। अिस समयमे जो प्राणी अपनी प्रेरणाओको अधिकसे अधिक टिकाये रख सकता है, अुसका अनेक प्रकारका विकास अधिक तेजीसे होता है।

साधारणतया सब प्रकारका आत्म-नियमन, पौगण्डावस्थाके कालमे वीर्यकी स्थिरता और अूर्ध्वगमन — ये विकासके मुख्य आन्तरिक कारण कहे जा सकते हैं।

आत्म-नियमन और पौगण्डावस्थाका ब्रह्मचर्य कद-विकास, आयु-विकास और स्थूल अिन्द्रिय-विकास तथा प्राण-विकासके प्रत्यक्ष आन्तरिक कारण है, जब कि अिन्द्रिय-शक्तिके विकास, सूक्ष्म प्राण-विकास, चित्त-विकास और परिवर्तन-विकासके वे परोक्ष आन्तरिक कारण हैं।

पौगण्डावस्थाके वादका ब्रह्मचर्य पहले प्रकारकी शक्तियोको टिकाये रखनेमे सहायक होता है, और दूसरे प्रकारके विकासको वढानेका आवश्यक कारण वनता है।

जिनका ब्रह्मचर्य भलीभाति स्थिर रहता है, अुनकी दीर्घायु, जीवनके अन्त तक अिन्द्रियोकी कार्य करनेकी शक्ति आदि टिकी रहती है, अिसका प्रमाण मिलना कठिन नही है।

मनुष्यके विकासमे अेक अन्य वडा और आन्तरिक कारण विचार है। यहा विचारका अर्थ किसी भी वस्तु या क्रियाके विषयमे 'कैसे ?' और 'क्यो ?' का प्रश्न किया जा सकता है। जीवनमे कअी वातोको हम गृहीत मानकर चलते है, अनेक क्रियाअे केवल रिवाज या आदतके वश होकर करते है। जव अिन मान्यताओ और क्रियाओके औचित्यके विषयमे शका अुत्पन्न होती है, तव विचारकी जागृति पैदा होती है। क्रोधका त्याग करना चाहिये, जीवहिसा अधर्म है, व्यभिचार पाप है; सूर्य और चन्द्रका ग्रहण राहुके वैरसे होता है, जपयोग श्रेष्ठ है, अस्पृश्यता कलक है — आदि आदि वातोमे 'क्यो' और 'कैसे' के प्रश्न अुठे और अुनके विषयमे स्वतत्र रूपसे सोचनेकी प्रवृत्ति हो तो अुसे विचार कहा जायगा। अिस प्रकार विचारके अुठनेमे मनुष्यका अपना अवलोकन कारणभूत होगा या दूसरोकी प्रेरणा, अुस विचारके फलस्वरूप मनुष्यकी मूल मान्यता स्थिर वनेगी अथवा अुसमे परिवर्तन होगा, तथा अुस विचारमे तर्कदोष होगा, अवलोकन-दोष होगा या वह शुद्ध होगा — यह नही कहा जा सकता। फिर भी अुसकी प्रकृतिको दृढ वनाने या वदलनेमे अिस विचारका वडा हाथ होगा। कोअी विचार मनुष्यके जीवन-सबधी दृष्टिकोणको पूरी तरह वदल डालनेवाला होता है। अुसके कारण मनुष्यका सपूर्ण जीवन जडमूलसे वदल जाता है। प्रत्येक वस्तु अव अुसे दूसरे ही रूपमे दिखने लगती है। जगत्को वह दूसरी ही दृष्टिमे देखने लगता है। अिस दृष्टि-परिवर्तनमे अुसके शरीर, मन, वुद्धि — सवमें परिवर्तन हो जाता है; अुसकी प्रवृत्तियोमे भी परिवर्तन हो जाता है। रत्नाकर जैसा लुटेरा वाल्मीकि वन जाता है। जिसे लोग पवित्र आचरणवाला मानते है, वह दुराचारी वन जाता

है। कर्ममे अुत्साह न रखनेवाला मनुष्य कर्ममे प्रवृत्त हो जाता है। और वडे बडे काम हाथमे लेनेवाला मनुष्य कर्म-सन्यासी हो जाता है। यह सब विचारका ही परिणाम है।*

ठडे पानीको चूल्हे पर गरम करनेके लिअे रखते है तव कुछ समय तक अुसकी अुष्णता बढती रहती है। ७० अश गरमी हो तो वह बढते बढते २१२ अश तक पहुचती है। अिसके वाद पानी अुबलने लगता है। हम अुसे चूल्हे पर रहने दे तो भी बादमे अुसकी अुष्णता २१२ से बढकर २१५ नही होती, वह अुबला करता है और भाप बनकर अुडता रहता है। पानीके गरम होनेकी जब चरम सीमा हो जाती है, तो अुसके बादकी गरमी अुसे भापका रूप देनेमे काम आती है। भापका रूप पानीसे अधिक सूक्ष्म होता है। अेक खास मर्यादाके बाद गरमी अुसके स्वरूपको अधिक सूक्ष्म बनाती है।

अिसी प्रकार ब्रह्मचर्य कुछ समय तक हमारे शरीर और अिन्द्रियोकी शक्तियोको स्थूल रूपमे बढाता है। पौगण्डावस्थामें वीर्यकी स्थिरता हमारी हड्डियो, रक्त आदिको बढाकर हमारे सारे अवयवोको बढाती है। पूर्वपरम्परा आदिके कारण हमारी कद बढानेवाली शक्तिकी सीमा आ जाती है। अुसके पश्चात् ब्रह्मचर्यका कोअी विशेप अुपयोग हो सकता है, यह खयालमे नही आता। क्योकि अुसका माप रुक जाता है। परन्तु अुसके बाद यदि वीर्य स्थिर रहे तो वह हमारा सूक्ष्म विकास करनेमे अुपयोगी होता है। हाथ ३० अिच लबा और १२ अिच परिधिवाला ही रहे तो भी अुसमे बल बढानेकी शक्ति आती है, आखे बडी नही होती, किन्तु अुनकी शक्ति सूक्ष्म होती है। मन, बुद्धि, स्मृति सबकी शक्ति बढती है। अिसका अर्थ यह हुआ कि अेक खास मर्यादाके पश्चात् ब्रह्मचर्य हमारी शक्तियोको सूक्ष्म और तेजस्वी बनाता है। अिस दृष्टिसे ब्रह्मचर्य प्राण-विकासका अेक प्रत्यक्ष या सीधा कारण है।

---

* दूसरे प्राणियोमें विचारका बिलकुल अभाव है, अैसा मानना ठीक नही। अनुभवसे वे भी समझदार बनते है, अर्थात् अुनमे भी थोडा विचार पैदा होता ही है। परन्तु यहा हमे केवल मनुष्यका ही विचार करना है।

परन्तु गुण-विकासके लिअे ब्रह्मचर्यका होना ही काफी नही है। क्रोधी मनुष्य ब्रह्मचारी हो तो सभवत वह अधिक क्रोधी बनेगा, लोभी मनुष्य ब्रह्मचारी हो तो अुसका लोभ बढ सकता है, कायर ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यके होते हुअे भी कायर ही रहता है, अैसा भी देखनेमे आता है। अिसका कारण यह है कि गुणके विषयमे मनुष्यकी जो मूल शक्ति होती है अुसे ब्रह्मचर्य पराकाष्ठाको पहुचा देता है, परन्तु गुणमे परिवर्तन करनेके लिअे केवल ब्रह्मचर्य पर्याप्त नही होता। अुसके लिअे तो विचार और दूसरे सयम ही मुख्य होते है।

विचार ब्रह्मचर्यकी तुलनामे अधिक सूक्ष्म शक्ति है। भावनाओको प्रेरित और विकसित करनेवाले मूल स्थानके साथ विचारका सबध है। विचार-भेद होनेसे भावनामे भेद होता है, और अुससे गुणमे भेद होता है।

अिस प्रकार बाह्य परिस्थितियोसे पैदा होनेवाले कारणोके अलावा विचार, ब्रह्मचर्य और सयम जैसे आन्तरिक कारणोका विकासमे कम हाथ नही होता। और विशेषत मनुष्यके गुण-विकास तथा बुद्धि-विकासके भेदोमे ये तीन कारण बहुत बलवान होते है।*

---

* गुण (अथवा दृढ बनी हुअी भावना) की अुत्पत्ति विचारसे होती है। बाह्य स्पर्श ज्ञानततुओ पर असर करते है, ज्ञानततु स्मृतिको जाग्रत करते है और किसी सहचारी विचारका स्मरण कराते है, अुस विचारसे ज्ञानततुओ पर प्रतिक्रिया होती है, अुस प्रतिक्रियाका असर स्नायुओ पर होता है, और यह असर भावनाके रूपमे पहचाना जाता है। अुदाहरणके लिअे, कोअी दु खी मनुष्य हमारी नजरमे आता है। वह दर्शन दु खका स्मरण कराता है। दु खकी स्मृति अैसा सहचारी भाव पैदा करती है कि यह अनिष्ट और दुर्भाग्यकी बात है तथा यह दु खी मनुष्य हमारे जैसा ही मनुष्य है, अुसकी प्रतिक्रिया ज्ञानततुओ पर होती है, और अुसके फलस्वरूप स्नायुओ पर जो असर होता है, अुसे हम दयाकी भावनाके नामसे पहचानते है। अिस भावनाका स्वभाव पड जाने पर वह गुण बन जाती है।

१६

जीवनमें आनंदका स्थान

मेरे निबधोकी पाडुलिपि पढकर अेक मित्रने मुझसे यह प्रश्न पूछा कि आपके विचारसे जीवनमे आनन्दका कोअी स्थान है या नही ? अुन्नतिकी दृष्टिसे या सत्यकी शोधकी दृष्टिसे आपने काल्पनिक कहानियो, साहित्य, सगीत, कला आदि पर टीका की है, परन्तु क्या आनन्दमे कोअी अुन्नतिकारक बल नही है ? और अिसलिअे बालकको आनन्दका अनुभव करानेके लिअे ही शिक्षकको कोअी प्रयत्न करना चाहिये या नही ?

अिस विषयका विचार करनेके लिअे आनन्दकी भावनाका थोडा विश्लेपण करना होगा, अैसा समझकर अिस विषय पर मै अेक स्वतत्र लेख लिखनेको प्रेरित हुआ हू।

सामान्य भापामे हम अेक ही प्रकारकी भावनाको आनन्दके नामसे नही पहचानते। बालक माताको देखकर आनन्दित होता है, अुसी तरह मिश्रीका डला मिलनेसे भी अुसे आनन्द होता है, मनुष्यको अित्र लगानेसे आनन्द होता है, खुली हवामे घुमनेसे अथवा थक जानेके वाद स्नान करनेसे आनन्द होता है, ताजमहल देखनेसे आनन्द होता है, अुसी तरह अुसे व्रत करनेसे, पूज्य पुरुपके दर्शनसे, देव-दर्शनसे या तीर्थमे स्नान करनेसे आनन्द होता है। 'भद्रभद्र'* जैसी पुस्तक पढनेसे भी आनन्द होता है और किसी भूखेको अन्न देनेसे भी आनन्द होता है। कुछ लोगोको जीभर कर क्रूरता वतानेमे भी आनन्द आता है, और

---

* यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्री रमणभाअी नीलकठकी लोकप्रिय रचना है। अिसके मुख्य पात्रका नाम भी भद्रभद्र है। अिसमे लेखकने अग्रेजी सभ्यताको हिन्दू समाजमे दाखिल करनेका विरोध करनेवाले कट्टर सनातनी लोगोका मजाक अुडाया है।

व्यसनीको व्यसनके सेवनसे भी आनन्द होता है। स्त्रियोको विवाहादि प्रसगोसे तथा सुन्दर वस्त्र या आभूपण पहननेसे आनन्द होता है और बालक या पतिका मुह देखनेमे भी आनन्द होता है। अैसे विभिन्न अनुभवोके कारण जो भावनाअे पैदा होती है, अुन सबको हम आनन्द नाम देते है।

सच पूछा जाय तो ये सारी भावनाये समान नही है, और अिनमे से कुछ अच्छी है, कुछ वहुत मामूली हैं और कुछ तो निश्चित रूपसे वुरी है। फिर भी अिन सारी भावनाओमे अेक अग समान हैं और वह है अनुभव करनेवालेको थोडे समय या अधिक समयके लिअे खुश करना।

अिसलिअे प्रश्न यह अुठता है कि आनन्दके कौनसे प्रकारको जीवनमे स्थान देना अुचित कहा जायगा ?

पानीके स्थिर होने पर यदि हम यह कहे कि वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमे है, तो जब वह तरगाकार हो तव यह कहा जा सकता है कि वह अस्वाभाविक स्थितिमे है। तरगसे पानीमे दो प्रकारके विकार अुत्पन्न होते है अेक अुसे अपनी स्वाभाविक सतहसे अूचा अुठानेवाला और दूसरा अुससे नीचे ले जानेवाला। अिन दोनो प्रकारके विकारोका विना रुके सतत जारी रहनेका नाम तरग है। पानी अपनी सतहसे अूचा तो चढे परन्तु नीचे न अुतरे, अिस प्रकार अुसमे तरग अुत्पन्न होना असभव है। वह जितना अूचा चढेगा, अुतना स्वाभाविक स्थितिसे नीचे अवश्य अुतरेगा। परन्तु प्रत्येक तरग अपनी गतिके दौरानमे अेक क्षणके लिअे पानीको अुसकी स्वाभाविक स्थितिमे लाती है। अूपरसे नीचे गिरते हुअे अथवा नीचेसे अूपर चढते हुअे पानीको क्षणभरके लिअे अपनी स्वाभाविक स्थितिमे से गुजरना ही पडता है। पानी सतत तरगाकार होता ही रहे, तो भी अुसे थोडे थोडे समयके अन्तरके वाद अपनी स्वाभाविक स्थितिसे गुजरना पडता है।

पानीके साथ चित्त और भावनाओके सम्बन्धकी तुलना की जा सकती है। भावनायें चित्तरूपी जलमे अुठनेवाली तरगे है। चित्तकी

निश्चल दशाको अुसकी स्वाभाविक सतह कहें तो भावनाओंको अुस सतहकी खलबलाहट कहा जा सकता है। यह खलबलाहट चित्त-जलको सतहसे अूपर भी ले जाती है और नीचे भी अुतारती है, और थोडे थोडे समयके अन्तरके बाद अुसके प्रत्येक भागको स्वाभाविक दशामें भी लाती है। चित्तकी स्वाभाविक दशाको किसी भावनाका नाम देना हो तो वह केवल प्रसन्नताकी स्थिति कही जा सकती है, अुसमें न तो हर्षका अुभार है और न शोकका गड्ढा है। अुसमें विराम — विश्रान्ति — है, और थके हुअे मनुष्यको विश्रामसे जितना और जैसा सुख अनुभव होता है, अुतना और वैसा ही सुख अिस शुद्ध प्रसन्नतामें है।

चित्तकी अैसी प्रसन्नताको ही यदि आनन्द कहा जाय तो वैसा आनन्द चित्तकी सहज स्थिति है, अन्य सारी भावनाओंको आनन्दका नाम दिया जाय या दूसरी किसी भावनाका नाम दिया जाय — वे हैं सब विकार ही।

प्रसन्नता चित्तका स्वरूपभूत धर्म है, वह बाह्य परिस्थितियोंसे निर्माण नही होता है, चित्तके भीतर ही रहता है। प्रसन्नताके आधार पर ही चित्तमें अन्य सारी भावनाओंका अुदय-अस्त होता है। थोडे थोडे समयके अन्तरके बाद वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें से गुजरता है।

फिर भी प्रयत्नके बिना यह हमारे ध्यानमें नही आता। जिस प्रकार तरंग-रहित समुद्र हम नही देखते, अुसी प्रकार निश्चल चित्त भी हम साधारणत नही देखते। समुद्रमें तरंगोंके निरन्तर अुठते रहने पर भी जिस प्रकार अुसके पानीकी प्रत्येक बूंद थोडे थोडे समयके अन्तरके बाद अपनी स्वाभाविक सतह पर आ जाती है, अुसी प्रकार चित्त भी थोडे थोडे समयके अन्तरके बाद अपनी सहज प्रसन्नताकी भूमिका पर आ जाता है। यह ध्यानमें न आनेका कारण यह है कि हमारा अवलोकन गहरा नही होता, तथा चित्तकी तरंगोंकी गति जितनी अधिक अटपटी और विविध है कि अुसका पृथक्करण नही हो सकता। फिर, बहुत बार चित्तकी स्वाभाविक दशाका ताल बहुत लम्बे समयके बाद और क्षणभरके लिअे ही आता है। चित्तके अटपटेपनमें ही अितनी मोहकता है कि साधारणत. अुसकी सहजता देखनेकी अिच्छा भी नही होती, जिस तरह

कि सामान्य मनुष्यको समुद्रकी अुत्ताल तरंगें देखनेका आनन्द लेनेमे अिस बातका निरीक्षण करनेकी अिच्छा ही नही होती कि समुद्रका पानी अपनी स्वाभाविक दशामे कब आता है। फिर, जिस प्रकार समुद्र पर अनेक स्थानोंसे अलग अलग ढगसे वायुका दवाव पड़नेके कारण सारा समुद्र अेक ही समयमे स्वाभाविक सतह पर नही आता, परन्तु अलग अलग बूंदे अलग अलग क्षणोमे अुस स्वाभाविक दशामे गुजरती हैं, अुसी प्रकार चित्त पर भी अनेक अिन्द्रियो द्वारा अनेक प्रकारके वल अेकसाथ असर डालते है। अिसके कारण चित्तके सब भाग अेक ही समय सहज स्थितिमें कठिन प्रयत्नके विना नही आ पाते; और अैसा प्रयत्न करनेवाले मनुष्य विरले ही होते हैं।

फिर भी चित्तका प्रत्येक भाग थोड़े थोडे समयके अन्तरके वाद अपनी सहज दशामें आता है, अिसीलिअे हमें अुस दशाकी कल्पना कर सकने लायक थोडा-वहुत अनुभव रहता है और अुस दशाको प्राप्त करनेके लिअे जाने-अनजाने हमारे प्रयत्न चलते रहते हैं।

✓ हम समुद्रकी तरंगे देखने वैठते है तव हमारा ध्यान अिस वातकी ओर ही होता है कि वे सतहसे कितनी अूची अुठती है, जिस समय अेक भाग अूचा चढा हुआ होता है, अुसी समय अुसका कुछ भाग और थोडे समयके वाद अुसका अूचा चढा हुआ भाग भी सतहसे अुतना ही नीचे अुतर जाता है। परन्तु अुस अुतारकी ओर ध्यान देनेकी हमारी अिच्छा ही नही होती। तरगोका चढाव ही हमारी आखोमें भर जाता है, अुतारकी ओर हमारा ध्यान भी नही जाता। अिसी प्रकार चित्तमें अेक प्रकारकी भावनाका चढाव आनेके कुछ समय पश्चात् विरुद्ध और अुससे अुलटी भावनाका अुतार आये विना नही रहता। परन्तु जव तक चढती हुअी भावनाके प्रति हमारा पक्षपात होता है, तव तक हमे अुतरती हुअी या स्वाभाविकताकी भावना पर ध्यान देनेकी अिच्छा नही होती। हमारा ध्यान जवरन् अुसकी ओर खिंचता है, तव अुभरती हुअी भावनाके प्रति हम चित्तको हर तरहसे खीचनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह नही समझ पाते कि वह प्रयत्न ही वादमे अुतरती हुअी भावनाकी तरफ जानेमें कारणभूत होता है।

अत. जो भावनाये हमे प्रिय लगती है अुन्हे आनन्दकी भावनायें कहें, तो वैसी प्रत्येक भावना अपने साथ जुड़ी हुअी अेक शोककी भावनाका बीज होती है।

अिस तरह कमसे कम अेक प्रकारका आनन्द और अुसका जोडी-दार अेक प्रकारका शोक—अिन दोके बीच हरअेक प्राणीका चित्त अेकसा झूलता रहता है। प्रसन्नता अिनमे से अेकमें भी नही होती, परतु दोके बीचमे होती है। अिसका ताल जितने समय बाद आता है अुसी पर प्राणीकी वास्तविक शान्तिका आधार रहता है। चित्तकी प्रसन्नताका ताल बार-बार आवे अैसा प्रयत्न करना वाछनीय है।

तात्पर्य यह कि चित्तकी प्रसन्नता बाहरसे निर्माण होनेवाली कोअी वस्तु नही, वह चित्तका आन्तरिक धर्म ही है। परतु हमारे चित्तके तार सदा हिलते ही रहते है, जिस प्रयत्नसे यह गति अैसी नियमित हो कि चित्त बार-बार अपनी स्वाभाविक स्थितिमे आता रहे, वह प्रयत्न प्रसन्नता लानेके लिअे अनुकूल कहा जायगा।

परतु प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिअे किया जानेवाला प्रत्येक प्रयत्न यह अुद्देश्य पूरा करनेमे समान रूपसे सफल नही होता। अिसका अेक कारण तो हमारे प्रयत्नकी गलत दिशा ही होती है। प्रसन्नताको भीतरसे देखने और विचारकी सहायतासे विकसित करनेके बजाय हम बाहरसे देखने और बाहरी वस्तुओमें से प्राप्त करनेका प्रयत्न करते है। हम भूल जाते है कि बाहरी वस्तुओमें हमें बहुत बार जो आनन्द मालूम होता है, अुसका कारण हमारे चित्तकी आन्तरिक प्रसन्नता होती है। वह आनन्द वस्तुकी किसी मोहकताके कारण नही मालूम होता।

मेरे देखनेमें अैसा आया है कि कुछ बाहरसे विनोदी और खुश-मिजाज माने जानेवाले लोगोके हृदयकी जाच करे तो वह किन्ही भारी शोकके भारसे दबा हुआ मालूम होता है। वे दूसरोको खूब हसा सकते है, स्वय भी अुतने समय तक आनन्द-मग्न मालूम होते है, परतु अुनके हृदयके भीतर तो मानो होली जलती रहती है। अिसके विपरीत, कुछ मानो 'काजीजी दुबले क्यो, शहरके अदेशेसे' कहावतके

अनुसार चिन्ताका भार अपने सिर लेकर घूमनेवाले, गपशप मारनेके लिअे अेकत्र हुअे मंडलोमे शायद ही बैठनेवाले और जीवनके गभीर पहलूका ही विचार करनेवाले लोगोमें अैसी प्रसन्नता देखनेमे आती है, जिसकी अुन विनोदी और खुश-मिजाज लोगोमें गध भी नही होती।

मैंने सुना है कि पहले प्रकारके लोगोमे अेक फ्रेंच विदूषकका अुदाहरण प्रसिद्ध है। अतिशय विनोदी होनेके कारण वह विनोदके खेल करके लोगोको खुश करता और अुससे खूब पैसा कमाता था। मनोरंजनके लिअे लोग भारी फीस देकर अुसके प्रयोग देखने जाते थे। वही विदूषक अेक बार अेक डॉक्टरके पास गया, जो अुसे जानता नही था, और कहने लगा कि मुझे जीवनमे कोअी रस नही मालूम होता, अिसलिअे आप जाच कर देखिये कि मुझे क्या हो गया है। डॉक्टरने अुसे जांचकर कहा कि आपको कोअी रोग नही है, परतु आपके चित्त पर शोकका भार है। अुसे दूर करनेके लिअे आपको थोड़ा मनोरजन करना चाहिये। अैसा कहकर डॉक्टरने अुसे अुसीका नाम देकर कहा कि आप फला विदूषकके खेल देखने थोडे दिन जाय तो आपका मन प्रसन्न हो जायगा। जब अुसने डॉक्टरसे कहा कि वह प्रसिद्ध विदूषक तो मैं ही हूं, तब डॉक्टरके आश्चर्यका पार नही रहा। प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास अैसे अनेक अुदाहरण ढूढ सकता है।

अिससे अुलटा अुदाहरण गाधीजीका है। अुनकी गिनती गभीर मनुष्योमे की जायगी। अुनके लेखोमें कभी कभी विनोदकी झाकी देखनेको मिल जाती है, परतु साधारणत अुनके लेख गभीर कहे जायेगे। और कुछ लोगोको तो अुनमे अतिशय गभीरता भी मालूम हो सकती है। कहावतके काजीको केवल सारे शहरकी ही चिन्ता थी, किन्तु गाधीजी तो दिनरात सारे देशकी चिन्ता करते रहते हैं, फिर भी अुनके सहवासमें आनेवाले लोगोने शायद ही कभी अुन्हें प्रसन्नतासे रहित और दूसरोको प्रसन्न किये विना विदा करते देखा होगा। गाधीजीके पास बैठनेवालोको बार-बार अुनके या दूसरे लोगोके अट्टहासकी आवाज सुनाअी दिये विना नही रहेगी। साधारणतया हम मानते हैं कि कटाक्ष (satire), शब्दचातुरी (wit) और हास्य (humour) — ये तीन

हास्यरसके साधन है। अिन तीनमे से अेक भी प्रकारकी भाषा-चातुरीमे गाधीजीके पारगत होनेकी ख्याति नही है। फिर भी विनोदी लेखकोकी अपेक्षा अुनके मण्डलमे अधिक हास्य खिलता रहता है। यह प्रसन्नता शोकके बीच भी अुनके चित्तमे अनुभव होनेवाली प्रसन्नतासे ही अुत्पन्न होती है। शब्दो आदि बाह्य वस्तुओका हाथ अुसमें बहुत कम होता है।

अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य सदा दो जुडी हुअी भावनाओका अनुभव करता है; परतु अुनमें से अेक भावनाका ससारको परिचय होता है और दूसरी भावनाको अुसके समीपके लोग ही जान सकते है। यही कारण है कि जगत् अुसे जिस गुणके लिअे प्रसिद्धि देता है, अुससे विरोधी गुण अुसके पासके लोग अुसमे देखते है।

अिसीलिअे बहुत बार हम देखते है कि सब लोग जिसे समझदार, भला, हसमुख, परिश्रमी आदि गुणोवाला बताते है, अुसे समीपके लोक मूर्ख, निष्ठुर, चिडचिडा, घरकी परवाह न करनेवाला कहते हैं। समाजको जो मनुष्य कठोर मालूम होता है, वही समीपके लोगोको प्रेमल और ममतालु मालूम होता है। मनुष्य बाह्य समाजमे यदि अपने स्वभावका अेक ही पहलू बताया करे तो अुस स्वभावका अुलटा पहलू अुसके व्यक्तिगत जीवनमे प्रकट हो जाता है। अत्यन्त शुद्ध चित्तका मनुष्य ही भावनाकी दोनो सीमाये सबके सामने समान रूपमे प्रकट करता है।

भीतर प्रसन्नताका अनुभव हो रहा हो तब बाह्य सृष्टिके प्रति हमारी भावना — हमारा आनन्द या हमारा शोक — और भीतरकी प्रसन्नताका ताल खो बैठे हो तब कृत्रिम अुपायोसे आनदित होनेका प्रयत्न — अिन दोनोके बीचका भेद हम थोडे विचारसे जान सकते है।

भीतरी प्रसन्नताका ताल अनुभव करनेके बाद जब तक अुसके स्मरणका असर रहता है तब तक कृतार्थताकी — धन्यताकी — तृप्तिकी — भावना अुठती रहती है। यदि अैसे मनुष्यकी क्रियाशक्ति बलवान हो, तो वह अपनी प्रसन्नताको बाहर प्रकट करनेका और अुसकी छूत

फैलानेका प्रयत्न करता है। वह वाह्य सृष्टिके रूप, रग अथवा गुणसे आकर्षित नही होता, परतु रूप, रग अथवा गुणका विचार अुठे बिना ही सारी बाह्य सृष्टि अुसे सुन्दर मालूम होती है। बाहरकी सचेतन सृष्टिके प्रति अुसका भाव थोडी-वहुत गुद्धिवाले प्रेमका होता है।

अिसके कुछ अुदाहरण मै यहा देता हू।

वालकको अपनी प्रसन्नताका ताल मिल जाता है, तब अपनी माको देखकर वह हस पड़ता है, अुससे मिलनेके लिअे दौडता है, माके प्रति अुसका प्रेम अुमड पडता है। अिस प्रेमके पीछे अिस बातका विचार ही नही होता कि मा सुन्दर है या कुरूप, लाड लडानेवाली है या लडनेवाली, गरीब है या अमीर। 'मै प्रसन्न हू, और यह **मेरी** मा है'—ये दो बाते ही अुसे आनन्दसे भर देनेके लिअे काफी होती है। अिस प्रसन्नताके अनुभवसे अुत्पन्न हुअी कृतार्थताके कारण अेक अक्षरका 'मा' शब्द ही तथा माका अुसे प्रोत्साहन देनेवाला हास्य ही 'मेरा जीवन धन्य है' की भावना वालकमें पैदा करनेके लिअे काफी होता है। अिस धन्यताके अवसर पर जगत्की अत्यन्त आकर्पक वस्तु भी अुसके रग, रूप अथवा गुणके कारण वालकको अधिक प्रिय नही लग सकती।

परतु जव अिस प्रसन्नताका ताल खो जाता है, तब वालक केवल मातामे से ही अिस रसके घूट नही पी सकता। वही मा अनेक तरहसे अुसे मनाने—समझाने—का प्रयत्न करती है तो भी वालकको कृतार्थता—धन्यता—का अनुभव नही होता। अुस समय हम सव वडे लोग तुरन्त अुसका ताल अुसे खोजकर दे नही सकते, अिसलिअे अिन्द्रियोको ललचानेवाले कुछ अुपायोसे अुसे वहलाने या वहकानेका प्रयत्न करते हैं। सुन्दर खिलौना या चित्र वताकर, मिश्रीकी डली देकर, घटोकी आवाज सुनाकर, अेकाध 'चिडा-चिडीकी कहानी' कहकर या अैसे ही किसी अन्य अुपायसे हम अुसे खुश करनेका प्रयत्न करते है। अिसके परिणामस्वरूप वह अेक प्रकारके तनावके अनुभवमे से दूसरे प्रकारके तनावकी ओर खिचता है। कभी वह अनु-भव पहली ही वार होनेसे, कभी अुस अनुभवकी अचानकतासे, तो कभी

अुसके साथ रागात्मक भावनाका पूर्व-सस्कार होनेसे बालककी पहली भावनाको हम भुला सकते है, अुसे खुश कर सकते हैं और अुतनेसे हम सतोष मान लेते है तथा धीरे धीरे अैसे ही प्रकारोसे सतोष माननेकी अुसे आदत डालते हैं। अिसमे आनन्दके नामसे पहचानी जाने-वाली किसी भावनाको अुत्तेजन जरूर मिलता है, परतु प्रसन्नतासे वह सर्वथा भिन्न होती है। अुसमे कृतार्थता — धन्यता — तृप्ति — का अनुभव नही होता। अेक खिलौना अनेक बार बालकको रिझा नही पाता, मिश्रीकी अेक डलीसे हमेशा काम नही बनता, अेक कहानी कहनेके बाद अुलटी दूसरी कहानी सुननेकी प्यास बढती है। क्योकि आन्तरिक प्रसन्नताका ताल मिले बिना ये सब बाह्य अुपाय मृत्युकालके ठडेपनको औषधि मलकर दूर करनेके प्रयत्न जैसे है।

जो बात छोटे बालकके लिअे सच है, वही हम सबके लिअे भी सच है। जब प्रसन्नता भीतरसे अुत्पन्न होती है, तब जिस चेतन-अचेतन पदार्थके साथ हमारा ममत्व बधा होता है अुसका रूप, रग अथवा गुण कैसे ही क्यो न हो, वह हमें प्रिय ही मालूम होता है। अुस समय अुसका सबध हमें सुखकी वेदना करानेवाला है या दु खकी, अिसकी हम परवाह नही करते। अैसी कौनसी भूमि है जो अुसके निवासीको 'स्वर्गादपि गरीयसी' नही लगती? राजपूतानेका रेगिस्तान किसी राजपूतको अुतना ही प्रिय होता है, जितना कि गुजरातीको बगीचे जैसा हराभरा गुजरात। हम गाते जरूर है कि·

'कहा हिमालय होगा अैसा,
कहा पुण्य पावन गगा?'

परतु वह हिमालय भारतसे अुडकर चीनमे चला जाय, अथवा युरोपका आल्प्स पर्वत अुससे अधिक अूचा हो जाय और गगा अफ्रीकामे चली जाय तथा अुसकी जगह कोअी चीनकी नदी आकर बहने लगे, तो भी अुस समयका भारत हमे कम प्रिय नही मालूम होगा। अिसका कारण यह है कि हिमालय या गगाके कारण हमें भारत श्रेष्ठ भूमि नहीं लगता, बल्कि भारतके साथ हमारा ममत्वका सबध अुसे हमारी दृष्टिमें प्रिय बनाता है, और अिस भारतके साथ हिमालय और गगाका सबंध

होनेसे वे भी हमे प्रिय लगते है। हिमालय अथवा गगाके प्रति हमारा आदर अुसकी अुच्चतमता अथवा विशालताके कारण नही, बल्कि अिस-लिअे है कि वह हमारे देशमे है।

अिस देशके प्रति जब तक मेरे मनमे ममत्वका भाव बना रहता है, तब तक अिसके साथ सबध रखनेके कारण मुझे सुख हो या दु ख, मेरी समृद्धि बढे या मुझ पर विपत्तिके बादल टूट पडे, अुसके खातिर मुझे मरना ही क्यो न पडे, तो भी अिन सबमे मुझे धन्यताका ही अनुभव होता है। क्योंकि मेरे भीतरकी प्रसन्नताके तालमे से वह प्रेम और ममता अुत्पन्न हुअी है।*

परतु जब किसी कारणसे मै अपनी प्रसन्नता खो बैठता हू, तब अपने आचरणसे ही मुझे सतोप नही मिलता। फिर मै हिमालय, काश्मीर, महाबलेश्वर या मेरा वतन छोडकर अन्य किसी स्थान पर जाना चाहता हूं। परंतु अुन अुन स्थानोके साथ मै ममत्व नही बाध सकता, अिसलिअे अुनके रूप-रगके सौन्दर्यसे आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न करता हू। मेरी भीतरी प्रसन्नता चली गअी है, अिसलिअे मै बाहरकी सुन्दरताको ध्यानपूर्वक देखता हू। अपनी प्रसन्नताके अभावमें सामान्य वस्तुमे रही सुन्दरताको देखनेकी मेरी बुद्धि जड़ बन जाती है। अिस

---

* अूपर कही बातका अर्थ यह होता है कि आन्तरिक प्रसन्नताका ताल मिल जाय, अुस समय बाह्य सृष्टिके जिस भागके साथ हमारा अह – ममत्वका सबध होता है, अुसके प्रति प्रेमका अनुभव होता है। ये दो ही बाते प्रेमके लिअे आवश्यक होती है। बाह्य पदार्थके रूप, रग या गुण अित्यादिकी प्रेमको अपेक्षा नही होती। जब अह – ममताका अत्यन्त नाश हो जाता है, तब प्रियताका भाव भी नही रहता। बाह्य सृष्टिका चित्तमे अत्यन्त अभाव कर दिया जाय तभी अैसा कहा जा सकता है। जब अहं – ममता सृष्टिके जितनी व्यापक बन जाती है, तब सारी सृष्टि अुसके रूप-कुरूप, गुण-दुर्गुण, कला-विकला, सुख-दु खके बाव-जूद प्रेमपात्र ही लगती है। यह अूपर बनाये हुअे चित्तकी ही व्याव-हारिक दशाकी स्थिति है।

लिअे जो वस्तु असामान्य होनेके कारण मेरी अिन्द्रियोको अपनी ओर खीचती है अुसे मैं सुन्दर मान लेता हू। अपनी प्रसन्नताके कालमे मेरा कपासका खेत ही मुझे सतोप देता है। परतु प्रसन्नताके अभावमें काश्मीरका केसरका खेत देखनेके लिअे मैं तडपता हू, जिसकी चौकीदारी बिजलीके दीये जलाकर की जाती है।

अिसी तरह प्रसन्नताके कालमे कौनसी माको अपना वालक सबसे अच्छा नही लगता? वह बालक काला है या गोरा, रोगी है या नीरोग, सुडौल है या बेडौल, सर्वांग है या विकलाग, बुद्धिशाली है या जड, गुणवान है या गुणहीन — किसीका भी माको खयाल नही होता। वालक दुराचारी हो तो भी अुसे किसी सद्गुणी वालकसे बदलनेका विचार अुसे असह्य लगता है। अपनी प्रसन्नताके ताल पर दृष्टि रखकर ही वह बालकको देखती है, बालकके रूप, रग अथवा गुण पर दृष्टि रखकर वह वालकको नही देखती।

पति या पत्नीको अपनी प्रसन्नताके कालमे अपने जीवन-साथीके रूप, रग या विद्वत्तादि गुणोका विचार भी मनमे नही अुठता। जब वे प्रसन्नताका अनुभव नही कर सकते और वफादारीकी भावना अुनमें कमजोर हो जाती है, तभी वे परस्त्री या पर-पुरुपके रूप-रगादिसे आकर्षित होते हैं।

दो घनिष्ठ मित्रोके गुणोमे बहुत बार अत्यधिक विरोध होता है। अैसा लगता है मानो दोनोके जीवनके ध्येय अेक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। फिर भी अुनकी घनिष्ठता टूटती नही। दोनो हृदयके भीतरकी स्वयभू प्रसन्नताका अनुभव करते हो, अुस समय वधी हुअी मित्रतामे ही अैसा होता है। जो मित्रता बाह्य निमित्तोसे निर्माण होती है, वह टूट सकती है।

'भावे कोअु सुन्दर कहो, भावे कोअु कारे
हमकु ये ही रूप विना और सकल खारे।'

परतु अिस अन्त प्रसन्नताके परिणामस्वरूप होनेवाली बाह्य क्रियाअें विविध प्रकारकी होती हैं। अुन सबमें प्रेम — अन्यता — का तत्त्व तो समान होता है, परतु प्रयोजन, विवेक-शक्ति, शिक्षण,

पूर्व-सस्कारो, दृढ कल्पनाओ आदिके भेदसे अुन क्रियाओके अनेक प्रकार हो जाते हैं।

अन्त प्रसन्नता अनुभव करनेवाले नागर नरसिह महेता हो, या मिल-मजदूर बालू हो, दोनोको समान रूपसे 'आजकी घडी सुन्दर' मालूम होती है। अैसे समय अपने किसी प्रियजनका सत्कार करनेका अवसर आये तो सत्कार करनेके ढगमे दोनोकी अच्छे-बुरेकी कल्पना, योग्यता और विवेक-बुद्धिके भेदके अनुसार फर्क पडता है। नागर नरसिह मेहताको अुस समय,

'हारे हु तो मोतीडाना चोक पुरावती,
मारा वालीडानी आरती अुतारती हो जी रे'*

अैसा ठाटवाट जमानेकी अिच्छा होती है और मिल-मजदूर बालू दीनभावसे अपनी स्वाभाविक सपत्ति अर्पण करके कृतार्थ होता है। वह

'मखमल मसुरियानी गादी नथी मारे,
फाटेली गोदडी मे छे पाथरी—'+

कह कर सतोष मानता है।

अन्त प्रसन्नताके कालमे मैं अकेला होअू तो अपने सस्कारोके अनुसार गीत गाअूगा, वाद्य बजाअूगा, पुस्तके पढूगा, चित्र बनाअूगा, कविता रचूगा, आकाशकी शोभा निहारूगा, खेतमे काम करूगा, कातूगा, घरको साफ-स्वच्छ करूगा या दूसरा कोअी काम करूगा। परतु यह सब मेरे अपने लिअे, स्वान्त सुखाय ही होगा। अिस बातकी मुझे परवाह नहीं होती कि कोअी मेरी अिन सारी क्रियाओकी कद्र या प्रशसा करे। मेरी क्रियाओको कोअी जानता है या नही, अिस बारेमे भी मैं लापरवाह रहता हू।

---

* मैं तो मोतीके चौक पूरती हू और अपने प्रियजनकी आरती अुतारती हू।

\+ मेरे पास मखमल और मशरूकी गादी नही है; मैंने तो अपनी फटी पुरानी गुदडी ही तुम्हारे लिअे बिछाअी है।

मुझे अिसकी आवश्यकता नही मालूम होती कि कोअी मेरा गीत सुने, या अुसे पूर्ण बनानेके लिअे कोअी तबले या सितार वजाये, मेरी रची हुअी कविता या चित्र कोअी देखे या प्रकाशित करे अथवा मेरी कलाका जगत्में प्रचार हो। कोअी मेरे रागको वेसुरा कहे या मेरी कविताको प्रतिभाहीन कहे, अिस विषयमे भी मै अुदासीन रहता हू। क्योकि ये सब काम मै किसी दूसरेके लिअे नही करता, मेरी अन्त प्रसन्नतामे से वे सहज रूपमे ही अुत्पन्न होते है।

अपनी अन्त प्रसन्नताके समय मै किसीके सपर्कमे आता हू, तव अपने सस्कारोके वश होकर मै विविध प्रकारकी क्रियाये करता हू, परतु अुन सबमें मेरा सपूर्ण हृदय अुडेला हुआ होता है। मेरा मुख्य अुद्देश्य अपनी प्रसन्नता व्यक्त करनेका अथवा सामनेवाले व्यक्तिको अुसकी छूत लगानेका होता है। यह छूत लगानेके सवधमे कभी मै सामनेवाले व्यक्तिके सस्कारो, कभी प्रयोजन और कभी मेरी विशेष योग्यताओके साथ अपने विवेकका मेल बैठानेकी दृष्टिसे आचरण करता हू। छोटा बालक हो और मेरे पास कहानियोका भडार हो, तो अुसे मै कहानिया सुनाकर प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता हू, कहानियोका भडार न हो अथवा अुस विषयमे मेरे विवेककी कसौटी कडी हो, तो मै दूसरा तरीका खोजता हू। माता-पिता हो तो मै अुनकी मनपसन्द या आवश्यक सेवा करनेके लिअे प्रेरित होता हू, कोअी मेहमान हो तो अुसकी और मेरी अच्छे-बुरेकी कल्पनाका मेल साधकर अुसकी आव-भगत करनेके लिअे प्रेरित होता हू, कोअी गरीव हो तो अुसे अपनी कोअी वस्तु देनेके लिअे प्रेरित होता हू, और कोअी वीमार हो तो अुसकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिअे प्रेरित होता हू। अिस तरह अपनी आन्तरिक प्रसन्नताके फलस्वरूप अिनमे से किसी न किसीके लाभके लिअे अपनी किसी वस्तु या शक्तिका किसी भी तरह त्याग करनेकी दृष्टिसे मेरी सारी क्रियाअे होती है। अिस त्यागके लिअे मुझे पश्चात्ताप नही होता, अिससे मेरी प्रसन्नता घटती नही, अुलटी मेरी कृतार्थता—धन्यता—की भावनामे वृद्धि होती है, भले वह त्याग कितना ही वडा क्यो न हो।

भीतरकी प्रसन्नताके अभावमें मेरी सारी क्रियायें अैसी ही हों, मेरा त्याग अितना ही बड़ा हो, तो भी वह सब अेक बोझ ही मालूम पड़ता है। समयपत्रमें कहानीका समय रखा गया है अिसलिअे बालकोंको कहानी कहनी पड़ती है, माता-पिताने आज्ञा की है अिसलिअे अुनके पैर दबाने बैठना पड़ता है, मेहमान आ गये हैं अिसलिअे अुनकी व्यवस्था करनी पड़ती है, पैसे मांगनेके लिअे आनेवाला व्यक्ति नेता है अिसलिअे चन्दा देना पड़ता है, बीमारको कहीं फेंक नहीं सकते अिसलिअे अुसकी सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ती है। अिन सब कार्योंमें कला, सामग्री, धन, श्रम आदिका कितना ही अधिक खर्च क्यों न किया गया हो, कितना ही अट्टहास क्यों न जोड़ा गया हो, फिर भी अुससे धन्यता — कृतार्थता — का अनुभव नहीं होता।

असलमें, भीतरकी प्रसन्नता और सामनेवाले व्यक्तिके प्रति रहे प्रेमके अुद्रेकमें से अपने अपने विवेक और अच्छे-बुरेकी कल्पनाके अनुसार दूसरोंके प्रति किये जानेवाले शिष्टाचारके तरीके पैदा होते हैं। परंतु जैसे-जैसे जीवनमें प्रसन्नताके ताल गुम होते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रसन्नता और प्रेमके अुद्रेकका स्थान शिष्टाचारकी क्रियाओंका बढ़ा हुआ आडंबर लेता जाता है। बादमें मेहमानके लिअे ५ व्यंजन बनाये जायं या ८५, राजाको ११ तोपोंकी सलामी दी जाय या १०१ की, अिसकी सूक्ष्म विधियां निश्चित करके अुनका शत-प्रतिशत पालन करनेवालेको और जिसके लिअे वे की जाती हैं अुसको संतोष मानना पड़ता है, — संतोषका अनुभव नहीं होता, परंतु संतोष मानना पड़ता है। ये सब कृत्रिम जीवनके कृत्रिम आनन्द हैं। अिन्हें हम आनन्द तो कहते हैं, परंतु अुनमें प्रसन्नता — कृतार्थता — धन्यता नहीं होती।

सच कहा जाय तो प्रसन्नता हर्ष अुत्पन्न करनेवाली भावनाओंके लिअे अधिक पक्षपात करनेवाली और शोक करानेवाली भावनाओंको नापसन्द करनेवाली नहीं होती; क्योंकि हर्ष और शोक दोनों चित्तकी तरंगके अनिवार्य पहलू होते हैं। हर्ष अुत्पन्न करनेवाली भावनायें प्रसन्नता लानेवाली तथा शोक अुत्पन्न करनेवाली भावनायें प्रसन्नताका

नाश करनेवाली हो, अैसा नही है। परतु अमुक प्रकारके हर्ष और शोक प्रसन्नताके तालको समान रूपसे निकट लानेवाले होते है।

गुरुजनोके प्रति मुदिता (आनन्द) का अुद्रेक, साथियो और जनताके प्रति मैत्रीका अुद्रेक, आश्रितो और प्राणियोके प्रति वात्सल्यका अुद्रेक, दूसरोको सुखी देखकर अथवा दूसरोके या अपने हाथो हुअे सत्कर्ममे सतोषकी अुत्पत्ति — ये प्रसन्नताके समीप रहनेवाले चित्तमें हर्ष अुत्पन्न करनेवाले पहलू है। दु खीको देखकर करुणाका अुद्भव, अपनी गलतियोके पश्चात्तापसे होनेवाला अनुतापका अुद्भव, किसीको पापमें डूबा हुआ देखकर अुसके प्रति अनुकपाका अुद्भव, अपराधीके प्रति क्षमावृत्तिका अुद्भव — ये सब प्रसन्नताके समीप रहनेवाले चित्तके शोक करानेवाले पहलू है।

अन्तमे बताअी गअी सारी भावनाओमें अुस क्षण शोकका अनुभव होता है, परतु वह शोक न हो अैसी हमारी अिच्छा नही होती। दु खीको देखकर करुणा अुत्पन्न न हो, पापका अनुताप न हो, अैसा नही लगता। क्योकि अुसीमे से प्रसन्नताका ताल हाथमें आता है।

अिसके अलावा, प्रसन्नतासे अुत्पन्न होनेवाला आनन्द किसी भी प्राणीको पीडा पहुचाये विना या बोझरूप बने विना (भोगना हो तो) भोगा जा सकता है, जब कि बाह्य वस्तुओके जरिये प्राप्त किये जानेवाले आनन्दमें वे वस्तुअे अुत्पन्न करने तथा अुनके द्वारा आनन्द भोगनेमें अनेक निर्दोष प्राणियोको कष्ट अुठाना पडता है। ताजमहल और अजन्ताकी गुफायें भले कला और सौन्दर्यके भडार हो, परतु अुस ताजमहलके पत्ते-पत्ते और फूल-फूलमे अेक जालिम बादशाह द्वारा हजारो गरीब कारीगरो और मजदूरोसे जबरन् कराअी गअी मजदूरीका त्रास भरा हुआ है, और अुसे देखनेवाले लोग देशके करोडो अधभूखोके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाला धन बरबाद करके ही वहा जा सकते है।

अजन्ताकी गुफायें भले बौद्धकालमे हमारे देशके कुछ साधुओ द्वारा कला-कौशलमे प्राप्त की हुअी पराकाष्ठाकी प्रतीक मालूम हो, परतु वे बुद्ध भगवानके आदर्शोंको खो बैठनेवाले, सामान्य कर्ममार्गके त्यागका

मूल कारण भूल बैठनेवाले तथा राष्ट्रके अन्न पर जीकर भिक्षुके वेशमें भी विलास और वैभव भोगनेवाले लोगोंकी भी प्रतीक हैं।

मैंने सुना है कि नअी दिल्लीमें बड़े भव्य और सुन्दर सरकारी भवन बन रहे हैं। मुगल बादशाहोंकी शान-शौकतको भी पीछे रख देनेवाली भव्यता और सुन्दरता अुनमें लानेका प्रयत्न किया जाय तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं होगी। परंतु वे सुन्दर भवन किस बातके स्मारक होंगे? क्या वे अेक कंगालसे कंगाल देश पर शासन करनेवाले लोगोंकी निष्ठुरता और अहंकारके ही स्मारक नहीं होंगे? जिस दिन मुगलोंकी तरह अंग्रेजोंका साम्राज्य भी धूलमें मिल जायगा, अुस दिन तो नअी सत्ताके प्राचीन अिमारतोंकी रक्षा करनेवाले विभागको ही ये भव्य अिमारतें सौंपी जायगी, और अिस विभागके अुत्पन्न होनेमें विलम्ब हुआ, तो अुतने समयमें गीदड़ और कुत्ते ही अुनके मालिक बनेंगे। अिन अिमारतोंको देखकर भविष्यके यात्री शायद भारतकी समृद्धि और खुशहालीकी कल्पना करेंगे, परंतु जिस धरती पर वे खड़ी हैं, वह धरती दुनियाकी गरीबसे गरीब धरती है यह क्या हम नहीं जानते?

कला और सौन्दर्यके ये अूंचेसे अूंचे नमूने आनन्दके निर्दोष साधन हैं, यह कैसे कहा जा सकता है?

बाहरसे प्राप्त किये जानेवाले आनन्दमें अेक दूसरी विलक्षणता भी होती है। हम किसी गायक, वादक, नर्तकी, चित्रकार, शिल्पी, नट, भाट-चारण या अवधानीकी अद्भुत शक्ति पर मुग्ध हो जाते हैं। अुसकी कुशलता पर हमें आश्चर्य होता है। परंतु अुसके साथ हमारा संबंध कैसा होता है? और अपनी कुशलतासे स्वयं अुसे कितनी कृतार्थता अनुभव होती है? हम देखते हैं कि जब हम अुसकी कलासे आश्चर्यचकित हो जाते हैं, अुस समय वह अपनी कलाकी अपेक्षा हमें ही अधिक महत्त्व प्रदान करता है। वह हमारी वाहवाहीका और अिनामका भूखा होता है। अितनी अद्भुत कलाका स्वामी होते हुअे भी वह हमारी खुशामद करता है, और हम भी अुसकी कला पर मुग्ध होते हुअे भी मनमें तो अच्छी तरह समझते हैं कि हम अुसके आश्रयदाता हैं

और वह हमारा आश्रय चाहनेवाला है। अिसलिअे साधारणत आश्रय-दाता और आश्रितके बीच जैसा सबध रहता है, वैसा ही सबध हम अुसके साथ रखते है। यदि कालिदासके सबधमे हमारी दन्तकथायें सत्य हो तो कविकुलगुरु होते हुअे भी अुनकी कवितादेवीके भाग्यमे तो अेक राजाकी चाटुकारिता करना ही लिखा था। अुनके काव्य केवल अुनकी प्रसन्नताको ही प्रकट नही करते थे। किसी कलाकारको अपना आश्रित माननेके कारण हम अुसके साथ समानताका व्यवहार नही करते, बल्कि हमसे नीचेकी पक्तिका मानकर अुसके साथ अैसा व्यवहार करते है, मानो अुस पर हम कृपा — मेहरबानी — बरसा रहे हो। सुन्दर कलासे हमारा मनोरजन करते हुअे भी अुसे अैसा नही लगता कि वह हम पर कोअी मेहरबानी कर रहा है, बल्कि हममे मूर्खसे मूर्ख परतु कला-रसिक कहलानेकी अिच्छा रखनेवालेकी प्रशसा या अिनामसे वह अपनेको अनुगृहीत हुआ मानता है।

यह सब बताता है कि वह कला स्वय अुसे भी तृप्त नही कर सकती। अुसमें कृतार्थताकी भावना अुत्पन्न नही कर सकती। यदि और जब यह वस्तु भीतर अनुभव की हुअी अुसकी स्वाभाविक प्रसन्नतासे अुत्पन्न हुअी हो, तो और तब वह अुसे आनन्दका साधन नही मालूम होगी, परतु भीतरके आनन्दकी अेक स्थूल अथवा कामचलाअू (rough) निशानी मालूम होगी। वैसी स्थितिमें वह अपनी कलाका प्रदर्शन करना नही चाहेगा, और दूसरोकी कद्र पर अपनी कृतार्थताका आधार भी नही रखेगा। परतु अैसा वह क्वचित् ही अनुभव करता है। जो वस्तु अपने स्वामीको भी तृप्त — आत्मसतुष्ट — नही कर सकती, वह हमें कृतार्थ कर सकती है यह मान्यता क्या गलत नही है?

वस्तुस्थिति यह है। अिसलिअे बालकको या अन्य किसी व्यक्तिको आनन्दित करनेका अुपाय सगीत, कला, कहानी, मजाक, चित्र अथवा ताजमहल या अजन्ताकी गुफायें बताना नही है, बल्कि अिसका सच्चा अुपाय अुस व्यक्तिके प्रति हमारा प्रेमोद्रेक और अुस व्यक्तिका हमारे प्रति प्रेमोद्रेक है। प्रेमका अुद्रेक हो तो दोनो अेक-दूसरेके सामने चुप-चाप देखा करे तो भी कृतार्थता अनुभव करते है, अुसके अभावमें

कृत्रिम साधनो द्वारा आनन्दके नामसे पहचाने जानेवाले विकारोको तो अुत्तेजित किया जा सकता है, किन्तु प्रसन्नताका अनुभव नही किया जा सकता। प्रेमका अुद्रेक होने पर यह भय रखनेकी आवश्यकता नही कि विवेकको बहुत सूक्ष्म कर देगे, तो आनन्दके बहुतेरे साधन अशुद्ध मालूम होनेके कारण हाथसे चले जायेगे, और फिर दूसरोको रिझाने या खुश करनेके मार्ग ही नही रह जायेंगे। आवश्यकता केवल अिस बातकी है कि हम अपनी अन्त प्रसन्नतासे दूसरोके प्रति देखे, और बालकको अुसकी प्रसन्नता खोज कर दे दे। यह हमारी और अुसकी सद्-भावनाओके पोषणसे हो सकता है। बालकको अपने माता-पिता, भाओी-बहन, गुरुजन, मित्र, अपनी शाला, अपना घर, अपना कुत्ता या बिल्ली, दूसरोके लिअे कुछ करना, दूसरोका दु ख सहन न कर सकना — यही सब आनन्दरूप लगता है, अुस आनन्दके फलस्वरूप वह जो कुछ अपने विवेकके अनुसार स्वयस्फूर्तिसे करेगा, वही अुसे आनन्दित बनानेका अुत्तम अुपाय है।

अैसी प्रसन्नता जीवन-विकासमें अमूल्य मानी जायगी। भीतरसे ही सदैव प्रसन्न रहनेका स्वभाव जीवनके सारे आवश्यक आशीर्वाद — स्वास्थ्य, प्राण, सद्गुण, अेकता, प्रेम आदि — प्रदान करनेवाला होता है। अिनमें से कुछ आशीर्वादोका अभाव हो तो भी अैसा स्वभाव मनुष्यको शाति प्रदान करता है। यह प्रसन्नता बालकमें पैदा करना — अर्थात् जब अुसका ताल खो जाय तब अुसे खोज देना — अवश्य ही शिक्षकोका अेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। परतु यह अकृत्रिम या साहजिक प्रसन्नता शिक्षक अपनी प्रसन्नतासे अुत्पन्न होनेवाले प्रेमके द्वारा ही देर-अबेर प्राप्त करा सकता है। हमारी प्रसन्नताकी छूत तुरत ही सामनेवालेको नही लग सकती, परतु हममें धैर्य हो तो सामनेवाले व्यक्तिकी ग्रहण करनेकी शक्तिके अनुसार देर-अबेर वह छूत लगे बिना रहेगी नही। अैसी प्रसन्नताको यदि आनन्द कहा जाय तो अिस आनन्दके जितने घूट पिये और पिलाये जा सके अुतने अिष्ट ही है।

१७
वह तालीम कौनसी?

स० १९८० के मार्गशीर्ष महीनेके 'युगधर्म' मे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके दो भाषणोका अनुवाद छपा है। दोनो भाषण विचार करने और परीक्षण करने योग्य है। हमारे देशकी स्थितिकी जाचके फलस्वरूप अुन्होने जो कुछ बताया है, अुसमें से कुछ बाते अितनी सत्य है कि वे आज हमे अच्छी लगे या न लगे, किसी दिन अुन्हे स्वीकार करके जडसे ही अुनका अिलाज किये बिना हम शातिकी दिशामें प्रगति नही कर सकेगे। फिर भी श्री रवीन्द्रनाथके भाषणोका कुछ भाग अैसा है, जिसकी विवेकके साथ जाच न की जाय तो बिना कारण लोगोमें बुद्धिभेद अुत्पन्न हो सकता है। अिसके विपरीत, यह भी सभव है कि रविबाबूके भाषणोको विवेकाग्निमे तपानेसे जिस सत्यकी ओर वे समाजका ध्यान खीचना चाहते है, अुसका लोगोको अधिक स्पष्ट दर्शन हो। अिस प्रकार अुनके भाषणोकी समालोचना सत्यकी शोधमें सहायक होगी, अैसा मानकर रविबाबूकी तुलनामे खडे होनेमें असमर्थ होते हुअे भी मै आलोचना करनेका साहस करता हू।

श्री रविबाबू अपने 'समस्या' नामक पहले भाषणमें यह प्रतिपादित करते है कि भारतवर्षकी जनताको दो प्रश्नोका सतोषकारक हल खोजना है। पहला प्रश्न अबुद्धिके नाशका, और दूसरा प्रश्न हिन्दू-मुसलमानोकी अेकताका है।

अिनमें से पहले प्रश्न और अुसके लिअे सुझाये गये हल पर पहले विचार करें।

"अबुद्धिके प्रभावसे हमारे मन दुर्बल हो गये है, हम अेक-दूसरेसे विच्छिन्न है, केवल विच्छिन्न ही नही, अेक-दूसरेके विरुद्ध भी है। हम वास्तविक जगत्को वास्तविक रूपमें ग्रहण नही कर सकते, अिसलिअे हम जीवन-यात्रामें प्रतिदिन हार जाते है। अबुद्धिके प्रभावसे हमने स्वबुद्धिके प्रति अश्रद्धा रखकर आन्तरिक स्वाधीनताके अुछलते

हुअे झरनेके मुह पर सपूर्ण देश जितना परवशताका पत्थर ढांक रखा है। अिस समस्याका हल अेकमात्र तालीम ही हो सकती है।”

प्रश्न यह नही है कि यह समस्या सचमुच कोअी समस्या है या नही, वास्तविक प्रश्न यह है कि वह तालीम कौनसी है, जिसकी सहायतासे अवुद्धिका नाश हो सकता है और स्वबुद्धि पर हमारी श्रद्धा वढ सकती है? श्री रविबाबूने अपने भाषणमे मान लिया है कि अुन्होने अिसका अेक अैसा अुत्तर दे दिया है जो सरलतासे सबकी समझमें आ जायगा। परतु मुख्य प्रश्न तो यही है कि जिस ‘तालीम’ से यह समस्या हल हो सकती है, वह ‘तालीम’ है क्या चीज? रविबाबूके दोनो भाषण अिस मुख्य प्रश्नके बारेमे चुप है; और अिस सम्बन्धमे जो कुछ भाषणोमे कहा गया है वह अधूरा होनेके कारण असतोषकारक है।

भाषणके पहले भागसे लगता है कि श्री रविबाबू तालीमका अर्थ बुद्धिका विकास करते है। बुद्धि अेक अैसा शब्द है, जो साधारणतया स्पष्ट समझमे आ सकता है। अैसा मान ले तो भी यह जाचना बाकी रहता है कि बुद्धिके विकासका अर्थ क्या है और वह कैसे हो सकता है। क्योकि श्री रविबाबू यह स्वीकार करते है कि हमारे देशमे अनेक लोग ‘तालीम प्राप्त किये हुअे’ है, फिर भी “अुनमे से बहुतोमे बुद्धिकी मुक्तिका बल बहुत देखनेमें नही आता, वे भी अुच्छृखल भावसे चाहे जो मान लेनेको तैयार है, वे अधभक्तिके अद्भुत मार्गमे अकस्मात् यात्रा करनेके लिअे तैयार है; आधिभौतिक व्यापारोकी आधिदैविक व्याख्या करते अुन्हे जरा भी सकोच नही होता, वे भी अपनी बुद्धिके विचारकी जिम्मेदारी दूसरोको सौपते लजाते नही, बल्कि आनन्द अनुभव करते है।”

स्पष्ट है कि जिस अवुद्धिका नाश और स्वाधीन बुद्धिका विकास करना वाछनीय है, वह विश्व-विद्यालयोकी अुपाधियो अथवा षड्दर्शनके अध्ययनमे होता ही है अैसा नही दिखाअी देता। अत अिस बातका कोअी विश्वास नही कि विज्ञानशास्त्रकी पढाअीसे, भाषाओकी पढाअीसे अथवा न्याय और दर्शनशास्त्रोकी पढाअीसे अवुद्धिका नाश हो ही जायगा।

अिसलिअे यह प्रश्न तो खडा ही है कि जिस तालीमकी मददसे समस्या हल होनेवाली है, वह क्या चीज है ?

सच बात तो यह है कि अबुद्धिके नाश, स्वबुद्धि पर विश्वास और अधश्रद्धाके त्यागका अतिशय पाडित्य या तार्किक सूक्ष्मताके साथ कोअी अनिवार्य सबध नही है। परन्तु अवुद्धिके नागका सवध भावनाओके विकासके साथ अवश्य है।

जव तक मनुष्यमे भय अथवा लालसा रहेगी, तव तक अवुद्धिके साम्राज्यसे कोअी मनुष्य मुक्त नही हो सकता। अुसके सर्वविद्या-सपन्न मस्तिष्कके किसी कोनेमें भी कुछ अवुद्धि, कुछ अधश्रद्धा जरूर छिपी हुअी मालूम पडेगी।

अिस भय अथवा लालसाके साथ मनुष्यमे कर्तृत्व-शक्ति होगी, तो वह अधिक स्वावलबी, स्वाधीन साधनो पर आधार रखनेवाला, तथा वास्तविक जगत्को कमसे कम बाह्य दृष्टिसे अधिक वास्तविक रूपमे ग्रहण करनेवाला मालूम होगा। परतु जगत्के प्रति अुसका दृष्टिविन्दु जगत्के लिअे सुखदायी नही होगा। वह जगत्के लिअे भयका, त्रासका कारण तो रहेगा ही, क्योकि वह स्वय भय या लालसासे मुक्त नही है, और वास्तविक जगत्को **पूर्णतया** वास्तविक रूपमें ग्रहण करनेमे अशक्त है। जहा और जिस क्षण अुसके कर्तृत्वका वल कम हुआ मालूम होगा, वहा और अुस क्षण अुसके मस्तिष्कमें रहा अबुद्धिका अकुर तुरन्त प्रकट होगा।

अिस भय और लालसाके साथ जिस मनुष्यमे कर्तृत्वका अभाव होगा, अुसमे अबुद्धिका पूर्ण साम्राज्य होगा। सारी भाषाओका ज्ञान, सारी वैज्ञानिक विद्याओका ज्ञान और सारे दर्शनशास्त्रोका ज्ञान भी अुसे अबुद्धिकी गुलामीसे नही छुडा सकेगा। जहा जहा पाडित्यके होते हुअे भी किसी 'खूटीश्वरी' * मे श्रद्धा पाअी जाय, वहा परीक्षा करने पर भय, लालसा और कर्तृत्वका अभाव दिखे विना नही रहेगा।

---

* श्री रविबाबूने अपने भाषणमे अिस प्रकार अेक कहानी कही है अेक वार अेक आदमी अपनी वकरीके साथ किसी गावके चौकमें आया। रात पड जानेसे अन्यत्र कही ठहरनेकी जगह न खोजकर रास्तेके

कहनेका मतलब यह कि भय, लालसा और अकर्तृत्व ये तीनो अवुद्धिके पोषक है। यदि और जिस हद तक विद्वत्ता अिस त्रिपुटीके नाशमें सहायक होगी, तो और अुसी हद तक अिस दिशाकी तालीम हमारा ध्येय सिद्ध करनेमें अुपयोगी मानी जायगी।

परतु वास्तवमें यह पाया जाता है कि पाडित्यके बिना भी मनुष्यमे भय, लालसा और अकर्तृत्वका अभाव हो सकता है, और पाडित्यसे अिनका अनिवार्य रूपमे नाश नही होता। परतु मूलमें अिस त्रिपुटीका अभाव हो अथवा अुसका नाश करनेकी वृत्ति हो, तो विद्वत्तासे मनुष्यकी स्वाधीन बुद्धि अधिक शोभा पाती है, तथा अुसका कार्य-क्षेत्र और समाजकी दृष्टिसे अुसकी अुपयोगिता बढ सकती है।

अिसलिअे केवल 'तालीम' कहनेसे ही समस्या हल नही हो जाती। परतु जिस तालीमसे भय और लालसाका अुच्छेद तथा कर्तृत्वका अुचित मात्रामें विकास हो सके, वही तालीम हमारी समस्या हल कर सकेगी।

'कर्तृत्वकी अुचित मात्रा कहनेमें मेरा विशेष हेतु है। केवल अपार कर्तृत्व सुखदायी नही होता। केवल सतोष प्रगतिकारक नही होता। कर्तृत्व और सतोषका यथायोग्य समन्वय ही प्रगतिकारक और सुखावह होता है।

बीचमें ही अुसने अेक लकडीकी खूटी गाड दी और बकरीको अुससे बाधकर सो गया। सवेरे सूर्योदयके पहले ही वह अुठा और बकरीको खोलकर चल दिया। परतु जो खूटी अुसने रास्तेके बीच गाडी थी, अुसे अुखाडनेकी अुसने परवाह नही की। सवेरे गावके लोगोको रास्तेके बीच गडी हुअी खूटी देखकर आश्चर्य हुआ और अुन्होने अनुमान कर लिया कि यह किसी अदृश्य शक्तिका कार्य होना चाहिये। अुसकी वजहसे आने-जानेमे लोगोको असुविधा होती थी, परतु अुसे अुखाडनेकी हिम्मत कौन करे? अुलटे लोगोने यह तय किया कि अुसी स्थान पर अुसकी पूजा की जाय। अिस तरह रास्तेके बीच 'खूटीश्वरी' देवीकी स्थापना हुअी।

रोगकी परीक्षा करनेसे डॉक्टरके मनको अवश्य सतोष होता है, परतु रोगीको केवल परीक्षासे सतोप नही हो सकता। अुसे तो रोगकी परीक्षा और अुसका सुलभ अुपचार दोनो चाहिये। अुसी तरह देशके रोगकी दवा (मेरी बताअी हुअी) तालीम है, अैसा कहनेसे भी अुसका रोग दूर नही होगा। प्रश्न यह है कि अुस तालीमके प्रचारका अुपाय क्या है? अवुद्धिका नाश करनेवाली तालीम जनताको किस तरह दी जा सकती है?

काफी विचार करने पर भी अिसका कोअी राजमार्ग मालूम नही होता।

किसी अपढ विद्यार्थीको सालभरमे पाणिनिका व्याकरण सिखानेका बीडा शायद अुठाया जा सकता है, परतु यह कह सकना सभव नही है कि दूसरा कोअी अुसके भय, लालसा और अकर्तृत्वका नाश अमुक समयमे कर ही देगा। जिसमे सीखनेकी जिज्ञासा है, अुसे सर्वथा अपरिचित विषयका ज्ञान भी थोडे समयमें दिया जा सकता है, परतु क्या सीखनेकी जिज्ञासा नये सिरेसे पैदा करानेवाला कोअी अचूक अुपाय है? शायद अिसका भी अुपाय है, अैसा कहा जाय, क्योकि पढनेके स्थूल और लालसाका पोषण करनेवाले फल हो सकते है। परतु लोगोकी कल्पनामें यह चीज अुतारना भी कठिन होता है कि अुपर्युक्त त्रिपुटीके नाशके फल सुखदायी होते है।

क्योकि जो सच्ची तालीम है, जिस पर मनुष्यताके विकासका आधार है, वह तालीम कुअेके पत्थर पर लकीर या निशान बनानेकी कला जैसी है। आप लोहेकी छड घिसते रहे तो भी अेक दिनमे अुस पत्थर पर कोअी असर नही होगा। परतु कच्ची रस्सीकी रोजकी घिसाअीसे अुस पर सुन्दर चिकनी लकीर या निशान बन जाता है। अवुद्धिके सस्कारोका नाश गुणो — शुभ भावनाओ — दैवी सपत्ति — के अुत्कर्षसे ही हो सकता है। और वह किसी बडेसे बडे विद्वान् या महान् वक्ताकी सहायतासे अथवा पढाअीके विषयोमे भरपूर समयपत्र बनानेसे नही होता। अुदात्त चरित्रवाले आदर्श सन्त तथा अुनके छोटेसे छोटे और बडेसे बडे कर्म ही अैसी तालीम देनेवाले शिक्षक बन सकते

है। हजारो वर्षमे पैदा होनेवाला अैसा अेक शिक्षक भी मानवताके विकासके जिज्ञासुओके लिअे सदियो तक प्रकाश-स्तभका काम देता है। अुस प्रकाश-स्तभकी ओर बढनेवाला नम्र साधक भी कुछ अशमे यह तालीम दे सकता है। परतु मनुष्यत्वका विकास करनेवाली सार्वजनिक शालाये खोली जा सकती है या नही, अिस बारेमे शका है। यह कार्य थोडे-बहुत अशमे भी केवल अुदात्त भावनाओका श्वासोच्छ्वास लेनेवाले सतत जाग्रत पुरुषोके जीवनसे ही हो सकता है। जाग्रत पुरुषोके विद्यार्थियोके लिअे पडित बनना अनिवार्य नही है; परतु अुनके साथ सपूर्ण तादात्म्य साधना अत्यन्त आवश्यक होगा।

समस्याका सच्चा हल अिस प्रकारका है। अिसलिअे श्री रवीन्द्रनाथने चरखा, गुरुमुखता (गुरुको सर्वस्व समझना) आदि विषयोके विरुद्ध जो अुद्गार प्रकट किये है, अुनमें थोडा विचारदोष मालूम होता है।

अिनमे से पहले हम चरखेको लें। श्री रविबाबू कहते है, "पहले सूत कातेगे, कपडा बुनेगे, खायेगे-पियेगे और अुसके जरिये स्वराज्य प्राप्त करेगे। अुसके बाद अवकाश मिलने पर मनुष्यत्व प्राप्त करेगे — ये वचन मनुष्यके नही हो सकते।" अिस अुद्गारके पीछे अैसी मान्यता दिखाअी देती है कि सूत कातना, कपडा बुनना आदि काम मनुष्यत्वकी प्राप्तिमे बाधक है।

यह मान्यता गलत है। जिस मनुष्यने यह समझ लिया है कि मनुष्यत्व किस बातमे है, और अुसकी प्राप्तिकी कुजी जैसे सतत विचारमय जीवनमे जो सदा जाग्रत रहता है, अुसके लिअे प्रत्येक शुद्ध क्रिया विकासकी दिशामें ले जानेवाला अेक कदम ही है। परतु जिसे यह समझमे नही आया है, जिसके हाथमें विचारकी कुजी नही आअी है, अुसके लिअे जगत्की सारी पुस्तकोका परिचय (अथवा सगीत और कला-कौशल भी) व्यर्थका भार ही सिद्ध होनेवाला है। जगत्मे अैसी बहुत थोडी पुस्तकें है, जो मनुष्यत्वकी प्राप्तिमें सहायक होती है, और साहित्य, सगीत तथा कला ही अुसकी प्राप्तिके साधन है, यह अनेक अधविश्वासोमे से अेक अधविश्वास है।

यह मैं साहित्य, सगीत आदि विषयोकी निन्दा करनेके लिअे नही लिख रहा हू। फिर भी जो मनुष्य दिनका महत्त्वपूर्ण भाग मानसिक भोजनकी प्राप्तिके लिअे बितानेमे जीवनकी सफलता मानता है, अुसे दूसरोके हितोका भी विचार करना चाहिये। बुद्धिकी भूख अन्नकी भूखसे बढकर होगी और अुसमे अधिक सस्कारिता भी होगी, परतु अन्नके बिना बुद्धिभोजीका भी काम नही चलता, अिस सत्यकी अुपेक्षा नही की जा सकती। अन्न खाते हुअे भी यदि मै अन्न अुत्पन्न करनेमे भाग न लू, तो स्पष्ट है कि दूसरे किसीको मेरा और अुसका अपना अन्न अुत्पन्न करनेमे समय लगाना ही होगा। अिसी प्रकार मेरा अन्न या भोजन तैयार करनेमें, वस्त्र बनानेमें तथा मेरे अुपभोगकी प्रत्येक वस्तु तैयार करनेमें किसी दूसरेको समय खर्च करना ही होगा। अिसके अुपरान्त, अुसे अपनी आवश्यकताये पैदा करनेमे तो समय खर्च करना ही होगा। अर्थात् शरीरके लिअे जिस आवश्यक सामग्रीका मै नित्य अुपभोग करता हू, अुसके बनानेमें यदि प्रतिदिन १० घटे लगते हो तो दुनियामें किसी न किसीको यह १० घटेका समय देना ही होगा, अुसके सिवाय, अपनी खुदकी आवश्यकताओके लिअे भी अुसे अितना ही समय देना होगा। अिसका परिणाम है जगत्की वर्तमान स्थिति (१) कोअी २० घटे परिश्रम नही कर सकता, परतु मेरे लिअे तो अुसे १० घटे परिश्रम करना ही होगा, अिसलिअे अुसे अपने शरीरकी आवश्यकतायें अधूरी रखकर मेरे लिअे — मै पडित हू, बुद्धिशाली हू अिसलिअे — खपना होगा। और (२) जिन बुद्धिके भोजन पर मैं अितना मुग्ध हू, अुसकी तृप्तिकी अुसे तो आशा ही छोड देनी चाहिये। क्योकि अिस पृथ्वीकी परिक्रमा २४ घटेमे ही पूरी हो जाती है और चौबीसो घटे परिश्रम करनेकी शक्ति सुरक्षित रखनेकी मनुष्यमें ताकत नही है।

यदि बुद्धिभोजी लोग बुद्धि-भोजनके अनुपातमे शरीरके अुपभोग कम करते हो अथवा गरीबसे गरीब मनुष्यके जितने ही रखते हो, तो भी श्रम-विभाजनकी किसी पद्धतिसे अथवा यत्रकलासे अैसा कोअी हल ढूढनेकी आशा रखी जा सकती है, जिससे सबको सतोष हो। परतु

देखा यह गया है कि बुद्धिभोजीकी शारीरिक अुपभोगोकी भूख बुद्धिके अनुपातमें ही बढती रहती है, बुद्धिभोजी मनुष्य पैसा-बाजारकी स्थितिके मत्रबमें अुदासीन नही रहता। वह पैसा-बाजारमे भी अपनी बुद्धिकी कीमत अूची करानेकी अिच्छा रखता है। अुसने बुद्धि प्राप्त की है, अिस-लिअे अुसकी दृष्टिमे अपना समय बहुत महत्त्वका होता है। अिस दुनियामें अेक ही स्थान पर बैठकर जीवनके सारे व्यवहार नही हो सकते, और हर स्थान पर चलकर जानेमें समय बरबाद होता है, अिसलिअे अुसे कोअी सवारी अवश्य चाहिये। अुसका समय बडे महत्त्वका है। अपने विचार भी स्वय लिखने बैठनेमें या डाकमे पहुचानेमे अुसका समय ख़र्च नही होना चाहिये। अत अुसे कारकून और चपरासी चाहिये, अच्छेसे अच्छा दीपक चाहिये, अच्छेसे अच्छा मकान चाहिये, लिखने-पढनेके लिअे टेबल-कुर्सी चाहिये। अिसके अलावा, अुसकी बुद्धिको शोभा देनेवाला सम्मान भी अुसे मिलना चाहिये। और अुस सम्मानकी रक्षाके लिअे आवश्यक टीमटाम और तडक-भडक बनाये रखनेके लिअे दूसरे खर्च करनेकी सुविधा भी होनी चाहिये।

आवश्यक हो तो ये साधन अुत्पन्न करनेमे बडे बडे यंत्रोका अुप-योग किया जाय या यत्रोका बहिष्कार किया जाय, परंतु अितना तो निश्चित है कि अपना समय बचानेके लिअे अथवा अपनी बुद्धिकी महिमा दूसरोको समझानेके लिअे मैं जिन जिन सुविधाओका अुपभोग करू, अुनके बदले दुनियामे दूसरे किसीको अितना समय देना ही चाहिये, अर्थात् अुसे अपनी बुद्धिकी भूख मिटाना भूलना ही चाहिये।

परिणाम :—पांडित्यकी मेरी अपार अभिलाषाको पूरा करनेके लिअे दूसरे अेक ही मनुष्यको नहीं—परतु सामान्य मनुष्योकी अपेक्षा मेरी आवश्यकताये अधिक होनेके कारण—अनेक मनुष्योको अपना बुद्धि-विकास थोडा भी न होने देनेकी स्थिति स्वीकार करनी चाहिये। यदि बुद्धि-विकास मनुष्यकी पूर्णताके लिअे सर्वथा अुचित हो और यदि न्यायवृत्ति मनुष्यत्वका अेक आवश्यक अग हो, तो मेरा बुद्धि-विकास कितना ही क्यो न रुके, दूसरोको हानि पहुचा कर अपनी भूख तृप्त करनेकी मुझे कभी भी अिच्छा नहीं रखनी चाहिये।

परतु पडितवर्ग कहता है "अिसमे सचमुच कोअी अन्याय नही होता, सच बात तो यह है कि अनेक मनुष्योको बुद्धिकी भूख ही नही होती। वे शारीरिक श्रम करके जीवन बितानेमे सतोप मानते है। बुद्धिका विकास करनेकी अुनमे योग्यता भी नही होती। आप अुन्हे पढाने जायेगे तो वे अूघने लगेंगे। मै अपनी बुद्धिसे अुपभोगके साधन जल्दी अुत्पन्न करनेमे भी सहायता करता हू। मेरी बुद्धिसे दुनियाको भी लाभ है। मुझमे बुद्धि होगी तो मै अनेक लोगोको पढा सकूगा — बुद्धि दे सकूगा। मेरा समय बचानेमे ससारका ही हित है।"

अिस अुत्तरमे सर्वत्र अन्याय ही अन्याय है। अनेक लोगोमे बुद्धिकी भूख नही होती और वे शारीरिक श्रम करके जीनेमे सतोप मानते है, अिसका अेक कारण तो यह है कि अुन्हे बुद्धि-विकासका स्वाद चखनेका जीवनमे कोअी अवसर ही नही मिला और दूसरा कारण यह है कि अुन्हें शारीरिक श्रम करके जीवनमें सतोप माने सिवाय कोअी चारा ही नही है। जिस प्रकार हम रास्तेसे जा रहे हो, हमारे पास छाता न हो, मूसलधार बारिश पडने लगे और अैसे समय कोअी पेड पासमें दिख जाय तो वह अत्यन्त सतोषजनक बात ही मानी जायगी, अुसी प्रकार शरीरमे प्राण टिकाये रखनेके लिअे शारीरिक श्रम किये बिना कोअी चारा ही न हो तो अुस स्थितिमें सतोष मानना ही पडेगा।

सभव है दूसरे लोगोका समय बचानेसे वे अुस समयका अुपयोग अपनी बुद्धिका विकास करनेमें न करें, परतु अिससे मुझे अुनका समय खर्च कराकर अपनी बुद्धिके विलास करनेका अधिकार कैसे मिल सकता है ?

तीसरा कारण यह है कि मेरी बुद्धिकी भूखके पीछे कितनी ही पीढ़ियोका परिश्रम है, अुन लोगोको अितना समय मिले तो वे भी जरूर तीव्रबुद्धि हो सकेंगे।

यहा शायद यह शका की जा सकती है कि "श्रम-विभाजन जैसी कोअी वस्तु दुनियामे है या नही ?" मै कहता हू, है। परतु श्रम-विभाजनकी भी अेक मर्यादा है। मै अनाज लाअू और मेरी पत्नी रसोअी बनावे, मै कपडे धो लाअू और मेरी पत्नी घरमे झाडू लगा दे — यह अेक प्रकारका श्रम-विभाजन है, अिसमें भी अेक मर्यादाके

वाद अन्याय हो सकता है। घर वसाये बिना मनुष्य रह नही सकता। परतु घरसे वाहर निकलनेका काम मैं अपने हाथमे रखू और स्त्रीका घरमे रहनेका श्रम-विभाजन करू, यद्यपि घरसे वाहर निकले बिना अुसका काम चलता नही, तो अिससे गृहस्थीमे विषम स्थिति अुत्पन्न होती है। अिसी प्रकार कच्चा माल मैं अुत्पन्न करू और पक्का माल मेरा पडोसी तैयार करे, अिस श्रम-विभाजनसे भी जो विषम स्थिति अुत्पन्न होती है अुसे हम जानते है। परतु अिससे भी अधिक अन्याय तो अिस श्रम-विभाजनमे होता है कि बुद्धिका काम मेरे पास रहे और मेरा पडोसी शारीरिक श्रम करे। क्योकि जैसे 'तू दोनोकी तरफसे रसोअी वना और मैं दोनोकी तरफसे खाअू' — यह श्रम-विभाजन नही हो सकता, वैसे ही बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रमका न्यायपूर्ण विभाजन नही हो सकता।

चौथा, मेरी बुद्धि जगत्के लिअे अुपयोगी सिद्ध हो तो भी पैसा-वाजारमे बुद्धिकी विशेष कीमत आकनेका कोअी कारण नही दिया जा सकता। अिसके विपरीत, यदि बुद्धिके विकासमे मनुष्यता बढती हो तो अुस कारणसे तथा आवश्यक अन्नके अुत्पादनमे मेरी सीधी सहायता न होनेके कारण भी मेरे जैसे बुद्धिशाली मनुष्यकी शारीरिक आवश्यकतायें साधारण मनुष्यसे कुछ कम होनेमें ही न्याय है।

पाचवा, बुद्धि द्वारा जगत्की सेवा करनेमे ही गुरु बननेकी अिच्छाका बीज निहित है। मैं दूसरोकी अपेक्षा अधिक तीव्र बुद्धिवाला बनकर अुसका लाभ सबको दू, अिसका अर्थ क्या यही नही है कि मैं दूसरोका गुरु बनू? जो लोग परबुद्धिके आधारको ठीक नही मानते, अुनका मौन रहना ही अुचित कहा जायगा। मैं दूसरोकी अपेक्षा तीव्र बुद्धिवाला बनू, अिसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे मेरी बुद्धिके आश्रित बनें, अिनमें अैसी स्थिति अुत्पन्न हुअे बिना नही रहेगी, जिसमे दूसरे मेरी बुद्धिके आश्रित बननेके लिअे मजबूर हो जाय। अिसलिअे जो गुरुमुखना अिष्ट नही मालूम होती, वह टाली नहीं जा सकती।

हमें यह सच्ची बात न भूलना चाहिये कि सुशिक्षित लोग अधिकतर जिस बुद्धिके विकासके पीछे पड़े रहते है, वह बुद्धि अबुद्धिके

नाशमे थोडी भी सहायता नही करती। वह केवल चित्तकी अेक स्वन्छन्दता ही होती है।

अिसी प्रसगमे श्री रवीन्द्रनाथने गुरुमुखताके विरुद्ध जो अुद्गार प्रकट किये है, अुन पर विचार करना ठीक होगा।

श्री रविबाबूने दैव, गुरु और चमत्कार तीनोको अेक ही पक्तिमे बैठा दिया है और तीनो पर रखे जानेवाले विश्वासको अेकसी अन्धता बताया है।

वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार मनुष्य अपना अन्न अपने पेटके भीतर ही पैदा नही कर सकता, बल्कि विश्वमे से अुसे वह अन्न लेना पडता है, अुसी प्रकार मनुष्यको अपनी वुद्धिके विकासके लिअे भी विश्व पर आधार रखना पडता है। जिस प्रकार वह अन्नके लिअे प्रकृति और दूसरे मनुष्योकी सहायता लेता है, अुसी प्रकार प्रज्ञारूपी अन्नके लिअे भी प्रकृतिके अवलोकनकी तथा दूसरे मनुष्योकी सहायता लेता है। जिस मनुष्यकी वुद्धिकी सहायतासे वह अपनी बुद्धिको विकसित करता है, अुसके प्रति गुरुभाव रखनेमे वह गलती करता है अैसा कोअी नही कह सकता।

जो मनुष्य दूसरेको नअी दृष्टि प्रदान करता हे, वह अुसका गुरु होता है। फिर भी, आश्चर्यकी वात यह है कि जो गुरुका अस्वीकार करते है, वे भी दूसरोको नअी दृष्टि देनेका प्रयत्न करते हे।

अिसके अलावा, गुरुका अस्वीकार करनेवाले लोग पुस्तकोके अध्ययन पर अधिक भार देते हैं। अिसलिअे व्यवहारमें अैसा देखा जाता है कि किसी मनुष्यके कहे हुअे शब्द अप्रमाण माने जाते है, परन्तु वह चाहे जैसा रद्दी-सद्दी भी लिख जाय और अुसका लिखा हुआ किसी न किसी प्रकार काल-प्रवाहमे थोडे समय टिका रहे, तो वह विश्वसनीय और विचारणीय वन जाता है। जव कि सच तो यह है कि जड पुस्तककी अपेक्षा अपूर्ण किन्तु सचेतन मानव गुरु वननेका विशेप अधिकारी माना जाना चाहिये।

परन्तु पाठक कहेगे कि मैंने रविवावूके कथनको समझा ही नही। अुनका कहना अितना ही है कि छोटे वालक अथवा छोटे

जन्तुसे भी बुद्धि अवश्य ग्रहण करो, परन्तु किसीके वचनको 'वेदवाक्य' न मानो।

ठीक बात है। परन्तु अितनेसे ही कठिनाअी हल नही हो जाती। दूसरोके वचनोकी योग्य परीक्षा करनेका साधन अतमे तो हमारी अपनी विवेकशक्ति ही होती है। और यह विवेकशक्ति यदि मूलसे ही पगु हो तो अुन वचनोकी योग्य परीक्षा सच्ची ही होगी अैसा नही कहा जा सकता। अत जिनके विषयमे हमे लगता हो कि वे दूसरो पर केवल अधश्रद्धा रखते है, अुनसे पूछा जाय तो अुनमे से अधिकतर लोग अधश्रद्धाके आक्षेपको स्वीकार नही करेगे। वे कहेगे कि "हमने गुरुके वचनोकी अपनी बुद्धिसे जाच की है और हमें अुन पर विश्वास हो गया है, जहा हम केवल अुनके वचनो पर ही श्रद्धा रखते है, वहा हमे अुनकी सत्यवादिता पर विश्वास है। गुरु-वचनो पर विश्वास बैठे अैसे प्रमाण अुन्होने हमे दिये है। जिस प्रकार दवा कराते समय डॉक्टरकी योग्यताके बारेमे अच्छी तरह विश्वास कर लेनेके बाद अुसकी बुद्धि और अनुभव पर विश्वास करना ही पडता है, जिस प्रकार किसी वस्तुके जहरीलेपनके बारेमें आप्तवाक्यको प्रमाण मानना ही पडता है, अुसी प्रकार हम कुछ बातोमे गुरुके वचनोको विश्वसनीय मानते है। अिसका कारण हमारी अधश्रद्धा नही, परन्तु अुनके विषयमे हमे जो अनुभव हुअे है अुनसे अुत्पन्न हुआ हमारा विश्वास है।" अिस प्रकार लगभग प्रत्येक शिष्य अपने गुरुके विषयमे हमें यकीन दिलायेगा। अुसकी विवेकदृष्टि सदोष हो सकती है, परन्तु आज जितनी विवेकशक्ति अुसके पास है, अुसके द्वारा अुसने अपनी श्रद्धाको शुद्ध बनानेका प्रयत्न अवश्य किया होगा। अैसा कौनसा मनुष्य है, जो दृढतापूर्वक कह सकता है कि अुसकी बुद्धि जीवनके किसी भी क्षेत्रमें परम्परागत कल्पनाओ और मान्यताओंके प्रवाहमे थोडी भी नही बहती? सत्यकी शोधका मार्ग ही अैसा है कि अुसमे पहले स्थूल परिणामका दर्शन होता है, बादमें कारणकी कल्पनाअे आती है और बादमें शायद सत्य नियमका दर्शन होता है। अनेक बार तो अेक कल्पनाके पतन और दूसरी

कल्पनाके मण्डनमें ही सत्यका आरोप होता है। अनेक अैसे निश्चय, जिन्हे हम बुद्धियुक्त मानते है, वास्तवमें आजकी दृष्टिसे सुसगत लगनेवाली कल्पना ही होते है। हो सकता है कि आजके बडेसे वडे ज्ञानीके अनेक विषयो पर प्रकट किये गये मत हजार वर्ष पश्चात् केवल हास्यास्पद कल्पना ही माने जाय।

अिसलिअे गुरु पर रखी जानेवाली अयोग्य श्रद्धाको दूर करनेका अुपाय किसी पर बिलकुल विश्वास न करना नही है, परन्तु विवेक-शक्तिको शुद्ध करना है। यह विवेकशक्ति कैसे शुद्ध हो सकती है?

हम अिसके कारणकी जाच करे कि गुरुसे धोखा खाना कैसे सभव होता है। गुरु स्वार्थी हो या स्वय प्रामाणिक गलती कर रहा हो, तो वह अपने शिष्योको गलत रास्ते ले जायगा।

गुरु यदि स्वार्थी हो तो अुसे मिला हुआ शिष्य-मण्डल लोभी या जड होना चाहिये। जो शिष्य किसी सच्चे या काल्पनिक भयके निवारणके लिअे, अथवा किसी भी प्रकारके अैहिक या पारलौकिक सुख अथवा भोगकी प्राप्तिके लिअे, अथवा किसी सिद्धि, चमत्कार, शक्ति या आनदकी अिच्छासे गुरुकी खोज करता है और अुसके लिअे स्वय कुछ भी करनेकी अिच्छा नही रखता है—सक्षेपमे मानवताके विकासके सिवाय कोअी भी दूसरी वस्तु प्राप्त करनेकी अिच्छा रखता है या पुरुषार्थ करनेकी मेहनतसे बचनेकी अिच्छा रखता है, वह किसी भी समय गुरुसे धोखा खाये तो अुसमें दोप केवल अुसके भय, लालसा और कर्तृत्वहीनताका ही माना जायगा। अिसमे हमारा देश और युरोपीय देश समान रूपसे ही गलतीमे फसते है। अिसका अेक अुदाहरण पेटेन्ट दवाअिया है। रोगका कारण दूर करनेका श्रम किये बिना और अुसके लिअे अुचित सयमका पालन किये बिना नीरोग बननेकी आशा रखनेवाले युरोपियन कम नही है, और अुनकी अबुद्धि पर धनवान बननेवाले दवाके अुत्पादक भी कम नही है। युरोपकी प्रजाअें भी अपनी मनोकामना पूरी करनेकी आशामे राज-नीतिक नेताओ, वकीलो, डॉक्टरो और अन्य सैकड़ो प्रकारके निष्णातो

द्वारा वैसी ही ठगी जाती है, जैसे हमारे देशकी जनता। जहा शिष्य लोभी, भयभीत या आलसी होंगे, वहा लोभी गुरु अवश्य रहेंगे।

सिद्धान्तकी बात यह है कि जब तक मानवताके विकासके सिवाय दूसरा कोअी भी फल प्राप्त करनेकी अिच्छा हो और अुसके प्रकृतिगत नियमोंका पूर्ण शोधन न हुआ हो, तब तक गुरु या शिष्य दोनोंकी बुद्धिमें दोष होनेकी निरन्तर संभावना रहेगी ही। अिसलिअे अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता है कि मानवताके विकासके सिवाय दूसरा कोअी भी फल प्राप्त करनेकी पद्धतिके विषयमें मानवमात्रकी बुद्धि गलती कर सकती है। अिस बारेमें किसीकी भी बुद्धिके सम्बन्धमें यह विश्वास नहीं दिलाया जा सकता कि वह सदा अचूक बनी रहेगी। जिस हद तक प्रकृतिगत नियमोंका शोधन हुआ होगा, अुस हद तक कुछ क्षेत्रोंमें गलती होनेकी संभावना कम रहेगी, अथवा अमुक देश या कालके लिअे अचूक मार्ग हाथ लग जाना संभव माना जायगा। परन्तु प्रकृति अितनी अनन्त दिखाअी देती है कि अुसके खोजे हुअे भागकी अपेक्षा भविष्यमें खोजा जानेवाला भाग सदा अधिक ही रहेगा।

परन्तु जिसकी दृष्टि केवल अपनी मानवताके विकास पर ही रहती है, जो विश्वमें मानवताकी ही खोज करता फिरता है, जिस बुद्धि और दृष्टिसे मानवता प्राप्त की जा सके अुस बुद्धि और दृष्टिको प्राप्त करनेके लिअे ही जो गुरुके पास जाता है, अुसे गुरु-स्वीकारके लिअे कभी पश्चात्ताप करनेका कोअी कारण नहीं मिलता। गुरु अुसे धोखा नहीं दे सकता या वह गुरुसे धोखा नहीं खा सकता। वह जहां जितनी मानवताका विकास देखता है, वहांसे अुतनी ले सकता है, और जहां वह देखता है कि अुसके परिचित किसी भी मनुष्यकी अपेक्षा अन्य किसी व्यक्तिमें मानवताका अनन्त गुना विकास हुआ है, वहां विश्वकी कौनसी शक्ति है जो अुसे अैसे व्यक्तिका भक्त बननेसे रोक सके? जैसे पानी ढालकी ओर ही दौड़ता है, वैसे अुसका चित्त अैसे मनुष्योत्तमकी भक्ति किये बिना रह ही नहीं सकता। जिसने मानवताके विकासकी अपेक्षा दूसरे किसी फलकी आशासे अुसके चरण पकड़े होंगे, अुसके विषयमें अैसा विश्वास नहीं दिलाया जा सकता। अुसे सोचा

हुआ फल प्राप्त न हो, अथवा फल मिलनेके पहले ही अुसका धैर्य छूट जाय, तो भी सभव है वह अुस नरोत्तमका त्याग कर दे। अिसमें दोप मनुष्यमे रही गुरुभक्तिकी वृत्तिका नही, परन्तु मनुष्यताके सिवाय अन्य वस्तुकी लालसाका और अुसके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ तथा धैर्यके अभावका है।

परन्तु हम तो चरखेकी वात परसे गुरुभक्ति पर आ गये। मूल प्रश्न पर आनेसे मालूम होगा कि यदि मनुष्यताका विकास ही मनुष्यकी अमूल्य सम्पत्ति हो, यदि अपरिमित न्यायवृत्ति ही मनुष्यताका अेक आवश्यक अग हो, तो हम अिस परिणाम पर पहुचते है कि जो मनुष्य अपने आवश्यक भोगोकी अुत्पत्ति और अुनके लिअे आवश्यक वस्तुओके निर्माणमे दिनके अमुक घटोके नियमित श्रमसे जितना कम समय देता है, अुतना ही वह — गीताके शब्दोमे कहे तो — 'स्तेन अेव स' (चोर है)। अिस दोपसे वह दो ही तरहसे मुक्त हो सकता है शारीरिक अुपभोगोको घटाकर और अिस तरह समयका वचाव करके वचे हुअे समयमे अपनी वौद्धिक अभिलापाअे पूरी करना, अथवा दूसरेकी अिच्छाके वश होकर, दूसरेकी असहाय दशाको देखकर (अुसके हितके लिअे समय देना ही चाहिये — न देनेमे भी समाजके प्रति हमारे धर्मका पालन नही होता — अैसा समझकर) शारीरिक श्रमके कर्तव्यसे मुक्त रहना। अुदाहरण रोगीकी सेवा-शुश्रूषाके लिअे, शिष्यकी जिज्ञासा-तृप्तिके लिअे, देशकी रक्षाके लिअे, अित्यादि। परन्तु अैसी परिस्थितिमे 'यदृच्छालाभसतुष्ट' ही अुसके जीवनका नियम हो सकता है। वह शारीरिक भोगोको कमसे कम कर दे और समाज अपनी मरजीसे अुसकी जितनी चिन्ता करे अुससे अधिककी आशा न रखे। अिसकी निशानी यही है कि सेवाके लिअे भी वह दीनवृत्तिसे याचक न वने। हम चाहे या न चाहे, जगत्मे वुद्धि और शक्तिकी विषमता है रोग, वचपन, वुढापा वगैरा मनुष्यको परवश वना देने-वाले कारण है। अिसलिअे अैसी स्थितिका पैदा न होना सभव नही है, परन्तु अैसी स्थितिमें धर्ममार्ग वही हो सकता है, जो अपर वताया गया है।

अिसलिअे हाथ-बुनाअीके अभावकी देशाग्निके भस्मासुरसे तुलना करनेमे कवित्व तो है, परन्तु अिससे देशकी स्थितिकी सच्ची कल्पना होती है अैसा विश्वासपूर्वक नही कहा जा सकता। काव्यमय कल्पना अनेक प्रकारसे की जा सकती है। कोअी अैसा भी कह सकता है कि खादीका पुनरुद्धार देशाग्नि पर पानी डालनेके लिअे नही है, बल्कि अेक अधजले मकानको अधिक जलनेसे बचानेका और जले हुअे भागकी मरम्मत करनेका प्रयत्न है।

मुझमें कवित्वका अभाव होनेके कारण दोनोमे से कौनसी कल्पना अधिक सुन्दर है, अिसका निर्णय मैं नही कर सकता। और चूकि दोनो केवल कल्पनाअे ही हैं, अिसलिअे अिस प्रश्न पर विवेकपूर्वक विचार करनेके लिअे मैं दोनोको छोड देने जैसी मानता हू। अिससे देशकी अग्नि बुझेगी या नही, अथवा कितनी बुझेगी, यह बात भविष्यके गर्भमें है। अुसकी कल्पना करना व्यर्थ है। चरखा चलानेमे शुद्ध न्याय है, चरखा मानवताके विकासका विरोधी नही है, चरखेसे देशकी गरीबी थोडी तो कम हो ही सकती है, चरखा चलानेमे ससारके किसी भी व्यक्तिकी हिंसा नही होती, सारा ससार चरखा-धर्मको स्वीकार कर ले तो अुससे भी किसीको नुकसान नही होगा और वस्त्रोके बिना शरीरका निर्वाह अब नही हो सकता — अितने कारण कताअी-बुनाअीको धर्मकार्य निश्चित करनेके लिअे मुझे पर्याप्त मालूम होते हैं।

अन्तमें .

(१) यह सच है कि अबुद्धिका नाश और स्वबुद्धिका विकास करना हमारे देशकी समस्या है।

(२) यह भी सच है कि अिसका अुपाय 'तालीम' है।

(३) परन्तु यह 'तालीम' पाण्डित्य नही है — भाषाज्ञान, साहित्य-सगीत-कलाओका ज्ञान, दर्शनशास्त्रोका ज्ञान अथवा वैज्ञानिक विद्याओंका ज्ञान नही है; यह सब गौण तालीम है।

(४) गौण तालीम सच्ची तालीमके साथ प्राप्त हो तो वह अुपयोगी सिद्ध हो सकती है, परन्तु सच्ची तालीमके अभावमें वह मनुष्यत्वके विकासके लिअे निकम्मी ही है।

(५) केवल गौण तालीमका अतिस्वाद अेक प्रकारकी विषय-वासना ही है, जिस प्रकार शब्दस्पर्शादिका अुचितसे अधिक अुपभोग अिन्द्रियोकी स्वच्छन्दता है, अुसी प्रकार गौण तालीमका अतिस्वाद बुद्धिकी स्वच्छन्दता है। अुससे मनुष्यकी अुन्नति नही होती।

(६) भय, लालसा और अपुरुषार्थ अबुद्धिकी जड है।

(७) केवल कर्तृत्व या केवल सतोष प्रगतिकारक या सुखकारक नही है। दोनोका अुचित मिलाप होना चाहिये।

(८) सच्ची तालीमका अर्थ है अिन भयादि जडोका अुच्छेद, या मानवताका विकास, या दैवी सपत्तियोका अुत्कर्ष।

(९) गौण तालीमके बिना सच्ची तालीम हो सकती है और सच्ची तालीमके बिना गौण तालीम भी ली जा सकती है।

(१०) सच्ची तालीमका कोअी राजमार्ग नही है, सत्पुरुषोके जीवन-चरित्र, अुनका समागम, सेवा, अुनकी अुदात्तता प्राप्त करनेकी अिच्छा और अुसके लिअे विचारमय पुरुषार्थ ही अुसकी पाठ्यपुस्तके है। दूसरी विद्याओकी तरह सच्ची तालीमकी जिज्ञासाके लिअे भी सत्पुरुषो द्वारा अुस विषयके मिलनेवाले अुपदेशोके जरिये तथा अुनके चरित्रके जरिये पडनेवाले सस्कारोसे सच्ची तालीमकी भूमिका जरूर तैयार हो सकती है।

(११) सच्ची तालीमके फलस्वरूप निर्भयता, निर्लोभता और पुरुषार्थ बढता है और शुद्ध विचार जाग्रत होता है। अुस मार्ग पर चलते हुअे अनेक गौण विद्याओका भी अनायास विकास होता है। गौण विद्यायें रास्तेमे आनेवाले फल-झाडो जैसी है। भूख मिटानेके लिअे अुनका अुपयोग किया जाय तो ठीक है; परन्तु मनुष्य अुन्हींमें लुब्ध होकर रुक जाय तो अुसकी यात्रा पूरी नही हो सकती — मानवताकी प्राप्ति नही हो सकती।

(१२) सच्ची तालीममे कोअी भी शुद्ध कर्म बाधक नही होता।

(१३) शरीरकी सुविधाके साधन अुत्पन्न करने या बनानेमें जो अपना पूरा हिस्सा नही देता वह 'स्तेन' है। दो अुपायो द्वारा अिस स्थितिसे बचा जा सकता है. अुपभोग कम करके और बचे हुअे समयमे बौद्धिक अभिलाषाअे तृप्त करके, अथवा दूसरेकी आवश्यकता या प्रार्थनाके वश होकर सेवाभावसे 'यदृच्छालाभसन्तुष्ट' की वृत्ति स्वीकार करके।

(१४) गुरुभक्ति या परबुद्धिकी सहायता लेनेकी वृत्ति अनर्थका कारण नही है; भय, लालसा आदि अबुद्धिके मूल ही अनर्थके कारण हैं।

(१५) मानवताके विकासके लिअे तो गुरुभक्ति अुदात्त वृत्ति है और अिसलिअे अुन्नतिकारक है। तथा परबुद्धिकी सहायता स्वबुद्धिकी अुन्नतिके लिअे आवश्यक भोजनका काम करती है। अुसकी मुझे आवश्यकता नही, अैसा माननेमे भ्रम, गर्व या कृतघ्नता है।

(१६) मानवताके विकासके सिवाय दूसरे फल प्राप्त करनेके लिअे किसीकी भी बुद्धि अचूक है, अैसा विश्वासके साथ नही कहा जा सकता। जिस हद तक प्रकृतिके नियमोका सशोधन हुआ होगा, अुस हद तक दोष कम होनेकी सभावना रहेगी, अथवा किसी विशेष देश या कालके लिअे निश्चित मार्ग प्राप्त होनेकी सभावना रहेगी। परन्तु प्रकृतिकी अनन्तताके कारण अधिकसे अधिक अितना ही कहा जा सकता है कि अुस विषय तक बुद्धिका निर्दोष होना सभव है।

(१७) गौण तालीममें होनेवाला भौतिक तथा चित्त-प्रकृतिका शोधन सच्ची तालीममे सबसे ज्यादा लाभकारी हो सकता है, परन्तु लाभकारी होगा ही अैसा विश्वासपूर्वक नही कहा जा सकता।*

---

* पहली बार 'युगधर्म' मे माघ १९८० में छपे लेखकी सशोधित आवृत्ति।

तालीमकी बुनियादें

दूसरा भाग

१
अितिहास-संबंधी दृष्टि

मनुष्यके व्यक्तिगत विकासमे जीवनके सारे अनुभवोकी स्मृति ताजी बनी रहनेका जो महत्त्व है, वही महत्त्व प्रजाके विकासमें अितिहासको प्राप्त है। कुछ लोग दूसरोके अनुभवोकी जाच करके कुछ बोध ग्रहण करते है; कुछ लोग अपने व्यक्तिगत अनुभवसे सबक सीखते है और कुछ अैसे होते है जो बार-बार अनुभव मिलने पर भी कोअी बोध लेते मालूम नही होते।

अिन भेदोके अनेक कारण है। अेक कारण तो यह है कि मनुष्योके अनुभवोकी स्मृतिकी जागृति न्यूनाधिक होती है। सावधानी या असावधानीकी स्थितिमे हुआ प्रत्येक अनुभव हम पर कुछ न कुछ सस्कार डालता है। प्रत्येक सस्कार हमारे शरीर, अिन्द्रियो, मन, बुद्धि, गुणो आदिमें कुछ परिवर्तन करता है, क्षणभर पहले हम जैसे थे, अुससे वह हमें कुछ भिन्न बना देता है। जो अनुभव बार-बार होते है, अुनका असर हमारी जीवन-रचनाको कुछ खास ढगसे स्थिर करता है, जो अनुभव क्वचित् ही होते है, अुनका असर स्पष्ट न होनेसे अज्ञात रहता है। कोअी अनुभव सावधान रहकर प्राप्त किया हो, तो वैसा अनुभव फिरसे लिया जाय या नही और अुसमे कैसा परिवर्तन किया जाय, अिस सबधमें मनुष्य जान-बूझकर अपना मार्गदर्शन कर सकता है। असावधानीमें प्राप्त किये जानेवाले अनुभव हमारे जीवन पर सस्कार तो डालते है, परन्तु अपने जीवनका जान-बूझकर मार्गदर्शन करनेके प्रयत्नमे हम अुनका अधिक अुपयोग नही कर सकते। अैसे सस्कारोका असर प्राकृतिक प्रेरणा (natural instinct) कहा जा सकता है। जो सस्कार असावधानीकी दशामें हम पर पडते है, अुनमे परिवर्तन करना कठिन होता है, क्योकि अुन सस्कारोके बलसे होनेवाली क्रिया बहुत बार हमारे ध्यानमें नही आती। और, ध्यानमे आने लगती है, तब भी क्रिया हो जानेके बाद हमारा ध्यान

अुसकी ओर खिचता है। अैसे सस्कारोके वश होना आसान होता है; अुन्हे अपने वशमे करना कठिन होता है।

अैसे असावधानीमे प्राप्त हुअे सस्कारोमें जन्मके और बाल्यावस्थाके सस्कार मुख्य है। और अुसके बाद भी जो मनुष्य जितना कम सावधान होगा, अुतना ही अैसे सस्कारोका जमाव अधिक होगा।

सावधानीकी दशामें प्राप्त हुअे अनुभव विस्मृत-से मालूम हो और लम्बा समय वीत गया हो, तो भी अुनका स्मरण प्रयत्नसे जल्दी ताजा किया जा सकता है। असावधानीकी दशामे प्राप्त किये हुअे सस्कारोके परिणाम देखे जा सकते है, परन्तु वे अनुभव थोडे ही समय पहलेके हो तो भी अुनकी तफसील याद करना कठिन या लगभग असभव हो जाता है। दूसरे साक्षीकी सहायतासे अुनकी कुछ तफसील शायद याद की जा सके, परन्तु सारी तफसील याद करना कठिन होता है। असावधानीकी दशामे दो क्षण पहले बोले हुअे शब्द या अुठा हुआ विचार भी हमें याद नही रह सकता, जब कि सावधानीकी दशामे दो-ढाअी वर्षकी आयुमे किये हुअे अनुभव भी याद रहते है।

अिसमें शक नही कि हम जन्मसे ही अपने साथ बहुतसे सस्कार लेकर आते है। बालक कोअी कोरा पृष्ठ, मिट्टीका लोदा या मोमका रस नही है कि अुस पर जैसे सस्कार हम डालना चाहे वैसे आसानीसे डाल सकें। अिन सस्कारोको आनुवशिक कहा जाय, पूर्वजन्मके कहा जाय अथवा दोनोके कहा जाय, अिस चर्चामे यहा जानेकी आवश्यकता नही। परन्तु आनुवशिक सस्कार कहे तो अुसका अर्थ होगा हमारे पूर्वजो द्वारा प्राप्त किये हुअे अनुभवोसे दृढ बनी हुअी प्रकृति, पूर्वजन्मके सस्कार कहे तो अुसका अर्थ होगा हमारे पूर्वजन्ममे प्राप्त किये हुअे अनुभवोसे दृढ बनी हुअी प्रकृति और दोनोके कहे तो अुसका अर्थ होगा दोनोके मिले-जुले बलसे दृढ़ बनी हुअी प्रकृति। जिन अनुभवोसे ये सस्कार हमारे पूर्वजो पर या हम पर पडे, अुन अनुभवोकी स्मृति आज जाग्रत करना अत्यन्त कठिन है। यदि थोडी-बहुत स्मृति जाग्रत की जा सके, तो अनादि भूतकालके किसी अणु जितने विभागकी और जीवनके विविध पहलुओमें से अेकाध पहलूकी ही की जा सकती है।

परन्तु अैसे अपार अनुभवोसे अुत्पन्न हुअे सस्कारोने हमारी प्रकृतिका निर्माण किया है। कौन कह सकता है कि अुस अनादि भूत-कालमे कितने सस्कार दृढ हुअे होगे, कितने सस्कार विरोधी अनुभवोंके फलस्वरूप नष्ट-से हो गये होगे और कितने विपरीत सस्कार दृढ वने होगे, और अिस प्रकारकी पुन दृढता और पुन लोपकी कितनी आवृत्तिया हुअी होगी? हमारे सस्कारोमे से कुछ अत्यन्त अर्वाचीन होते हुअे भी बहुत वलवान नही मालूम होगे, कुछ बलवान मालूम होते होगे, फिर भी हमारी कीटदशाके चिह्न होगे। कुछ सस्कार अर्वाचीन होनेसे वलवान होगे, और कुछ प्राचीन होनेके कारण लुप्तप्राय हो चुके होगे।

विज्ञानशास्त्री कहते हैं कि बालक अपने अिस जीवनके पहले क्षणसे लेकर युवावस्थामें प्रवेश करने तक अपने अत्यन्त प्राचीन पूर्वजोसे आरभ करके अपने माता-पिताके जीवन तकका थोडेमें दर्शन कराता है, जिन जिन अनुभवोके कारण पूर्वजोके जीवनमे जो जो परिवर्तन हुअे, अुन सवकी साक्षी प्रत्येक बालक सक्षेपमे देता है।

हमे भूतकालके अनुभवोकी — अितिहासकी — तफसीलका स्मरण नही होता, परन्तु अुन अनुभवो द्वारा किये गये परिवर्तनोका हमने अिस जीवनमें भी अनुभव किया है, और हमारी आजकी स्थिति अुन्ही सस्कारोका फल है। अितिहासका ज्ञान हमे भले न हो, परन्तु अितिहासका जो परिणाम आया वह हमारा जाना हुआ है। वह परिणाम हमारा आजका जीवन है।

यह सिद्धान्त व्यक्ति और समाज दोनोको लागू होता है।

अव अेक दूसरी वातका विचार करे। अैसा कहा जाता है कि भिन्न-भिन्न प्रजाओका अितिहास जाननेसे हम समझदार और वुद्धिमान बन सकते हैं। दूसरी प्रजाओने जो गलतिया की हो अुनसे हम वच सकते हैं। दूसरी प्रजाओको किसी विशेप स्थितिमें पहुचनेके लिअे जिन कठिन अनुभवोमे से गुजरना पडा, अुस स्थितिको हम अुन कठिन प्रसगोमें से गुजरे विना प्राप्त कर सकते है। यह विचार सोलहों आने सच हो, अैसा नही मालूम होता। कितने मनष्योके वारेमें

हमारा यह अनुभव है कि वे दूसरोकी खाओी हुओी ठोकरोसे बोध लेकर समझदार बने है? कितनी प्रजाओोने जानते हुओे भी अुन्ही दुर्गुणोका पोषण नही किया, जिन दुर्गुणोके कारण दूसरी प्रजाओोका पतन हुआ? कितनी प्रजाओोने नामशेष बनी हुओी प्रजाओोका अितिहास जानकर राज्य-विस्तारकी महत्त्वाकाक्षाका त्याग किया है? सच पूछा जाय तो प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक प्रजाको विकासके किसी निश्चित क्रमसे गुजरना पडता है। जिस प्रकार अमुक भूमिकामे से निकले बिना मनुष्य-योनिका कोओी प्राणी मनुष्य-शरीरकी पूर्णता प्राप्त नही करता, अुसी प्रकार अमुक भूमिकामे से पार हुओे बिना कोओी प्रजा प्रजाके रूपमे पूर्णता प्राप्त नही करती।

अिसके अलावा, विकासका ओेक नियम ओैसा भी मालूम होता है कि प्रत्येक जीव अपने नाशके बीज साथ लेकर ही अुत्पन्न होता है। अिसी तरह प्रत्येक प्रजा भी अपने नाशके बीज अपने साथ रखती है। केवल अितिहासके ज्ञानसे नाशके अिन बीजोको बढनेसे रोका जा सकता है या नही, अिसमे शका है। परन्तु जीवकी तरह किसी प्रजाका प्रयत्न भी अिस नाशसे बचनेकी दिशामे हो सकता है।

तब अितिहासके ज्ञानका फल क्या है? और अुस ज्ञानकी प्राप्तिका ध्येय क्या है?

प्रत्येक अनुभव हमारे शरीर पर कोओी क्रिया करके अुसके द्वारा चित्त पर सस्कार डालता है। और प्रत्येक सस्कार हमारे शरीरके किसी न किसी भागमे अपना असर पैदा करता है। प्रत्येक सस्कार ओेक ओर कोओी गुण* निर्माण करता है, और दूसरी ओर कोओी शारीरिक परिवर्तन पैदा करता है। जिस तरह बिजलीका दीया तार द्वारा अदृश्य रूपमे बहनेवाली शक्तिको प्रकट करता है, अुसी प्रकार हमारा शरीर, मन, बुद्धि और जीवन हमारे भीतर अदृश्य रूपमें बहनेवाली गुणशक्तिको प्रकट करते हैं। साधारण मनुष्य अतिशय सावधान या

---

* जैसे दया-क्रूरता, लोभ-अुदारता, क्षमा-दंड, शौर्य-कायरता, हिंसा-अहिंसा आदि।

जाग्रत नही होते। अेक ही सस्कार वार-बार डाला जाय, तो अुससे कोअी न कोअी गुण अुनमे निर्माण हुअे बिना नही रहता।

लेखक, अुपदेशक, शिक्षक और देशनेता जाने-अनजाने अिस नियमसे परिचित होते हैं। अिसलिअे वे जनतामे जो गुण अुत्पन्न करना चाहते हैं, अुनके अनुकूल सस्कार डालनेका सतत प्रयत्न करते है।

प्रत्येक युगमे कम-ज्यादा महत्त्वाकाक्षा रखनेवाले अनेक पुरुप अिस नियमका अुपयोग करते है। परन्तु सदा अिस नियमका सदुपयोग ही होता है, अथवा विवेकयुक्त विचारसे ही अुपयोग होता है, अैसा नही कहा जा सकता। किसी समय प्रजाको अपनी स्वार्थसिद्धिका साधन बनानेके लिअे अिस नियमका अुपयोग किया जाता है, किसी समय अपने गुणोके विपयमे पक्षपात होनेके कारण जनतामे वैसे गुण निर्माण करनेके लिअे अिस नियमका अुपयोग किया जाता है, कभी तात्कालिक परिणाम अुत्पन्न करनेके लोभसे कुछ सस्कार डाले जाते है, कभी बिना किसी अिरादेके, कभी जान-बूझकर, कभी मोहसे और कभी विवेक-बुद्धिसे अमुक सस्कार डालनेका कार्य राष्ट्रके विविध वृत्तिवाले लोग विविध प्रकारसे करते है। अिस युगमे तो अैसे सस्कार डालनेवालोकी सख्या और अुनकी सस्कृतिया अगणित है, और अैसे अनेक मनुष्योका असर प्रत्येक मनुष्य पर होता है। अिस कारणसे विविध प्रकारके परस्पर विरोधी सस्कारोका अेकसाथ पोषण करनेवाले लोग भी देखे जाते है। अिस सबमे आश्चर्यकी बात तो यह है कि मेरे भीतरके विरोधी सस्कारोका विरोध मै सामान्यत देख नही सकता, और कोअी यह विरोध बतावे तो अुसे मै स्वीकार नही कर सकता। मुझे अुनमें सुसगतता ही मालूम होती है।

अिस प्रकार प्रजाका निर्माण करनेकी अिच्छा रखनेवालोमें अितिहास-वेत्ता भी अेक है।

प्रजाका निर्माण करनेवाले पुरुषोके राजनीतिज्ञ और धर्मोपदेशक जैसे दो विभाग किये जाय, तो अितिहास-वेत्ता अधिकाशमे राजनीतिज्ञोके वर्गका मालूम होगा। दोनो जान-बूझकर जनतामें सस्कार डालनेका कार्य करते है। परन्तु राजनीतिज्ञके कार्यमे बहुत बार निश्चित योजना

(scheme) अधिक दिखाओ देती है। बेशक, यह नहीं कहा जा सकता कि वह योजना सद्‌हेतुपूर्ण ही होती है। अधिकतर अुसके पीछे रागद्वेषात्मक हेतु ही होता है। धर्मोपदेशककी प्रवृत्तिमें न्यूनाधिक तत्त्व-दृष्टि होती है, परन्तु स्वार्थके अभाव अथवा अन्य कारणसे अुसमें कोओ निश्चित योजना नहीं मालूम होती। परन्तु अुसका हेतु विशेष शुद्ध होता है। अिसमें दोनों ओर अपवाद हो सकते हैं, परन्तु बहुधा यही स्थिति होती है।

अुदाहरणके लिअे, हमारे देशके अंग्रेज राजनीतिज्ञोंने अितिहासका अुपयोग अिस ढंगसे किया कि अंग्रेजोंके प्रति हमारे मनमें आदर और देशके लोगोंके प्रति घृणा अुत्पन्न हो। राष्ट्रीय राजनीतिज्ञोंका अितिहासके शिक्षणमें अिससे अुलटा रुख दिखाओ देने लगा है। कहा जाता है कि कुछ वर्ष पहले अमेरिकाकी अितिहास सिखानेकी पद्धतिमें अैसा रुख अख्तियार किया जाता था, जिससे अंग्रेज प्रजाके प्रति अमेरिकनोंके मनमें द्वेष पैदा हो। अब वहांके राजनीतिज्ञोंका रुख बदला है, अिसलिअे अब तककी अितिहासकी पाठ्यपुस्तकें रद्द करके नअी पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। जर्मनीमें कुछ वर्ष पूर्व अितिहास अिस तरह चित्रित किया जाता था जिससे बालकोंके मन पर बचपनसे ही यह संस्कार पड़े कि कैसरके बिना जर्मनीकी अपार हानि होगी, और कैसरकी सत्ता टिकाये रखनेमें जर्मन प्रजाका स्वार्थ और धर्म निहित है।

दो पड़ोसियोंके बीच लड़ाओ होती है, तब वे पचीस-पचीस वर्षकी पुरानी बातें याद करके अेक-दूसरेको ताने मारते हैं। दोनों अपने किये हुअे अुपकारोंको और दूसरेकी बताओ हुओ नीचताको ही याद कर सकते हैं, क्रोधके आवेगके कारण सामनेवालेने जो अुपकार किये हों या खुदने अुसके साथ जो अन्याय किये हों वे याद नहीं आते। और याद कराये जायं तो भी अुनका महत्त्व नहीं मालूम होता। दोनोंके झगड़ेको अुग्र रूप देनेमें यह रीति बहुत असरकारक हो सकती है, परन्तु अुनके झगड़ेको सुनकर हम दोनोंके विषयमें कोओ राय बनाने बैठें तो वह गलत ही होगी। द्वेषमें कही हुओ बातें गलत ही होती हैं।

अुसी प्रकार अिस ढगसे लिखे हुअे और सीखे हुअे अितिहाससे भूतकालमे घटी घटनाओका सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेकी आशा व्यर्थ सिद्ध होती है। अेक तो राजनीतिज्ञका अर्थ है साधारणत वाहर दिखाअी दे अुससे दस गुना गहरा मनुष्य। कोअी कार्य करते समय अपने साथियोके साथ जो हेतु निश्चित किये हो अुनसे सर्वथा भिन्न हेतु वह प्रकट करता है, यह भी सभव है कि अपने साथियो पर रहे विश्वास या अविश्वासकी मात्राके अनुसार अुनके साथ जो चर्चा हुअी हो अुससे कितना ही अधिक और भिन्न अुसके मनमे भरा हो। अैसे दो पक्षोके राजनीतिज्ञ परस्पर जिस तरह व्यवहार करते है, अुसमे वस्तुस्थितिका पता जब अुस समयके लोगोको — अत्यन्त निकटके लोगोको भी — बहुत बार नही होता, तो लम्बे समयके बाद अितिहास-सशोधनका कार्य करनेवालोके अनुमान अुन घटनाओ पर सच्चा प्रकाश डालनेवाले हो यह कितना कठिन है। यह सच है कि कभी-कभी लम्बे समयके बाद भी अकल्पित रूपमे सत्य प्रकट हो जाता है, परन्तु प्रत्येक घटनाके बारेमें अैसा होता होगा, अिसमे शका है। और यदि होता भी हो तो कितने लम्बे समय तक प्रजाके कितने बडे भागको भ्रममें रहना पडता है। अितिहासके पात्रोकी राजनीतिक गूढताके कारण पैदा होनेवाली यह अेक कठिनाअी हुअी।

फिर अितिहास-लेखक भी राजनीतिज्ञ ही होते है, अिसलिअे अितिहासमे वे लोग अनेक तरहसे असत्यका मिश्रण कर देते है। अुदाहरणके लिअे, (१) बिलकुल झूठी बाते गढकर, (२) सच्ची बातोको दबा कर, (३) अपने अुद्देश्यके अनुकूल सच्ची बातो पर मुलम्मा चढाकर अुन्हे अधिक आकर्षक बना कर, (४) अपने प्रतिकूल सच्ची घटनाओको गौण बता कर, (५) अलग अलग सच्ची घटनाओके बीच झूठा सम्बन्ध कायम करके, (६) काफी सत्यमे थोडा — परन्तु अपने अुद्देश्यकी सिद्धिके लिअे अत्यन्त महत्त्वका — असत्य मिलाकर।

वकील अच्छी तरह जानते है कि बिलकुल सच्चे साक्षीको अुनके पक्षसे तोडना लगभग असभव होता है। बिलकुल झूठेको पकडना कठिन नही होता, परन्तु काफी सचाअीमें अपने पक्षको लाभ हो अैसा

थोडा असत्य बोलनेवाले साक्षीको तोडना बडा कठिन कार्य है। अेक मनोरंजक अुदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। अेक गावमे प्लेग फैलता है, अुस गावकी अेक धनाढ्य स्त्रीके दो पुत्र प्लेगके शिकार हो जाते है। और दोनो दो-तीन दिनके अन्तर पर मर जाते है। वड़ा पुत्र विवाहित होनेके कारण अपने पीछे अेक विधवाको छोड जाता है। अनेक वर्ष वाद सास-वहूमे झगडा खडा होता है। मुद्दा यह है कि वडा लडका पहले मर गया हो तो छोटे लडकेकी वारिसके नाते मा सारी सम्पत्तिकी स्वामिनी वनती है और छोटा लडका पहले मर गया हो तो वहू सारी सम्पत्तिकी स्वामिनी वनती है। अिसलिअे सासका पक्ष कहता है कि वडा लडका पहले मरा और वहू कहती है कि छोटा लडका पहले मरा। जन्म-मरणके रेकार्डमे गडवडी हो जानेसे अुसकी साक्षी वेकार-सी हो जाती है। और अधिकतर सगे-सम्वन्धियो तथा गाववालोकी साक्षी पर आधार रखना पडता है। सम्वन्धी सास या वहूके प्रति अपनी सहानुभूतिके अनुसार अेक या दूसरे पक्षमे शरीक होते है। अव दोनो पक्षके साक्षी जो हकीकते पेश करते है वे अधिकतर सच्ची होती है, केवल सासके साक्षी जो घटना रविवारको घटी वताते है अथवा जिस जगह वडे लडकेका नाम वोलते है, वह घटना वहूके साक्षी वुधवारको घटी वताते है अथवा अुस जगह छोटे लड़केका नाम वोलते है। अैसे मामलोमे झूठको खोजना वडा कठिन होता है। मूल घटनाके वर्णन परसे सत्यासत्य खोजनेके वजाय कहनेवालेकी प्रतिष्ठा, चारित्र्य, अेक पक्षके साथ निकटका सम्वन्ध और दूसरे पक्षके साथ वैर, परोक्ष वाते पेश करनेमे प्रकट हुअी असम्बद्धता आदि परसे ही निर्णय करना आवश्यक हो जाता है।

अितिहास लिखनेमें अैसी चालाकी वहुत वार की जाती है।

अिन सव कारणोसे जो मनुष्य संकुचित राष्ट्रीयता या किसी विशेष राष्ट्र या पक्षके प्रति राग अथवा द्वेष निर्माण करानेके हेतुसे परे होना चाहता है, और जिस तरह अपना विकास करनेके लिअे अपने पिछले जीवनका अवलोकन करता है अुसी तरह राष्ट्रके विकासके लिअे राष्ट्रके पिछले जीवनका अवलोकन करनेके हेतुसे

अितिहासका अध्ययन-अध्यापन करता है, अुसे अितिहासके विषयमें कैसी वृत्ति रखना चाहिये अिस सबधमे मै नीचेके परिणामो पर आया हू .

१ अितिहास-वेत्ताको अपनी प्रजाकी आधुनिक स्थिति, अुसमें पाये जानेवाले सद्‌गुणो या दुर्गुणो, अुसमे न पाये जानेवाले गुणो, अुसके बुद्धिशाली और अबुद्धिशाली वर्गके रहन-सहन, वासनाओ, अभिलाषाओ आदिकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। थोडेमे कहे तो अुसे अपनी प्रजाके आजके सस्कारोका अच्छा ज्ञान होना चाहिये। जीवनके किसी वर्तमान क्षणमे कालका केवल अेक काल्पनिक अश ही नही रहता, बल्कि प्रत्येक वर्तमान क्षणमे अनादि भूतकालका सग्रह सार-रूपमे रहता है।

२ अितिहासका अर्थ केवल प्रजाका राजनीतिक अितिहास नही, बल्कि अुसके समग्र जीवनका अितिहास है, अथवा नीतिशास्त्रकी परिभाषामे कहू तो प्रजाके गुणोके अुदय और अस्तका अितिहास। प्रजाके जीवनमें जो जो घटनायें घटी, अुनसे अुसके जीवनमे किन गुणोका अुदय हुआ, किन गुणोकी वृद्धि हुआी और किन गुणोका अस्त हुआ अिसका अध्ययन। प्रजाकी अमुक विजय या पराजय, अमुक कालकी समृद्धि या दरिद्रता किन आकस्मिक तथा बाह्य कारणोसे हुअी, अितना ही नही बल्कि किस गुणके विकास या न्यूनता — अथवा किस दोषकी वृद्धिके कारण हुअी अिसका अध्ययन।

अिस सबधमे नामशेष हो चुकी प्रजाओके अितिहासका अध्ययन अनेक तरहसे अुपयोगी होता है। अुन प्रजाओका अितिहास लिखनेमे लेखकको राजनीतिज्ञकी दृष्टि रखनेका कोअी कारण न होनेमे सभव है वह अधिक तटस्थ दृष्टिसे लिखा जाय। अिसलिअे अुनके अध्ययनसे अुस प्रजाके गुणो और स्वभावके विकासक्रम और परिणामका अच्छी तरह अवलोकन किया जा सकता है। अैसी अनेक प्रजाओके अितिहाससे यह खोज की जा सकती है कि मानव-जातिके गुणो और स्वभावके अुदय, अुत्कर्ष, रूपान्तर तथा अस्तके कोअी सामान्य नियम है या नही और यह भी खोजा जा सकता है कि वर्तमान प्रजाओमे मे प्रत्येक प्रजा अथवा अुसके किसी भागकी विकास-भूमिका प्राचीन प्रजाके किस कालकी स्थितिसे मिलती-जुलती है।

३ हिन्दुस्तानका अितिहास सिखानेमे अभी तककी पद्धति मुसलमान कालसे आरभ करनेकी थी, परन्तु अब अैसा मत बनता जा रहा है कि अुसका शिक्षण प्राचीन कालसे आरभ करना चाहिये। अूपरके विचारोके अनुसार मै अिस नतीजे पर पहुचा हू कि अितिहासकी ब्यौरेवार शिक्षा वर्तमानकालसे प्राचीन कालकी ओर जानेवाली होनी चाहिये। ब्यौरेवार शिक्षा आरभ करनेसे पहले प्राचीनसे लेकर आज तकके सपूर्ण अितिहास पर अेक शीघ्र या सरसरी दृष्टि अवश्य डालनी होगी। जिस छोटेसे बीजसे हमारे अितिहासका आरभ हुआ मालूम पडे, वहासे लेकर आज तककी थोडी-बहुत कल्पना आ सके अैसा अवलोकन कराना आवश्यक है, परन्तु अुसका ब्यौरेवार अध्ययन वर्तमानसे धीरे-धीरे प्राचीन युगकी ओर जाना चाहिये। जिस तरह हम नदीके अुद्गमकी ओर धीरे धीरे जाते है, अुसी तरह किसी प्रजाके भूतकालकी ओर जाना पूरी तरह सभव नही है। अिसलिअे वर्तमान युगका अध्ययन भी २५, ५० या १०० वर्ष पहलेकी घटनाओसे आरभ करना पडे और वहासे आज तकके अितिहास पर आना पडे तो अिसे मै समझ सकता हू। अैसा प्रारभ कहासे किया जाय, अिसका निर्णय अितिहास-लेखक आसानीसे कर सकते है, परन्तु मुझे लगता है कि बहुत दूरके भूतकालसे अुसका आरभ नही होना चाहिये। जिस घटनासे हमारी प्रजाकी आजकी स्थितिकी ओर आनेके लिअे पहली प्रेरणा मिली, अुस घटनासे ब्यौरेवार अध्ययन आरभ करना चाहिये। अुदाहरणके लिअे, हिन्दुस्तानका अितिहास युरोपियन कपनियोके अथवा १९५७ के विद्रोहके समयसे आरभ करना चाहिये।

अिसका कारण मै फिरसे समझाता हू।

जैसा कि मैने अूपर बताया, हमारे आजके जीवनमें हमारा सपूर्ण भूतकाल सार-रूपमें समाया हुआ है और अितिहास-वेत्ताको हमारी वर्तमान स्थितिका यथासभव निश्चित और स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये। हमारी आजकी स्थिति, सस्कारो, विशेषताओ और दोषोंमें से कुछ लगभग सृष्टिके आरंभ जितने पुराने होंगे, हमारे वर्तमानका निर्माण करनेमें अुनका काफी हाथ रहा होगा। परन्तु अिस प्रकार सनातन

रूपसे टिका हुआ सस्कारोका भाग, वहुत सभव है, सारी मानव-जातिमें अेकसा ही हो। केवल हमारी प्रजामे भी — स्मृतिके रूपमें नही परन्तु जीते-जागते रूपमे पाये जानेवाले — अत्यन्त प्राचीन कालसे चले आये सस्कारोकी सख्या थोडी ही होगी। समग्र अितिहासके सिहावलोकनमे असका निरूपण करना चाहिये। परन्तु वर्तमान विकसित जीवनमें हमारी प्रजा जिन जिन गुणो और स्वभावका दर्शन कराती है वे कुछ हद तक अर्वाचीन बलोके फलस्वरूप पैदा हुअे है। हमारे वर्तमान **युगके** अितिहासके अमुक रूपमें घटनेमे युगके आदिकालकी हमारी स्थिति और गुण-स्वभाव कारणभूत है, परन्तु वर्तमान **समयकी** स्थिति और गुण-स्वभावका निर्माण करनेमे वर्तमान युगका अितिहास कारणभूत है। अिसलिअे वर्तमान युगके आरभके समाज-जीवनकी समग्र स्थितिके विवेचनसे शुरू करके वर्तमान युगके अितिहासकी जाच करते हुअे आजकी स्थितिके अवलोकनमें अुसका अन्त होना चाहिये। और अितिहासकी आलोचनासे अुत्पन्न होनेवाले अनुमानो तथा वर्तमान स्थितिके प्रत्यक्ष अवलोकनका ठीक मेल बैठना चाहिये। अिसे मैं अितिहासके अध्ययनका महत्त्वपूर्ण प्रयोजन समझता हू। कुशल डॉक्टर रोगीके शरीर पर प्रत्यक्ष दिखाअी देनेवाले आजके चिह्नोका वारीकीसे अध्ययन करता है, फिर भी अुस रोगसे सम्बन्ध रखनेवाला रोगीके जीवनका सारा अितिहास वारीकीसे जान लेता है। अिसका कारण यह नही है कि डॉक्टरको रोगीका जीवन-चरित्र जाननेमे कोअी दिलचस्पी है, वल्कि यह है कि रोगकी आजकी स्थिति तथा अुसका कारण समझने और अुसका अुपचार खोजनेके लिअे पूर्व अितिहास जानना वहुत आवश्यक है। अिसी प्रकार प्राचीन कालमे गुरु अपने विद्यार्थियोके कुल, गोत्र, कुलाचार आदिकी वारीक जाच करते थे। अुसका अुद्देश्य विद्यार्थीके जीवन-चरित्र और वशावलीका लेखा रखना नही होता था, गुरु अिसलिअे अिस अितिहासकी छानवीन करते थे कि अुससे विद्यार्थीके आजके सस्कार जाननेमे तथा अुसके विशेप सस्कारोके अनुसार अुसकी तालीमका प्रकार निश्चित करनेमें सहायता मिलती थी। अिसी प्रकार कोअी मनुष्य अपनी आजकी अिच्छाओ, भावनाओ, विकारो

आदिको अच्छी तरह समझना चाहे तो अुसे अपने पूर्व जीवनका अवलोकन करना चाहिये। यही न्याय किसी प्रजाके अितिहासके अध्ययनमे भी लागू करना चाहिये।

४ अिसके सिवाय, अेक दूसरी वात भी याद रखनी चाहिये। हिन्दुस्तानके जैसी विशाल प्रजाके सारे भाग गुणो और स्वभावके विकासमे अेक ही भूमिकामे नही हो सकते। कोअी दो मनुष्य भी समान भूमिका पर नही होते, परन्तु अनेक मनुष्योमे जो स्थूल समानता होती है, अुसके भी हिन्दुस्तानकी प्रजाके अनेक वर्गोमें अनेक भेद हो सकते है। अेक तो हमारी वर्णाश्रम-व्यवस्था ही प्रजामे विशिष्टताके गुण निर्माण करनेवाली है। फिर स्थानिक भेद, हिन्दू धर्मका विशाल स्वरूप, दूसरे अत्यन्त भिन्न धर्मोंकि सस्कारोवाली प्रजाओके साथ सम्वन्ध—अिन सबके कारण हमारी प्रजाके विभिन्न वर्गोकी भूमिकायें विविध हो सकती हैं।
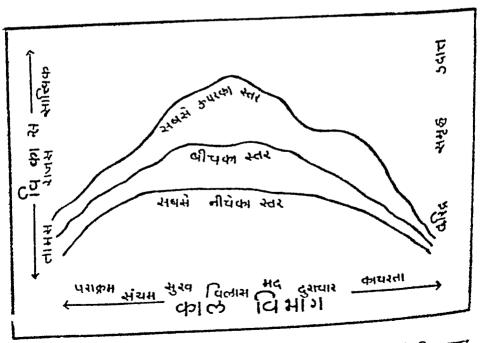
मान लीजिये कि हम रोमन जैसी अेक प्रजाके गुणोंके अितिहासका अुपर्युक्त ढंगने आलेख (ग्राफ) तैयार करते हैं; जिस जिस गुणक्रममें ने

वह प्रजा गुजरी, अुसका छोटे छोटे ब्यौरेवाला नकशा चित्रित करें और हमारी प्रजाके विविध वर्ग जिन गुणोका अैसा अुदय या अस्त बता रहे हो अुनका नाम अुन गुणोके स्थान पर रखे, तो अुस नकशे परसे हमे अिस बातकी स्थूल कल्पना आ सकती है कि हमारी प्रजाके भविष्यका विकास-क्रम कैसा मार्ग लेगा। मै जानता हू कि यह काम अितना आसान नही कि आलेख द्वारा बताया जा सके। परन्तु मै आशा करता हू कि अिससे अितिहासके अध्ययनकी मेरी दृष्टि स्पष्ट होगी।

अिसी सम्बन्धमे अेक बात यह भी याद रखनी चाहिये कि बाह्य परिस्थितियोके समान होने पर प्रजाके सारे भाग अुनसे अेक ही प्रकारके सस्कार प्राप्त करते है, अैसा कोअी अेकान्तिक नियम नही है। जिस तरह अेक ही प्रकारके खादसे गन्ना मीठा रस निर्माण करने लगता है और नीम कडवा रस निर्माण करता है, अथवा जैसे अेक ही सुन्दर चित्रोवाली पुस्तकका अुपयोग अेक वर्षके, सात वर्षके या दस वर्षके बालक अलग अलग ढगसे करते है, वैसे ही प्रजाके अलग अलग भाग अेक ही प्रकारकी बाह्य परिस्थितियोमे से अलग अलग गुणोका विकास करते है। कुछ सस्कार (विशेषत स्थूल सस्कार) सब पर समान रूपसे पडते है। प्रत्येक प्रजाके आजके और भावी जीवनके मार्गका अन्दाज निकालनेमे यह तफसील ध्यानमे रखने जैसी मानी जायगी।

५ किसी भी प्रजाका अितिहास जाचने पर यह पता चलेगा कि अुसमे कुछ गुण पहले मालूम नही होते, अमुक समय बाद दिखाअी देते है और कुछ समय रह कर लुप्त हो जाते है। हमारे व्यक्तिगत जीवन पर भी यही बात लागू होती है। अैसे गुणोका अवलोकन महत्त्वकी वस्तु है। बहुत बार ये क्रान्ति या परिवर्तन प्राप्त करनेवाले गुण गुण-विकासका क्रम निश्चित करनेमे बडा महत्त्वपूर्ण भाग लेते है। विकास-शास्त्रका अवलोकन सही हो, तो अुसके निर्धारित नियमोके आधार पर अेक अपेक्षा रखी जा सकती है। कोअी प्रजा अलग अलग समय पर जिन जिन गुणो और स्वभावोका दर्शन कराकर नष्ट हो जाती है,

अुन गुणो और स्वभावोमें से सभव है कुछ अुसमे आकस्मिक कारणोसे ही दिखाअी दिये हो और कुछ मानव-जातिके जीवनका विकास-क्रम सूचित करनेवाले रहे हो। दूसरे प्रकारके गुण-स्वभाव अुस प्रजाके प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमे कभी न कभी दिखाअी दिये विना नही रहते। अिन गुणो और स्वभावोंका थोडे समयके लिअे भी दर्शन कराये विना वे व्यक्ति अुसके वादके गुण-स्वभावोंका दर्शन नही कराते। किसी प्रजाके अितिहासकी जाच करनेमे अिस नियमका काफी अुपयोग किया जा सकता है। जिस प्रजाके अथवा अुसके जिस वर्गके अितिहासकी जाच करनी हो, अुसके कुछ सामान्य (average) व्यक्तियोंके जीवनका सूक्ष्म अवलोकन किया जाय, तो वे जिन गुण-स्वभावोमे से गुजरे हों तथा अन्तमें जिस स्थान पर आकर रुके हो, अुस परसे अुनकी संपूर्ण जातिके पिछले अितिहासकी सूचना मिल सकती है। और अुस जातिमे यदि कोअी असाधारण पुरुष हो गये हो तो वे सामान्य व्यक्तियोकी तुलनामे किस मार्ग पर आगे वढ़ गये, अिसका निरीक्षण भी शायद अुपयोगी होगा। अिसलिअे हमारे सामान्य व्यक्तियोके संपूर्ण जीवनका अवलोकन हमारे प्राचीन और मध्यकालीन अितिहासकी शोधमें अुपयोगी हो सकता है; और अिसके विपरीत हमारा प्राचीन और मध्यकालीन अितिहास हमारी प्रजाके अलग अलग वर्गोंके आजके जीवनको समझनेमें अुपयोगी हो सकता है। जीवनको अेक अूचा या अूपर-नीचे चढने अुतरनेवाला जीना मान लें, तो प्रजाका कौनसा भाग किस सीढी पर आज है अथवा भूतकालमें था, अुसका दर्शन अिस तरह हम कर सकते हैं।

२

विकास-विचारकी दृष्टिसे विज्ञानकी शिक्षा

पिछले लेखोसे पाठकोको लगेगा कि सारी भौतिक विद्याओमें विज्ञानके लिअे मेरा सबसे अधिक पक्षपात है। और यह बात गलत नही है। मुझे लगता है कि सत्यकी शोधके लिअे वैज्ञानिक आदते अनिवार्य हैं।

फिर भी, विज्ञानशास्त्रोने ससारमें जो महा अनर्थ किया है, अुससे मैं अपरिचित नही हू। आज विज्ञानकी सहायतासे गरीब प्रजाओका नाश, मूक प्राणियोकी हत्या, खूरेजी, अन्याय-अत्याचार और लूट-खसोट रातदिन चल रहे हैं। आज विज्ञानी अज्ञानीको सताने और पीडा पहुचानेमे ही विज्ञानका अुपयोग करता है और मानता है कि यह जगत्का सनातन कालसे चला आया नियम है। वह चारो तरफ देखता है कि बडा प्राणी छोटे प्राणीको मार कर जीता है, और अुसीको जगत्की रूढि मानता है। परन्तु वह यह नही समझता कि अिस प्रकार वह कम विकास पाअी हुअी सृष्टिको अपना आदर्श बनाता है। मनुष्यका विकास पशुमें से हुआ है, यह देखकर वह पशुके नियमोके अनुसार ही व्यवहार करना चाहता है। परन्तु यह बात वह नही समझ पाता कि वह स्वय पशुसे आगे बढा हुआ है, अिसलिअे पशु-स्वभाव अुसके जीवनका आदर्श नही हो सकता।

अिसीलिअे मैं कहता हू कि शरीर, अिन्द्रियो, बुद्धि आदिकी किसी भी प्रकारकी विशेषताके कारण मनुष्यकी पशुता मिटती नही, केवल सद्गुणोका विकास ही मनुष्यकी मनुष्यताका सच्चा लक्षण है। अिसके बिना जगत्की सारी विभूतिया जगत्के लिअे शापरूप बन सकती हैं।

परन्तु अिस लेखमें मैं दूसरी ही दृष्टिसे अिस वस्तुका विचार करना चाहता हू। मेरे देखनेमें यह आया है कि हमारे देशमें —

गुजरातमे विशेष रूपसे — विज्ञानका शिक्षण हजम नही हुआ है। अेम० अेस-सी०, या बी० अेस-सी० तक विज्ञानका शिक्षण लिये हुअे अैसे अनेक ग्रेज्युअेट मैने देखे है, जिन्होने विज्ञानका व्यावहारिक जीवनमे क्या अुपयोग किया जाय यह न सूझनेसे विज्ञानका सर्वथा त्याग कर दिया है और जो वकालतमे, व्यापारमें या सरकारी नौकरीमे लग गये है। मै स्वयं भी अुसी वर्गका हू। विज्ञानकी ही सहायतासे जीवन-निर्वाह कैसे किया जाय अितना भी जब अुन्हें नही सूझ सका, तो विज्ञानशास्त्रमे नअी खोज करनेकी आशा तो अुनसे रखी ही कैसे जाय? कुछ लोगोको मैने विज्ञानकी किसी शाखामे लीन होकर जीवन-निर्वाह करते देखा है, परन्तु अुनका विज्ञान अुनकी प्रयोगशाला तक ही सीमित रहता है, अुनके घर जाय तो आपको अैसा कुछ नही दिखाअी देगा जिससे अुनके और अुनके पडोसियोके घरमे आपको कोअी फर्क मालूम हो।

आप किसी सगीत-शास्त्रीके घर जायेंगे तो वहा आपको सगीतका वातावरण मालूम होगा, चित्रकारके यहा चित्रविद्याका वातावरण दिखाअी देगा, पडितके यहा पाडित्यका वातावरण दिखाअी देगा। किन्तु हमारे देशमें वैज्ञानिकके यहा विज्ञानका वातावरण नही मालूम पडेगा। मेरे कहनेका यह अर्थ नही कि अुसके घरमें काचकी नलिया, थरमामीटर, बैरोमीटर, गाल्वानोमीटर आदि वस्तुअे होनी चाहिये। परन्तु अपनी गृह-व्यवस्थामे विज्ञानके नियमोका अमल करनेके अिरादेसे अुसने कोअी परिवर्तन किया हो अैसा नही दिखाअी देगा। अैसा लगेगा कि अुसकी प्रयोगशालाकी व्यवस्था और गृह-व्यवस्था दोनो कोअी निराली ही दुनियायें हैं। शायद बम्बअी जैसे शहरमें आप वैज्ञानिक सिद्धान्तसे युरोपमें बनी हुअी किसी नअी वस्तुका अुपयोग देखेंगे, परन्तु वह वस्तु तो विज्ञानका विषय न जाननेवालेके घर भी आपको देखनेको मिलेगी। परन्तु वैज्ञानिकने स्वय अपने चूल्हे या सिगडीकी बनावटमें, कपडे धोनेकी पद्धतिमे, कपडो पर लगे हुअे दाग मिटानेकी रीतिमें या कूडे-कचरेका नाश करनेके तरीकेमें कोअी परिवर्तन किया हो अैसा नही मालूम होगा।

अिसके कुछ अपवाद हो सकते है। अपवादरूप व्यक्तियोके वारेमे मुझे कुछ नही कहना है, अुसी तरह सर जगदीशचन्द्र वोस या प्रो० गज्जर जैसे अत्यन्त विरले व्यक्तियोके वारेमे भी कुछ नही कहना है।

विकास-विचारकी दृष्टिसे देखते हुअे विज्ञानका अिस प्रकार केवल बोलने, सिखाने या परीक्षा देनेका विपय बन जाना आश्चर्यकारक नही लगता। विज्ञानकी—अवलोकन, तुलना, प्रयोग और नियमोका जीवनमें अमल करनेकी—आदते हमे नही पडी है, ये गुण हमारा स्वभाव नही बने है। विज्ञानसे सवध रखनेवाले अनेक सूक्ष्म नियम हम जानते होगे, परन्तु अधिकतर प्रोफेसरो और लेखकोके शब्द-प्रमाण पर ही। हमारा अपना अवलोकन, मानो हमने ही खोजा हो अिस तरह किसी नियमका ज्ञान, हम नही करते। स्वयप्रेरणासे कोअी नया प्रयोग करके हम अेक भी नियम नही अपनाते।

हमे अैसी आदतें नही पडी, अिसमें अस्वाभाविक कुछ नही है। विज्ञानका अिस प्रकारका विकास हमारे देशमे विलकुल नया ही कहा जायगा। ये सस्कार हमे अुत्तराधिकारमें प्राप्त नही हुअे है, वल्कि हम अुन्हे नये रूपमे प्राप्त कर रहे है। अिसलिअे अुन्हे जीवनमें अुतारनेमे लम्वा समय लगेगा।

परन्तु मुझे लगता है कि अिसी कारणसे यह विपय सीखनेकी हमारी पद्धति भिन्न प्रकारकी होनी चाहिये। जैसे अलकारशास्त्रका ज्ञान होनेसे कविताकी कद्र करना शायद आ जाय परन्तु कवि नही बना जा सकता, अथवा दर्शनशास्त्रके ग्रन्थ पढनेसे आध्यात्मिक चर्चा करना आ सकता है परन्तु दर्शनशास्त्री नही वना जा सकता, वैसे ही विज्ञानकी किसी शाखा पर लिखी हुअी युरोपकी अच्छी अच्छी पुस्तकें मगाकर प्रयोगशालाकी मददसे अुसके सिद्धान्तोका ज्ञान कर लेनेसे वैज्ञानिक नही वना जा सकता।

अत हमे अपने विज्ञानको दृढ वनानेके लिअे अिस प्रकार विज्ञानका आरभ करना चाहिये, मानो युरोपकी पुस्तकें हमें मिल ही नही सकती। विज्ञानकी भिन्न-भिन्न विद्याओकी युरोपमें पहले-पहल

नीव डालनेवालोने जिस तरह प्रयोग, अवलोकन आदि किये और जिन साधनोका अुपयोग किया, वही भूमिका विज्ञानके क्षेत्रमें आज हमारी है, अैसा समझकर अुस स्थानसे हमे अपने विज्ञानको आगे वढाना चाहिये।

यह सच है कि आज जितने थोडे समयमे वैज्ञानिक नियमोकी जानकारी हमें प्राप्त होती है, अुतने थोडे समयमे अैसा करनेसे वह हमें प्राप्त नही हो सकती। परन्तु जितने दशक या शताब्दिया अिसमें युरोपकी गअी, अुतनी हमारी भी जायगी ही अैसा नही कहा जा सकता। क्योकि अुन नियमोसे सर्वथा दूर तो हम रह ही नही सकते। भाप, विजली आदिके अुपयोगसे चलनेवाले सार्वजनिक साधन तो कही चले नही जायगे। अिन साधनोके पीछे रहे वैज्ञानिक नियम आज हम पुस्तको द्वारा जानते हैं, अुसके वदले यदि हम अुन्हे अवलोकनसे खोजे तो जो ज्ञान प्राप्त होगा वह हमारा ही होगा। और कभी अितनी शताब्दिया लगी भी तो क्या हुआ? अिससे विज्ञानके नियम हमारा स्वभाव वन जायेगे।

परन्तु मेरा जोर अिस वात पर है कि विज्ञानका सदुपयोग सत्यके ज्ञानके लिअे ही होना चाहिये। कोअी भी विचारक जगत्को कुछ अशमे भी समझे विना जगत्के आदि तत्त्व तक नही जा सकता। विज्ञानका व्यावहारिक अुपयोग अपने अुच्च गुणोके विकासके लिअे अथवा दूसरोके दुख दूर करनेके लिअे जितना किया जा सके अुतना अनायास होगा ही। परन्तु यदि अपने जीवनमे अैश-आराम पानेके लिअे अुसका अुपयोग किया जाय, तो वह आध्यात्मिक दृष्टिसे हुआ नही माना जायगा।

जिसमे दूसरोको पीडा पहुचानेकी अपार शक्ति है, अैसी भयकर वस्तुकी महिमा मेरे जैसा गुण-विकास पर जोर देनेवाला मनुष्य गाये, यह पाठकोको आश्चर्यजनक लगेगा। परन्तु मुझे लगता है कि विज्ञानमें अशुद्धियो, भ्रमोको और अन्धविश्वासोको मिटानेकी जो शक्ति है, अुनका निरादर करनेमे काम नही चलेगा। दुनियाकी अैसी कौनसी शक्ति है, जिसका गुणहीन मनुष्यने दुरुपयोग नही किया? स्वय

अध्यात्म विद्याका भी — जिसे सारी विद्याओकी शिरोमणि कहा गया है — मनुष्यने अनाचारके पोषणके लिअे अुपयोग किया है। योगमे भी पाखड चलाया जा सकता है। भक्तिके नाम पर भी पाखड चल सकता है। अुसी तरह विज्ञानसे भी जगत्को पीडा पहुचाअी जा सकती है। परन्तु चित्त-विकासके पश्चात् सत्यकी अुपासनाके लिअे दूसरा साधन भौतिक और चित्त-प्रकृतिकी शोध है, अत विज्ञानका त्याग नही किया जा सकता।

३

विज्ञानके बारेमें चेतावनी

विज्ञानके विकासके पक्षमें मैंने अितना अधिक कहा है कि अिस विषयमे अेक खास चेतावनी देना भी आवश्यक है।

जाने-अनजाने पाश्चात्य विज्ञानने आज तक अैसा रुख अपनाया है, जो चार्वाकके मतके अनुकूल कहा जा सकता है। अर्थात्, चैतन्य जडका विकार है, अैसी मान्यताकी ओर पाश्चात्य भौतिकशास्त्रियो और मानसशास्त्रियोका झुकाव दिखाअी दिये विना नही रहता। पाश्चात्य वैज्ञानिकके मनकी गहराअीमे अपने स्वरूपके वारेमें अैसा खयाल बना हुआ मालूम होगा कि मै अेक प्रकारका अत्यन्त जटिल रासायनिक द्रव्य हू, और विविध नैसर्गिक वलोके कारण सरल तत्त्वोंमें अुत्पन्न हुअी क्रियाओसे मेरा निर्माण हुआ है। करोडो पीढियो पूर्व यह रासायनिक द्रव्य आजकी अपेक्षा अतिशय सादे रूपमे निर्माण हुआ, बादमें क्रमश अिसकी जटिलता बढती गयी और अुसके फलस्वरूप मै आजका बीसवी सदीका अत्यन्त अटपटे स्वरूपवाला और अुसी लिअे अत्यन्त सुधरा हुआ प्राणी बना हू। और अिसी प्रकार मेरे वंशजोंमें सुधार होते होते किसी दूरके कालमे अिसकी पराकाष्ठा आयेगी।

और, अिसी कारणसे अुसके हृदयकी अैसी मान्यता मालूम होती है कि परिस्थिति और सयोगोंने मुझे जैसा बनाया वैसा मै बना हू।

परिस्थितियो और सयोगो (environments) के अनुकूल होनेकी ही प्रेरणा मेरे भीतर है। मुझमे अुत्पन्न होनेवाली प्रेरणाओको अिच्छा कहो, क्रिया कहो या ज्ञान कहो वे सब मेरे आसपासकी परिस्थितियो और सयोगोसे ही निश्चित होती हैं। अैसा लगता है कि अिस प्रकारकी कुछ प्रेरणाओको — अुदाहरणके लिअे, आत्मरक्षा, वशवृद्धि आदिकी प्रेरणाओको — वह अटपटे रसायनमे अुत्पन्न हुअे धर्म मानता है।

अिन मान्यताओके आधार पर ही चार्वाककी तरह पाश्चात्य विज्ञानके रगमे रगे हुअे लोग भी भौतिक सुखवादमे विश्वास रखते हैं। अमुक प्रेरणाअे, जिन्हे वे चैतन्यात्मक रसायनका स्वरूप मानते है, अुत्पन्न हो और अुनका पोषण किया जाय — अिसे ही वे सृष्टिका साधारण नियम मानते हैं, प्रेरणाओके अुत्पन्न न होनेको अपवाद मानते हैं, और अपवादको न्यूनता, विकलागता या रोगका चिह्न मानते हैं।

अेक दो अुदाहरणोसे यह चीज अधिक स्पष्ट हो जायगी। सब प्राणियोको अपना शरीर प्रिय होता है, अेकाध मनुष्य शरीरके प्रति अुदासीन हो तो अुसे ये लोग अपवाद समझकर विकलाग मानेगे। फिर अिस अुदासीनताका कारण अुसके शरीरकी भौतिक रचनामें खोजने लगेगे। सारे प्राणियोमे कुछ ग्रन्थिया (glands) होती हैं, अिस मनुष्यमे वे ग्रन्थिया नही हैं। परिणाम है शरीरके प्रति अिसकी अुदासीनता। सारे प्राणियोमे वशवृद्धिकी अिच्छा होती है, अिस मनुष्यमे नही है। अुसके शरीरकी जाच करने पर अमुक ग्रथिया छोटी अथवा कम मालूम पडती हैं। परिणाम है वशवृद्धिमे अुसका वैराग्य, और अपवाद होनेके कारण अेक प्रकारकी विकलागता।

मूल चैतन्यका अिनकार करनेके कारण और अपवादका अर्थ विकलागता या रोग माननेके कारण, अुस मनुष्यमें अमुक ग्रथिया क्यो नही है, अिस प्रश्नका अुत्तर वे देगे "आसपासकी परिस्थितिया और सयोग।"

कोअी मनुष्य अेक तमाचा मारनेवाले आदमीको दस तमाचे लगा दे तो वह पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी सृष्टिके नियमके अनुसार मालूम

होगा, परन्तु यदि वह औसामसीहका शिष्य निकले और तमाचा मारनेवालेके सामने अपना दूसरा गाल कर दे, तो वैज्ञानिकको शका होगी कि अुसमे कोअी विकलागता तो नही है? वैज्ञानिकको यह देखना जरूरी मालूम होगा कि अुसके मस्तिष्ककी सव ग्रथिया ठीक है या नही।

किसी मनुष्यकी अनेक स्त्रिया हो, तो वैज्ञानिक कहेगा कि अुसके मस्तिष्कका अेक खास भाग अतिशय वढ गया है, किन्तु कोअी रामकृष्ण परमहस अपनी पत्नीको माता कह कर अुसके चरणोमे प्रणाम करे, तो वैज्ञानिकको शका होगी कि अुसके मस्तिष्कमे किसी ग्रथिकी कमी है या किसी ग्रथिका ठीक ठीक विकास नही हुआ है।

थोडेमे, पाश्चात्य विज्ञानका झुकाव यह माननेकी तरफ है कि प्राणियोके स्वभावकी विविधता अुनकी शरीर-रचनाका परिणाम है। हमारे तत्त्वज्ञानकी परिभाषामे कहे तो पाश्चात्य विचारसरणी अैसी मालूम होती है. लिगदेह स्थूलदेहका कार्य है और स्थूलदेह पूर्वजो और आसपासकी परिस्थितियोका कार्य है।

सभव है हमारे पूर्वजोको कारणरूपमे ही — (परिणामरूपमे नही) — आत्मतत्त्वके निश्चय पर आनेसे पूर्व अिसी क्रममे से गुजरना पडा हो। पाश्चात्य विज्ञान चाहे जिन दिशाओमे वट जाय, तो भी अिस वातसे अिनकार नही किया जा सकता कि वह अनन्य निष्ठासे जगत्के स्वरूपको खोजनेका अविश्रान्त प्रयत्न कर रहा है, और अिसलिअे यह आशा रखी जा सकती है कि अन्तमें वह भी सत्य पर ही आकर रुकेगा। परन्तु पाश्चात्य विज्ञानके साथ हम अपने अुत्तराधिकारका त्याग न करे तो अच्छा हो।

हमारा अुत्तराधिकार है आदिकारणके रूपमे आत्मतत्त्वकी खोज। अधिक गहराअी या विवादास्पद विषयोमे न जाकर अिसका कमसे कम अर्थ यह है कि आसपासकी परिस्थितियो और सयोगोका भले मुझ पर असर पडता हो, भले मुझे वहुत वार अुनके अनुकूल वनना पडता हो, भले अुनके कारण मेरे लिंगदेहमे भी लम्वे समयके वाद

फर्क पडता हो, फिर भी मुझमे अेक अैसी शक्ति भरी हुअी है जिसके कारण यह नही कहा जा सकता कि मै परिस्थितियो और सयोगोका वनाया बना हू। यह शक्ति मेरा सकल्प या बहुत विशाल अर्थमे मेरा कर्म है। मेरे सकल्पसे धीरे-धीरे सृष्टिमे भी अैसा परिवर्तन होता है, जिसके फलस्वरूप परिस्थितियो और सयोगोको मेरे सकल्पकी सिद्धिके अनुकूल बनना पडता है। जिस प्रकार बालूमे से आलू किस तरह पोपक द्रव्य खीच लेते है, असका ठीक ज्ञान न होनेके कारण अुनकी अिस क्रियाको हम अद्भुत कहते है, अुसी प्रकार मेरा सकल्प धीरे धीरे अद्भुत रीतिसे बाह्य प्रकृतिको भी अिस तरह बदल देता है कि परिस्थितिया अुसकी सिद्धिके अनुकूल बन जाती है।

अिसलिअे कोअी मनुष्य साधारण मनुष्योसे भिन्न विशेपता रखनेवाला हो, तो अिसका कारण अुसकी परिस्थितियोसे अुत्पन्न हुअी विकलागता है या वह अुस मनुष्यके सकल्पका परिणाम है, यह अेक स्वतत्र प्रश्न है। अिसका अुत्तर केवल अुस मनुष्यका शरीर चीरकर अुसकी ग्रन्थियोकी सख्या जानने या रसोका रासायनिक विश्लेपण करनेसे नही मिल सकता। कुछ अश तक अुसकी शरीर-रचना अुसके सकल्पका परिणाम है, परिस्थितियोके कारण अुसकी शरीर-रचना हुअी और अुसके फलस्वरूप अुसका स्वभाव बना है, तथा अैसी असाधारणता अुस मनुष्यकी विकलागताकी निशानी है या अुसके लोकोत्तर विकासकी निशानी है, यह सब हर मामलेमें स्वतत्र रूपसे विचारनेकी चीज है। यह अुसके समग्र शरीर, अिन्द्रियो, मन, बुद्धि और नैतिकताके विकासका तथा अिस बातका विचार करके निश्चित किया जा सकता है कि अुसका जीवन किस हद तक अेकसा और शातिपूर्ण है।

४

भाषाज्ञान

कुछ वर्ष पहले 'नवजीवन अने सत्य' नामके (गुजराती) मासिकमे मैंने 'अग्रेजीकी मदिरा' शीर्षकसे अेक लेख लिखा था। अुसमे मैंने अग्रेजीका हम पर जो मादक असर हुआ है, अुसका कटाक्षपूर्ण विवेचन किया था। हममे से बहुतेरे लोगोका यह खयाल है कि अग्रेजी भापामे ही अैसी कोअी मोहक शक्ति है। यह भापा तेजस्वी है, वह भापा शिथिल है, फला भाषा मधुर है, फला आक्रामक (aggressive) है — आदि विशेपण हम बहुत बार भापाओके साथ लगाते है। विशेप विचार करनेसे मालूम होता है कि अग्रेजी भापाने हमारे मन पर जो अधिकार कर लिया है, अुसका कारण अग्रेजी भापाकी विशेषता नही है, बल्कि अुसका कारण हमारी प्रजाकी विशेपता है।

प्राचीन कालसे हमारे अितिहासकी जाच की जाय तो पता चलेगा कि अलग-अलग भाषाओमे अुनके बोलनेवालोके जैसी ही प्रवीणता प्राप्त करनेका प्रेम और स्वभापाकी अपेक्षा परभापाके लिअे अधिक आदर हमारे देशमें बडे लम्बे समयसे चला आया है। आज हम अग्रेजीको जो महत्त्व देते है, वही महत्त्व किसी समय सस्कृत भापाको देते थे, और आज भी अुस भाषाके प्रति हमारा आदर बहुत बार स्वभाषासे अधिक होता है। जिस तरह हमारे विद्वानोको मातृभापामें बोलनेकी अपेक्षा अग्रेजीमे बोलना आज अधिक पसद होता है और बहुत ज्यादा परिश्रम करनेके कारण वे अग्रेजीमे अच्छी तरह बोल सकते है, जिस प्रकार स्वभापामें हिज्जो या व्याकरणकी भूले होनेकी अपेक्षा अग्रेजीमें वैसी भूले होने पर हम बहुत लज्जित होते है या वैसी भूले करनेवालेका मजाक अुडानेकी हमारी अिच्छा होती है, अुसी प्रकार अेक समय हमारी दशा सस्कृतके सबधमे थी। जिस प्रकार अग्रेजी भाषा सीखनेके बाद मातृभापा बोलनेको जगलीपन माननेवाले और बालकोको मातृभापासे पहले अग्रेजी बोलना सिखानेके लिअे घरमे अग्रजीका अुपयोग करनेवाले हमारे देशमे कुछ लोग है, अुनी

प्रकार संस्कृतमें ही बोलनेका व्रत लेनेवाले और अुपनयन संस्कारके साथ ही या अुससे भी पहले बालकोंको शब्दरूपावली और धातुरूपावली सिखानेवाले शास्त्री भी हमारे देशमें किसी समय थे, और आज भी कुछ होंगे। आज जैसे गांधीजी अंग्रेजी भाषाके मोहके लिअे प्रजाको अुलाहना देते हैं, वैसे ही संस्कृत भाषाके अनुचित मोहके लिअे अखा, अेकनाथ और ज्ञानेश्वर जैसे ज्ञानियों और सन्तोंको अपने समयके लोगोंको अुलाहना देना पड़ा था, और स्वभाषामें ही ग्रन्थ रचनेका आग्रह रखनेवाले अेकनाथ जैसे लोगोंको संस्कृतके आग्रहियों द्वारा दिये गये कष्ट भी सहने पड़े थे।

प्राचीन कालमें संस्कृतके बजाय मातृभाषाका आदर बढ़ानेवालोंमें बुद्ध और महावीर अग्रणी मालूम होते हैं। अुसके बाद महाराष्ट्रके संतोंने मराठी भाषाको संस्कृत जितना ही महत्त्व देनेका प्रयत्न किया। गुजरातमें प्रेमानन्दने गुजराती भाषाकी सेवा आरंभ की। परन्तु प्रेमानन्दको संस्कृत और गुजरातीकी तुलना नहीं करनी थी; अुन्हें प्रान्तीय भाषाओंमें गुजरातीको अुच्च स्थान दिलाना था। गुजरातमें संस्कृतके साथ स्वभाषाकी तुलना तो अखाने की। अेकनाथ जैसी ही परन्तु अधिक तीखी भाषामें अुन्होंने कहा था

'भाषाने शुं वळगे भूर, जे रणमां जीते ते शूर;
संस्कृत बोल्ये ते शुं थयुं, काअी प्राकृतमांथी नाशी गयुं,
बावननो सघळो विस्तार, अखो त्रेपनमो जाणे पार।
संस्कृत प्राकृत जे वडे भणे, जेम कांष्ट विषे रह्यो भाथा कणे;
ते छोडचा वाणो नावे अर्थ, तेम प्राकृत विना संस्कृत ते व्यर्थ,
बधा दाम वेपारी लखे, अखा व्याज न्होय छूटा पखे'*

* अिसका अर्थ यह है—हे मूर्ख, तू भाषामें क्यों चिपटा रहता है? जो रणमें जीतता है वही शूर है। संस्कृत भाषा बोलनेसे क्या हुआ? क्या अिस कारण प्राकृत भाषामें से कुछ नष्ट हो जाता है? सारा विस्तार ५२ अक्षरोंका ही है। परन्तु अखा कहता है कि अिनसे परे रहनेवाला ५३ वां ब्रह्मतत्त्व हम जानें तभी अिस संसार-सागरसे पार हो सकते हैं। संस्कृत प्राकृतकी मददसे पढ़नी होती है। अिस

परन्तु शास्त्रियोमे आन्तर-प्रान्तीय भाषाके रूपमे तो संस्कृत ही आज तक अुपयोगमे आती रही है।

किन्तु परभाषा सीखनेका हमारा यह अुत्साह संस्कृतके विषयमें थोडा कम हुआ, तो दूसरी किसी भाषाके विषयमे बढा। अिस प्रकार मुसलमानोका राज्य स्थापित होने पर हमारे पूर्वजोने फारसी भाषाको वही महत्त्व दिया, जो आज हमने अंग्रेजी भाषाको दिया है। फारसी भाषाके ज्ञानमे मुसलमानोसे भी टक्कर लेनेवाले फारसीके समर्थ विद्वान् हिन्दुओमे हो गये है। अुस जमानेमें फारसी जाननेवाले आदमीकी सब अिज्जत करते थे। जिस तरह रास्ते पर बैठे हुअे किसी मोचीको अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान है अैसा जानकर हमे आश्चर्य होता है, और जिस तरह रेलवे स्टेशन पर जो काम गुजराती बोलनेसे नही हो सकता वह अंग्रेजीमे अेक वाक्य बोल देनेसे हो जाता है, वैसी ही अुस समय फारसीकी स्थिति थी। 'पढे फारसी बेचे तेल, देखो यह कुदरतका खेल' अिस कहावतका अर्थ ही यह है कि फारसीका ज्ञान रखनेवाला तेल बेचनेवालेकी सामान्य स्थितिमे हो यह बात अुस जमानेमें आश्चर्यकी मानी जाती थी।

जिस प्रजाका जुआ (अधीनता) हमने स्वीकार किया, अुस प्रजाकी पोशाक, भाषा, रीति-रिवाज सब कुछ अपना लेनेकी हमे पुराने जमानेसे आदत पड गअी है। शिवाजी महाराजने हिन्दू राज्य स्थापित किया, परन्तु राजभाषा, वेशभूषा और लिपि तो बहुत समय तक मुसलमानोकी ही रही। राजपूतानेके बहुतसे हिन्दू राज्योमे आज भी राजभाषा अुर्दू है, और पहले वह शायद फारसी रही होगी। अुत्तर भारतमे अनेक हिन्दू अैसे है, जिन्हे बचपनसे अुर्दू लिपि ही सिखाअी जाती है और देवनागरी लिपि वे पढ ही नही सकते।

प्रकार लकडियोको गट्ठरके रूपमे घुमाते रहनेमे कोअी लाभ नही होता, गट्ठरको छोडने पर ही लकडियोका अुपयोग किया जा सकता है, अुसी प्रकार प्राकृतके बिना संस्कृत व्यर्थ है। व्यापारी हजारोकी रकम बही-खातेमे लिखता है, परन्तु जब तक पैसोको तुडाता नही तब तक व्यापार नही हो सकता।

यही कारण है कि अंग्रेजी राज्यके आते ही अंग्रेजी भाषाने भी स्वभावत वही प्राधान्य ग्रहण कर लिया। प्रारंभसे ही अुच्चारण-शुद्धि और व्याकरण पर हमारे देशमे बहुत भार दिया जाता था और अुसके लिअे खूब परिश्रम किया जाता था। अिसलिअे किसी भी भाषाके शुद्ध अुच्चारण करने और भाषा पर अधिकार प्राप्त करनेमे दूसरी प्रजाओंसे हम अधिक सफल रहे है। दो चार भाषाये सीख लेना हमारे लिअे बायें हाथका खेल है। अत राष्ट्रीय शिक्षणका आन्दोलन आरंभ होने पर हिन्दीको पाठ्यक्रममे स्थान देनेमे कोअी कठिनाअी नहीं हुअी। अुस समय कुछ लोगोकी यह धारणा थी कि हिन्दीको अनिवार्य बनाकर अंग्रेजीको वैकल्पिक स्थान दिया जाय अर्थात् अुसे कोअी कोअी विद्यार्थी ही सीखे; परन्तु अधिकतर शालाओ और विद्यार्थियोने अंग्रेजीको तो जारी रखा ही, अूपरसे हिन्दीको और दाखिल कर दिया। अिसीलिअे आज अनेक विद्यार्थी गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत, फारसी या फ्रेन्च अिस तरह चार भाषाये सीखते है। जो लोग कार्ते नही वे अेक भाषा अधिक सीखे, अैसा विकल्प यदि रखा जाय तो बहुतसे विद्यार्थी अेक और भाषाका आभूषण पहननेको तैयार हो जायगे।

बेशक, यह हमारी प्रजा द्वारा प्राप्त की हुअी अेक सिद्धि कही जायगी। परन्तु प्रत्येक सिद्धि जैसे अंतिम ध्येयको प्राप्त करनेमे बाधक होती है, वैसे ही यह सिद्धि भी बाधक होती है। सिद्धि अपना मूल्य बढाकर ध्येयको भुला देती है। किसी भाषाकी विशेषता, किसी भाषाका प्राण अुसके शब्दोमे नही, बल्कि अुसके बोलनेवालोके चारित्र्यमें होता है। अिस बातको हम भूल जाते है और यह मानते है कि अमुक भाषामे ही अधिक तेज, माधुर्य, कर्कशता आदि गुण है, और अुस भाषाको सीखनेसे हममे भी वे गुण आ जायगे। अेक अमेरिकन व्यायामशास्त्रीने शौर्यका विकास करनेकी अेक विचित्र सलाह दी है। वे कहते है कि पीठ, गर्दन और सिरको अेक विशेष स्थितिमें रख-कर चलनेसे आप लोगो पर रौब जमा सकेंगे। सच बात है; अिस तरह रौबसे चलनेका ढोंग तो किया जा सकता है; परन्तु जब तक कोअी सच्चा रौबदार आदमी सामने आकर खड़ा नहीं होता तभी

तक। अैसे किसी आदमीके सामने आ जाने पर रोब जमानेकी आदत होते हुअे भी पीठ, गरदन और सिर विशेष स्थितिमें रखना सभव नही होता। क्योकि धडकते दिलसे यह सब कैसे हो सकता है?

'बूम पडे जब बाहरे, सब नीकले ससार,
सच्चा पक्का पारखा, जब नीकसे तरवार।'*

—शोरगुल होने पर सभी लोग घरसे बाहर निकल आते है, परन्तु सच्चे और पक्के वीरकी परीक्षा तलवार निकलने पर ही होती है।

अिसी प्रकार हमारा यह खयाल है कि जिस भाषामे हम बोलते है, अुस भाषाके बोलनेवालोके गुण हममे आ जाते है। दूसरी प्रजाकी भाषा (और वेशभूषा) अपनानेसे यदि अुस प्रजाके गुण किसी प्रजामे आते हो, तो गधा सिहका चमडा ओढकर सिह बननेकी आशा क्यो न रखे? गुण या ज्ञान चित्तके गुण है, वाणी (या कपडो) के नही, वाणी (और वेश) अुनकी थोडी झाकी करा सकते है, परन्तु अुन्हे पैदा नही कर सकते।

मातृभाषाका अनादर हमारा प्राचीन कालका रोग मालूम होता है। हमे अपनी भाषा सदा पगु ही मालूम हुअी है। और स्वभाषाका यह अनादर हममें आत्म-विश्वासके अभावके कारण अुत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार गुलामीके स्वीकारकी जडमे स्वाभिमान और आत्म-विश्वासका अभाव है, अुसी प्रकार परभाषाके मोहमे भी अिन गुणोका अभाव है।

स्वभाषाका आदर बढानेका अुपाय यह नही है कि दूसरी भाषाये सीखी या सिखाअी न जाय। यह तो काकाका अपमान करके पिताका मान बढाने जैसा विचित्र मार्ग होगा। परतु यह खयाल मिट जाना चाहिये कि परभाषा जानना कोअी मान, बडप्पन या विद्वत्ताकी बात है। किसी प्रयोजनके अभावमे मनुष्यको मातृभाषाके सिवाय अेक भी दूसरी भाषा जाननेकी आवश्यकता नही, परतु आवश्यकता होने पर अुसे बार-बार नअी भाषाये सीखनी पडती है। लेकिन जिन भाषाओके बारेमे विश्वासपूर्वक यह मालूम हो कि जीवनमे अुनकी जरूरत पडेगी, अुन्हें

* यह अेक गुजराती कविकी हिन्दीमें की गअी रचना है।

सीखनेकी सुविधा प्रयोजनके अनुसार की जानी चाहिये। परंतु यह नही मानना चाहिये कि अुस भाषाके ज्ञानके कारण विद्यार्थी कुछ ज्यादा आदर पानेका अधिकारी हो जाता है, न हमारे मनमे यह भ्रम रहना चाहिये कि दूसरी भाषाये न जाननेसे विद्यार्थीके विकासमे कोअी रुकावट आती है।

दूसरोकी भाषा हमे अुसके बोलनेवालोकी तरह ही शुद्ध रूपमे बोलते और लिखते आना चाहिये, अैसा मिथ्याभिमान हमारे ही लोगोने बढाया है, और वह जिस प्रजाकी गुलामी हमने स्वीकार की अुसके हम पर पडे हुअे प्रभावका परिणाम है। जापानी लोग टूटी-फूटी अग्रेजीसे लाखोका व्यापार चला सकते है, अच्छी अग्रेजी न जाननेसे अुन्हे शरम नही मालूम होती। श्री पॉल रिशार जैसे पुरुष भी अशुद्ध अग्रेजी बोलनेमे शरमाते नही। क्योकि वे लोग जानते है कि 'अग्रेजी हमारी भाषा नही है, काम चलाने जितनी ही अग्रेजी हम जानते है।' परतु हमारे दफ्तरोमे अग्रेजी पर प्राप्त किये हुअे अधिकारकी बेहद कीमत आकी जाती है। बरसोसे बम्बअीमें रहने पर भी हम मराठी बोलनेमे गलती करें या महाराष्ट्रीय लोग गुजराती बोलनेमे गलती करे, तो बोलनेवालो या सुननेवालोको हास्यास्पद नही मालूम होता। परन्तु अग्रेजीमे अेक मामूली-सी भी गलती हो जाय तो हमे अैसी शरम लगती है कि पृथ्वी जगह कर दे तो हम अुसके भीतर समा जाय।

गुजराती या संस्कृतका भाषा-संबंध होनेके कारण गुजरातीका अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे संस्कृतका ज्ञान आवश्यक माना जाय, अिसे तो मैं समझ सकता हू। परतु जब कोअी यह कहता है कि जो संस्कृत नही जानता वह पूरी तरह शिक्षित नही है या संस्कृतके ज्ञानके बिना कोअी हिन्दू अपना पूरा विकास नही कर सकता, तब ये शब्द मुझे बडे विचित्र मालूम होते है। अैसी बात सुनकर मुझे लगता है कि हम अिस बातको समझते ही नही है कि ज्ञान पदोका नही परन्तु पदार्थोका होता है। जो पदार्थको जानता है, वही ज्ञान प्राप्त करता है। किसी पदार्थके लिअे किसी विशेष भाषामें दिया हुआ नाम न जानता हो तो वह अुसे नया नाम दे सकेगा, परन्तु केवल पदोको जाननेवाला पदार्थोको नही पहचान सकता।

साहित्य, संगीत और कला

आज गुजरातमें हर जगह मैं साहित्य, सगीत और कलाकी अुपासना होती देखता हू। हमारे महाविद्यालयमें भी अिनके लिअे वडी सावधानी रखी जाती है। सत्याग्रहाश्रमके वुनाअी-मदिरके द्वार पर अेक तख्ती लगी है, जिस पर लिखा है 'कला राप्ट्रका प्राण है'। और अैसा कहे तो गलत नही होगा कि पिछले २५ वर्पोमें वहीसे 'सगीत' की अुपासना गुजरातमें आरभ हुअी। भर्तृहरिने साहित्य, सगीत और कलासे विहीन मनुष्यको पशुसे भी गया-बीता माना है। अेक श्रुति रसको ही ब्रह्मरूप कहती है। अितने प्रवल आधार होते हुअे भी साहित्य, सगीत और कलाकी आज जो विचारहीन अुपासना चल रही है, अुसका निषेध करना मेरा कर्तव्य हो जाता है। मैं यह माननेसे अिनकार करता हू कि साहित्य, सगीत और कला मनुष्यको पूर्णताके समीप ले जाते हैं। अैसे अुदाहरण खोजे जा सकते हैं कि किसी मनुष्यमें ये तीनो हो तो भी वह मनुष्योमें अधमसे अधम हो। वैसे तो कोअी भी वस्तु ब्रह्मसे भिन्न न होनेके कारण (रसका अर्थ साहित्य, सगीत और कलाका पोषण करनेवाली वृत्ति किया जाय तो भी) 'रसो वै स' अिस वाक्यको मैं गलत नही कह सकता। परतु अितना तो मुझे कहना चाहिये कि साहित्य, सगीत और कलाकी अुपासना वह अुपासना नही है, जो हमें मनुष्य-जन्मकी पूर्णता तक पहुचा सके और जिसकी सहायतासे समस्त प्रजाका कल्याण हो।

मैं मानता हू कि अेक मनुष्यको किसी दूसरे मनुष्यसे कार्यवशात् या अुसके हितके लिअे जो वात कहनी पडे, अुसे वह अुचित शव्दो द्वारा (सभ्यता और सौजन्यकी दृष्टिसे) शुद्ध भाषामें, अेक ही अर्थ निकल सके अैसी वाक्य-रचना द्वारा, मनका भाव यथासभव पूर्णरूपसे प्रकट कर सकनेवाले स्पष्ट शव्दो और दृष्टान्तोकी योजना करके कहनेकी शक्ति प्राप्त कर सके, अिसके लिअे साहित्यकी

जितनी अुपासना आवश्यक हो अुतनी की जानी चाहिये। अुसके हृदयमें अनुभव होनेवाली सात्त्विक प्रसन्नता तथा अुसके जीवनकी पूर्णता वाणीमें जितना आनन्द अुत्पन्न कर सके वही साहित्यका सच्चा रस है, और अुसमें जितनी स्वाभाविक सुन्दरता दिखाअी दे अुतनी ही सच्ची कला है।

जिन अुद्गारोंके साथ किसी भी आवश्यक कार्यका संबंध नहीं, जिनसे किसीका हित नहीं साधा जा सकता, वैसे अुद्गारोंके लिअे किये जानेवाले वाणीके आडम्बरको — भले अुसकी गिनती अुच्च साहित्यमें हो तो भी — मैं मनुष्यताके विकासके लिअे निरुपयोगी समझता हूँ।

अिसी प्रकार हृदयमें चलनेवाले अुदात्त मन्थनके फलस्वरूप स्वाभाविक रूपसे रागबद्ध या तालबद्ध अर्थवाले जो शब्द भीतरसे निकल पड़ें, अुनमें रहे संगीतको मैं क्षम्य मानता हूँ। केवल वैज्ञानिक शोधके लिअे अुस संगीतमें रहे स्वरोंके अभ्यासको भी क्षम्य मानता हूँ। परन्तु अर्थको छोड़कर या गौण बनाकर केवल स्वरोंकी जो कसरत की जाती है, अुससे मानव-जातिके विकासमें कोअी सहायता मिलती है, यह मेरी समझमें नहीं आता।

कलाको भी मैं अितना ही मर्यादित स्थान देता हूँ। मेरे अुपयोगकी वस्तु अितने व्यवस्थित ढंगसे बनाअी गअी हो कि अुसके अुपयोगसे मुझे पूर्ण सुविधाका अनुभव हो, तो मैं मानता हूँ कि वैसी और अुतनी कलामें अुसकी आवश्यक मर्यादा आ जाती है। अुदाहरणके लिअे, मुझे जिस चरखेका अुपयोग करना है वह टिकाअू हो, अुसके सारे जोड़ अिस तरह जोड़े गये हों कि तकलीफ न दें, अुसके सारे भाग ठीक अनुपातमें हों, अुसमें घर्षण कमसे कम हो, अुसके तकुवे और चक्र आसानीसे घूमते हों, अुसमें तेल देनेके स्थानोंकी अैसी रचना की गअी हो कि जिन जगहोंमें तेलकी जरूरत न हो अुन्हें तेल बिगाड़े नहीं, तो मैं मानूँगा कि अुस चरखेको बनानेमें कारीगरने अपनी पूर्ण कुशलता या कला बताअी है। मैं अुस चरखेको विविध रंगोंसे सजा हुआ देखनेकी आशा नहीं रखूँगा, न अुसके खंभों पर नक्काशीकी आशा रखूँगा। जितनी कला कर्ममें कुशलता अुत्पन्न करनेवाली है, अुतनी ही कला

मनुष्यत्वके विकासके लिअे आवश्यक है, अुससे अधिक आडम्बर मनुष्यको मानव-जीवनके ध्येयसे विमुख करनेवाला है।

परतु जिन लोगोको साहित्य, सगीत और कला पर किया हुआ मेरा यह प्रहार अरुचिकर लगे, अुनसे मेरा निवेदन है कि वे अितना तो अवश्य करे कि अिन तीनो विभूतियोको अपने जीवनमे सपूर्ण रूपसे अुतारे।

जब मै किसी साहित्यकारकी व्यक्तिगत वातचीत गन्दी और क्षुद्रतासे भरी सुनता हू, तव मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि अुसके लिखे हुअे साहित्यको पढने और अुस पर विचार करनेका अुत्साह मुझमे नही रहता।

दुनियामे अैसे गायक होते है जिनका गायन सभाके लोगोको मत्र-मुग्ध कर देता है, परतु अुनके जीवनमे सगीतका नाम भी नही होता। अुनकी रागवद्ध वाणी जितनी मधुर होती है, अुतनी ही सादी वात-चीतकी वाणी कठोर होती है, अिस कारणसे अुनके साथ व्यवहार करना कठिन हो जाता है।

मैने अैसे चित्रकार और सुतार देखे है, जिनकी कला और कारीगरीके लिअे हृदयसे वाह-वाह निकले विना नही रहता, परतु अुनके कपडे, घरवार, साज-सामान अितने भद्दे और अव्यवस्थित होते है कि देखकर मन अूव जाता है। अुस समय मेरे मनमे ये भाव अुठते है कि कलाकार अपनी कला-निपुणताको थोडा कम करके अपने कपडे धोनेमे, अुन्हे जोडने-सीनेमे, घरकी सफाअी करनेमे, खिडकियो और दरवाजोको साकल-चटकनी ठीक करनेमे, खटिया या पलगके पाये सीधे करनेमे, कपडे खूटी पर टागनेमे और कलाके साधन और औजार किसीको चोट न लगे अिस ढगसे जमा कर रखनेमे समय दे, तो शायद अुनके विश्वकर्मा देव अधिक प्रसन्न होगे। जिन लोगोके चरित्रके विषयमे मेरे मनमे आदर न हो, अुनके आध्यात्मिक लेखोमे चाहे जितनी कुशल तर्क-पटुता अथवा योग-सामर्थ्य हो तो भी मै अुन्हे त्याज्य मानता हू, अुसी प्रकार जिनकी दिनचर्यामे साहित्य, सगीत और कलाकी भक्तिमे आवश्यक

परिवर्तन हुआ नही देखता अुनकी अिन सिद्धियोमे थोड़ा भी लाभ अुठानेकी मेरी अिच्छा नही होती।

साहित्य, सगीत और कलाके प्रति हमारी अिस वृत्ति पर पुन विचार करनेकी मै आपसे प्रार्थना करता हू। मेरे विचार मुझसे यह कह रहे है कि जैसे मितव्ययिता और परिश्रममे समृद्धिके प्राण है, और भोग-विलासमें समृद्धिका व्यय है, वैसे ही गीत, भाषा और श्रमकी सादगी तथा व्यवहारोपयोगितामे राष्ट्रका प्राण है और सगीत, साहित्य तथा कलाके विलास या विकासमे राष्ट्रके प्राणके व्ययका आरभ है।*

६

सामुदायिक अुपासनाके बारेमें व्यावहारिक चर्चा+

शालाओ, छात्रालयो और अिसी प्रकारकी दूसरी सस्थाओमें सामुदायिक अुपासना जैसा कोअी कार्यक्रम रखनेकी आज लगभग परिपाटी-सी हो गअी है।

साथ ही विद्यार्थियो और शिक्षकोमे सामुदायिक अुपासनाके विरुद्ध भी अेक आन्दोलन चल रहा है। गुजरातकी प्रत्येक सस्थामें आज यह प्रश्न खडा हुआ दिखाअी देता है।

अिस विरोधके पीछे अनेक प्रकारकी दलीले और मानसिक वृत्तिया है। अुदाहरणके लिअे, कुछ लोगोको सामूहिक अुपासना अिसलिअे ना-पसन्द है कि अुसे अनिवार्य बना दिया जाता है। आज शिक्षण-

---

* 'साबरमती' पत्रके स० १९८० के वर्षा-अकमे विद्यार्थियोको लिखे गये पत्रमें से।

+ 'जीवनशोधन' के दूसरे भागके दसवे प्रकरणमे अिस विषयकी मैंने तात्त्विक दृष्टिसे विस्तृत छानबीन की है। अुसके आधार पर छात्रालयो जैसी सस्थाओकी दृष्टिसे अिस विषयमे कुछ व्यावहारिक सूचनाअे ही यहा की है। अुस प्रकरणको अिसके साथ पढना चाहिये।

शास्त्रियोमे अनिवार्य और अैच्छिकके सबधमे जबरदस्त विवाद चल रहा है, और अुस विवादको सामूहिक अुपासनाके क्षेत्रमे भी दाखिल कर दिया जाता है। कुछ लोग अिस विचारसे अुसका विरोध करते है कि अुपासना सामुदायिक नही बल्कि व्यक्तिगत ही होनी चाहिये। कुछ अुपासनाके लिअे ही श्रद्धा मन्द पड जानेके कारण अुसका विरोध करते हैं। अिस तरह कुछ लोग विचारपूर्वक अिसका विरोध करते है ओर कुछ बादमे दूसरोको देखकर विरोध करने लगते है।

सामुदायिक अुपासनाके शुद्ध स्वरूपमे क्या क्या बाते होनी चाहिये, अिसका हम विचार करे।

१. श्रद्धा

सबसे प्रथम वस्तु तो यह है कि अुपासकोमे **श्रद्धा** होनी चाहिये। सामुदायिक अुपासना होनी चाहिये या नही होनी चाहिये, अिस चर्चाके कारणकी जाच करनेसे पता चलेगा कि यह अुपासना करनेका कर्तव्य अश्रद्धालु पर आ पडता है। अुपासना किसके लिअे रखी गअी है, यह पूछा जाय तो मालूम होगा कि अुसे कोअी भी अपनी चीज नही मानता। छात्रालयोके गृहपति मानते है, "मुझे अिस अुपासनाकी आवश्यकता नही है, मै अपने लिअे तो व्यक्तिगत रूपमे या भिन्न प्रकारसे अुपासना करता हू। यह अुपासना केवल विद्यार्थियोके लिअे छात्रालयो द्वारा स्वीकार किये हुअे नियमके अनुसार रखी गअी है।" विद्यार्थी मानते है, "हमे अिस अुपासनाकी भूख नही है। गृहपतिके नियमके वश होकर हम अिसमे हाजिर रहते है।"

सम्प्रदायोके लिअे यह बात नही है। आरतीके घटे सुनते ही सब कोअी जब मन्दिरमे दौड जाते है तब किसीको अैसा नही लगता कि अपने सिवाय दूसरे किसीके लिअे वे मदिरमे जाते है। क्योकि वे अपनी श्रद्धासे ही वहा जाते है।

छात्रालयो जैसी सस्थाओमे अैसा नही होता। कारण यह है कि अुपासनाकी प्रथा और पद्धतिको जन्म देनेवाले गृहपति स्वसतोष या आत्मोन्नतिके लिअे अैसा नही करते, न विद्यार्थी स्वयप्रेरणासे अुसका

स्वरूप गढते है, वल्कि दोनो किसी दूसरेके लिअे ही अुसकी रचना करते है। सामुदायिक अुपासना सबधी झगडोका, अुसकी निष्फलताका तथा अुसके विषयमे होनेवाले वाद-विवादका यही कारण है।

तव पहली आवश्यकता यह है कि समुदायकी रचना करनेवाला —गृहपति या दूसरा कोअी सस्थापक—स्वय सत्सगका भूखा हो। अुसकी वृत्ति यह होनी चाहिये कि अुसे खुद अुपासना करनी है और अुसके लिअे वह विद्यार्थियोका समागम खोजता है। विद्यार्थी अपनी शक्तिके अनुसार अिसमे से जो कुछ ले सके लेगे, कोअी अिससे दभ, पाखड या दुराचार तो हरगिज नही सीखेगे और मै स्वय तो अिस अुपासनासे वहुत लाभ अुठाअूगा, अैसी अुसकी मान्यता होनी चाहिये। सस्थाके अन्य कार्योमे भले वह गुरुस्थान पर और दूसरे शिष्यस्थान पर हो, परतु अुपासनामें तो वह जिज्ञासु और दूसरोकी—किसी छोटे वालककी भी—साधुताका पुजारी वन कर ही रहे।

यदि व्यवस्थापक अैसी वृत्तिवाला होगा, तो वह विद्यार्थियोकी नही वल्कि अपने अभ्युदयकी चिन्ता करता रहेगा और अपनी अुपासनामे दूसरे सत्पुरुषोको वार-वार वुलाकर अुनके सत्सगका लाभ अुठानेकी अिच्छा रखेगा।

यदि व्यवस्थापक श्रद्धावान होगा तो अुसका असर सरल चित्त-वाले तथा स्वभावसे ही पूजनेकी वृत्तिवाले विद्यार्थियो पर पडे विना नही रहेगा, और यह प्रश्न तीव्र रूपमे नही अुठेगा कि अुपासना अनिवार्य होनी चाहिये या अैच्छिक।

विद्यार्थियोको भोजन करना ही चाहिये, अैसा नियम वनानेकी शायद ही किसी सस्थाको जरूरत पडती है। परन्तु यह नियम अवश्य वनाना पडता है कि जिन्हे खाना हो वे अमुक समय पर हाजिर रहे। अुपासना यदि अन्नकी तरह ही तृप्ति देनेवाली हो तो वह भी अिसी नियमका अनुसरण करेगी।

अिसलिअे अुपासनाका निर्माण अुपासकोकी श्रद्धासे होना चाहिये और अुसमे सत्पुरुषोका समागम प्राप्त होना चाहिये—यह सामुदायिक अुपासनाका प्रथम आवश्यक तत्त्व है।

२. विविधता

सामुदायिक अुपासना अेक ही अगवाली हो तो अुपासकोंको सन्तोप नही देगी। भिन्न-भिन्न रुचिवाले अुपासकोंकी भिन्न-भिन्न भावनाओंका पोषण करनेवाली विविधता सामुदायिक अुपासनामे होनी चाहिये। अुपासनाको यदि मोहक, रम्य अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण महिमाके भारसे भव्य न बनाया जाय और अुसे सकाम भक्तिके रग-बिरगे फूलोसे सजाया न जाय, तो विविधतासे डरना नही चाहिये और न यह मानना चाहिये कि अुससे कोओ हानि होगी।

जहा अनेक खानेवालोकी मेस चलती है वहा अमुक व्यजन हर सदस्य खायेगा ही अैसा मान लिया जाता है, परन्तु दूसरे कुछ व्यजन खानेवालेको अपनी रुचिके अनुसार लेने या न लेनेकी छूट हो सकती है। और यदि सब व्यजन जीभको ललचानेकी दृष्टिसे नही परन्तु स्वास्थ्यप्रद भोजनको रुचिकर बनानेकी दृष्टिमे ही बनाये जाते हो तो वे व्यजन भोजनमें दोपरूप नही, बल्कि गुणरूप ही माने जायगे। यही बात अुपासनामें मायी हुअी विविधताके बारेमे भी समझना चाहिये।

अुपासनामे विविधता होनेसे अनिवार्य और अैच्छिकका झगडा भी बहुत हद तक खतम हो जायगा। जिस तरह खुराकके रोटी या भात जैसे महत्त्वके पदार्थोंमे सबका भाग होता ही है, जिस तरह शिक्षणमे स्वभापा जैसे महत्त्वपूर्ण विपयमें सबका भाग अवश्य होता है, अुसी तरह अुपासनाके महत्त्वपूर्ण अगोमे सबका भाग होगा। परन्तु जैसे अचार या साग-भाजी वगैरामे खानेवाले अपनी रुचिके अनुसार चलते है, जैसे परभाषा सीखने न सीखनेमे विद्यार्थियोकी रुचिका खयाल किया जा सकता है, वैसे ही अुपासनाके गौण अगोमे अुपासकोकी रुचिका खयाल किया जाना चाहिये।

अब अिस बातका निश्चय करना चाहिये कि अुपासनाके महत्त्व-पूर्ण अग कौनसे और गौण अग कौनसे है।

अुपासनाके स्वरूपका विचार करते हुअे हमने ('जीवनशोधनमें') देखा है कि अुसमें तीन प्रयत्न होते है (१) परमात्माके साथ अनुसधान

स्थापित करनेका प्रयत्न, (२) सात्त्विक भाव निर्माण करनेका प्रयत्न, और (३) तत्त्व या धर्म-विचारका प्रयत्न।

मेरी दृष्टिसे अिन तीनों प्रयत्नोंमे से अनुसन्धानके प्रयत्नका समुदायमे गौण स्थान है। जिस प्रकार वडे समुदायमें सगीतकी केवल अभिरुचि अुत्पन्न की जा सकती है, परन्तु किसीको सगीतमे निष्णात नही वनाया जा सकता, अुसी प्रकार सामुदायिक अुपासना द्वारा परमात्माके साथ अनुसधान करनेकी रुचि अुत्पन्न की जा सकती है, परन्तु अुसका विकास तो वैयक्तिक अुपासनामे ही हो सकता है। अिसलिअे सामुदायिक अुपासनाकी रचना अैसी होनी चाहिये, जिससे अुपासकोमे अिस अनुसधानका वीज पडे और नये पडे हुअे वीजको पोषण मिले। अिस कारणसे जिस मनुष्यमे अिस वीजका पोषण हुआ है और जो वैयक्तिक रूपमें परमात्माके साथ अनुसधान करनेके लिअे प्रयत्नशील रहता है, अुसकी सभवत सामुदायिक अुपासनाके अिस भागमे कोअी रुचि न हो। अिस दृष्टिसे अिस भागको गौण अग समझना चाहिये।

सात्त्विक भाव निर्माण करनेवाला अग सामुदायिक अुपासनाका महत्त्वपूर्ण स्वरूप कहा जा सकता है। जिस प्रकार भोजनको स्वादिष्ठ और रुचिकर वनानेवाले मसाले और व्यजन अनेक प्रकारके होते हैं और सारे मसालो और व्यजनोका अुपयोग अेक ही दिनमे नही किया जाता, अुसी प्रकार अिस प्रयत्नका भी है। अिसका स्वरूप सदाके लिअे नियत नही किया जा सकता, अिसमे प्रतिदिन थोडा-वहुत परिवर्तन हो सकता है। यह सात्त्विक भाव निर्माण करनेवाला अग होना जरूरी है, परन्तु जैसे मसालो और व्यजनोका अतिरेक दोष माना जायगा, वैसे ही अुसमे किये जानेवाले परिवर्तनका अतिरेक भी दोष माना जायगा। सात्त्विक भाव भी 'सुखसगेन वध्नाति ज्ञानसगेन चानघ।' (सुख और ज्ञानकी आसक्ति द्वारा वधन निर्माण करता है।) वह भी अेक प्रकारका अुन्माद निर्माण करता है। जव अुन्माद निर्माण होता है, तव सात्त्विकता लगभग दोषरूप हो जाती है।

मराठी नाटकोमे अैसे किसी पात्रके गलेमे, जो सगीतमे निपुण होता है, गीत ठूस ठूसकर भर देनेका रिवाज पड गया है। अैसे पात्रके रगभूमि पर आते ही आधे दर्जन गीत सुननेकी प्रेक्षकोको तैयारी रखनी चाहिये। मै जानता हू कि बहुतेरे प्रेक्षक अितना अधिक सगीत सुनकर अूबते नही, परन्तु अिसके पीछे प्रेक्षकोकी विकसित अभिरुचि होती है अैसा मुझे नही लगता। जिस तरह किसी मनुष्यकी जीभ केवल गुड खाये बिना मीठेपनका अस्तित्व महसूस न कर सके और तृप्त न हो सके तो हम अुसे जड कहेगे, अुसी तरह जो व्यक्ति अेकाध दर्जन गीत सुने बिना सगीतसे तृप्त न हो सके अुसके कान मेरी दृष्टिसे जड माने जाने चाहिये। नियम तो यह होना चाहिये कि जो पात्र सगीतमे प्रवीण हो अुसके सिवाय दूसरे किसीको गाने न दिया जाये और वह पात्र भी अेक-दो गीत ही सुन्दरसे सुन्दर ढगसे गाकर सुनाये।

अिसी तरह, सात्त्विक भाव निर्माण करनेके लिअे अनेक रीतियोका अेक ही दिन आयोजन करनेकी पद्धति मुझे असस्कृत मालूम होती है। धुनके दो-चार प्रकार, अुन प्रकारोमे आरोह-अवरोहकी युक्तिया, अनेक भजन आदि रीतिया मेरी रायमे अुचित नही है। धुन और भजन सगीतके लिअे अथवा अपने आसान ताल और आसान 'सा रे ग म' से जनसमूहको पागल बनानेके लिअे नही है। लोगोके झुण्ड धुन या भजन सुनकर पागल बन जाय और डोलने लगे, नाचने लगे तथा ताल देने लगे तो माना जाता है कि अच्छा रग जमा है। 'रग जमाने' की दृष्टिसे यह सब ठीक है। परन्तु अुपासनाकी दृष्टिसे यह अुपासनाकी निष्फलता है। धुन या भजन जब अिस प्रकार आगे बढते जाय कि धीरे-धीरे नाचनेवाले बैठ जाय, डोलनेवाले स्थिर हो जाय, ताल देनेवाले शान्त हो जाय, तार स्वरमे गानेवाले मद्र स्वरमें आ जाय और अैसा लगे कि सारा समूह जाग्रत होते हुअे भी गभीर बन गया है, तब मानना चाहिये कि धुन या भजन सफल हुअे। अुपासनामे जो कुछ होता है अुसका स्पष्ट असर क्या हुआ यह अुपासना पूरी होनेके दो-चार घटे बाद मालूम पडे और अुस

समय अेक प्रकारकी शान्त प्रसन्नताका अनुभव हो, तो कहा जायगा कि अुपासना सफल हुअी।

पहले अगकी अपेक्षा यह सामुदायिक अुपासनाका अधिक महत्त्व-पूर्ण अग है। फिर भी जैसे अधिकतर लोग रोटी या भातके साथ दाल या कढी जैसी चीजे लेते है, परन्तु कुछ लोग अपवाद हो सकते है और वे केवल दूध, मट्ठे या मीठेसे काम चला लेते है, अुसी तरह सभव है कुछ लोगोको अैसी सामुदायिक अुपासनाके द्वारा सात्त्विक भावोका पोषण करनेकी आवश्यकता न मालूम हो। अैसे अपवादोके लिअे सामूहिक अुपासनामे गुजाअिश होनी चाहिये। यह माननेमे कोअी हर्ज नही कि सामान्यत अैसा अपवाद करनेवाले थोडे होते है।

परन्तु सामुदायिक अुपासनाका मुख्य अग तो अुस समुदायमे होनेवाला धर्म-विचार और तत्त्व-विचार है। यह विचार किसी सत्पुरुषके चरित्र-वाचन द्वारा हो, प्रश्नोत्तर द्वारा हो, किसी ग्रन्थके अध्ययन द्वारा हो, प्रवचन द्वारा हो, सन्तवाणी या भजन द्वारा अुत्पन्न हो अथवा कोअी भक्त-कीर्तनकार अपने कीर्तन द्वारा करावे, परन्तु वही अिस अुपासनाका महत्त्वपूर्ण अग है। जो विचार-शुद्धि मनुष्य अपने-आप करनेमे सदा सफल नही होता और अिसलिअे सत्पुरुषो, सच्छास्त्रो या सद्ग्रन्थोका आश्रय खोजता है, अुसकी सुविधा कर देना ही सामुदायिक अुपासनाका बडेसे बडा प्रयोजन है। बेशक, अुपासनाके सचालक जिस हद तक जाग्रत, विचारशील और विशाल दृष्टिवाले कर्मयोगी पुरुष होगे, अुसी हद तक अुपासना केवल रूढिग्रस्त बननेसे बचेगी। परन्तु अुपासना रूढिग्रस्त हो या नये प्रकारकी हो, श्रेयार्थी अैसे ही अुपासक-समुदायकी खोजमे रहते है, जिसमे धर्म-विचार या तत्त्व-विचारका लाभ प्राप्त होता हो।

यह भी सच है कि धर्म-विचार अथवा तत्त्व-विचारकी चर्चा श्रोताओकी भूमिकाके अनुसार हलकी या गभीर, सीधी या कथाओ द्वारा होनी चाहिये। पाच या पन्द्रह वर्षके श्रोताओके सामने अुद्दालक और श्वेतकेतुकी चर्चाका विवेचन नही किया जा सकता, परन्तु देवो और यक्षका अथवा प्राण और अिन्द्रियोका सवाद सुनाया जा सकता

है, सूक्ष्म धर्मोंकी चर्चा नही की जा सकती, परन्तु जीवनके व्यवहारोमे जिन स्थूल धर्मो या कर्तव्योका पालन होना चाहिये अुनकी चर्चा की जा सकती है। और, अिसमे सीधी चर्चाकी अपेक्षा कथात्मक चर्चाका विशेष स्थान होगा।

सारी भूमिकाओके मिश्र श्रोताओमे सचालकोको चर्चाकी अधिक स्वतन्त्रता होती है। कभी सीधी चर्चा की जा सकती है, कभी कथात्मक, कभी हलकी चर्चा की जा सकती हे, तो कभी गभीर।

अैसी चर्चाओमे सचालक रसके लिअे या मनोरजनके लिअे सत्यको न छोडें, पाडित्य दिखानेके लिअे अुलझनमे डालनेवाली दलील-बाजीमे न पडे, वक्तृत्व-कला दिखानेके लिअे वाणीके आडम्बरमे न पडे, वस्तुके मर्मको प्रकट या अधिक स्पष्ट करनेकी अपेक्षा अधिक गुप्त और अगम्य बना डालनेवाले काव्य-चातुर्य (जैसा धीरो, कबीर आदिके कुछ भजनोमे होता है) मे न पडे। हमारे लिअे अुपयोगी नही है परन्तु दूसरोको देना है अैसे खयालसे नही, बल्कि हमे भी अिससे कुछ लाभ होगा, जो कुछ हमे प्राप्त हो गया है अुसमे दूसरोको भी भागीदार बनाना चाहिये, अैसे आशयसे अुपासनाके सचालक श्रोताओकी शक्तिका खयाल रखकर अुपासनामे विविधता लानेका विवेक करे तो वह गलत नही होगा।

जैसे कुछ लोग रोटी और भातके बजाय शाक और अचारसे ही पेट भरनेवाले होते है, वैसे ही कुछ अुपासकोको यह महत्त्वपूर्ण भाग नीरस और अूबानेवाला मालूम हो सकता है और सभव है वे पहले दो अगोमे ही थोडा-बहुत भाग ले सके। अिससे परेशान होनेकी जरूरत नही है। क्योकि सामुदायिक अुपासनामे यदि मानसिक भूखको तृप्त करनेकी कोअी विशेष शक्ति हो तो वह अुसके अिस आखिरी अगमे ही है। सच्ची भूख न हो तभी तक मनुष्य शाक और अचार खाकर अुठ सकता है। परन्तु धीरे-धीरे सच्ची भूख खुलनेके बाद जैसे वह रोटी और भातको छोड नही सकता, वैसे ही ये अुपासक भी सामुदायिक अुपासनाके केवल धुन, भजन, नित्यपाठ जैसे अगोसे तृप्त नही हो सकते, महीने-छह महीनेमें जरूर अुनमे अैसे विचारात्मक

अगकी भूख पैदा होगी। अिसीमें सामुदायिक अुपासनाका सत्सग है। जिस समुदायमें अैसा भोजन मिलता होगा, अुससे बहुत दूर रहना अेकान्तसेवी योगी भी पसन्द नही करेगा। अैसे समुदाय जन-समाजमें कभी-कभी ही देखनेको मिलते हैं। जो समुदाय जन-समाजके बीच चलते हैं, अुनमें धर्म-शोधन या तत्त्व-शोधन बहुत कम होता है। यह अनुभव होनेसे ही श्रेयार्थी अुनके विषयमें अुदासीन हो जाते हैं और अेकान्तको अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु जब अुन्हें यह लगता है कि किसी स्थान पर सच्चा सन्त-समागम प्राप्त हो सकता है, तब वे (विशेष साधनामें लगे हुअे न हों तो) अेकान्तका ही सेवन नही करते। हिमालय पर जानेवाले लोग भी वहा समुदाय खडे करते हैं।

३. शान्ति और गाम्भीर्य

यदि समुदायमें शान्ति और गाम्भीर्यका पालन न किया जाय, तो अुपासकोको श्रद्धा और सत्सगके फल नही मिलते। नाटकोंमें जिस प्रकार 'पिट'के प्रेक्षकोंके लिअे कुछ दृश्योंका आयोजन किया जाता है, अुसी प्रकार सामुदायिक अुपासनामें भी होता देखा जाता है। अुसमें गडबडी और शोरगुलका पार नही होता अथवा गडबडी और शोरगुलको ही सामुदायिक अुपासना समझ लिया जाता है। हिन्दू अुपासकोंके समुदायोंमें शान्तिका गुण मेरे देखनेमें नही आया। त्योहारों पर भरनेवाले मेलोंमें जैसा दृश्य होता है, बहुधा अुसीकी छोटी आवृत्ति सामुदायिक अुपासनामें होती है। रोते-बिलखते बालकोंका, अूधमी बालकोंका, आपसमें बातें करनेवाली स्त्रियोंका, दूसरोंको कुहनी मारकर आगे बढनेका प्रयत्न करनेवाले पुरुषोंका अैसा हल्ला मचता है कि कुल मिलाकर सारा दृश्य अुपासनाकी अपेक्षा तमाशेका ही ज्यादा मालूम होता है। अुसमें फिर 'शख, नगाडे, ढोल, मृदग और रणसिंघे अेकसाथ बजकर आकाश और पृथ्वी दोनोंको गुंजा देते हैं।' सहिष्णुताकी दृष्टिसे तथा अन्य दृष्टियोंसे मुसलमानोंका चाहे जो कर्तव्य हो, परन्तु सामुदायिक अुपासनाकी शुद्धताकी दृष्टिसे अुपासनाके समय आसपास शान्त वातावरणकी अुनकी माग अनुचित नही कही जायगी। शख, नगाडे आदि

वाद्योमे से अेकाध साधनका अुपयोग, शालामे जिस तरह समय समयके घटे बजते है अुस तरह, भले किया जाय, परन्तु अुनकी अुपयोगिताको वही तक सीमित समझना चाहिये। ये वाद्य देवोको जगानेके लिअे नही, अुपासकोको अेकत्र करनेके लिअे है। आरतीके समय घटीकी आवश्यकता मानी ही जाय तो अेक छोटीसी घटीकी आवाज काफी होगी। यदि घटी अुपासनाके रूपमें बजती हो तो अुस समय अुपासकोंमें अैसी शान्ति होनी चाहिये कि सारा समुदाय घटीकी आवाज सुन सके। सच पूछा जाय तो अिस सारे कर्मकाण्डसे मुक्त हो जानेमे ही कल्याण है। परन्तु जिनमे अैसी श्रद्धाये दृढ हो गअी है, अुन्हे भी अुपासनाके समय शान्ति और गभीर वातावरण बनाये रखनेके लिअे अधिकसे अधिक जो कुछ किया जा सकता है या कमसे कम जो करना चाहिये वही मैंने यहा बताया है।

जब मनुष्यका चित्त प्रसन्न होता है, तब अुसमे विनोद सहज रूपमें पाया जाता है। यह विनोद दूसरोके मनोरजनके लिअे खोज-खाज कर कृत्रिम रूपसे अुत्पन्न नही किया जाता, परन्तु अपने-आप अुत्पन्न होता है। अुपासनाके भजनो या प्रवचनोमे कभी-कभी अिस तरहका स्वाभाविक विनोद दिखाअी दे तो अुसमें चिढनेकी कोअी बात नही है। परन्तु जब श्रोताओके मनोरजनके लिअे विनोदी कार्यक्रम तथा श्लेष आदिके शब्द-चातुर्यकी जान-बूझकर योजना की जाती है, जब प्रवचनकारोको अुनके अैसे चातुर्यके लिअे ही पसन्द किया जाता है, तब वह अुपासना नही रहती, बल्कि हलके प्रकारका नाटक बन जाती है।

४. अुपासनाकी योजना और संचालन

अुपासनाके नित्यपाठ, भजन, धुन आदिके चुनावमे जो विवेक किया जाना चाहिये, अुसके विषयमे भी यहा मै कुछ कहना चाहूगा।

नित्यपाठका अर्थ यह है कि अुसकी वस्तु प्रतिदिन मनन करने योग्य मालूम होती है। अुसमे कुछ परमेश्वरका स्तवन होगा, कुछ वन्दनीय महापुरुषोका स्मरण होगा, कुछ धर्म और जीवनके आदर्शोका

चिन्तन होगा, कुछ क्षमा-याचना या कृतज्ञताकी भावना होगी, कुछ चित्तशुद्धि, कर्तव्य-पालन आदिके सम्बन्धमे प्रतिदिन स्मरण रखने योग्य बाते होगी।

अिस नित्यपाठमे अैसा कुछ नही होना चाहिये, जो अुस समुदायके किसी व्यक्तिको खटके। अुदाहरणके लिअे, सनातनियो और आर्यसमाजियोके मिश्र समुदायके नित्यपाठमे 'वक्रतुण्ड महाकाय' जैसा श्लोक आये तो वह आर्यसमाजियोको खटके बिना नही रहेगा। और 'मूर्तिपूजाऽधमाऽधमा' वाला श्लोक रोज बोलनेके लिअे चुना गया हो तो वह सनातनियोको खटके बिना नही रहेगा। अुनकी औश्वर-सम्बन्धी विचारसरणीको वह अितना ज्यादा आघात पहुचानेवाला अथवा अनुचित लगेगा कि अुसे नित्यपाठके रूपमें स्वीकार करनेमें वे जरूर हिचकिचायेंगे।

अिसी प्रकार जिस नित्यपाठमे परमेश्वरको कर-चरण-रहित निर्गुण निराकार कहा गया हो, अुसे रोज बोलनेमे स्वामीनारायण जैसे सगुणोपासक सम्प्रदायके लोगोको हिचकिचाहट होगी, और अिसके विपरीत जिस नित्यपाठमे परमेश्वरको दिव्य साकार कहा गया हो, अुसे रोज बोलनेका प्रसग आने पर वेदान्ती या आर्यसमाजीको आघात पहुचेगा। अिन अुदाहरणोमे दोनोंकी दृष्टि अुपासकोको दलील देकर समझा सकना सभव है, परन्तु प्रतिदिन बुद्धिसे समझनेके बाद नित्य-पाठ करनेमे किसी भक्तको रस नही आयेगा। भक्त अैसा पाठ पसद करेगा, जिसे अपनी समझके अनुसार वह आसानीसे बोल सके, रूपक खडा करके या अुसे निकालकर अथवा बुद्धिवादको दौडाकर पाठ अपनी समझके अनुसार ही है अैसा माननेका प्रयत्न रोज-रोज करना वह पसन्द नही करेगा।

अिसी तरह हिन्दुओ, मुसलमानो, औसाअियो आदिके मिश्र समुदायोमे भी नित्यपाठकी रचनामे विवेक करना आवश्यक है।

मिश्र समुदायका यह अर्थ नही कि मेहमानोकी तरह आ पहुचने-वाले लोगोको भी सन्तोष दिला सके अिस तरह पाठकी रचना होनी चाहिये। मिश्र समुदाय अुसे कहा जायगा जो किसी परम्परागत

सम्प्रदायसे चिपटा हुआ नही है और जिसमे अनेक धर्मों और सम्प्रदायोके लोग प्रतिदिन भाग लेते हैं।

नित्यपाठके लिअे जो बन्धन लागू होते हैं, वे भजनोके लिअे लागू नही होते। अैसा मनुष्य भी, जो तुलसीदासकी तरह अितना अनन्याश्रयी हो कि रामके बदले कृष्णके सामने माथा न नमाये, तुकारामका विठोबाके नामसे रचा हुआ अभग गानेमे हिचकिचायेगा नही। वह समझेगा कि अिसमे नाम गौण है, भाव मुख्य है। विठोबा बोलते हुअे भी वह अपने ही अिष्टदेवका विचार करेगा। अिस दृष्टिसे अीश्वर सगुण और साकार है अितना कहते ही चिढ जानेवाले भक्त प्रभुके 'चरणो' मे सिर रखनेकी, अुनका वरद 'हस्त' अपने सिर पर रखनेकी और अुनके 'प्रकाश' मे स्नान करनेकी अभिलाषा करते हैं। वैष्णव शिव या दुर्गाके भजनोका आदर कर सकते हैं। परन्तु अैसे भजन यदि नित्यपाठमे हो तो अुन्हे बरदाश्त करना अुनके लिअे कठिन होता है। क्योकि वह चिन्तन अुनकी स्थिर निष्ठाके विरुद्ध होता है।

अुपासनाके समय कर्मेन्द्रियो या ज्ञानेन्द्रियोको कातने, कपास चुनने, सीने वगैराके किसी समाजोपयोगी काममे लगाया जा सकता है या नही, अिस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक मालूम होता है।

'खाता, पीता, हरता, फरता, करता घरनु काम,
स्वामीनारायण, स्वामीनारायण, मुखे रटिये नाम —
हो सभारिये रे' *

यह अेक बात है, और स्तवन-अुपासनाके समय कोअी सामाजिक काम — भले वह शुद्ध हो — करना दूसरी बात है। मेरे विचारसे अैसा करना ठीक नही है। 'जीवनशोधन'+ नामक पुस्तकमे किये गये

---

* खाते, पीते, घूमते, फिरते और घरका काम करते हुअे मुखसे स्वामीनारायण (परमात्मा) का नाम रटना चाहिये। अुन्हीका स्मरण करना चाहिये।

+ नवजीवनसे अिसकी हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। की० ३–०–०, डा० खर्च १–३–०।

विवेचनके अनुसार कर्मोपासना या महजोपासनामे रहनेवाली अेकागिताको दूर करनेके लिअे, कर्म करते हुअे भी कर्मके वन्धनसे तथा प्रवृत्तिके मोहसे मुक्त होनेके लिअे स्तवन-अुपासनाकी आवश्यकता है। जिसका यह हेतु सिद्ध हो गया हे, अुसके लिअे मारी स्तवन-अुपासना निरर्थक हो जाती है। अुसके लिअे तो अूपरकी पक्तिया भी वेकार हैं। वह नीचेकी स्थितिमे रह सकता है

'कहू सो नाम, सुनू सो सुमिरन, जो करू सो पूजा,

. . . .

जव सोअू तव करू दडवत, पूजू और न देवा।'

परन्तु जिसे स्तवन-अुपासनाकी आवश्यकता है, अुसे चाहिये कि वह अिस हेतुकी सिद्धिके लिअे स्तवन-अुपासनाके समय जगत्‌के सारे स्वार्थी या परमार्थी कर्मोंसे दूर रहे और अुन्हे भूल जानेका प्रयत्न करे। अेकाग्र मनसे माला फेरनेकी अपेक्षा भूखेको भोजन देना या नगेके लिअे कपडे वनाना अधिक महत्त्वका काम हो सकता है। अैसा लगे तव भूखेको भोजन देना या कातना चाहिये और अुसीको अीश्वरकी पूजा मानना चाहिये। अैसा करते समय अीश्वरका नाम लेते रहना चाहिये, परन्तु दूसरी अुपासनामे नही फसना चाहिये। परन्तु यदि अैसा मनुष्य स्तवन-अुपासनाके लिअे कोअी विशेष समय निश्चित करके वैठनेका कार्यक्रम रखे, तो अेकाग्र साधनाकी दृष्टिसे तथा यह जाननेकी दृष्टिसे कि कर्मयोगके आग्रहकी भी मर्यादा है, अर्थ और कामसे सम्वन्ध रखनेवाले कर्मोंसे निवृत्त होकर वैठना ही ठीक होगा। अैसे कार्य नमस्कार करना, माला फेरना, (मूर्तिपूजक हो तो मूर्तिकी) प्रदक्षिणा करना आदि हो सकते हैं। मै यह नही कहता कि अिनमें से कुछ न कुछ करना ही चाहिये। शान्त चित्तसे अेकासन होकर स्थिर वैठनेको मैं पर्याप्त और श्रेष्ठ मानता हू। परन्तु चचल अिन्द्रियोंके लिअे अैसा करना कठिन हो तो अर्थ और कामसे सवध न रखनेवाले कर्मोंमे अुन्हे लगाना अधिक अच्छा होगा।

'मनुवा तो चहु दिशि फिरे' की स्थिति होने पर भी सारे दिन माला हाथमे रखनेका मिथ्याचरण जैसे अेक प्रकारकी कर्म-जडता है,

अुसी तरह कातना यज्ञकर्म है अिसलिअे स्तवनके लिअे आग्रहपूर्वक नियत किये हुअे समयमें भी कातना दूसरे प्रकारकी कर्म-जडता है। जहा 'अेक पथ दो काज' करनेकी वनिया-बुद्धि अुत्पन्न होती है, वहा तत्त्वका हनन होता है अैसा कहनेमें कोअी हर्ज नही।

अेक शिष्य अेक बार अपनी तुवी चवूतरे पर भूलकर पूजा करने बैठ गया। पूजा करते-करते तुवी भूल आनेकी वात अुसे याद आअी, और कुत्ता अुसे बिगाड देगा अिस डरसे वार वार अुसकी वृत्ति तुवीकी तरफ दौडने लगी। परन्तु पूजा करते-करते अुठा नही जा सकता, अैसे प्रतिबन्धके कारण वह अुठ भी नही सका। यह देखकर गुरुने पूछा

'दैवत तुवीपात्रमें, किवा दैवत व्यान?
दैवत तुवीमें अधिक, किवा दोअु समान?'

अगर तुवीको अुसके स्थान पर रखना अधिक महत्त्वकी वात हो तो वह काम पहले करना चाहिये, और यदि पूजाका अधिक महत्त्व हो तो तुवीकी चिन्ता छोडकर पूजामे अेकाग्र होना चाहिये। अिसी तरह यदि कातना विशेष सत्कर्म लगता हो तो अपने स्थान पर शान्तिसे बैठकर कातते रहना चाहिये और स्तवनकी झझटसे दूर रहना चाहिये। यदि अुस समय स्तवनमें सम्मिलित होना अधिक महत्त्वका लगे तो यज्ञार्थ होने पर भी कातना वन्द कर देना चाहिये।

अन्तमे, अुपर्युक्त सब दृष्टिविन्दुओंको व्यानमें रखकर समय और कार्यक्रमका वटवारा किस तरह हो सकता है, अिसकी अेक योजना यहा पेश करता हू।

अिस योजनामें मैंने अैसी अपेक्षा रखी है कि समुदायका प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम वीस मिनट और रुचि हो तो अधिक समयके लिअे अुपासनामें भाग लेगा। कार्यक्रमके विभिन्न अगोंका सचालन अेक ही व्यक्ति करे या अलग अलग व्यक्ति करे, यह सुविधाका और व्यक्तिकी योग्यताका विषय है। जिन लोगोंको कार्यक्रमके किसी विशेष भागमें सम्मिलित रहनेकी अिच्छा न हो, वे शान्तिसे दूसरोंकी अेकाग्रतामें वाधा

पहुचाये विना अुठकर चले जा सके और वादमें आनेवाले अिसी तरह आ सकें, अैसी व्यवस्था होनी चाहिये। यहा मैंने यह मान लिया है कि अेक वार बैठ कर अुठ जानेके वाद, फिर दूसरे कार्यक्रमके लिअे आने और अुठ जानेकी तथा कार्यक्रम चल रहा हो तव वीचमें ही अुठ जानेकी असभ्यता कोअी नही करेगें।

सामान्यत: शिक्षण-सस्थाओमे पहली घटी सवको अिकट्ठा करती है और दूसरी घटी होते ही नित्यपाठ आरम्भ होता है। अिसके वदले मेरा यह सुझाव है कि दूसरी घटीके साथ या अुसके पहले भी भजन-मण्डली अपने भजन और अुसके वाद धुन आरभ कर दे और अुपासक अुस वीच चुपचाप आकर वैठते जायं। सवेरे-शाम दोनो समयके लिअे समयका वटवारा अिस तरह किया जा सकता है:

कार्यक्रम

मिनट (लगभग)	
१०	भजन
५	धुन
५	स्तवन-पाठ
१५	(सवेरे) स्वाध्याय (शामको) कथा-कीर्तन-वाचन
५	भजन
१५	प्रवचन
५	धुन

प्रवचन नियमित न होता हो तो कुल समय ४० या ४५ मिनटका होगा, प्रवचनके साथ ६० मिनटका होगा। जो लोग वाचन या प्रवचनमें अूघनेवाले हो वे शुरूसे स्तवन-पाठ तक भाग लें, जो अुसीकी रुचि रखनेवाले हो वे अुसमें भाग ले सकें अिस तरह सम्मिलित हों। जिन्हें पूरे कार्यक्रमके लिअे भक्ति, रुचि और अवकाश हो, वे पूरा घटा दें। ६० मिनटका कार्यक्रम रखना सभव ही न हो, तो सवेरे स्वाध्याय या वाचन और शामको प्रवचन रखा जा सकता है। प्रवचनकारके अभावमें वाचन भी रखा जा सकता है। आवश्यकता

मालूम हो तो दूसरे भजन और घुनकी जिम्मेदारी कोअी अलग व्यक्ति ले।

स्वाध्यायके बारेमे अेक बात कह देना आवश्यक है। वहुत बार स्वाध्याय अितना लबा रखा जाता है कि निश्चित समयमे अुसे पूरा करनेके लिअे पजाव मेल दौडानी पडती है। अिससे कोअी लाभ नही होता। स्वाध्याय कोअी नित्यपाठ नही है, वह मनन करने योग्य कठाग्र किये हुअे विशाल साहित्यमे से थोडासा भाग होता है और आवश्यकता होने पर अुसका थोडा विवेचन भी अुसमे रहता है। वह रोज अेक ही प्रकारका रहे, अैसा आवश्यक नही है।

अुपसंहार

अन्तमे अुपसहारके रूपमे कुछ सूचनाअे दे दू। जिसे सचमुच ही सामुदायिक अुपासनाकी आवश्यकता नही रहती, वह अैसे किसी समाजके साथ वधा हुआ नही रहता, जिसमें स्तवन-अुपासनाके समय अुसका अुपस्थित रहना अनिवार्य माना जाता हो। जो अपवादरूप व्यक्ति अुससे परे हो जाते है, अुनकी अपवाद होनेकी योग्यता सब कोअी स्वीकार करते है। और यदि नही स्वीकार करते तो अैसे समुदायके साथ बधे रहनेकी अुन्हे परवाह भी नही होती। अिसलिअे जहा यह झगडा पैदा होता है, वहा अुसके पीछे कोअी तात्त्विक कारण नही, वल्कि श्रद्धामान्द्यके ही कारण होते है।

परन्तु कोअी व्यक्ति सामुदायिक अुपासनाका कुछ भाग व्यक्तिगत रूपमें करनेकी बात कहे अथवा अपने लिअे अुसे अनावश्यक वतावे, तो अुसे मिथ्याभिमानी समझना ठीक नही होगा। कुछ शालाओंमे यह नियम होता है कि वालकोको हर पहाडा अमुक वार वोलना ही चाहिये। प्राय वालक अिस पद्धतिका विरोध नही करते। परन्तु यदि कोअी बालक यह कहे कि 'मै अेक अेकम अेक-का, दस अेकम दस-का और हर पहाडेका अेक और दसका गुणाकार (जो विलकुल स्पष्ट होता है) नही घोटूगा, तो हम यह मान कर कि वह वालक वुद्धिका अुपयोग करता है, अिन आसान गुणाकारोकी रटाअीसे अुसे

मुक्त कर देंगे या यह कहेंगे कि अुसे जड नियमके ढाचेमे बंधे ही रहना चाहिये? यही न्याय सामुदायिक अुपासनाके कुछ भागोको लागू हो सकता है।

फिर, सामुदायिक अुपासना आवश्यक है, अिसलिअे चाहे जैसी सामुदायिक अुपासनासे काम चल सकता है, यह कहना भी दुराग्रह ही माना जायगा। अुपासककी बुद्धि और हृदय दोनोके लिअे जो सन्तोषदायक हो, वही अुपासना भोजनके रूपमें मानी जा सकती है। यदि अैसा न हो और कोअी अकेला ही श्रद्धालु अुपासक अुपासनामे कोअी परिवर्तन कराना चाहे तथा दूसरे अुपासक अुससे कम श्रद्धालु न होते हुअे भी कम विचारनिष्ठ हो, तो दूसरोको असतुष्ट किये विना अुस अेक अुपासकको अधिक सन्तोष प्राप्त हो अैसा परिवर्तन करनेमे ही सचालकको वुद्धिमानी माननी चाहिये।

अिसी तरह, चूकि स्तवन-अुपासना सामुदायिक और वैयक्तिक दोनो प्रकारकी होती है और सामुदायिक अुपासनाका हेतु अन्तमें वैयक्तिक अुपासनाका पोषण करना है, अिसलिअे कुछ बातोमे अथवा सपूर्ण रूपमे भी कोअी व्यक्ति वैयक्तिक अुपासना ही करना चाहे, तो अुसकी जाच करके वैसी सुविधा कर देनेमें समुदायके सचालकोको कोअी सकोच न होना चाहिये।

थोडेमें, सचालक, व्यवस्थापक, गृहपति, आचार्य आदि अपनेको अुपासनाकी कवायद करानेवाले ड्रिल-मास्टर समझे, तो वे अुसे अनिवार्य बनाकर अुसमें 'व्यवस्था' कायम कर सकेंगे; अेक ही सप्तकमें, अेक ही स्वरमे, ताल और गतिकी भलीभाति रक्षा करके अुच्चारणकी शुद्धता भी वे ला सकेंगे। यह भी हो सकता है कि यह कवायद अुपासकोको अुबानेवाली न मालूम हो; और अुकताहट न मालूम होनेसे स्वभावत अुसकी आदत भी अुन्हे पड सकती है। लेकिन फिर भी अुसे अुपासना नही कहा जा सकता। यह कवायद ही रहेगी।

परन्तु यदि सचालक अपनेको नरसिंह महेता या तुकाराम जैसा श्रेयार्थी समझे, अपने श्रेयके लिअे बाल या वडे हरिजनोका मडल खड़ा करना चाहे और अैसे भजन-मंडलका अकेला या दो-चार सहायक

साथियोंके साथ मुखिया बने, तो वह अुस मंडलमें सच्ची अुपासनाके तत्त्व दाखिल कर सकेगा। अिसके साथ ही यदि अूपर बताअी हुअी व्यवस्था होगी, तो यह अुपासना दुगुनी सुशोभित होगी। वह स्वयं भले नरसिंह महेता या तुकाराम न बन सके, फिर भी यदि अुस समुदायके लिअे अुसकी अैसी भक्तिनिष्ठा होगी, तो अुस अुपासनामें सच्चे नरसिंह महेताका भी जुड़नेका मन हो जायगा।

७

स्त्रियोंकी तालीम*

दो पास पास खड़े हुअे आम और नीमके पेड़ोंको दो अलग अलग स्थानोंसे देखें, तो अेक स्थानसे आम नीमकी दायीं ओर दिखाअी देगा और दूसरे स्थानसे बायीं ओर; और तीसरी दिशासे आम नीमके आगे मालूम होगा तथा चौथी दिशासे नीमके पीछे मालूम होगा। दर्शनका यह सारा भेद पेड़में कोअी स्थान-परिवर्तन हो जानेके कारण नहीं पैदा होता, परन्तु दर्शकके स्थान-परिवर्तनके कारण पैदा होता है।

तालीमको भी कुछ अंश तक यही बात लागू होती है। जिस स्थान पर खड़े रहकर हम जीवनको देखते हैं, अुसके आधार पर जीवनके विषयमें हमारा खयाल बनता है और अुसका अेक या दूसरा अंग कम या अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। तालीमका ध्येय जीवनको गढ़ना या अुसका निर्माण करना है। अिसलिअे अूपर कहे अनुसार दृष्टिबिन्दुका जो भेद पैदा होता है, अुसकी वजहसे अिस विषयमें मतभेद होता है कि शिक्षामें किस चीजको महत्त्व दिया जाय।

परन्तु केवल देखनेवालेके स्थान-परिवर्तनके कारण ही तालीमके प्रश्नोंके बारेमें मतभेद पैदा नहीं होता। आम और नीमके सम्बन्धमें

---

* वनिताश्रम (अहमदाबाद) के रजत-महोत्सवके अवसर पर लिखा गया निबन्ध — दिसम्बर १९३१।

तो केवल देखनेवाला ही स्थानातर करता है; दोनो पेड स्थिर रहते हैं। परन्तु जीवनके विषयमे नये नये अनुभवोके कारण जिस प्रकार हमारा स्थानातर होता है, अुसी तरह सारे मानव-समाजका जीवन भी नये नये रूप ग्रहण करता रहता है। अिसलिअे तालीमके बारेमें सदा नये नये प्रश्न खडे होते ही रहे तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नही।

अिस कारणसे जीवनको किसी अूंचे और काफी स्थिर स्थानसे जाचकर तालीमके प्रश्न पर विचार करनेका प्रयत्न हम भले करे, परन्तु यह ध्यानमे रखना चाहिये कि तालीम-सम्बन्धी हमारे अनेक विचारोमें बार-बार सुधार होते ही रहेगे, तथा आज जो बातें महत्त्वकी मालूम होती हैं वे कल गौण बन सकती है, और आज गौण मालूम होनेवाली बाते कल महत्त्व ग्रहण कर सकती है।

अिस तरह हमारे निर्णय अस्थिर हो सकते हैं। संभव है आज हमने जिस स्थान पर पाव रखा है वहासे कल अुसे हटाना पडे। परन्तु आजका कदम यदि सच्ची दिशामे पडा हो, तो कल अुसे अुठाकर सच्ची दिशामे ही रखनेकी अधिक आशा रहती है। अिसलिअे भले हम अेक ही कदमको देख सके, परन्तु यदि वह कदम सही दिशामे पडे तो हम सुरक्षित रहनेकी आशा कर सकते हैं।

तालीमका अर्थ है जीवनका निर्माण करने या अुसे गढनेकी पद्धति। मैं मानता हू कि अैसी अेक छोटीसी व्याख्या स्वीकार करके हम अिस विषयका विचार करेगे तो कुछ सुविधा होगी। यह व्याख्या ही हमारे सामने प्रश्नोकी परम्परा पेश करेगी।

सबसे पहला प्रश्न तो यह है कि 'जीवन निर्माण करने' का अर्थ क्या? परन्तु 'निर्माण करना' शब्दका अर्थ खोजने जाते ही 'किसका जीवन?' यह दूसरा प्रश्न खड़ा होता है। कदाचित् अिसका अुत्तर यह दिया जाय कि स्त्रियोका जीवन। परन्तु यह अुत्तर पूरा नही है। कारण यह है कि जो स्त्रिया — जिस वर्गकी स्त्रिया — हमारी दृष्टिके सामने होगी, अुनको ध्यानमें रखकर हमारी बुद्धि अिन प्रश्नोके अुत्तर खोजनेका प्रयत्न करेगी। यदि हमारी दृष्टिमें

शहरोकी और अुसमें भी धनी या मध्यमवर्गकी स्त्रिया होगी तो अिनके अुत्तर अेक प्रकारसे सूझेगे और यदि हमारी दृष्टिमे गावोकी तथा पिछडे हुअे और गरीब वर्गोंकी स्त्रिया होगी तो अिनके अुत्तर दूसरी तरहसे सूझेगे।

जिस सस्थाने यह निबन्ध लिखनेकी मुझे आज्ञा दी है, अुनका कार्यक्षेत्र बहुत धनी न होते हुअे भी अतिशय कठिनाअिया न भोगने-वाली मध्यमवर्गकी तथा सस्कारी जातियोकी होते हुअे भी गरीब वर्गकी स्त्रियो तक ही मर्यादित है, अैसा मानकर अुतने ही क्षेत्रमे अुत्पन्न होनेवाले प्रश्नोका मैंने यहा विचार किया है। गुजरातके सम्बन्धमे कहे तो साधारणत, अिसमे ब्राह्मण, वैश्य, पाटीदार, ब्रह्मक्षत्रिय, कायस्थ आदि जातियोका समावेश होता है।'

देशकी विशाल जनताकी दृष्टिसे विचार करे तो यह वर्ग मुट्ठी-भर ही माना जायगा। अिसलिअे कोअी यह आक्षेप कर सकते हैं कि स्त्रियोकी तालीमका बडा नाम देकर अेक छोटेसे वर्गसे ही सम्ब-न्धित प्रश्नोकी चर्चा करनेमें मैंने व्यर्थ अपनी शक्ति खर्च की है। परन्तु सपूर्ण चर्चा करनेमे निबन्ध केवल तात्त्विक बन जाता और सभव है जिनकी प्रेरणासे मैंने अिसे लिखा है अुनके लिअे व्यावहारिक दृष्टिसे यह बहुत अुपयोगी सिद्ध नही होता। अिसलिअे मुट्ठीभर होते हुअे भी अिसी वर्गकी स्त्रियोकी तालीमके प्रश्नोका विचार मैंने किया है।

परन्तु अिस तरह क्षेत्रको मर्यादित रखते हुअे भी यथासभव विशाल दृष्टिसे व्यापक विचार करना चाहिये। और अिसके लिअे जीवनके विषयमे यथासभव सच्चा दृष्टिबिन्दु खोजकर अुस दृष्टिसे तालीमके प्रश्नोकी चर्चा करनी चाहिये। अिस विषयमे मैं कुछ विचार सूत्ररूपमे ही पेश करना चाहता हू और मानता हू कि विचार करनेमे ये सूत्र प्रत्येकको स्वीकार करने जैसे लगेगे।

पहले सूत्रके रूपमें मै यह विचार सामने रखता हू

१ मानव-जाति राज्य-पद्धति, समाज-पद्धति, शिक्षा-पद्धति, शासन-पद्धति, धार्मिक आचरणके नियमो, नैतिक आचरणके नियमो आदि

द्वारा अेक ही वस्तु सिद्ध करनेका प्रयत्न करती है वह है अपने जीवनकी विभिन्न प्रवृत्तियोमें आन्तरिक सामजस्य कायम करना, तथा अपने और दूसरे प्राणियोके जीवनके वीच सामजस्य कायम करना।

अिन दोनो प्रयत्नोमें से हम अभी अपने जीवनका सामंजस्य कायम करनेके प्रयत्नका विचार नही करेगे। क्योकि आज हमें तालीमके प्रश्नोका विचार करना हे, और वह भी अपनी तालीमकी दृष्टिसे नही परन्तु दूसरोको तालीम देनेकी दृष्टिसे। अत यहा हम तालीमकी योजना वनानेवाले और तालीम लेनेवाले अैसे दो पक्षोको मानकर चल सकते है। अिसलिअे पहले सूत्रके परिणामस्वरूप दूसरा सूत्र नीचे पेश करता हू

२ तालीमका अर्थ है तालीम ग्रहण करनेवालोके जीवनको अिस तरह गढनेका प्रयत्न, जिससे तालीमकी योजना करनेवालोको यह अनुभव हो कि अुनके और तालीम ग्रहण करनेवालोके जीवनके वीच तथा समाजके विभिन्न अगोके वीच मेल है।

अिस तरह तालीमकी योजना करनेवालोके दो भाग हो जाते है . (१) अपने और तालीम ग्रहण करनेवालोके जीवनके वीच साम-जस्य साधनेका प्रयत्न करनेवाले, और (२) समाजके अलग अलग अगोके वीच सामजस्य साधनेका प्रयत्न करनेवाले।

पहले प्रकारके तालीम देनेवालोके कुछ अुदाहरण देता हू घोडे या वैलको तालीम देनेवाला मालिक अुसे तालीम देनेके लिअे अैसे अुपाय काममें लेता है, जिससे वह प्राणी अुसके वशमें रहे और अुसका अधिकसे अधिक काम करे। अुस प्राणीका जीवन वह अिस ढगसे गढनेका प्रयत्न करता है कि जिससे अुसके जीवनके साथ अुस प्राणीके जीवनका मेल सधे।

अिसी प्रकार राज्यका तालीम-विभाग अैसी ही पद्धतिसे प्रजाको तालीम देता है, जिससे प्रजाका जीवन सरकारके अस्तित्वसे मेल खाने-वाला वने।

अिसी न्यायसे बहुत वार यह देखनेमें आता है कि विशेष वर्ग आम जनताका, पुरुष-वर्ग स्त्रीवर्गका और बुजुर्ग लोग वालकोका जीवन

तालीम द्वारा अिस ढगसे गढ़नेका प्रयत्न करते है कि तालीम देनेवालोके जीवनके साथ तालीम प्राप्त करनेवालोके जीवनका मेल सधे।

अिस तरह, सामजस्य सधे अैसे ढगसे किसीके जीवनको गढनेका प्रयत्न करनेमे ही दोप नही है, परन्तु अिसमे तालीम देनेवालेका दृष्टिविन्दु यदि अैसा हो जिसके फलस्वरूप तालीम देनेवाले और तालीम लेनेवालेके वीच सदा स्वामी और दासका ही सम्वन्ध वना रहे तो अन्याय होता है।

परन्तु अिस तरह

३ अपने जीवनमें परिवर्तन किये विना दूसरेके जीवनको अपने अनुकूल वनानेकी दृष्टिसे गढनेके प्रयत्नमे साधारणत भय, लालच, खुशामद, भ्रमका पोपण, सत्यका छिपाव अथवा असत्य-कथन आदि अुपाय तालीमकी पद्धतिके अग वनते है और मनुष्यकी धर्म, भक्ति, प्रेम, कृतज्ञता आदिकी सारी कोमल भावनाओका अनुचित लाभ भी अुठाया जाता है।

अिस न्यायसे राज्योने प्रजाओको झूठा अितिहास, धर्मोपदेशकोने अनुयायियोको झूठी श्रद्धायें, पुरुपोने स्त्रियोको अपने प्रति झूठी भक्ति आदि सिखानेके जो प्रयत्न किये है अुन्हे सव कोअी जानते है।

परन्तु आखिरमें असत्य टिकता नही। जल्दी या देरसे असतोष प्रकट होता ही है और विद्रोह जाग अुठता है।

प्रजाओका अपनी सरकारके खिलाफ विद्रोह, आम वर्गोका खास वर्गोके खिलाफ विद्रोह, स्त्रियोका पुरुपोके खिलाफ विद्रोह, युवकोका वृद्धोके खिलाफ विद्रोह, अनुयायियोका अपने धर्मगुरुओके खिलाफ विद्रोह —ये सव विद्रोह कुछ हद तक अूपर वताअी स्वार्थपूर्ण दृष्टिसे मेल साधनेके प्रयत्नका परिणाम है। और हम आशा रखे कि किसी दिन पशु भी मानव-समाजके खिलाफ अैसा विद्रोह करेगे।

अैसा विद्रोह जव होता है, तव वहुत वार तालीमकी अिस पद्धतिके कुछ अच्छे परिणाम भी दोपोके साथ नष्ट हो जाते है।

अिसका यह मतलव न समझा जाय कि तालीमकी योजना करने-वाले लोग सदा अिस तरह जान-वूझकर — हिसाव लगाकर — गलत

ढगसे शिक्षण देते है। परन्तु अपने ही वर्गमें सपूर्ण मानव-समाज समा जाता है और अपनी जीवन-पद्धति ही सबसे अुत्तम है, अुसीमें प्राणी-मात्रका कल्याण निहित है, अैसी अपूर्ण दृष्टिके कारण यह अनायास ही हो जाता है। अिस अपूर्ण दृष्टिका कारण, जैसा आरंभमें कहा था, जीवनकी गलत स्थानसे की हुअी जाच है।

सपूर्ण सृष्टिके जीवनको पूर्ण रूपसे, अुसके सच्चे सम्बन्धोंमें और किसी भी विशेप वर्गके जीवनके लिअे ममत्व रखे विना तटस्थ वृत्तिसे कोअी देख सकता है या नही अिसमे शका है; और अैसा कोअी पुरुप निकल आये तो भी अुसके तालीमके सिद्धान्तोको दूसरे स्वीकार करेगे या नही अिसमे भी शका है। फिर भी अितना तो कहा ही जा सकता है कि

४ यथासभव नि स्वार्थ और विशाल दृष्टिविन्दुसे प्रामाणिक रूपमे जीवनका विचार करके तालीसकी योजना अिस तरह करनी चाहिये कि समाजके सर्व अंगोके वीच सवका समान हित करनेवाला मेल सधे।

यदि अैसा प्रयत्न सच्चा हो तो तालीमकी योजना करनेवाला भले गलतिया करे, भले जिसे वह विशाल और सबका हित करने-वाली दृष्टि समझता था वह वादमें सकुचित दृष्टि सिद्ध हो, फिर भी अुससे किसीकी हानि नही होगी। क्योकि अैसा मालूम होते ही वह तालीमकी दिशा वदलनेके लिअे, और किसी अेक ही वर्गको जीवनका आदर्श न मानकर अुस वर्गके जीवनको भी वदलनेके लिअे तैयार रहेगा।

यदि अूपरके चार सूत्रोके वारेमे कोअी मतभेद न हो तो स्त्रियोकी प्रस्तुत तालीमके वारेमें नीचेके दो सूत्र निकलते है.

५ भले हमारे सामने मध्यमवर्गकी स्त्रियोकी तालीमका प्रश्न मुख्य हो, फिर भी वह तालीम आम वर्गकी स्त्रियोके जीवनके साथ मेल खानेवाली होनी चाहिये। आम वर्ग और खास वर्गके वीच कोअी विरोध न होना चाहिये और अिसलिअे खास वर्गका जीवन गढनेमें आवश्यक परिवर्तन करनेकी तैयारी होनी चाहिये।

और,

६ तालीमकी योजनामे पुरुप या स्त्री दोमे से किसी अेकको प्रधानपद देनेवाले दृष्टिविन्दुसे जीवनका विचार नही होना चाहिये, परन्तु दोनोके जीवनको अेकसा महत्त्व देकर दोनोके बीच मेल साधनेका प्रयत्न होना चाहिये। अिसलिअे पुरुषकी तालीमकी पद्धतिमे स्त्रीके हितका विचार और स्त्रीकी तालीमकी पद्धतिमें पुरुपके हितका विचार होना चाहिये।

अिस परसे यह भी सुझाया जा सकता है कि

७ पुरुषकी तथा स्त्रीकी तालीमकी योजना पुरुप तथा स्त्री दोनोको मिलकर वनानी चाहिये। तथा अुसमे आम वर्गोके हितोको समझनेवाले लोगोका भी हाथ होना चाहिये। परन्तु अैसे योजनाकार केवल अपने वर्गके प्रतिनिधियोके नाते ही विचार करनेकी आदत छोड दे और यथासभव सारे वर्गोसे परे रहकर विचारनेकी आदत डालें।

विचारके लिअे अितने सिद्धान्त स्वीकार करके अव हम स्त्रियोकी तालीमके अेक अेक मुद्देकी चर्चा करेगे।

सवसे पहले तो आम वर्गो और मध्यमवर्गके जीवनमे पाये जानेवाले कुछ वडे भेदोको ध्यानमे लेना आवश्यक है, और यह स्वीकार करनेकी आवश्यकता है कि आम वर्गोका जीवन सही स्थितिके अधिक समीप है।

वे भेद अिस प्रकार है

(क) आम वर्गोमे स्त्री और पुरुप लगभग समान भूमिका पर होते हैं। स्त्रीकी अपेक्षा पुरुपका ज्ञान, श्रद्धा, विचारसरणी, रुढियोके वन्धन आदि अधिक अूची स्थिति पर नही होते। दोनोका ज्ञान और अज्ञान अेकसा होता है।

(ख) आम वर्गोमें स्त्री और पुरुप दोनो लगभग अेकसी स्वतन्त्रता भोगते हैं। विवाह और तलाकके विपयमे दोनोको वहुत हद तक समान अधिकार प्राप्त हैं। दोनो गावमें और समाजमे अेकसी आजादीसे घूमते हैं, दोनोमें चरित्रकी शुद्धि या शिथिलता अेकसी

होती है। पुरुषकी शुद्धिके लिअे अधिक पूज्यभाव और शिथिलताके लिअे अधिक अुपेक्षा-भाव तथा स्त्रीकी शिथिलताके लिअे अधिक दड या तिरस्कार नही होता। पुरुष और स्त्रीमे अपने लिंगभेदका भान, दूसरे वर्गोंकी तुलनामे, कम प्रकट होता है। यदि अिन बातोमे कोअी असमानता अुत्पन्न हुअी हो तो वह विशेष वर्गोंकी नकल अथवा विशेष वर्गोंके प्रयत्नोसे पोषित सस्कारोका परिणाम है।

(ग) आम वर्गोमे पुरुष और स्त्री दोनो अेकसा परिश्रम करते है। स्त्री अपने निर्वाहके लिअे विवाह या पुनर्विवाह नही करती, और विवाहसे पुरुषका बोझ बढता नही या दोनो पर अेकसा बढता है। अिस कारणसे स्त्रीका वैधव्य निर्वाहकी दृष्टिसे आपत्तिरूप नही बनता, वियोगकी दृष्टिसे भले आपत्तिरूप हो।

(घ) आम वर्गोमे पुरुषकी दृष्टि अधिक विशाल है और स्त्रीकी सकुचित है, अथवा पुरुष अधिक लाभ-हानिका विचार करनेवाला और स्त्री भावनावश होती है अैसा बहुत हद तक नही कहा जा सकता। हृदयकी विशालता या सकुचितता तथा लाभ-हानिके विचार और भावनावशताकी दृष्टिसे आम जनताका वर्गीकरण किया जाय, तो संभव है प्रत्येक वर्गमे स्त्रिया और पुरुष समान सख्यामें निकल आयेगे।

अिसका यह अर्थ नही कि आम जनतामें पुरुष और स्त्रीका दर्जा बिलकुल समान है। स्त्री अपने अधीन रहे अिस प्रकार अुसे गढनेका प्रयत्न पुरुषने किया ही है और अिसमे आम वर्गोंके पुरुष अपवादरूप नही हैं। फिर भी अैसी असमानता जितनी विशेष वर्गमें होती है अुतनी आम वर्गमें नही होती और अिस मामलेमे आम वर्ग सही स्थितिके अधिक निकट है। अिसलिअे

८ ज्ञान, धर्म, चरित्र, भावना-बल और व्यवहार-दृष्टिमें पुरुष और स्त्रीकी योग्यता समान रहे, अिस ढगसे दोनोकी तालीमकी योजना की जानी चाहिये, गाव और समाजमे घूमनेकी तथा विवाह और तलाककी अनुकूलता दोनोको अेकसी होनी चाहिये। और निर्वाहके लिअे या गृह-व्यवस्था रखनेके लिअे विवाह या पुनर्विवाह करना

अनिवार्य न हो जाय, अपना निर्वाह करनेकी अितनी शक्ति स्त्रीमे और गृह-व्यवस्था रखनेकी अितनी शक्ति पुरुषमे होनी चाहिये।

श्रमके विषयमे आम वर्ग और विशेष वर्गके बीच अेक दूसरा भेद भी है, और अुसमे भी आम वर्ग अुचित स्थितिके अधिक निकट है अैसा मालूम होगा। वह यह कि.

(ङ) आम वर्गमे स्त्री और पुरुषके बीच श्रमभेद अवश्य है, परन्तु वह दृढ नही है। कुछ काम सामान्यत स्त्रिया करती है और कुछ सामान्यत पुरुष करते है। फिर भी आवश्यकता पडने पर स्त्रियोके काम पुरुष कर लेते है और पुरुषोके काम स्त्रिया कर लेती है। अुदाहरणके लिअे, सामान्यत निराअी करना, दूध दुहना, छाछ बिलोना, घी बनाना तथा कताअी और बुनाअीकी अुपक्रियाअे स्त्रियोके काम होते है और खेत जोतना, बीज बोना, फसल काटना, कपडा बुनना आदि पुरुषोके काम होते है। परन्तु अेकका काम दूसरा बिलकुल न करे अैसा नही होता।

(च) अिसके अलावा, यह श्रमभेद अेक ही धधेकी अलग अलग क्रियाओमे होता है। पुरुष खेती करे और स्त्री दरजीका काम करे अैसा श्रमभेद आम वर्गमे नही होता। विशेष वर्गमें स्त्री और पुरुष दोनो निर्वाहके लिअे धन्धा करनेवाले हो तो भी अुनके धन्धे अेक-दूसरेसे बिलकुल स्वतत्र हो जाते है। अुदाहरणके लिअे, पुरुष कारकुन होगा और स्त्री नर्स होगी, पुरुष दुकानदार होगा और स्त्री शिक्षिका होगी। अिस कारण अेकका स्थान दूसरा नही ले सकता।

९ पुरुष और स्त्री दोनो मिलकर अेक ही धन्धा चलाये, अिस तरह पुरुष और स्त्रीकी तालीमकी योजना की जाय और विवाहमें भी यह दृष्टि रखी जाय यह वाछनीय है।

आज तक साधारणत पुरुष स्त्री पर प्रभुत्व भोगता रहा है, अिसलिअे पुरुष अयोग्य हो तो भी अुसमें श्रेष्ठताका मिथ्याभिमान और स्त्री कुशल हो तो भी अुसमे हीनताकी झूठी भावना पोषित हुअी है। अिस कारणसे अपना पति कुशल हो और स्वय मन्द हो तो भी स्त्रीको पतिसे अीर्ष्या नही होती या पतिकी कुशलताको दबा

देनेकी अथवा अुसके प्रति शंकाकी दृष्टिसे देखनेकी वृत्ति स्त्रीमें पैदा नही होती। परन्तु पुरुष मूढ हो और स्त्री कुशल हो, तो भी पुरुष अपनी प्रभुताको बनाये रखने और स्त्रीकी कुशलताको दबा देनेका प्रयत्न करता है और अुसे शंकाकी दृष्टिसे देखता है।

१० पुरुषमें पोषित श्रेष्ठताका झूठा अभिमान और स्त्रीमें पोषित हीनताकी झूठी भावना — ये दोनो संस्कार विघातक हैं, अिसलिअे अुन्हें दूर करना चाहिये।

वास्तवमें, कभी पुरुष बुद्धिशाली हो सकता है तो कभी स्त्री। अिसलिअे स्त्री जिस तरह अपने बुद्धिशाली पतिके लिअे गौरव अनुभव करती है, अुसी तरह पुरुषको भी अपनी पत्नीकी बुद्धिमत्ताके लिअे गौरव अनुभव करना चाहिये और अुसके सहायककी तरह काम करनेके लिअे तैयार रहना चाहिये।

कुछ संस्थायें अध्यक्षकी कुशलताकी वजहसे अच्छी तरह चलती हैं, कुछ मंत्रीकी कुशलताकी वजहसे; किसी समय अध्यक्ष कुशल मंत्रीके कहे अनुसार चलता है, तो किसी समय मंत्री अध्यक्षकी आज्ञामें रहकर काम करता है। यदि दोनोंमें से अेकको भी अपने पदका झूठा अभिमान न हो तो दोनोंके बीच ठीक मेल बैठता है और संस्था अच्छा काम कर सकती है। अिसी तरह

११ पुरुष और स्त्रीके बीच आपसमें किसी संस्थाके अध्यक्ष और मंत्रीके जैसा सम्बन्ध होना चाहिये और दोनोंमें से जो अधिक कुशल हो अुसके कहे अनुसार काम करनेमें दूसरेको हीनताका अनुभव नहीं होना चाहिये। तालीमको अैसा संस्कार निर्माण करना चाहिये।

आज तक पुरुषोंके मनमें यह खयाल रहा है कि स्त्रियोंको दबानेका अुन्हें अधिकार है और दबकर रहना स्त्रियोंका कर्तव्य है। अिसलिअे जिसे दबा न सके अैसी अपनेसे अधिक कुशल स्त्रीसे विवाह करना पुरुष पसन्द नहीं करता। परन्तु यदि अूपर कहे अनुसार दोनोंके संस्कार बदलें और पुरुष या स्त्री अेक-दूसरेको धन, शारीरिक शक्ति या विद्यासे दबानेके बदले केवल अेक-दूसरेके प्रेमके वश रहनेमें ही सन्तोष मानें, तो स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें कम विद्या होनेसे वह पति बननेके

लिअे अयोग्य नही माना जायगा। स्त्री डॉक्टर हो और पति कम्पा-अुण्डर हो, स्त्री अध्यक्ष हो और पति अुसका मत्री हो, अिसमे कुछ अनुचित माननेका खास कारण नही है। पति-पत्नीमे दूसरे गुण हो तो अैसे सम्वन्धको वेजोड माननेका कोअी कारण नही है।

अितना पुरुप और स्त्रीकी समानताकी दृप्टिसे विचार हुआ। अब पुरुष और स्त्रीके वीचके नैसर्गिक भेदोका तथा अुन भेदोके कारण अुत्पन्न होनेवाले खास अलग कार्योका विचार करे।

अिन नैसर्गिक भेदोमें मुख्य भेद स्त्रीके मातृपदसे सम्वन्ध रखता है। अिसमें विशेपता यह है कि स्त्री चाहे तो मातृपदको टाल सकती है, परन्तु पुरुप अुसे स्वीकार नही कर सकता। अर्थात् पुरुप पूर्ण रूपसे स्त्री नही वन सकता, जव कि स्त्री पुरुपके जैसा जीवन व्यतीत कर सकती है। अिसलिअे

१२ स्त्रीके लिअे पूर्णतया पुरुपके जैसा जीवन व्यतीत करना असभव नही है, और अिसलिअे जो स्त्री पुरुपके ही कार्य करना चाहे अुसे वैसा करनेसे रोका नही जा सकता। अत स्त्रीको पुरुपके जैसी तालीम लेनेकी स्वतत्रता होनी चाहिये।

परन्तु अिस प्रकार स्वतत्रता होते हुअे भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि अैसी स्त्रिया अपवाद ही मानी जायगी। ९५ प्रतिशत स्त्रिया तो मातृपद स्वीकार करनेवाली ही होगी। अत,

१३ स्त्रीको मातृपद ग्रहण करना है, अैसा मानकर ही स्त्रियोकी तालीमकी योजना की जानी चाहिये।

परन्तु मातृपदके स्वीकारके साथ ही स्त्रीकी स्वतत्रता कुछ हद तक मर्यादित हो जाती है और अुस पर कुछ विशेप कर्तव्य आ पडते है। अुदाहरणके लिअे, अुसकी गाव और समाजमे घूमने-फिरनेकी स्वतत्रता कम होती है, अुसे गृह-व्यवस्था और वाल-सगोपन पर ध्यान देना पडता है। अिसलिअे सार्वजनिक कार्योमें वह पुरुप जितना भाग नही ले सकती तथा अुसके लिअे पुरुपकी अपेक्षा कम श्रमका और घरमे ही या घरके समीप ही हो सके अैसा धन्धा करना आवश्यक

हो जाता है। फिर, सामान्यत. मातृपदका बोझ जल्दी आ जानेसे स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा शालाकी तालीमके लिअे कम समय मिलता है।

घरमें कम बन्द रहनेके कारण, सार्वजनिक कार्योंमें अधिक भाग ले सकनेके कारण, समाजमें अधिक घूमनेकी स्वतंत्रता मिलनेके कारण, तथा बडी अुम्र तक तालीम प्राप्त करनेकी सुविधा प्राप्त होनेके कारण विशाल दृष्टि बढानेके लिअे पुरुषको जो अवसर मिलता है वह स्त्रीको नही मिलता। अिससे पुरुष और स्त्रीके बीच विचारोका अन्तर बढता है। परन्तु अिसके साथ ही मातृपद स्त्रीमें कर्तव्यका अेक अैसा भान जगाता है, जिसके कारण अुसका जीवन अधिक स्वार्थत्यागी और भावनापूर्ण बनता है। मातृपदके अिन दो अनिष्ट और अिष्ट परिणामोका मेल बैठाया जा सके, तो पुरुषकी अपेक्षा स्त्री समाजमें हर तरहसे अूचा स्थान प्राप्त कर सकती है। यह मेल बैठानेके लिअे नीचेकी परिस्थितिया अुत्पन्न करना मुझे आवश्यक मालूम होता है

१४ विवाहकी आयुको काफी आगे बढा देना चाहिये। (लगभग २०–२२ वर्ष तक, और १८ वर्षसे कम तो हरगिज नही।)

१५ दो सन्तानोके बीच काफी अतर रहे, अिस तरह सयमका पालन किया जाना चाहिये। (लगभग पाच वर्षका अन्तर रहना चाहिये, तीन वर्षसे कम तो कभी नही।)

१६ दो-तीन बालक हो जानेके बाद पूर्ण सयमका पालन करना चाहिये।

१७ पुरुषकी शिक्षामें भी बाल-सगोपन और गृह-व्यवस्थाके कुछ अगोका समावेश करना चाहिये, जिससे वह स्त्रीको अिस कार्यमें सहायता दे सके।

यदि अैसी परिस्थितिया अुत्पन्न की जायं, तो मुझे लगता है कि स्त्री किसी भी दृष्टिसे न केवल पुरुषके पीछे नही रहेगी, प्रत्युत अुससे आगे चलेगी। अिससे स्त्रीका जीवन कम झझटोवाला, कम क्षीण होनेवाला, अधिक सन्तुष्ट और अधिक सुखी बनेगा। नैतिक

और आध्यात्मिक दृष्टिसे ही नही, बल्कि आर्थिक दृष्टिसे भी ये परिस्थितिया पुरुप और स्त्री दोनोके लिअे लाभदायक सिद्ध होगी।

अिनमें से विवाहकी आयु बढानेका और पुरुषको बाल-सगोपन तथा गृह-व्यवस्थाकी कुछ शिक्षा देनेका प्रवन्ध तो हो सकता है, परन्तु सयमका पालन बहुत हद तक स्त्री-पुरुप अपने विचारसे ही कर सकते हैं। तालीम देनेवाले केवल अैसे विचारोका सस्कार डालनेका काम कर सकते है। वर्षों पूर्व सयुक्त परिवारकी जीवन-पद्धति तथा पत्नीको अुसके पिताके घर भेजने-लानेकी जो प्रथा प्रचलित थी, वह कुछ हद तक अैसे सयमका पोषण करनेवाली थी। परन्तु आज अुसका लोप हो जानेसे स्त्रीकी स्थिति अत्यन्त दयाजनक हो गअी है। सवा या डेढ वर्षके अन्तर पर बालक पैदा होते रहे, अेक भी बालककी अच्छी तरह सार-सभाल न हो सके, अैसे ६–७ बालकोको जन्म देकर माता क्षीण होकर मर जाय, अथवा पिता मृत्युका शिकार हो जाय और माता विधवा हो जाय — यह स्थिति हृदयको चीर देनेवाली है। अिसे रोकनेके लिअे

१८ स्त्रीको अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर पुरुपके अतिक्रमणके वश न होना सिखाना चाहिये, और यह अुसका कर्तव्य भी है। स्त्रियोमे आयी हुअी जाग्रति पुरुपोके अैसे अतिक्रमणके खिलाफ स्त्रियोमे विद्रोह पैदा करे यह वाछनीय है।

परन्तु स्त्री-जातिमे पैदा हुअी यह जाग्रति अेक दूसरी बातका स्मरण कराती है। अूपर मैंने कहा है कि स्त्रियोकी तालीम अैसी होनी चाहिये, जिससे स्त्री स्वय अपना निर्वाह कर सके। आयी हुअी जाग्रतिके फलस्वरूप तथा अपना निर्वाह करनेकी शक्ति आ जानेके कारण आज दो प्रकारके विचार स्त्रियोमे पैदा हुअे है

(१) अविवाहित स्वतत्र जीवन वितानेकी अिच्छा। और (२) स्वतत्र कमाअी करनेकी अिच्छा।

ये दो विचार कहा तक ठीक है, अिसकी चर्चा करना आवश्यक है।

हम अूपर देख चुके हैं कि आम वर्गकी स्त्रियोमे अपना निर्वाह करनेकी शक्ति होती है। फिर भी अुनमे अविवाहित स्वतत्र जीवन बितानेकी अिच्छा नही दिखाअी देती। यह मनोदशा विशेप वर्गकी स्त्रियोमें बढती जाती है। ९५ प्रतिशत स्त्रियोके लिअे यह मनोदशा प्रकृति-धर्मका परिणाम नही होती, वल्कि अुससे विपरीत होती है। किसी विशेष आदर्शसे प्रेरित होनेवाले २–४ प्रतिशत स्त्री-पुरुष अैसे हो सकते है, जिन्हे कौटुम्विक जीवन वितानेकी लालसा न हो; प्रकृति-धर्म वताता है कि ९५ प्रतिशत मनुष्योमे तो यह लालसा होती ही है। किसी विशेष कारणसे अिस लालसाका सयम करना पडे यह दूसरी वात है। परन्तु यह सयम प्रयोजन तक ही सीमित रहता है। प्राणीमात्रमें सामान्यत· यह लालसा अितनी तीव्र होती है कि अिसके लिअे वे खतरेमे पडने, झझटे मोल लेने और कडा परिश्रम करनेके लिअे तत्पर होते हैं। मानव-प्राणी अिसका अपवाद नही है। अपना कुटुम्व वढाना, कुटुम्वी-जनोका पालन-पोषण करना, अुनके लिअे कडा परिश्रम करना, थोडी मुसीबते भी झेलनी पडे तो अुसके लिअे तैयार रहना — अिस सबको अत्यन्त प्रतिकूल सयोग न हो तो सामान्यत मनुष्योका बडा भाग आफत नही मानता, वल्कि अुसमे अपने पुरुषार्थका विकास मानता है।

परन्तु मध्यमवर्गकी स्त्री यह बोझ अुठाना नापसद करने लगी है। यह बताता है कि मध्यमवर्गके जीवनमे कोअी रोग घुस गया है। अुस वर्गमे स्त्री-जाति पर कौटुम्विक जिम्मेदारियोका बोझ अितना वढ गया है और विवाहित जीवनकी वेडी अितनी सख्त है कि अुसकी कल्पनासे ही स्त्री घवरा अुठती है और अुसकी कौटुम्विक जीवन बितानेकी लालसा दव जाती है। अिससे यह भी मालूम होता है कि मध्यमवर्गमें पुरुपका जीवन कौटुम्बिक विषयोमें अितना स्वार्थी और अविचारी होता है कि जिस कौटुम्विक बोझको वढानेमें वह नेतृत्व करता है, अुसके प्रति अपने कर्तव्योका वह पूरा पालन नही करता। अिसके फलस्वरूप स्त्री अिस भारी बोझके नीचे दव जाती है।

विचारने पर मालूम होगा कि ये दोनो वाते सही है। अिसके लिअे पुरुषकी तालीममे सुधार करना चाहिये। पुरुष द्वारा कौटुम्बिक कर्तव्योका पालन आजसे अधिक करानेकी और अुन कर्तव्योका स्त्री पर जो अत्यधिक वोझ आज पडता है अुसे कम करनेकी आवश्यकता है। अैसा हो तो तालीम अथवा स्वनिर्वाहकी शक्तिका अर्थ कौटुम्बिक जीवनके प्रति घृणा नही होगा। *

स्त्री-जाग्रतिके फलस्वरूप स्वतत्र अुपार्जन करनेकी अिच्छा मध्यम-वर्गमें वहुत प्रवल होती दिखाअी देती है। यह अिच्छा केवल नअी पीढीकी वालाओमे ही नही, परन्तु प्रौढ वयकी स्त्रियोमे भी घर कर रही है।

स्त्रीमे स्वनिर्वाहकी शक्ति होना अेक वात है, और अपनी स्वतत्र कमाअीका आग्रह रखना दूसरी वात है। पहली वात अुसे साधन-सम्पन्न रखती है, परन्तु अुस साधनका अनिवार्यत अुपयोग करना अुसके लिअे सदा आवश्यक नही होता। जो पुरुष स्त्रीके साथ कुटुम्बका भार अुठाता है, अुस पुरुषकी कमाअीमे स्त्रीका हाथ होगा ही। अुसके सिवाय अुस स्त्रीके लिअे अैसा कोअी धधा करना आवश्यक नही होना चाहिये, जिससे अुसकी अपनी कमाअी अलगसे दिखाअी दे।

परन्तु अिसमे भी दोष स्त्रियोकी तालीमका नही, वल्कि पुरुषोकी तालीमका है।

---

* कौटुम्बिक जीवनके प्रति घृणा और वैराग्य अिन दोके वीच गलतफहमी नही होनी चाहिये। ससारकी झझटो और मुसीवतोमे घवराकर ससारके प्रति अरुचि अुत्पन्न होना वैराग्य नही है; सासारिक जीवनसे अधिक अूचे जीवनमे रस मालूम होनेके कारण सासारिक जीवनके प्रति अुत्पन्न होनेवाली अुदासीनता वैराग्य है। यह वैराग्य कौटुम्बिक जिम्मेदारियोको घृणाकी दृष्टिसे नही देखता। परन्तु अपना कुटुम्ब हो तो ही ये जिम्मेवारिया मै अुठा सकता हू — अितने सकुचित विचारोका न होनेसे अैसा मनुष्य अपना घरवार और कुटुम्ब खडा करनेका प्रयत्न नही करता।

स्त्रियोमे अैसी अिच्छा प्रवल होती जाती है, यह वताता है कि (१) स्त्री-पुरुषका सम्वन्ध जितना हार्दिक और विश्वासपूर्ण होना चाहिये अुतना नही है; और (२) अुसमे पुरुपका जीवन अधिक स्वार्थी और कृतघ्नतापूर्ण है, अैसी स्त्रीको प्रतीति होती जाती है।

आज नीचेकी भावनाये स्त्री-समाजमे फैलती जा रही है, अिससे अिनकार नही किया जा सकता ·

"हम लग्न-विडम्वनाके पथ पर कभी हाकी नही जायगी; हम गूगी भेडोकी तरह किसीके वताये रास्ते पर कभी नही चलेंगी। विवाहके जिस करारसे हमे रोटीके टुकडेसे थोडा भी ज्यादा नही मिला, अुस अनावश्यक करारमे हम कभी नही वधेंगी। हम युगोंसे पुरुषोके अधीन रही है, तो भी हमने पुरुपोमे कृतघ्नताके सिवाय और कुछ नही देखा। हमने अुनकी सेवा की और अुन्हे प्यार किया, और अुनकी वहुत सहायता की। परन्तु हाय! पुरुषोने अिन सवको धर्म और रूढिका रूप दे दिया और हमें गुलामीकी वेडियोमें जकड दिया। *

कौटुम्विक और सामाजिक जीवनके लिअे यह स्थिति स्वास्थ्यकी सूचक नही है। परन्तु अिस स्थितिको सुधारनेका अुपाय केवल स्त्रियोमें 'सुसस्कार' डालना और सीता, सावित्री जैसी महान सतियोके स्वार्थ-त्यागी जीवनोको आदर्शके रूपमें अुनके समक्ष रखना नही है। पुरुपको स्त्रीका विश्वास प्राप्त करनेके लिअे अपना जीवन सुधारना ही होगा और जव तक दोनोके वीच हार्दिक सम्वन्ध स्थापित न हो तव तक अिस प्रश्नका अैसा निवटारा करना होगा जिससे स्त्रीको सन्तोष हो।

यह निवटारा कुछ हद तक नीचे वताये गये ढंगसे हो सकता है

१९. जो स्त्री कौटुम्विक सुविधाके लिअे स्वतत्र आजीविका कमानेका परिश्रम न कर सके, अुसका कौटुम्विक आयके अमुक भाग पर

---

* गुजरातीके 'अुषा' मासिकमे प्रकाशित अेक अग्रेजी कविताके गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर।

अधिकार स्वीकार करना चाहिये, और अमुक प्रसगोमें वह भाग अुसे अलगसे मिल सकना चाहिये। अिसकी व्यवस्था 'पल्लेकी रकम'* की तरह विवाह होनेसे पहले करारके द्वारा हो सकती है। अैसी व्यवस्था आग्रहपूर्वक करवानेके लिअे स्त्रीको सिखाना चाहिये।

अिस सुझावके खिलाफ कोअी यह आपत्ति अुठा सकते हैं कि हिन्दू धर्मकी विवाहकी आध्यात्मिक भावनामे अैसे आर्थिक विपयको मिला देनेसे वह आदर्श नीचे गिर जायगा। अभी तक तो केवल पुरुष ही लाभ-हानिका विचार करनेवाला बना है, अब स्त्रीमे भी यह वृत्ति पैदा करके अुसे आदर्शसे नीचे गिराना अुचित नही है।

परन्तु यह टीका ठीक नही है। जैसे ब्रिटिश सरकार हममे कहे कि हमारी सज्जनता पर विश्वास रखो और लाभ-हानिका विचार करना छोड दो, तो अुनके आज तकके बरतावके कारण अुनकी बात पर हमारी श्रद्धा नही जमेगी, वैसे ही पुरुपकी सज्जनता पर विश्वास रखनेको स्त्रीसे कहा जाय तो अिस बात पर अुसकी श्रद्धा नही बैठेगी, और अिसमें दभकी गध आती है।

अिसके अलावा, यदि हिन्दू विवाहकी आध्यात्मिक भावना कन्या-विक्रय, वर-विक्रय और 'पल्लेकी रकम' के करारोमे बाधक नही होती, तो अूपरकी व्यवस्था करनेमे कोअी विशेष नीचा करार किया जाता है यह नही कहा जा सकता। 'पल्लेकी प्रथा' के पीछे जो हेतु है, वही अिस व्यवस्थाके पीछे भी है।

अैसी व्यवस्था आध्यात्मिक भावनाके मार्गमे नही आती। यदि परिवारमे अेकता और हार्दिक सम्बन्ध बढे तो यह केवल कागज पर ही लिखी रहेगी। यदि हार्दिक सम्बन्ध न बढे तो अिस व्यवस्थाके रहनेसे स्त्रीके साथ अन्याय नही होगा और अुसे पुरुपकी दया पर नही जीना पडेगा।

---

* विवाहसे सम्बन्ध रखनेवाली गुजरातकी अेक प्रथा, जिसके अनुसार वरकी ओरसे वधूको स्त्री-धन दिया जाता है। जिसे वह सकटके समय खर्च कर सकती है।

यदि स्त्रीके लिअे अितनी सुविधा हो सके, तो कुटुम्बके बोझकी कल्पनामात्रसे आज अुसे जो घबराहट होती है वह घबराहट कम हो जायगी, पुरुषको भी गृह-व्यवस्थामें अधिक सहयोग देना पड़ेगा, अविचार-पूर्ण कुटुम्ब-वृत्ति पर संयम रखना पडेगा और संयुक्त कुटुम्बके लिअे आज सामान्यत स्त्रीमे जो अरुचि पाअी जाती है अुसका भी अेक कारण कम होगा। अिस प्रकार स्वाधीनताके विश्वासवाली स्त्री ही यह कह सकेगी.

"अब तो नवयुवको पर हमारी दृष्टि लगी हुअी है। हम दोनो कन्धेसे कंधा मिलाकर साथ खडे रहेंगे। यदि वे हमें गुलामीसे मुक्त कर दें तो हम अुनका अनोखा साथ देंगी। हम अुनके साथ रहकर समाजकी सहायता करेंगी, अुसकी सेवा करेंगी और अुस पर स्नेह बरसायेंगी। अिसे हम अपने जीवनका व्रत बना लेंगी और अपना धर्म मानकर अुसका पालन करेंगी।*

अब हम मध्यमवर्गकी स्त्रियोंके कुछ विशेष प्रश्नोका विचार करें।

मैं कभी-कभी विनोदमें कहता हूं कि मर्यादी+ वैष्णवके आचार अत्यन्त शुद्ध तो अवश्य होते है, परन्तु वह धर्म गरीबको नही पुसायेगा। अेक ही जोड़ कपडोसे जिसका जीवन बीत रहा हो, वह दिनमें पांच बार स्नान करनेका धर्म कैसे पाल सकता है? वह भगवान्को मिश्री और दूधका भोग कैसे लगा सकता है? स्नान न कर सकने पर दूधकी ही पूड़ी खानेका धर्म वह कैसे निभा सकता है? जिसे आठ घटे मजदूरी करनेके लिअे जाना पड़ता है, वह पाच-पांच मिनट पर हाथ धोनेका और आध घंटे तक नहानेका आचार कैसे पाल सकता है? परन्तु जिसके घरमे नौकर-चाकर हो, पैसा हो,

---

* अुपरोक्त अंग्रेजी कविताके अंतिम पदके गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर।

\+ आचरणकी शास्त्र, परम्परा आदि द्वारा निर्धारित मर्यादाका पालन करनेवाला।

जिसे समयका सदुपयोग करते न आता हो और दुरुपयोग करनेकी अिच्छा न हो, अुसे केवल दिन वितानेके लिअे 'मर्यादी' वन जाना चाहिये। अितना ही नही, वल्कि आधुनिक जन्तुशास्त्रका आश्रय लेकर प्राचीन 'मर्यादी' धर्ममें काफी वृद्धि भी करनी चाहिये।

परन्तु यदि आम वर्गके लोग 'मर्यादी' वैष्णवकी कठी वावें तो वे आफत ही मोल लेंगे।

मध्यमवर्गकी कुछ अैसी ही जान-वूझकर आफत मोल लेनेवालोकी-सी स्थिति है। यह वर्ग अँग्लो-अिण्डियनो जैसा है। अेंग्लो-अिण्डियन अग्रेज वनना चाहते है, परन्तु अग्रेज अुन्हे स्वीकार नही करते, और भारतीयोको स्वय अुन्होने छोड दिया हे। अुसी तरह मध्यमवर्गका अर्थ है वनिकोके धर्मका अनुकरण करनेके प्रयत्नमे लगा हुआ आम वर्गका अलग पडा हुआ भाग।

जिस प्रकार 'मर्यादी' धर्म श्रीमानोको ही पुसा सकता है, अुसी प्रकार कुलीनताके कुछ खयाल पैसेदारोको ही पुसा सकते है। ससारके सारे देशोमे अमीर या राजाकी विधवाको पुनर्विवाह करना अकुलीनता लगता हे, क्योकि विधवा रहनेसे अुसे पैसा, प्रतिष्ठा और कुलीनताका यश तीनो मिलते है और अिन तीनके आधार पर वह पतिका वियोग सह सकती है। विधवा-विवाहके अभावमें जो चिन्ता मध्यमवर्गको रहती है, वह श्रीमान वर्गको नही रहती।

मध्यमवर्ग श्रीमान लोगोके धर्मका अनुकरण करनेमे 'लवेके साथ जो बौना धाये, मरे नही तो मादा हो जाये'की स्थितिमें आ पडा है। कुछ लोग शायद यह मानते हो कि आजका मध्यम-वर्ग अैसे धनिक वर्गका वशज है, जिसकी आर्थिक दशा विगड गअी है। परन्तु फिर भी मानव-प्रजाके वडे भागका साथ छोडकर अत्यन्त छोटेसे वर्गके धर्म स्वीकारनेमें और अुनसे चिपटे रहनेमें अुसने वुद्धिमानीका काम नही किया।

श्रीमत स्त्रीको खुले वाजारमें निकलना, शरीर-श्रमके काम करना, वोझ अुठाना, खेतमें काम करने जाना आदि हीनताकी वात

लगे यह स्वाभाविक है। यह सब न करना अुसे पुसा सकता है। अैसा न करनेसे वह अपने धनका अुपभोग कर सकती है, दूसरोको आश्रय दे सकती है और अुन पर अपनी सत्ता भी चला सकती है। अैसे जीवनको अपना आदर्श स्वीकार करनेसे मध्यमवर्गकी स्त्रीको पैसे-टके और शरीर-सम्पत्तिकी दृष्टिसे अधिक हानि अुठानी पडी है और बदलेमे लाभ अधिक नही हुआ है। बाहर निकलनेके लिअे सवारी मिल नही सकती और काम किये बिना छुटकारा नही है, अिसलिअे अुसके नसीबमे घरमे घुसे रहना और दरवाजा बन्द करके जितने काम किये जा सके अुतने ही करना लिखा हुआ है।

अब वह घरसे बाहर तो निकल सकती है, परन्तु बैठकर किये जानेवाले काम करनेकी ही हिम्मत दिखा सकती है। लेकिन अैसे कामोसे अधिक लोगोका पोपण नही हो सकता।

मध्यमवर्गके स्त्री-पुरुप दोनोके प्रश्नोके पीछे वस्तुस्थिति यह है। अत अुनके प्रश्नोका विचार अैसे ही ढगसे होना चाहिये कि वे अिस स्थितिसे बाहर निकल सके। अर्थात् ·

२० पुनर्विवाह न करनेवाली स्त्री पुनर्विवाह करनेवाली स्त्रीसे अधिक कुलीनता दिखाती है, यह खयाल मनसे निकाल देना चाहिये।

और,

२१ खेतके, जगलके और अन्य परिश्रमके धन्धोमे मध्यमवर्गकी स्त्री धीरे-धीरे अभ्यस्त होकर जुड सके, अिस तरह अुसकी तालीमका प्रबन्ध करना चाहिये।

यदि ये विचार ठीक हो तो कहा जा सकता है कि .

२२. वनिता-विश्राम जैसी सस्थाकी कोअी स्त्री पुनर्विवाह करे तो वह सस्थाके लिअे बदनामीकी बात होगी, और अिसलिअे किसी स्त्रीकी पुनर्विवाह करनेकी स्पष्ट अिच्छाको दबा देनेका प्रयत्न करना चाहिये, तथा अपनी बहन या लडकी पुनर्विवाह करे तो कुलको बट्टा लगेगा — अिन विचारोको गलत समझना चाहिये।

तथा,

२३ वनिता-विश्राम जैसी सस्थाये शहरके बाहर खेतो और जगलोके पास होनी चाहिये, अथवा यो कहा जाय कि खेतो और जगलोके पास भी अिन सस्थाओकी शाखाये होनी चाहिये।

अन्तिम सूत्रमे विकल्प रखनेका कारण यह है कि शहरोमें स्थित अैसी सस्थाओकी अुपयोगिता होते हुअे भी, यदि गावोमे अुनकी शाखायें न हो तो वे पगु जैसी रहेगी, और मध्यमवर्गके प्रश्न हल करनेमे असमर्थ रहेगी।

अब मैं शहरो और गावो दोनोमे शाखायें रखनेवाली अैसी सस्थाओके कार्यक्षेत्रके बारेमें अपने विचार बताअूगा।

२४ अैसी सस्थाकी प्रवृत्तियोके दो विभाग होगे सामान्य और विशिष्ट।

सामान्य प्रवृत्तियां

१ गृह-अुद्योग कताअी, पिंजाअी, सिलाअी, गुथाअी आदि।

२ गृहकर्म रसोअी-पानी, कलाअी, धुलाअी आदि।

३. गृह-मण्डन और स्वच्छता।

विशेष प्रवृत्तियां

१ बाल-सगोपन और कुमार-कुमारी छात्रालय।

२ बाल-मन्दिर और कुमार-मन्दिर।

३ स्त्रियो और बालकोका शुश्रूषालय।

४ गोपालन।

५, बुनाअी, छपाअी आदि अुद्योग।

६ सामाजिक सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तिया।

२५ सामान्य प्रवृत्तियोमे हर स्त्री प्रत्येक कार्यमें अपने हिस्से आनेवाला काम नियमित रूपसे करे। विशेष प्रवृत्तियोमें जिसे जिस प्रवृत्तिके लिअे तालीम देकर तैयार किया गया हो वह अुस प्रवृत्तिको सभाले।

२६ सामान्यत प्रत्येक स्त्री पर अेक-दो बालकोके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी रहे, और अिसके लिअे अुसे प्रोत्साहन दिया जाय।

सामाजिक सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियोमे भाग लेनेका अुत्साह रखनेवाली स्त्रियोमे सामान्य प्रवृत्तियोमे बताये गये गृहकार्योके लिअे तथा बाल-सगोपनके लिअे अरुचि होती है। मेरी दृष्टिसे यह वृत्ति पोषण करने लायक नही है।

साधारणत असी स्त्रियोके लिअे कायम की गअी विशेष सस्थाओमे भी बच्चेवाली विधवाओको शायद ही स्थान मिलता है। मेरी रायमे यदि २६ वें सूत्रमें बताया हुआ विचार ठीक हो तो

२७ बच्चेवाली विधवाको — यदि वह और तरहसे योग्य हो — जरूर सस्थामें रखना चाहिये। वह अधिक स्थिरतासे काममे लगी रहेगी और मातृभावका अच्छा या बुरा अुदाहरण पेश करेगी। दूसरी दृष्टिसे भी बालक-रहित विधवाकी अपेक्षा छोटे बालकोवाली निराधार विधवा अधिक दयापात्र है। अुसकी जातिमे पुनर्विवाह हो सके तो भी अैसी विधवाके लिअे वह द्वार खुला नही रहता, क्योकि बालकोको पाल-पोसकर बडे करनेकी जिम्मेदारी अुसके सिर होती है।

अब अूपर मैंने जो विशेप प्रवृत्तिया बताअी है, अुनका समर्थन करनेवाले कारण यहा दे दू।

बाल-संगोपन — मुझे लगता है कि स्त्रीमें रहे स्वाभाविक मातृभावके कारण बाल-सगोपन स्त्रीका विशेष कार्य है। जन्मसे ही अुसमें अिस कार्यके लिअे अुत्साह और अुमग होती है। यह कार्य अुसकी अनेक कोमल वृत्तियोका विकास करता है, अुससे स्वार्थत्याग कराता है और अुसे सन्तोप देता है। कोअी कहेगे कि यह ठीक है, परन्तु अपना बालक हो तो ही स्त्रीमें अैसा भाव पैदा होता है, दूसरेके बालकोंके लिअे स्त्रियोमे अैसा भाव नही पैदा हो सकता। मुझे लगता है कि यह कथन सही नही है। यदि सस्थाका यह नियम हो कि प्रत्येक स्त्रीको अेक या दो बालकोका संगोपन करना ही चाहिये, तो अपनेको सौंपे

गये बालकके प्रति अुसमे ममता पैदा होगी और बढेगी। मेरा यह कथन गलत भी हो सकता है, परन्तु मेरी यह मान्यता है कि बाल-सगोपनकी जिम्मेदारीके कारण सामान्यत स्त्रीको अिसमे अपने जीवनकी अुपयोगिता महसूस होगी और स्थिरतासे काम करनेकी आदत पडेगी। अैसे बालक मिल जायेगे, अिसमे शका नही है। अिस तरह छोटे बच्चोसे लेकर कुमारो और कुमारियोके छात्रालय स्त्रियो द्वारा चलवाये जा सकते है।

प्राथमिक तालीम — भारतकी प्राथमिक तालीमका विचार करते हुअे मुझे लगा है कि हमारे गरीब देशमे यह प्रश्न अेक ही ढगसे शीघ्र और कम खर्चमे हल हो सकता है। वह है मातामे प्राथमिक तालीम देनेकी शक्ति अुत्पन्न करना। लडको और लडकियोकी कुमार-मन्दिर तककी तालीमके लिअे सस्थाकी स्त्रियोको तैयार करना हो, तो भी सस्थाके आश्रयमे बाल-मन्दिर या कुमार-मन्दिर चलने चाहिये।

शुश्रूषालय — शुश्रूषाका कार्य बाल-सगोपन जैसा ही है। और अिसके लिअे भी स्त्री पुरुषसे अधिक योग्य है। परन्तु अिसके साथ मै यह भी मानता हू कि स्त्रियोके लिअे धन्धेके नाते नर्सका काम करना कुल मिलाकर अनुचित है और सेवा-शुश्रूषाके लिअे स्त्रियोका ही होना आवश्यक नही है। अिस कारणसे पुरुषोके अस्पतालोमे शुश्रूषा करनेवाले पुरुष हो यह ज्यादा वाछनीय है। अत अैसी सस्थाके साथ यदि स्त्रियो और बालकोका शुश्रूषालय हो तो वह अेक अुपयोगी विभाग होगा और अुससे स्त्रियोको अुचित तालीम भी मिलेगी। सस्थाकी स्त्रियोको नर्सके धन्धेके लिअे तैयार करना मै ठीक नही समझता, परन्तु अिस तरह तैयार हुअी स्त्रिया चाहे तो बाहर जाकर नर्सका धन्धा कर सकती है।

गोपालन — यह भी बाल-सगोपन जैसा ही काम है। मनुष्यका वात्सल्य अपने बालकमे दूसरे नम्बर पर अपने ढोरोके लिअे होना है। आम वर्गमे यह धन्धा स्त्रियोकी मेहनतसे ही चलता है, और जिसके लिअे आज काफी अवकाश है।

बुनाअी और छपाअीके अुद्योगके लिअे भी आज अवकाश है। ये धन्धे स्त्रिया अच्छी तरह कर सकती है और अुनसे अपना निर्वाह भी चला सकती हैं। ये धन्धे न तो कडी मेहनतके है और न बिलकुल बैठकके ही है।

सब कोअी यह आशा रखते है कि अैसी सस्थाओसे सार्वजनिक जीवनमे भाग लेनेवाली और जनसेवाके लिअे अपना जीवन अर्पण करनेवाली स्त्रिया निकले। समाजके कठिन और अधिक बलिदान चाहनेवाले कार्योमे अिन स्त्रियोका नेतृत्व होना चाहिये, और अिसके लिअे सस्थामे पूरी अनुकूलता और तालीमकी व्यवस्था होनी चाहिये।

अितना वनिता-विश्राम जैसी स्त्रियोकी विशेष प्रकारकी सस्थाओके लिअे। ये सस्थाये भले निराश्रित बनी हुअी स्त्रियोके लिअे खोली गअी हो, परन्तु वे केवल रोटी और रहनेका आश्रय देनेवाली संस्थायें नही होनी चाहिये। अुनमे रहनेवाली स्त्रियोमे अितनी शक्ति आनी चाहिये, जिससे अुन्हे अपने जीवनकी अुपयोगिता महसूस हो, समाज अुनकी अुपयोगिताको समझे और मौका आने पर सस्थासे स्वतत्र रहकर वे अपना जीवन-निर्वाह कर सके। अैसी शक्ति अुनमें पैदा हुअी है या नही, अिसकी अेक कसौटी यह मानी जायगी — किसी स्त्रीको सस्थामें तीव्र असन्तोष रहता हो, अथवा किसी विषयमें सैद्धान्तिक मतभेद मालूम होता हो, तो भी वह यदि अपनी सस्थाको छोडनेका साहस न कर सके तो यह कहनेमे कोअी हर्ज नही कि अुसमे अैसी शक्ति नही आअी है।

सचालकोको अैसी शक्ति अुत्पन्न करनेका सदा ध्यान रखना चाहिये। यह शक्ति केवल जीवन-निर्वाहके लिअे अुपयोगी कोअी धन्धा जाननेसे या सामान्य तालीम लेनेसे आती है अिस मान्यतामें भी थोडी भूल है; और अिन दो चीजोका कोअी महत्व ही नही है अिस मान्यतामे भी थोडी भूल है। सच पूछा जाय तो मनुष्यको स्वावलम्बी बनानेमे चरित्रकी दृढताका सबसे बडा हाथ है। फिर भी निर्वाहके लिअे

अुपयोगी धन्धेका ज्ञान तथा सामान्य तालीम अिसमे काफी सहायक होते है। चरित्रकी दृढताके अभावमे धन्धेका शिक्षण और सामान्य तालीम भी आत्म-विश्वास अुत्पन्न करनेमे समर्थ होते है, अैसा विश्वास-पूर्वक नही कहा जा सकता।

यहा चरित्रका अर्थ केवल शुद्ध, अकलकित जीवन या शील नही है। मनुष्यमे आत्म-विश्वास अुत्पन्न करनेमे चरित्रके अनेक अग कारणभूत होते है। अिस विश्वासके कारण अुसे अिस वातका वहुत भय नही लगता कि मेरा क्या होगा। अुसे अैसा विश्वास रहता हे कि मै अपनी समस्याये स्वयं हल कर लूगा अथवा अीश्वर मुझे अवश्य सभालेगा। चरित्रके ये अग है शुद्ध शील, अीश्वर-श्रद्धा, अुत्साह, (वीर्य), लगन, परिश्रमी स्वभाव, साहसी स्वभाव, सन्तोपी स्वभाव, सहनशीलता, हिलमिल कर रहनेकी कुशलता, परोपकार, निडरता आदि। अिनमे मे अेकाध अगका भी अतिशय विकास हुआ हो तो मनुष्यको पेटकी चिन्ता कम होती है। परन्तु किसी अगकी अतिशयता न हो, दो-तीन अगोका ही अच्छा विकास हो गया हो, तो भी अुसे जीवनमे निष्फल होनेका अवसर नही आता। अिसके साथ यदि किसी धन्धेका शिक्षण और किसी विषयमे प्रवीणता हो, तो अुसे लगभग पूर्ण आत्म-विश्वास रहता है। परन्तु केवल धन्धेकी या विद्याकी तालीमसे आत्म-विश्वास नही आता। अिसलिअे मनुष्यके स्वभावमें अैसे अेक-दो गुणोका विकास वहुत महत्त्वपूर्ण है।

२८ प्रत्येक मनुष्यमे चरित्रके आत्म-विश्वास पैदा करनेवाले अगोमे से अेक-दो गुणोका वीज तो होता ही है। अिन वीजको खोज कर अुसका पोषण करना तालीमका काम है।

सस्थाये चलानेमे और खास करके स्त्रियोकी सस्थाये चलानेमे वडीसे वडी कठिनाअी आपसके झगडोके कारण पैदा होती है। स्त्री-जातिके विषयमे अनादर होनेके कारण नही, परन्तु अेक दु:खद सत्यके रूपमें ही मै कहता हू कि भारतकी स्त्रियोमे स्वजाति-द्वेषत्व अधिक है। दूसरे देशोके विषयमे मुझे ज्ञान नही है, अिसलिअे यहा मै व्यापक भाषाका अुपयोग नही करता। अिसका अर्थ अितना ही

है कि स्त्रियोके जीवनका निर्माण अिस प्रकार नही हुआ कि अुनका आपसमे मेल बैठ सके। पुरुषको ही आश्रयदाता मानकर, दासी जैसा जीवन हो तो भी, अुसीके साथ मेल रखने और अुसी पर विश्वास रखनेकी अुसे आदत पडी हुअी है।

अिसका अेक परिणाम यह भी आता है कि काम करनेकी अुमग और अुत्साह रखनेवाली स्त्रिया जितना पुरुषोका सहयोग खोजती है और जितना अुत्साह अुनसे प्राप्त करती मालूम होती है, अुतना सहयोग या अुत्साह अुन्हे अपने साथ काम करनेवाली स्त्रियोसे नही प्राप्त होता।

यह सदियोकी परतत्र दशाका परिणाम है और मै मानता हू कि धीरे-धीरे स्त्रियोके स्वभावमे से यह चीज निकल जायगी। परन्तु यदि स्त्रिया अिस ओर ध्यान दे तो वे अिस स्थितिमे से अधिक तेजीसे बाहर निकल सकती है।

अिसके लिअे स्त्री-कार्यकर्ताओको मै कुछ स्थूल नियम बता देता हू। यह न माना जाय कि अिनसे सदा ही सफलता मिलेगी, परन्तु कलह या ओर्ष्याके कुछ कारण कम हो सकते है।

(क) यदि आप स्त्री-कार्यकर्ता हो और आपको अपने कार्यके सबधमे किसी पुरुष-कार्यकर्ताके साथ सहयोग, सलाह-मशविरा वगैरा करना पडे, तो आप अैसा व्यवहार न करे मानो आप अुस पुरुषसे ही परिचित है, परन्तु यथासभव प्रयत्न करके अुसकी पत्नीसे भी मिले और अुसके जरिये पुरुषकी सहायता प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। यदि वह स्त्री केवल असस्कारी और शकाशील हो तो अुसे सस्कारी बनाना और अुसका विश्वास सम्पादन करना आपका अेक काम है यदि वह अैसी न हो तो आपको अुसका थोडा सहयोग मिलेगा और आपका विरोध तो वह हरगिज नही करेगी। परन्तु यदि अुसकी अवगणना करके आप पुरुषसे मिलेगी तो आप स्वजाति-शत्रुत्वको बढायेंगी।

(ख) पुरुष-कार्यकर्ताओमे यशकी, महत्ताकी या अैसी दूसरी अभिलाषाये नही होती, केवल स्त्रियोमें ही होती है, अैसा मानकर

आपके साथ या आपके जैसा काम करनेवाली दूसरी स्त्रियोके लिअे मनमे अनादरका भाव न रखे। मनुष्यमात्रमे कुछ गुण और कुछ दोष होते ही है। किसी पुरुष या स्त्रीके हाथो कोअी अुपयोगी काम होता हो और अुसके साथ अुसकी यशकी अभिलाषा भी पूरी होती हो, तो अुसमे आपका क्या बिगडता है? अेककी प्रशसाका अर्थ दूसरेकी निन्दा अथवा अनादर मानकर व्यर्थ ही अीर्ष्या करनेसे कोअी लाभ नही होता। दुनियामें यशकी मात्रा अितनी अधिक है कि अेकको यश प्राप्त होनेसे दूसरेको यशसे वचित रहना पडेगा, अैसा भय रखनेकी आवश्यकता नही। जिस प्रकार कोअी स्त्री अपनी पुत्री या छोटी बहनके आगे बढने, होशियार बनने या यश प्राप्त करनेके कारण अुससे अीर्ष्या नही करती बल्कि खुश होती है, अुसी प्रकार दूसरी स्त्रियोकी अैसी स्थिति देखकर आप खुश हो। अुसकी होशियारी झूठी ही है, अुसे मिलनेवाला यश सर्वथा अनुचित ही है, अैसा ख़याल न रखे। कभी-कभी अैसा भी हो सकता है, परन्तु यदि वह बिलकुल खोटा सिक्का होगी तो लम्बे समय तक टिक नही सकेगी, अैसा समझकर अुससे अीर्ष्या न करे, और न अुसकी प्रतिष्ठा कम हो जाने पर प्रसन्न हो।

(ग) अेक सस्थामें काम करनेवाली या रहनेवाली स्त्रियोके बीच आध्यात्मिक दृष्टिसे सगी बहनो जैसा सम्बन्ध बढानेका प्रयत्न करे। अैसे भ्रातृ-भाव या भगिनी-भावके बिना कोअी सस्था अूची नही अुठ सकती।

अब शालाओ द्वारा दी जाती स्त्रियोकी तालीमसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातोकी चर्चा करे।

श्रीमती शारदाबहनका यह कथन पूरी तरह सही है कि "आजकी गैर-जिम्मेदार तालीम स्त्रियोके लिअे बिलकुल ठीक नही है, अिसलिअे अुनकी तालीमका कोअी नया मार्ग खोजना चाहिये।" सच पूछा जाय तो पुरुषोके लिअे भी वह अुतनी ही अनुचित है, परन्तु यह विषय आज अप्रासगिक है।

सुतारका अपढ लडका बचपनमे ही यह जानता है कि अुसे अपने जीवनमे क्या करना है। और यह जाननेके कारण अुद्देश्य-

पूर्वक लकडीके टुकडो और पिताके औजारोके साथ ही वह खेलता है। परन्तु अुसका पढा-लिखा लडका जैसे-जैसे अधिक पढता जाता है, वैसे-वैसे अुसकी यह सूझ कम होती जाती है कि अुसे जीवनमें क्या करना है। और शालामे अुसे जो-जो विषय पढाये जाते हैं, अुनके प्रयोजनके विषयमे वह अधिकाधिक अनजान बनता जाता है। बहुत कम लडके या लडकिया यह जानती हैं कि वे अमुक विषय (परीक्षाके सिवाय) किस प्रयोजनसे सीखती हैं और अुन विषयोको जानकर वे क्या करेगी। अिसीका नाम है गैर-जिम्मेदार तालीम।

परन्तु अिस गैर-जिम्मेदारीका कारण शालाये ही हैं। सामान्य शिक्षणकी शालाये — आर्ट्स कालेज तक की — गैरजिम्मेदारीकी भावनाका पोषण कर सकें और लगभग २०—२१ वर्षकी अुम्र तक विद्यार्थियोको अैसी शालाओमे ही रहना पडे, तो वे विद्यार्थियोंमें जीवनके बडे भागमे गैर-जिम्मेदार बने रहनेकी ही आदत डालेगी। अैसी शालाये आम जनता और गरीब मध्यमवर्गके लिअे अत्यन्त विघातक हैं।

गाधीजीको यह अुलाहना दिया जाता था कि वे सत्याग्रहाश्रम तथा गूजरात विद्यापीठकी राष्ट्रीय शालाओमे वस्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले धन्धोको छोडकर दूसरे कोअी धन्धे सिखानेकी व्यवस्था नही करते। शिक्षाशास्त्री कहते थे कि विद्यार्थियोको बुनकर बनाना है या चित्रकार, अिसका निर्णय आप न करे। आप तो अुनके सामने सारे साधन रख दे और अुन्हे पसद कर लेने दे। गाधीजी कहते थे, सारे धन्धोकी शिक्षा देना मुझे महगा पड जायगा। मेरे यहा अभी ५० लडके आते है, परन्तु मेरी दृष्टि तो देशके करोडो लडके-लडकियो पर है। अुनमे से अेक बिजलीका अिजीनियर, दूसरा यत्रोका अिजीनियर, तीसरा निर्माण-कलाका अिजीनियर, चौथा रसायनशास्त्री, पाचवा डॉक्टर, छठा गायक, सातवा चित्रकार और आठवा अभिनेता बनना चाहे, तो अिन सबके लिअे अलग-अलग साधन अेकत्र करते करते मैं थक जाअूगा। अिसलिअे मैंने अैसा धन्धा चुन लिया है, जो अधिकसे अधिक विद्यार्थियोको सिखाया जा सके। और मैं विद्यार्थियोके

माता-पिता तथा विद्यार्थियोसे कहता हू कि जिन्हे वस्त्रसे सम्वन्ध रखने-वाली किसी भी विद्यामे प्रवीणता प्राप्त करते हुअे दूसरा सामान्य शिक्षण लेना हो वे ही मेरी शालामें आयें।

अिस वारेमें गाधीजीका अितना दृढ आग्रह है कि जव आश्रमके कुछ विद्यार्थी विज्ञानकी पुस्तके देखकर अपने प्रयत्नसे विजलीके साधन जुटाने और टेलीफोन वगैरा खडा करने लगे तो गाधीजीने अुन्हे रोक दिया। अुस समय मुझे यह अच्छा नही लगा था। मैंने कहा था, हम तो यह विषय सिखाते नही, परन्तु यदि विद्यार्थी अपने-आप सीखते है तो हम अुन्हे क्यो रोकें? गाधीजीने कहा, आप समझते नही, अिससे तो आश्रमका खात्मा हो जायगा। आश्रममें रहकर अिन विद्यार्थियोको यदि मै विजलीके साधन अिकट्ठे करने दू, तो दूसरोको दूसरे प्रकारके साधन क्यो न अिकट्ठे करने दू? मुझे अिनके कामसे कोअी द्वेष नही है, परन्तु वह आश्रममे शोभा नही देता। आश्रममे तो मै यही चाहूगा कि अिनकी यत्रशास्त्रकी वुद्धिका अुपयोग वस्त्रविद्याके सम्वन्धमे ही हो। परन्तु वे अिससे विलकुल भिन्न विषय पसन्द करते हो, तो भले वे वाहर जाकर अन्यत्र अपनी शक्तिका विकास करे। वहा जायगे तो भी मै अुन्हे आशीर्वाद ही दूगा और कुछ कर दिखायेंगे तव अुनकी प्रशसा भी करूगा। परन्तु आश्रम तो केवल वस्त्रके पुनरुद्धारके लिअे ही है, अत अुसके साथ सम्वन्ध न रखने-वाले कार्यके लिअे यहा स्थान नही हो सकता। गाधीजीकी यह वात मेरी समझमें आ गयी है।

२९ मै मानता हू कि धन्धेकी शिक्षाका आरभ वचपनमे ही होना चाहिये, और प्रत्येक कुमार-मन्दिर या कुमारी-मन्दिरको अेक-दो धन्धे ही सिखानेकी जिम्मेदारी लेकर अुन्हे सीखनेकी अिच्छा रखनेवालोंको ही पढनेके लिअे वुलाना चाहिये, जिससे वालक छोटी अुम्रसे ही समझने लगे कि हमें यह धन्धा करना है। अुन धन्धोके साथ दूसरी तालीम भी होनी चाहिये और अैसे अन्य विषयोमें अुन धन्धोंके पोषक तत्त्व काफी मात्रामें होने चाहिये।

अिसी तरह मध्यमवर्गकी लडकियोकी शालाये भी अिस बातको दृष्टिमे रखकर कि अुस वर्गकी ८० या ९० प्रतिशत लडकियोको आगे कैसा जीवन बिताना पडेगा, तालीमके प्रत्येक विषयका विचार करे तथा अुनके लिअे अुपयोगी व्यावहारिक शिक्षणका ही प्रबध करे, तो अुन पर गैर-जिम्मेदारीका आक्षेप न रहे।

अिस दृष्टिसे विचार करने पर कहा जा सकता है कि ८०—९० प्रतिशत लडकिया बडी होकर विवाह करेगी और मातायें बनेंगी। रसोअी बनाना, कातना, पीजना, सीना, घरका हिसाब रखना, छोटे बच्चोको थोडा-बहुत पढाना और अच्छी आदते डालना, अुन्हे धर्म और भक्तिके सस्कार देना, घरको साफ-सुथरा, सुघड और व्यवस्थित रखना, बीमारोकी सेवा-शुश्रूषा करना, प्रसूति करना और कराना आदि काम तो वे करेगी ही। अिसके अलावा, हम यह आशा रखेंगे कि वे समाजोपयोगी कोअी अैसा काम भी सीखेगी, जो अुनकी आर्थिक स्थिति ठीक हो और वे पारिश्रमिक लिये बिना करे तो भी समाजके कामका हो और थोडा पारिश्रामिक लेकर करें तो भी कामका हो, जो अुनके घरमे भी अुपयोगी हो और शायद अुनके पतिके धन्धेमे भी अुपयोगी हो। अैसे विषयोमे सामान्यत नीचेके विषय अुपयोगी माने जा सकते है शुद्ध भाषाज्ञान, सुन्दर हस्ताक्षर, बीमारोकी सेवा-शुश्रूषा और प्राथमिक तथा घरेलू अुपचार, घरमे किये जा सकनेवाले व्यायाम और प्राथमिक तालीम देनेकी योग्यता। अिसमे थोडा प्राथमिक, गरीबोको पुसानेवाला और बिना खर्चके परिवारको आनन्द दे सके अैसा कलाज्ञान तथा दृष्टिको विशाल बनाये और अवलोकन शक्तिको बढाये अिस ढगसे दिया जानेवाला भूगोल, अितिहास और विज्ञानका शिक्षण जोड दें, तो कहा जायगा कि मध्यमवर्गकी सामान्य तालीम पूरी हो गअी। अितनेसे मध्यम वर्गकी अधिकतर बालाओकी तालीम भी पूरी हुअी कही जायगी।

यदि अिस दृष्टिसे और अिस ढगसे भलीभाति शिक्षा दी जाय, तो कदम-कदम पर मालूम पडेगा कि लड़की शालामें जो कुछ सीखकर

आती है वह घरके लिअे अुपयोगी है, और घरमें माता-पिताको अिस बातका भी पता चल जायगा कि लडकी पर शालाका क्या प्रभाव पड रहा है। आज तो शालामे पढनेवाली लडकी घरमें बोझ बन जाती है, और घरमें यदि माता-पिताका हृदय न हो तो दूसरे पालक यह बोझ अुठानेके लिअे शायद ही तैयार होते है।

अिसके पश्चात् अुच्च तालीम प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाली लडकियोके लिअे मेरे विचारसे तालीमका वही स्वरूप होना चाहिये, जो मैंने अूपर वनिता-विश्राम जैसी सस्थाओके लिअे पेश किया है। जिन्हे डॉक्टरी, वकालत, साहित्य, विज्ञान आदि विषयोमे ही पारगत होना है, वे लड़कोके लिअे चलनेवाले महाविद्यालयोमें पढें तो अुसमें मुझे कोअी दोष नही मालूम होता। अैसी तालीम लेनेवाली स्त्रिया कुछ प्रतिशत ही होगी, अत अुनसे समाजको कोअी नुकसान नही होगा। परन्तु दूसरोका अनुकरण करके अथवा अैसी तालीम मूल्यवान या आदरकी पात्र है अैसा सोचकर लडकिया या अुनके माता-पिता अुसके प्रति अधिक मोह रखें, तो मुझे लगता है कि अिसमे तालीम-सबधी विचारोकी मूल बुनियादमें ही दोष है। देशकी वर्तमान पराधीन स्थितिमें सार्वजनिक तत्रोको अैसी सस्थायें स्थापित करनेमें अपनी शक्ति और धन नही खर्च करना चाहिये, जो कुछ व्यक्तियोके लिअे ही अुपयोगी सिद्ध हो। जनताके राज्यमे अैसी सस्थाओकी स्थापना खानगी साहससे होगी और राज्यतत्र अुन्हे थोडी-बहुत आर्थिक सहायता देगा। परन्तु अूपर बताअी गअी ८०–९० प्रतिशत स्त्रियोके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली सस्थाअें राज्यके खर्चमे चलेंगी।

परन्तु अब शालाओकी अपेक्षा छात्रालय तालीम देनेवालोकी अधिक चिन्ताका विषय बनते जा रहे हैं। यह शुभचिह्न है। थोडेसे विषयोकी परीक्षाके लिअे विद्यार्थियोको तैयार करना तालीमका कम महत्त्वपूर्ण अग है। अुसका अधिक महत्त्वपूर्ण अग तो विद्यार्थियोका चरित्र-निर्माण है, अिसकी शिक्षकोको अधिकाधिक प्रतीति होती जा रही है। अिस कारणसे विद्यार्थियोको रात-दिन अपनी निगाहमे और सहवासमें रखनेकी अिच्छा बढती जा रही है।

अिसके अलावा छात्रालय-सबधी कल्पना भी बदलती जाती है। छात्रालयका अर्थ विद्यार्थियोंके रहने-खानेकी 'सराय'—होटल—नही, परन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण शाला और व्यवस्थित घर है।

अिस विषयमे मेरा यह मत है.

३० अच्छेसे अच्छा छात्रालय भी सुसस्कारी माता-पिताके घरसे अधिक पसद करने लायक नही माना जा सकता; सामान्य सस्कारी माता-पिताके घर और अच्छे छात्रालयके बीच भी अधिक पसद करने लायक माता-पिताका घर ही माना जायगा, परन्तु अच्छे छात्रालयकी निन्दा नही की जा सकती। परन्तु जहा माता-पिता सुसस्कार डालनेकी शक्ति, साहस या अुत्साह न रखते हो, वहा अच्छा छात्रालय घरकी अपेक्षा अधिक अच्छा निवासस्थान है।

३१. अैसे छात्रालयोकी आज बडी आवश्यकता है। परन्तु साथ ही वे अितने सस्ते होने चाहिये कि मध्यमवर्गके गरीब लोग अुनमे अपने बालकोको रख सकें।

छात्रालयमें घरसे अधिक सुविधाये भोगनेकी, कुटुम्बी जनो पर प्रेम कम हो जानेकी, खर्चीला जीवन बितानेकी और माता-पिताको छात्रालयका खर्च अुठानेमे कितनी मुसीबतें झेलनी पडती है अिसकी चिन्ता न करनेकी आदत बढती है। यदि छात्रालयका थोडा खर्च सस्था अुठाती है, तो अुससे दानका अन्न खानेके लिअे मध्यमवर्गमे जो शर्म पाअी जाती थी वह नही रहती, साथ ही बिना मागे जो सुविधाये मिलती है, अुन सुविधाओमे मिली हुअी तालीम पूरी तरह सफल नही होती। बिना मागे मिले हुअे दानके लिअे मनमें कृतज्ञता पैदा नही होती, बल्कि यह वृत्ति रहती है कि हमारा भाग्य हमें देता है। अिससे तालीम प्राप्त करनेकी लगन और अुत्साह भी कम रहते हैं। अिसलिअे

३२ छात्रालय यथासभव गरीबीके स्तर पर चलने चाहिये। गरीब परिवारोमें बालकोको बचपनमें जैसा परिश्रमी जीवन बिताना पडता है, वैसा जीवन बिताना छात्रालयमें सारे विद्यार्थियोके लिअे

अनिवार्य होना चाहिये। छात्रालयका अितना खर्च भी जो न दे सके, अुनसे थोड़ा अधिक परिश्रम कराकर मेहनताना देनेकी पद्धति रखी जा सकती है। यह मेहनताना देनेमे थोडी अुदारता भी दिखाअी जा सकती है, परन्तु जहा तक वने छात्रालयका नित्य खर्च चन्दो और दानोसे नही चलना चाहिये।

३३ जिस विद्यार्थीका पोषण माता-पिता करते हो, अुसे निजी पैसा कमानेके लिअे छात्रालयमें काम नही मिलना चाहिये।

मैं जानता हू कि ये दोनो वाते स्वीकार करना सचालकोको कठिन मालूम होगा। परन्तु सस्थाओके विषयमे अपने अनुभव परसे मुझे अैसा लगता है कि कभी न कभी छात्रालयोको अैसे निर्णय पर आना ही पडेगा। अैसे नियमोसे रहित तालीम खर्चके अनुपातमें कम फलदायी होगी। विद्यार्थीको अैसा लगना चाहिये कि तालीम आसानीसे मिल सकनेवाली चीज नही है। अुसे प्राप्त करनेके लिअे कीमत चुकानी ही चाहिये। यह कीमत परिश्रमके रूपमे ही चुकानी चाहिये।

अूपरके विचारोके परिणाम-स्वरूप ही यह कहा जा सकता है कि

३४ छात्रालयोमें नौकर न होने चाहिये।

मेरा वहुत वडे भोजनालयमें विश्वास नही है। वहुत वडे भोजनालयमे स्वच्छता कम रहती है, लापरवाही और विगाड अधिक होता है, कामका वोझ आवश्यकतासे अधिक रहता है और अुस कारणसे असन्तोष भी अधिक रहता है। भोजनालयकी अुचित मर्यादा सामान्यत १०–१२ विद्यार्थियो तक ही रहनी चाहिये। अिसका अर्थ यह नही कि किसी मौके पर सारे भोजनालय अेक नही हो सकते। १०–१२ आदमियोका भोजनालय हो तो मिट्टीके तेलके डिब्बेमें थोडा पानी भरकर अेक पर अेक रखी जा सकें अैसी दो-तीन पतीलिया जमाकर आसानीसे सवके लिअे दाल-भात-साग पकाया जा सकता है; और ये चीजे पक रही हो अुस वीच दूसरी तरफ चपातिया, भाखरिया आदि वनाअी जा सकती है। अथवा अैसा कूकर चढाकर

विद्यार्थी दूसरे काम कर सकते है और घटेभर बाद कूकरको संभाल सकते है।

परन्तु यह मेरी केवल राय ही है। अिसे सिद्धान्तका महत्त्व देना आवश्यक नही है।

अिस प्रकार तालीमका अर्थ है जीवनका निर्माण — अिस तात्त्विक व्याख्यासे आरम्भ करके मै कूकर पर रसोअी बनानेकी पद्धति तक आ पहुचा। अधिक ब्योरेमें न जानेसे शोभा रहेगी, अैसा सोचकर यह निबन्ध मै पूरा करता हू।

आशा है स्त्रियोकी तालीमके कार्यमें जीवन बितानेवाले भाअी-बहनोको अिससे विचार करनेमे थोडी सहायता मिलेगी और अुनकी चर्चासे मुझे भी लाभ होगा।

स्त्री-जाति अपने बल और अपने कार्यक्षेत्रकी दिशा अच्छी तरह समझे, पुरुषोका तथा अुनके कार्योका अनुकरण करनेका ही आदर्श अपने समक्ष न रखे, अपनेको पुरुषोकी आश्रित और अधीन न माने, पुरुषोको गलत ढगसे रिझानेका भी प्रयत्न न करे और फिर भी स्त्री-पुरुष दोनोसे बना हुआ ससार अेक-दूसरेके मेलसे रचा जाय — अैसी स्थितिकी कामना करता हुआ मै अपना निबन्ध समाप्त करता हू।

८

अंक सिखानेके बारेमें सूचना

हमारे यहा ११ से १०० तक के अक 'अेक पर अेक ग्यारह, अेक पर दो बारह, दो पर सुन बीस' वगैरा बोलनेकी आदत है। यह आदत गलत है। यह आदत 'ग्यारह, बारह   ' लिखनेकी यात्रिक पद्धति सूचित करती है, परन्तु यह नही बताती कि वह सख्या क्या है। अिसके बजाय बालकको अैसा बोलकर लिखना सिखाना चाहिये —'दस और अेक ग्यारह, दस और दो बारह, दस और तीन तेरह,   दस और दस बीस, बीस और अेक अिक्कीस, बीस और दस तीस' वगैरा। ये अक लिखनेकी रीति भी नीचे लिखे अनुसार तख्ते पर या अकपोथीमें बतायी जानी चाहिये

१० + १ = ११	२० + १ = २१
१० + २ = १२	२० + २ = २२
१० + ३ = १३	२० + ३ = २३
१० + १० = २०	२० + १० = ३०

अिस तरह बोलने और देखनेसे बालकको अिस बातका खयाल जल्दी आने लगता है कि बाओं ओरकी सख्या दहाओकी है।

गुणाकारके पहाडोमें नीचे बताये अनुसार तख्ते या पट्टी पर लिखकर बालकको आरभमें पहाडे बनानेकी रीतिका खयाल कराना चाहिये। अुदाहरणके लिअे छहका पहाडा

। । । । । ।	१	६
। । । । । ।	२	१२
। । । । । ।	३	१८

अिस रीतिसे बालक गिनकर पहाडा तैयार कर सकता है। अिसलिअे अुसे यह मालूम पडता है कि बार-बार किये जानेवाले जोड

ही पहाडेमे याद रखने होते है, और गुणाकारका अर्थ अुसकी समझमें आता है। अिसके अलावा, अेक पहाडा मुहसे याद हो जानेके बाद दूसरा पहाडा शिक्षक लिख दे अिसके बजाय बालक खुद ही बना सकता है।

ये विचार बालकोको अंक और पहाडे सिखानेके प्रयत्नमे से ही मुझे सूझे है और मैंने अिनका अनुभव भी किया है। आशा है ये अुपयोगी सिद्ध होगे। *

---

* मुझे यह भी लगता है कि अुन्नीस, अुनतीस, अुनचालीस आदि शब्दोको हम बदल दें तो ठीक होगा। अिनके लिअे क्रमश नीचेके शब्दोका अुपयोग होना चाहिये :

	गुजराती	हिन्दी	मराठी
१९	नवार	नौरह	नौरा
२९	नव्वीस	नौअीस	नव्वीस
३९	नवत्रीस	नौतीस	नौतीस
४९	नवताळीस	नौतालीस	नवेचाळीस
५९	नवावन	नौवन	नवावन
६९	नवसठ	नौसठ	नौसठ
७९	नवतेर	नवत्तर	नव्हत्तर
८९	नेव्याशी	नवस्सी	नव्वायशी
९९	नव्वाणुं	निन्यानवे	नव्याणु

शिक्षाका विकास

[साबरमतीसे सेवाग्राम]

लेखक

कि० घ० मशरूवाला

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

प्रस्तावना

'शिक्षामे विवेक' की तरह अिस पुस्तकमें भी अधिकतर मेरे पुराने लेखोका ही सग्रह है। कॉलेजके दिनोसे ही प्राथमिक शिक्षाके प्रश्नने मेरे हृदयमे स्थान वना लिया था। जव मै अिंटर या जूनियर वी० अे० में था तव अिस विषय पर मैने अेक निवंध पढा था, और अुसमे भी मुझे याद है कि मैने औद्योगिक शिक्षा, हिन्दी, ग्रामजीवन-सुधार वगैराके वारेमे कुछ योजना पेश की थी। वह निवध तो मेरी अुस समयकी वुद्धिके अनुसार ही लिखा गया होगा। परन्तु शिक्षाके क्षेत्रमें जीवनका अुपयोग करनेकी अभिलाषा अुस समयसे ही मनमे पोपित होती रही थी।

सत्याग्रहाश्रमकी राष्ट्रीय शालामे शरीक हुआ, तव अुस अभिलाषाको मूर्तरूप मिला। राष्ट्रीय शालासे गूजरात विद्यापीठमे काम करनेका अवसर आया, तव विद्यापीठकी पाठशालाओंके अुस समयके निरीक्षक श्री कालिदास वसनजी दवेने 'नवजीवन' की पूर्तिके रूपमें 'विद्यापीठ शिक्षा-अक' के नामसे मासिक जारी किया। अुसमे मै कभी कभी अपने विचार पेश करने लगा। अुसके वाद अथवा साथ साथ 'नवजीवन' तथा दूसरे भी कुछ पत्रोमे या प्रसगो पर मै अपने ये विचार प्रकट करता रहा। अुनमे से कुछका सग्रह 'तालीमकी वुनियादें'* मे हुआ। वह सग्रह अेक विशेप दृष्टिसे किया गया था। अिसलिअे अुसमें मेरे सभी लेख नही लिये गये थे।

अिसके वाद कुछ वर्ष वीत गये। १९३० के वादके आन्दोलनके पश्चात् शिक्षाके क्षेत्रमे मेरा प्रत्यक्ष भाग लेना वद हो गया। १९३४ में तो मै वर्धा आ गया। वर्धाने मुझे गाधी-सेवा-सघके क्षेत्रमे धकेल दिया। परन्तु अिसी वीच गाधीजीकी 'वुनियादी शिक्षा' की विचारसरणी आरभ हो गअी। अुसकी पहली परिषद्मे मै अुपस्थित तो नहीं रह सका, परन्तु जाकिरहुसेन कमेटीमे अपना नाम रखा हुआ देखा।

---

* यह पुस्तक हिन्दीमें सुविधानुसार जल्दी ही प्रकाशित होगी।

अिस प्रकार मेरे लिअे फिर शिक्षाके विषयका ध्यान करनेके अवसर आये; और कभी-कभी लिखने या बोलनेके प्रसंग भी अुपस्थित हुअे। ये लेख अधिकतर 'हरिजनबन्धु', हिन्दी 'सर्वोदय' या गुजराती मासिक 'शिक्षण अने साहित्य' मे और कभी-कभी दूसरे पत्रोमे भी प्रकाशित होते थे। १९४२ के आन्दोलनसे पहले 'रचनात्मक कार्यक्रम' पर अिन दोनो मासिकोमे मैने अेक लेखमाला आरंभ की थी। अुसमें शिक्षाके विषय पर प्रकरण लिखे जा रहे थे कि अितनेमे आन्दोलन शुरू हो गया और जेल चला जाना पडा। जेलसे छूटनेके बाद लेख-माला जारी रखनेकी सूचनायें मिली, मेरी अिच्छा भी थी, परन्तु अुस विषयका ध्यान खडित हो गया और परिस्थिति भी बदल गअी, अिसलिअे वह काम रह गया सो रह ही गया।

अिन सब लेखोका सग्रह अव्यवस्थित रूपमे सुरक्षित पडा था। यह सभव नही था कि मै स्वय अुन सबको व्यवस्थित करके छापू और प्रकाशित करू। अिसलिअे मैने सारी सामग्री श्री रमणीकलालभाअी मोदीको सौप दी। अुन्होने परिश्रम अुठाकर अुन सबको व्यवस्थित किया। लेखोको क्रमश: जमाया, अुनके भाग किये। जो अब बेकार हो गये मालूम हुअे, अुन्हे मुझे बताकर रद्द किया। सुधारने जैसे लगे अुन्हे मुझसे सुधरवा लिया, अधूरे लगे अुन्हे पूरा करा लिया। और फिरसे व्यवस्थित रूपमे जमाकर मेरे देखनेके लिअे भेज दिये।

अैसा प्रतीत हुआ कि अुनके 'शिक्षामे विवेक' और 'शिक्षाका विकास' जैसे दो स्वतत्र भाग हो सकते है। अिसलिअे तदनुसार व्यवस्था कर दी। अिस प्रकार श्री रमणीकलालभाअी मोदीके परिश्रमसे ही मेरे तमाम पुराने लेखोका सशोधन और सपादन हो रहा है।

लेखोकी जाच करते-करते ही मैने देख लिया कि वर्धा-योजनाका बीज साबरमतीमें ही बोया जा चुका था। 'तालीमकी बुनियादे' पुस्तककी प्रस्तावनामे भी अिसका अुल्लेख तो है ही। परन्तु जैसा कि श्री नर-हरिभाअी परीखने लिखा है, अुद्योग और 'साक्षरी' (पुस्तकीय) शिक्षाके

बीच तथा शिक्षाके विषयो और प्रत्यक्ष जीवनके बीचके मेलका विचार पूरी तरह विकसित नही हुआ था, अच्छी तरह सूझा भी नही था। वह धीरे-धीरे किस तरह सूझता गया और विकसित होता गया, यह अनायास अिस पुस्तकमे दिये गये लेखोको दुबारा पढने पर मेरे ध्यानमें आया। अिसलिअे अिस सग्रहको 'शिक्षाका विकास' नाम दिया गया है।

शिक्षाके कार्य और विचारोके आदान-प्रदानमें श्री नरहरिभाअी परीखका और मेरा साथ सबसे अधिक रहा है। वैसे तो काकासाहब और विनोबा भी अुतने ही पुराने साथी है। परन्तु कोचरब (अहमदाबाद) की राष्ट्रीय पाठशालामे शरीक हुआ, तबसे श्री नरहरिभाअीके और मेरे बीच अिस विषयमें जितनी चर्चाअे हुअी अुतनी शायद औरोंके साथ नही हुअी। साबरमती आश्रममे चोरोंके अुपद्रवके कारण आश्रमवासियोको कअी बार जोडी बनाकर पहरा देना पडता था। अुसमे घटे दो घटेका समय हमारे हिस्सेमें आता था। भरसक हम दोनो अेक ही जोडीमे रहनेकी व्यवस्था करते थे। हमारा रातका चारो ओर फैली हुअी शान्तिका यह समय शिक्षा और अर्थशास्त्रके विविध सिद्धान्तो और समस्याओ आदिका सहचिन्तन करनेमें जाता था। मेरी और अुनकी विचारसरणी क्वचित् ही भिन्न पडती होगी। सन् १९४७ मे अेक दो मास मैं अुनके यहा साबरमतीमें रहा था। अुस समय अिस सग्रहके कुछ लेखोकी फाअिल मैंने अुन्हे पढनेको दी थी। अुस समय वे गुजरात बेसिक अेज्युकेशन बोर्डके अध्यक्ष थे। अुसी समय हमारे ध्यानमे आया कि यह सग्रह प्रकाशित हो तो 'नअी तालीम' के शिक्षकोंके लिअे अुपयोगी होनेकी दृष्टिसे अुसमें पूर्तिरूप कुछ लिखनेकी जरूरत होगी। मुझसे यह काम हो नही सकता था। अत. मैंने अुस समय अुनसे अनुरोध किया था कि यह काम अुन्हीको करना पडेगा। और अुन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार किया था। बादमें वे अितने बीमार हो गये कि यह अिच्छा पूरी होनेकी आशा ही नही रही। परन्तु औीश्वरेच्छासे यह सग्रह

छपनेमे विलब हुआ। अिस बीच श्री नरहरिभाअीका स्वास्थ्य काम करने लायक सुधर गया और किया हुआ सकल्प पूरा हुआ।

अिस प्रकार अिस पुस्तकको श्री नरहरिभाअीकी पूर्ति प्राप्त हुअी। परन्तु अुसे पूर्तिके रूपमे देनेकी अपेक्षा भूमिकाके रूपमे देना अधिक अुपयुक्त होगा; वह पाठकको बादके लेखोके लिअे तैयार करती है। अिसलिअे मैंने अुसे भूमिकाके रूपमें छापनेका निश्चय किया है।

अिस भूमिकाका पहला प्रकरण 'नअी तालीम' के मुद्दो, अुसकी कठिनाअियो और अुपायोकी चर्चा करता है। तथा दूसरे प्रकरणके विषयमे थोड़ा स्पष्टीकरण अुन्होने किया ही है। अुसमे दो वाक्य और जोड दू। मैंने जाकिरहुसेन कमेटी द्वारा तैयार किये हुअे अितिहासके पाठ्यक्रमसे भिन्न प्रकारका अपनी दृष्टिका पाठ्यक्रम तैयार किया था। अुस पाठ्यक्रमकी कुछ नकले करवा ली थी। वह पाठ्यक्रम श्री नरहरिभाअीका देखा हुआ था और बहुत सभव है गुजरात बेसिक अेज्युकेशन बोर्डका पाठ्यक्रम तैयार करनेमे अुसका अुपयोग भी किया गया था। वह पाठ्यक्रम कुछ जल्दीमें तैयार किया गया था और अधूरा भी होगा। परन्तु मुख्य बात कालक्रमकी थी। मेरा मानना है कि भूगोलकी तरह अितिहासका ज्ञान भी समीपसे शुरू करके पीछेकी तरफ जाना चाहिये। छोटे बच्चोको प्राचीन मनुष्योकी बाते कहनेसे अुनके मनमें गलत चित्र ही अुत्पन्न होते हैं और वे बडी अुम्रमे भी वैसे ही बने रहते है। जैसे पण्डितोकी नजरके सामने भी बचपनमें पढे या सुने हुअे गिरधर कवि* या शामल भट्टके* हनुमान और रावणके चित्र ही तैरते रहते हैं, वैसे बालकोंके मनमे प्राचीन मनुष्योंके बारेमे विकृत चित्र ही खडे होते हैं। और, चाहे दस लाख वर्ष कहिये या दस हजार वर्ष कहिये, दोनोके बीचके भेदकी या अुनकी प्राचीनताकी कोअी स्पष्ट कल्पना तो अुन्हे हो ही नही सकती।

---

* गुजराती भाषाके प्राचीन कवि, जिन्होने रामायणको गुजरातीमें पद्यबद्ध किया है।

अिस प्रकार यह व्यवस्थित ढगसे गलत अितिहास सिखानेकी पद्धति बन जाती है। अिसलिअे अपने आसपासके और निकट समयके अितिहाससे शुरू करके धीरे-धीरे दूरके देश और दूरके समयकी तरफ जाना चाहिये। दुर्भाग्यसे मै अपनी यह दृष्टि जाकिरहुसेन कमेटीके अधिकाश लोगोको समझा नही सका। केवल विनोवाने मेरी यह दृष्टि मान्य की, परन्तु वे अुसकी आखिरी वैठकमे अुपस्थित नही थे और दूसरे सदस्योने या तो अुसे स्वीकार नही किया या अुसका आग्रह नही रखा।

अिस पाठ्यक्रमकी नकले व्यक्तिगत रूपमें किसी किसीने मुझसे मगवाअी थी। और मेरा खयाल था कि अुसकी अेकाध नकल मेरे पास जरूर होगी। परन्तु मेरे सग्रहमे वह नही मिली। अिसलिअे मैंने श्री नरहरिभाअीको अिस विषयमें स्वतत्र चर्चा करनेका सुझाव दिया। पाठक देखेंगे कि वह चर्चा अुन्होने सागोपाग रूपमे भूमिकाके दूसरे प्रकरणमें की है। अुसमे विनोवाके विचार भी गूथ लिये हैं। अनायास अुसमें अितिहास-सम्वन्धी मेरे तीनो मतव्योकी चर्चा भी आ जाती है। अेक, जैसा अूपर कहा गया है, अितिहासकी शिक्षाका देश और कालकी दृष्टिसे आरभस्थान, दूसरा, अितिहासके ज्ञानकी अुपयोगिताके वारेमें 'जडमूलसे क्रान्ति'[1] में प्रगट किये गये विचार; और तीसरा, 'तालीमकी वुनियादें' पुस्तकमे 'अितिहासकी शिक्षाके विषयमे दृष्टि'[2] मे बताया गया निम्न विचार

---

१. नवजीवन द्वारा प्रकाशित; कीमत १–८–०, डाकखर्च ०–६–०।

२ यह लेख आज पढने पर देखता हू कि 'जडमूलसे क्रान्ति' मे अिस विषय पर प्रकट किये गये विचार अिस लेखमे अविक विस्तारसे आये है। फिर भी खूवी यह है कि 'जडमूलसे क्रान्ति' के अिस प्रकरणकी खूव चर्चा हुअी और 'तालीमकी वुनियादे' वाले प्रकरण पर किसीने कोअी आलोचना नही की।

"हमे भूतकालके अनुभवोके — अितिहासके — ब्योरोंकी स्मृति नही है। परन्तु अुन अनुभवोंके द्वारा किये हुअे परिवर्तनोको हमने अिस जीवनमे भी अनुभव किया है, और हमारी वर्तमान स्थिति अुन सस्कारोका ही फल है। अिति-हासका ज्ञान हमे भले न हो, परन्तु अितिहासका परिणाम क्या हुआ, यह हमसे अज्ञात नही है। वह हमारा आजका जीवन है।

"व्यक्ति और समाज दोनोको यह तत्त्व लागू होता है।"

अिस प्रकार श्री नरहरिभाअीकी भूमिका ही अिस पुस्तकको नवीनता प्रदान करती है। अुसे व्यवस्थित रूप श्री रमणीकलालभाअी मोदीके द्वारा प्राप्त हुआ है। फिर भी पुस्तकका कर्ता मै माना जाअूगा! कर्ता कैसे केवल निमित्त ही होता है, अिसका यह अुदाहरण है।

वर्धा, २–६–'५० कि० घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

भूमिका

लेखक
नरहरि द्वा० परीख

१

नअी तालीम और स्वावलंबन

१

नअी तालीमका बीज

श्री किशोरलालभाअीकी अिस पुस्तकमे शिक्षा-सम्बन्धी, विशेषत. 'नअी तालीम' अथवा नअी शिक्षा सबंधी लेखोका सग्रह है। कुछ लेख तो 'नअी तालीम' के नामसे परिचित शिक्षाकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति आरभ हुअी अुससे पहलेके लिखे हुअे है। परन्तु अिन लेखोकी विचारसरणी अुसी दिशामे ले जानेवाली है। गाधीजीने हम सबके द्वारा साबरमतीमे शिक्षाका जो प्रयोग शुरू किया, अुससे अुनका सेवाग्रामका प्रयोग किस तरह फलित हुआ, अिसकी अिन लेखोंसे कुछ झाकी मिलती है। अिसलिअे अिस पुस्तकको अुन्होने 'शिक्षाका विकास' जो नाम दिया है वह सर्वथा अुचित है। चूकि ये लेख भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न अवसरो पर लिखे गये थे, अिसलिअे अेक निबधमे विषय-प्रतिपादनकी जो अेकसूत्रता होती है वह अिनमें नही आ सकी। परन्तु अेक या दूसरे स्थान पर सब मुद्दोकी चर्चा थोडी बहुत मात्रामे अिसमे आ जरूर जाती है। श्री किशोरलालभाअीने मुझसे कहा कि 'नअी तालीम' — जो वर्धा शिक्षा योजनाके नामसे भी पहचानी जाती है — की चर्चा करनेवाला अेक पूरा लेख अथवा निबध अिस सग्रहकी पूर्तिरूपमें मै लिखू। अुन्होने जो कुछ कहा है अुससे नया अथवा अधिक मुझे कुछ कहना नही है। श्री किशोरलालभाअीमे मौलिक रीतिसे विचार करनेकी और विषयके मूल तक पहुच कर अुसका सूक्ष्म पृथक्करण और विशद विवेचन करनेकी जो शक्ति है, वह भी मुझमें नही है। फिर भी कुछ न कुछ लिखना मैंने स्वीकार किया। गाधीजीने अपनी शिक्षा-योजनामे स्वावलबनको विशेष महत्वकी वस्तु मान कर अुस पर जोर दिया है। परन्तु अुस पर सफल रूपमें अमल हुआ

कही दिखाअी नही देता। जो स्वावलंवनके अिस तत्त्वको मानते हैं, वे भी अिसमे सफलता प्राप्त नहीं कर सके। वहुतोने तो स्वावलवनके तत्त्वको छोड कर ही गाधीजीकी योजना स्वीकार की है। मैंने अिस लेखमें अिस वातकी चर्चा की है कि गाधीजी अिस योजना पर कैसे पहुचे, स्वावलवनको वे क्यो महत्त्वपूर्ण मानते हैं और अुसे सिद्ध करनेके लिअे किस प्रकारके प्रयत्न होने चाहिये।

सवसे मूल्यवान भेंट

जव गाधीजीने नअी तालीमका विचार शिक्षाके क्षेत्रमें काम करनेवाले अपने साथियो और मित्रोके सामने पहले-पहल सन् १९३७ में रखा, तव अुन्होंने कहा था कि मै अिस देशके सामने और अुसके द्वारा संसारके सामने कुछ नये विचार रखनेका दावा कर सकता हूं। मैंने अव तक जिन विचारोकी भेट जगत्के चरणोमे रखी है, अुनमे यह विचार मुझे सवसे अधिक क्रान्तिकारी और अिसलिअे सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। अिससे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक मूल्यवान भेंट मै दुनियाके सामने रख सकूगा, अैसा मुझे नही लगता। अिसमें मेरे सारे रचनात्मक कार्यक्रमको व्यावहारिक रूप देनेकी कुजी समाअी हुअी है। जिस नअी दुनियाके लिअे मै छटपटा रहा हू, वह अिसमें से अुत्पन्न की जा सकती है। यह मेरी आखिरी विरासत है। ये अक्षरश. गाधीजीके शब्द नही हैं, परन्तु अुस समय जो शब्द अुन्होंने कहे थे अुनका भावार्थ अिनमें आ जाता है।* अव हम यह देखें कि गाधीजीके शिक्षा-सम्वन्धी विचारोमे अैसी क्या नअी वात है कि सदा अत्यन्त संयमसे वोलनेवाले गाधीजी अिनके वारेमें अैसा वड़ा दावा करते है।

---

* अिस लेखमे आगे भी जहां यह लिखा है कि गाधीजीने फला वात कही, वहां अिसी प्रकार गाधीजीके अक्षरशः कहे हुअे शब्द नही, परन्तु अुनके कथनका भावार्थ ही है।

वर्धा-योजनाके मुख्य सिद्धान्त

जिसे शिक्षा अर्थात् पाठशालाकी शिक्षा कहा जाता है, अुसका लाभ अब तक दुनियाके आठ-दस प्रतिशतसे अधिक लोगोको मुश्किलसे ही मिला होगा। जो आगे बढे हुअे देश कहे जाते है, वहा शिक्षा-प्राप्त लोगोका प्रतिशत अधिक होगा। लेकिन पिछडे हुअे माने जानेवाले देशोमें, जिनकी आवादी वहुत वडी है, तो शिक्षितोका प्रतिशत आठ-दससे भी वहुत कम है। और आगे बढे हुअे देशोमें भी जिसे अुच्च शिक्षा कहा जाता है, अुसका लाभ वहुत थोडे प्रतिशतको मिल सकता है। अिग्लैण्ड और अमरीका जैसे देशोमे भी अुच्च शिक्षा सबको सुलभ नही होती। अमीरोके लडके या अुच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिअे छात्रवृत्ति प्राप्त करनेमें सौभाग्यशाली सिद्ध होनेवाले थोडेसे गरीब विद्यार्थी ही अुसे प्राप्त कर सकते है। सौभाग्य-शाली शब्द मै अिसलिअे काममे ले रहा हू कि सभी गरीब विद्यार्थियोको छात्रवृत्तिया नही मिलती। अमीरोके लडके तो योग्य हो या न हो, अुच्च शिक्षा प्राप्त करने जा सकते है। वडे साहित्यकार वननेकी, कलाकार वननेकी, वैज्ञानिक बननेकी, शिल्पी वननेकी या अिजीनियर वननेकी योग्यता जिनमें बीज रूपसे होती है, अैसे कितने ही वालकोकी शक्तिया अनुकूलताके अभावमे खिले विना रह जाती होगी। गाधीजीने दुनियाके सामने शिक्षाकी जो योजना रखी है, अुसके अनुसार गरीवीके कारण किसी भी मनुष्यको अुच्चसे अुच्च शिक्षासे वचित नही रहना पडता। सन् १९३७ में अुन्होने केवल सातसे चौदह वर्षके वच्चोके लिअे जिसे नअी तालीम या वुनियादी शिक्षा (वेसिक अेज्युकेशन) कहा जाता है, अुसीकी योजना पेश की थी। अुसमे मुख्य वस्तु यह थी कि वालकोकी शिक्षा अुनके आसपासकी कुदरती और सामाजिक स्थितिके अनुकूल किसी अुत्पादक अुद्योग द्वारा होनी चाहिये। अुद्योग अैसा चुनना चाहिये, जिसमें वालकको शिक्षा देनेकी अधिकसे अधिक सभावना हो। अुस अुद्योगसे सबंध रखनेवाली तमाम छोटीसे छोटी वाते और क्रियाअे

शास्त्रीय पद्धति और कुशलतासे सिखाअी जायं और अुद्योग भी सावधानी और कुशलतापूर्वक चलाया जाय, तो अुसके द्वारा विद्यार्थीको ठोस शिक्षा दी जा सकती है। अितना ही नही, सातों कक्षाओके विद्यार्थियोके कुल अुत्पादनकी रकम शिक्षकोके वेतनके बराबर हो सकती है, बशर्ते कि विद्यार्थियोका तैयार किया हुआ पक्का माल सरकार खरीद लेनेको तैयार हो। अैसा करनेमें अुनका हेतु शालाको खर्चके बारेमें स्वावलंबी बनानेका था। स्वावलबनको अुन्होने अपनी योजनाकी खरी कसौटी (अेसिट टेस्ट) कहा है।

वर्धा-योजनासे पहले और पीछेकी तालीम

सन् १९४२ में अुन्हे आगाखां महलमें नजरबन्द रखा गया। वहा अुन्हे अपनी अिस योजना पर खूब गहरा चिन्तन करनेका समय मिला। अुन्हे लगा कि मैंने जो सातसे चौदह वर्षके बालकोंकी शिक्षाकी योजना दी है वह काफी नही है। मनुष्यकी शिक्षा तो गर्भाधानसे आरंभ होती है और अुसका देहान्त होने तक जारी रहती है। अिसलिअे आगाखा महलसे बाहर आनेके बाद अुन्होने सात वर्षसे कमके बालकोके लिअे पूर्व-बुनियादी शिक्षा, चौदह वर्षसे अूपरकी अुम्रवालोंके लिअे अुत्तर-बुनियादी शिक्षा और विद्यार्थी अवस्थाकी अुम्रको पार कर चुकनेवाले बड़ी अुम्रके स्त्री-पुरुषोके लिअे प्रौढ़-शिक्षाकी योजनाअे पेश की। और अुनकी तफसील निश्चित करनेका काम अुन्होने अिस प्रकारकी शिक्षाको अमलमें लानेके लिअे स्थापित हिन्दुस्तानी तालीमी सघको सौंपा। शिक्षाके अिन सब क्रमोमे अलग-अलग ढगसे स्वावलंबनके तत्त्व पर जोर दिया गया था। अुदाहरणार्थ, बुनियादी शिक्षाके सम्बन्धमें अुन्होने कहा कि विद्यार्थियोका अुत्पादन शिक्षकोके वेतनके बराबर होना चाहिये, जब कि अुत्तर-बुनियादी शिक्षामें अिस बात पर जोर दिया कि विद्यार्थी अपने भोजन-वस्त्रके लायक अुत्पन्न करके ही शिक्षा प्राप्त करे। अिस प्रकार विद्यार्थी चाहे जितने वर्ष पढ़े, परन्तु अुसके माता-पिता या समाज पर अुसके निर्वाहका भार

नही पडेगा। अिसी तरह प्रौढ-शिक्षाको भी प्रौढ अपनी आजीविकाके लिअे जो धधा करता हो अुसके आसपास अिस ढगसे गूथना चाहिये कि वह न केवल अपना जीवन अच्छी तरह विताना सीखे, वल्कि जो धधा करता हो अुसमे भी अुसकी कुशलता वढे और धधेमे भरसक सुधार करके वह अपना अुत्पादन वढा सके।

सर्वांगीण विकास

यह तो अिस शिक्षा-योजनाका आर्थिक पहलू हुआ। अिस योजनाका विशेष दावा तो यह है कि अुत्पादक अुद्योगके साथ ही सारी शिक्षाको गूथ देनेसे, अुत्पादक अुद्योगको शिक्षाका माध्यम वनानेसे, वालकका सर्वांगीण विकास किया जा सकेगा और वालक समाजका अधिक अुपयोगी अग वन सकेगा। अिस समय अधिकतर किताबी शिक्षा दी जाती है। जिनमे लिखने-पढनेका काम मुख्य हो अैसे मुशीगिरी या कारकुनीके कामके नये धधे अिस जमानेमे वहुत चल गये है। अुनमें आजकलके पढे-लिखे लोग काम देते है। हमारे देशमें तो धधेकी शिक्षा देनेवाली शालाओ और विद्यालयोमे पढे हुअे विद्यार्थी भी वह धधा स्वतत्र रूपसे नही करते अथवा नही कर सकते। अुनमे से अधिकाश अुस धधेसे सम्वन्धित कारकुनीका काम करते है। व्यापारिक कॉलेजोसे हर साल सैकडो ग्रेज्युअेट निकलते होगे। अुनमे से वडे तो क्या परन्तु छोटे व्यापारी भी वहुत कम लोग होते है। अधिकाश व्यापारिक ग्रेज्युअेट व्यापारिक पेढियो या कपनियोमे कारकुनीका काम ही करते पाये जाते है। यही हाल विज्ञान और खेतीके ग्रेज्युअेटोका है। वे अपने-अपने धधोका पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करते है, परन्तु अुन धधोको चलानेके लिअे आवश्यक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक कामोमे वे कच्चे सावित होते है। अिसलिअे अुनके जीवन अुन धधोके सम्वन्धमे भी परोपजीवी रहते है। अुनके जीवनका भार अुन धधोके मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्ग पर पडता है। अुन्हे जितना वेतन मिलता है, अुसकी तुलनामें अुन धधोके सामूहिक अुत्पादनमे अुनका हाथ वहुत थोडा होता है।

गाधीजीकी यह योजना अैसी है जिसमें मनुष्यकी कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोका समान विकास होनेके साथ अुसकी वुद्धि और सूझवूझका भी विकास होता है। वह जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, वह निश्चित होता है और अुसे व्यवहारमे लानेकी कुशलता अुसमे होती है।

श्रमकी महिमा

शिक्षाकी अिस योजनामे शरीरश्रम, स्वाश्रय, दूसरोंके साथ मिलजुल कर काम करनेकी वृत्ति, व्यवस्था शक्ति आदि गुणोका वालकमे छुटपनसे ही विकास होता है। किसी भी प्रकारका अुपयोगी काम करनेमें अुसे अरुचि नही होती, घृणा नही आती या हीनता अनुभव नही होती। आजकल समाजमे पाये जानेवाले अूचनीचके भेदभावमे तथा दूसरोकी मेहनतसे लाभ अुठानेकी वृत्तिमे मूल कारण शरीरश्रमकी अरुचि ही है। अिस योजनामे वालककी शरीरश्रम करने तथा सबको समान माननेकी स्वाभाविक वृत्तियोको अुचित पोषण दिया जाता है।

आजकल दुनियामे जिस प्रकारकी शिक्षा प्रचलित है, वह व्यवहारमे और परिणाममे आर्थिक और सामाजिक असमानता अुत्पन्न करनेवाली, मेहनत-मजदूरी करनेवाले वर्गका शोषण करनेवाली और अिसलिअे रक्तपात और युद्धोको पोषण देनेवाली सावित हुअी है। जव कि वुनियादी शिक्षा अिन चीजोकी जड पर आघात करनेवाली है, अहिंसक समाज-रचनाको नजदीक लानेवाली है।

२

संक्षिप्त अितिहास

सन् १९३७ मे जव देशके अधिकतर प्रान्तोमे काग्रेसी मंत्रि-मडल वने तव गाधीजीने अुन्हे आग्रहपूर्वक कहना शुरू किया कि शरावबन्दीके कार्यक्रम पर हमें कितना ही अधिक नुकसान अुठाकर भी अमल करना चाहिये। मत्रीगण अिस विचारके अनुकूल ही थे। अुनके सामने मुख्य कठिनाअी पैसेकी थी। शरावकी आय छोड दी जाय तो सरकारके मौजूदा खर्चको पूरा करनेके लिअे दूसरे कर लगाने चाहिये

अथवा सरकारको मौजूदा खर्चमे कमी करनी चाहिये। गाधीजीने सोचा कि शिक्षाका सारा स्वरूप ही बदल दिया जाय तो शिक्षामे भी महत्त्वपूर्ण सुधार किये जा सकते है और अुसका खर्च भी घटाया जा सकता है। अिस प्रकार शराबबन्दी अिस योजनाका निमित्त बनी, परन्तु गाधीजीके दिमागमे तो और कअी कारणोंसे यह योजना पक रही थी। गाधीजी दक्षिण अफ्रीकामे थे तब अुन्होने देखा था कि भारतीय बालकोको वहाकी सार्वजनिक शालाओमे भरती नही किया जाता। वे शालाअे खासकर युरोपियनोके लिअे ही चलाअी जाती थी। गाधीजीके बच्चोको अपवादके रूपमे अैसी किसी भी शालामे प्रवेश मिल सकता था। परन्तु समाजके दूसरे बालकोको जो लाभ नही मिलता था, अुसे अपने बच्चोके लिअे लेना गाधीजीको ठीक नही लगा। अिसलिअे अुन्होने घर पर और अधिकतर स्वय ही बच्चोको पढाना शुरू किया। बादमे अुन्होने फिनिक्स आश्रम स्थापित किया और वहा सादा और शरीर-श्रमवाला जीवन व्यतीत करने लगे। फिनिक्स आश्रममे अुनके बच्चोके अलावा साथियोके बच्चे भी थे। अुन सबकी शिक्षाका कोअी निश्चित प्रबध करनेकी जरूरत पैदा हुअी। अिस नये जीवनके अनुरूप शिक्षा देनी हो तो अुसमे शरीर-श्रम और अुद्योगका स्थान होना चाहिये, यह सिद्धान्त तय हुआ और साक्षरी विषयों*के अलावा अुद्योग सिखाना आरभ किया गया। परतु सत्याग्रहकी लडाअिया और दूसरे कअी विक्षेप वहा आये, अिसलिअे गाधीजी शिक्षाके

---

*'अेकेडेमिक सब्जेक्ट्स'के लिअे 'साक्षरी विषय' शब्द मैंने बनाया है। आजकल अुनके लिअे 'बौद्धिक विषय' शब्द काममें लिया जाता है। परतु वह ठीक नही है। अुसमें यह गलत मान्यता है कि किताबी ज्ञानवाले विषय ही बौद्धिक होते है और अुद्योगका तथा जीवनके लिअे अुपयोगी अन्य प्रवृत्तियोका बुद्धिके साथ कोअी सबध नही होता। अुलटे, अुद्योगमे और दूसरी प्रवृत्तियोंमें बुद्धिका ज्यादा विकास होता है। किताबी विषयोमे तो रटाअीकी तरफ चले जानेका भय रहता है।

प्रश्नमे अधिक वारीकीसे नही अुतर सके। हिन्दुस्तानमें आनेके वाद सावरमती आश्रममे गांधीजीने अपने शिक्षाके प्रयोग अधिक व्यवस्थित रूपमे और वडे पैमाने पर आरभ किये। अुनमे हम सव शरीक हुअे। गाधीजी स्वय भी अुनमें अच्छी तरह भाग लेनेकी अिच्छा रखते थे। परतु अुन पर अेकके वाद अेक अैसे काम आते गये कि प्रत्यक्ष शिक्षणका काम वे कर ही न सके। हमे भी अुन्होने जितनी आशा रखी थी अुतना समय वे नही दे सके। प्रवाससे आश्रममे आते तव हमारे और विद्यार्थियोके साथ चर्चा करते। क्या चल रहा है, यह जान लेते और कोअी सूचनाअे देने लायक होती तो दे देते। परतु अुद्योगकी कक्षाअे अलग और साक्षरी विषयोकी कक्षाअे अलग, अिन दोनोंके वीच कोअी मेल या सवध नही — शिक्षाका यही प्रकार चलता था। अुद्योग-शिक्षणका काम आश्रमके कुछ भाअी श्री मगनलालभाअी गाधीकी देखरेखमे करते थे । साक्षरी विषयोकी कक्षायें हम शिक्षक कहलानेवाले लोग चलाते थे। परंतु अुद्योगके साथ साक्षरी विपयोका अनुबध करनेकी वात हममे से किसीको नही सूझी थी। शालाको शुरू हुअे अेक वर्ष भी पूरा नही हुआ कि गाधीजीको लगा कि शालाके शिक्षकोको जव तक अुद्योग नही आता, तव तक वे राष्ट्रीय शिक्षक नही कहलायेगे। अिसलिअे अुन्होने तय किया कि हम नये विद्यार्थी न ले और कमसे कम चार घटे अुद्योग सीखनेमे दे। अिस प्रकार शालाका काम रोक कर हमने अुद्योग सीखना शुरू किया, तव भी यह स्पष्टता नही हुअी थी कि अुद्योग-शिक्षक भी हमीको वनना है और साक्षरी विपयो तथा अुद्योगके वीच कोअी सवध जोडना है। हममे से तो किसीको यह विचार ही नही सूझा था। गाधीजीके मनमे भी यह विचार वहुत अस्पष्ट दशामे रहा होगा। हा, हममे अेक वात वहुत वार होती थी कि हम अुद्योग अिसीलिअे अनिवार्य रूपमे सिखाते है कि आज जो शिक्षित माने जाते हैं अुन्हे कारीगरीका कोअी काम करना नही आता और जो कारीगर है अुनमे साक्षरी शिक्षाके संस्कार नही

होते। राष्ट्रीय शिक्षामे साक्षरी विषयोके साथ अुद्योगकी शिक्षाको रखनेसे दोनो वर्गोंमे जो न्यूनता है वह पूरी हो जायगी। परतु हमे यह कल्पना नही थी कि हमारे विद्यार्थियोमे से कोअी अुद्योग सीखकर किसान या जुलाहा बन जायगा। अुस समयके विद्यार्थियो या शिक्षकोमे से कोअी किसान या जुलाहा बना भी नही था। आज विचार करने पर अैसा लगता है कि हम शिक्षक और विद्यार्थी अुद्योग क्या सीखते थे अेक खेल ही करते थे। हम शिक्षक तर्कसे अपने मनको मनाते थे कि यह अुपयोगी काम है, अिससे हमारा जीवन-निर्माण होता है और कारीगर तथा मजदूर-वर्गके साथ हमारा सबध बधता है। परतु अधिकाश विद्यार्थियोका तो यह निश्चित मत था कि अुनके समयका बिगाड ही हो रहा है; शिक्षक तो साक्षरी विषयोमे निपुणता प्राप्त कर चुके है, परतु हमारा समय अुद्योगोमे चला जाता है, अिसलिअे साक्षरी विषयोमे हम प्रगति नही कर सकते। अन्तमे अुन्होने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया और हमें छोडकर विश्वविद्यालयकी शिक्षा लेने चले गये। ये विद्यार्थी गाधीजीके अति निकट सबधमे रहे हुअे थे। अुन्होंने विशेष रूपसे गाधीजीका प्रेम सपादन किया था। अुनके विषयमे गाधीजीने बडी बडी आशाअे बाधी थी। अिन विद्यार्थियोने विश्व-विद्यालयकी शिक्षा लेनेके लिअे आश्रम छोडनेकी अनुमति मागी, तब गाधीजीने खुशीसे अनुमति तो दे दी, परन्तु अुनके हृदयको सख्त चोट भी लगी। अुन्हे प्रतीति हो गअी कि अुनके प्रयोगमे कोअी न कोअी बडी त्रुटि है और अुस त्रुटिकी वे खोज करने लगे। अुन्हे अैसा दिखाअी देने लगा कि विद्यार्थियोकी अुद्योगमे दिलचस्पी न होनेका कारण यह था कि अुद्योग ज्ञानपूर्वक नही सिखाया जा रहा था। अुद्योगका दूसरी शिक्षाके साथ या विद्यार्थियोंके जीवनके साथ कोअी संबध नही जोडा जा सका था। जीवन-विकासके अेक मुख्य साधनके रूपमे हमने अुद्योगका अुपयोग नही किया था। हम शिक्षकोको अैसा करना आया ही नही था। और अिसलिअे अुद्योगको प्रामाणिक जीवनका

आधार मानने और अुसमें अेक प्रकारकी जीवनकी सार्थकता अथवा धन्यता अनुभव करनेकी बात विद्यार्थी समझ ही नही सके। विचारोका यह मथन गाधीजीके हृदयमे चल ही रहा था कि अितनेमे अिस प्रश्न पर अुन्हे विचार करना पड़ा कि शराबबन्दी करनी हो तो पैसेकी कठिनाअी कैसे दूर की जाय। अुसमे से अुन्हे यह नअी योजना सूझी। अुन्होने तत्कालीन प्रान्तीय सरकारोंके सामने यह बात रखी कि विद्यार्थियोके आसपासकी परिस्थितिके अनुकूल अुत्पादक अुद्योग द्वारा अुनकी सारी शिक्षा हो तो शिक्षा अधिक ठोस हो सकती है और विद्यार्थियोके अुत्पादनसे शालाको स्वावलबी भी बनाया जा सकता है। प्रश्न तो अितना ही था कि शराबबन्दीके कारण जो आय छोडनी पड रही है, अुसे किस तरह पूरा किया जाय। परतु गाधीजीने केवल अितना ही विचार नही किया। अुनकी विचार करनेकी पद्धति किसी भी प्रश्नको समग्र दृष्टिसे जाचनेकी थी। अिसलिअे वे तो अिस विचारमे पड़ गये कि सारे देशके सातसे चौदह वर्षके बालकोके लिअे अुचित शिक्षा कैसी हो और वह सबके लिअे कैसे सुलभ बनाअी जाय? अिस अुम्रके सारे बालकोको शिक्षा देनी हो तो सरकारको कितनी ही नही शालाअे खोलनी पड़ेगी। जितनी शालाअे आज हैं अुन्हीको चलानेके लिअे जब सरकारको पैसेकी कठिनाअी होती है, तब नअी शालाअें कैसे खोली जा सकती हे? शालाअें चलानेमे मुख्य खर्च शिक्षकोके वेतनका होता है। अुसे मिटानेके लिअे अुन्होने कहा कि सातो कक्षाओंके विद्यार्थियोंके अुद्योगके कुल अुत्पादनसे शालाके तमाम शिक्षकोंके वेतनके लायक आय होनी चाहिये।

बच्चोंका शोषण?

अिसके विरुद्ध मित्रोने यह आपत्ति अुठाअी कि अगर आप स्वावलबनका आग्रह रखेंगे तो शिक्षक बालकोंसे अुनके बूतेके बाहर और अुनकी मरजीके खिलाफ श्रम करायेगे। अिससे तो बालकोंके शोषणका बड़ा प्रश्न खडा हो जायगा।

अिसके अुत्तरमें गांधीजीने वताया कि स्वावलवनको आवश्यक माननेमें मेरी दृष्टि शुद्ध शिक्षाकी ही है। अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धतिको आप शिक्षाकी अुत्तम पद्धतिके रूपमे स्वीकार करते हो, तो वह तभी अुत्तम हो सकती है और अुसके द्वारा वालकोको ठोस शिक्षा तभी मिल सकती है, जव वालक सच्चा अुद्योग करे, अुद्योगके साथ खिलवाड न करे, अुद्योगमें अपना समय न विगाडे और अुद्योगमे जो कच्चा माल और औजार काममे लिये जाते हो अुनका पूरी सावधानीसे अुपयोग करना जाने। समय, माल या औजारोका विगाड होता हो तब तो यह माना जायगा कि हम वच्चोको गलत शिक्षा देते हैं। हम अुनका नुकसान करते हैं। हमारा दावा तो यह है कि अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेसे वालककी कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोके सच्चे विकासके साथ अुसकी बुद्धि और हृदयका विकास भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। यह दावा तभी सच्चा सावित होगा जव वालकको अपने शरीर और मन दोनोकी सारी शक्ति लगाकर काम करनेकी आदत पडे, अपने काममें आनेवाले औजारोको अच्छी तरह रखना आवे और वह किसी तरहका विगाड न करना सीखे। स्वाभाविक रूपमे जिस वालकका पालन-पोषण हुआ हो, अुसे खुद काम करना पसन्द होता ही है। दूसरेसे सुनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी अपेक्षा स्वय निरीक्षण करके और स्वय प्रयोग करके ज्ञान प्राप्त करना अुसे अधिक रुचिकर लगता है। शिक्षक स्वय अुद्योगमे कुशल होगा, अुद्योगकी सारी क्रियाअे कारण देकर समझाना अुसे आता होगा और अुद्योगमें वालककी दिलचस्पी पैदा करनेकी कला अुसमे होगी, तो वालक वडे शौकसे अुद्योग करेगा। यह तो हम अनुभवसे प्रत्यक्ष देख सकेंगे कि अुसीसे अुसे अधिक अच्छी शिक्षा मिलती है। अिसमे वालकसे जवरन मेहनत करानेका प्रश्न ही पैदा नही होता। वालककी शक्तिके अनुसार अुत्पादन न हो तब तो अुलटा ही परिणाम आयेगा। वालकको संतोष नही होगा और अुसमे निराशाकी भावना पैदा होगी।

यह माननेकी जरूरत नही कि अिन दलीलोसे भी सब मित्रोको सतोष हुआ होगा, क्योकि आज भी अुनमे से कुछ स्वावलवनके बारेमे अुत्साह नही रखते। हा, अुन्हे भी अितना विश्वास तो अवश्य हो गया है कि शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योग चलाना हो तो अुसमे जरा भी विगाड नही होना चाहिये। वैसे, अभी तक तो वहुतसे शिक्षक यही मानते थे कि शालामे शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योग चलाना हो तो बिगाड होता ही है। शाला कोअी कारखाना नही है कि वहा अुत्पादन और आयका हिसाब लगाया जाय।

'प्रोजेक्ट मेथड' से भेद

दूसरी बात शिक्षाशास्त्री मित्रोने गाधीजीको यह कही कि अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी आप जो बात करते है वह कोअी नयी नही है। शिक्षाके क्षेत्रमे नयेसे नया विचार यह है कि वालकोको केवल पुस्तको द्वारा अथवा श्रवण, वाचन तथा लेखन द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति बडी दोषपूर्ण है। हेतुपूर्वक नियोजित किसी प्रवृत्ति द्वारा शिक्षा देनेकी पद्धति ही अुत्तम है। यह कहकर अुन्होने 'प्रोजेक्ट मेथड' की,*

* किसी वस्तुकी जानकारी देनी हो तो मुहसे अुसका वर्णन करनेके बजाय अुससे सवध रखनेवाली सारी क्रियाअे और सारा व्यवहार वालकोसे योजनापूर्वक कराकर अुस वस्तुका ज्ञान देनेकी पद्धति। अुदाहरणार्थ, हमे अपने लिखे हुअे पत्रादि जिन्हे भेजने हो अुन लोगो तक डाक-विभाग किस प्रकार पहुचाता है अिसका वर्णन करनेके बजाय डाक-विभागके सारे व्यवहारकी व्यवस्था शालामें कृत्रिम ढगसे करके अुसके सारे काम वालकोसे कराये जाय। कोअी बालक पोस्ट मास्टर वने, कोअी डाकिया वने और कोअी पत्रोको गाववार छाटनेवाला 'सॉर्टर' वने। शालामे कुछ डाकघर वनाये जाय। वालक अेक-दूसरेको पत्र लिखकर जो डाकघर अपने गावका माना जाता हो अुसके डब्बेमें डाल आये। डाकिया वना हुआ लडका अुसमें से पत्र निकालकर अुस पर मुहर लगावे और दूसरे गाव पहुचानेके लिअे नजदीकके स्टेशन

जो नअे से नअी शिक्षा-पद्धति मानी जाती है, बात की और यह बताया कि आपकी शिक्षा-योजना वैसी ही है। गाधीजीने कहा कि 'प्रोजेक्ट मेथड' क्या है, सो मै नही जानता। मैने अपने विचार अिस विषयकी कोअी पुस्तके पढकर नही लिये है। यह योजना स्वतत्र रूपमे विचार करके निकाली हुअी है। परतु आप अिस पद्धतिका जो वर्णन कर रहे है अुससे मुझे लगता है कि मेरी योजना अुससे बिलकुल भिन्न है। अिस पद्धतिमे तो जिस विषय या वस्तुकी शिक्षा देनी है अुससे सबधित अुसकी योजना अथवा प्रवृत्ति कृत्रिम रूपमें पैदा की जाती है। वह अैसी सच्ची प्रवृत्ति या सच्ची वस्तु नही होती, जो मनुष्यके अुपयोगमे आये। अुस पर किया गया खर्च और बालको द्वारा किया गया श्रम समाजमे किसीके काममे नही आता। यह हो सकता है कि अिस पद्धतिसे वस्तु अथवा विषयका ज्ञान बालकको अच्छी तरहसे कराया जा सके। परतु अिस पद्धतिमें शिक्षा अितनी खर्चीली बन जायेगी कि अुसका लाभ थोडेसे धनिक वर्गके बालक ही अुठा सकेगे। मुझे तो अुत्तम शिक्षा गरीबसे गरीब वर्गके बालकोके लिअे भी सुलभ कर देनी है। अिसीलिअे स्वावलबनको मै अपनी योजनाकी सच्ची कसौटी कहता हू। जिन अुद्योगो द्वारा शिक्षा देनेके लिअे मै कहता हू वे केवल बालकोंके मनोरजन, खेल, या शिक्षाके लिअे नियोजित कृत्रिम अुद्योग अथवा प्रवृत्तिया नही हैं, परतु देशके लाखो अथवा करोडो लोगोंके जीवन-निर्वाहके साधन बन सकनेवाले सच्चे अुद्योग है।

अिस प्रकार गाधीजीने अपनी योजना मित्रो तथा शिक्षा-विभागके मत्रियो और अधिकारियोके सामने रखी। फिर अुसे व्यवस्थित रूप

पर दे आये। वहासे वे कृत्रिम ढगसे बनाअी हुअी रेल्वेके डाकके डब्बेमे जाय। वहा सॉर्टर अुन्हे गाववार छाटे और प्रत्येक गावके पत्रोंके थैले अुन गावोंके नजदीकके स्टेशन आने पर वहा दे दे, अित्यादि।

देने तथा अुसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिअे अेक कमेटी नियुक्त की गअी। कमेटीने सुझाया कि अुत्पादक अुद्योगके अलावा जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसे भी शिक्षाका माध्यम अथवा केन्द्र बनाया जाय। अुद्योगका चुनाव करनेमे आसपासकी कुदरत और समाजकी परिस्थितिका विचार तो करना ही पडेगा, अिसलिअे अुनका परिचय भी आवश्यक है। शिक्षाका मुख्य माध्यम अुत्पादक अुद्योग हो और आसपासकी कुदरत और समाज अुप-माध्यम बने। स्वावलबनके सवधमें कमेटीने यह आशा व्यक्त की कि शिक्षकोके वेतनके लायक खर्च बालकोके अुद्योगसे धीरे धीरे निकल सकेगा।

३

स्वावलंबनका प्रश्न

हमारे अलग अलग प्रान्तो, जिन्हे अब राज्य कहा जाता है, की सरकारोने गाधीजीकी योजनाके अनुसार प्रयोग शुरू किये। थोडे ही समयमे अुनकी समझमें आ गया अथवा पहलेसे यह समझ कर ही अुन्होने प्रयोग शुरू किये होगे कि हम स्वावलबनके ध्येय तक नही पहुच सकेंगे। अुनको शायद यह भी लगा होगा कि शुद्ध शिक्षाकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो गाधीजी स्वावलम्बनको जो महत्त्व देते है वह देनेकी जरूरत नही। गाधीजीकी योजनामे अच्छी शिक्षाके जो दूसरे तत्त्व है, जैसे साक्षरी विषयोका बालकोकी अलग अलग प्रवृत्तियोंके साथ अनुबध करना वगैरा, वे अुन्होने स्वीकार किये और अुन पर अमल करनेका प्रयत्न किया। व्यक्तिगत और सामूहिक सफाअी सबधी प्रवृत्तिया की जाय; राष्ट्रीय, धार्मिक और ऋतुओके अुत्सव मनाये जाय; जिन घटनाओसे मनोरंजनके साथ शिक्षा मिलनेकी सभावना हो अुन्हें बालकोके नाट्यप्रयोगोमें बताया जाय; छोटे छोटे पर्यटनोकी व्यवस्था की जाय, शाला-संबधी तमाम कामकाजकी व्यवस्था बालकोको सौंप कर अुन्हें स्वराज्यकी तालीम दी जाय, बच्चोसे हस्तलिखित

पत्र निकलवाये जाय — अिस प्रकारकी प्रवृत्तियोको अुन्होने बालकोकी शिक्षाके महत्त्वपूर्ण अग मानना स्वीकार किया। अिसके साथ साथ थोडा समय बालक अुत्पादक अुद्योगमे दे, अिसे भी अुन्होने आवश्यक समझा। और अुद्योग तथा अन्य प्रवृत्तियोका अनुबध करके साक्षरी विषय सिखाना शुरू किया। परतु अुद्योग द्वारा शालाको स्वावलबी बनानेका विचार अुन्हे असभव जान पडा। परिणाम यह हुआ कि अुद्योग और दूसरी प्रवृत्तिया जारी करनेके कारण अिन नअी शालाओका खर्च कम होनेके बजाय पुरानी पद्धतिकी पाठशालाओसे अुल्टा बढ गया। अुद्योग कुशलतापूर्वक न चला सकनेके कारण अुसमे जो बिगाड होता है वह अभी तक रोका नही जा सका है। अैसी आलोचनाअे भी होने लगी है कि यह तो जनताके धनका अपव्यय हो रहा है और बालकोकी साक्षरी शिक्षाका स्तर गिरता जा रहा है। अैसी आलोचनाओंके अुत्तरमें बम्बअी सरकारने हालमे अेक वक्तव्य प्रकाशित किया है। अुसमें शिक्षाकी दृष्टिसे अिस प्रयोगके क्या क्या अच्छे परिणाम हुअे है, यह बताकर कहा गया है कि अब तकके अनुभवसे अैसा लगता है कि अुद्योगके सिलसिलेमें जो अतिरिक्त चालू खर्च होता है अुतना तो अुद्योगसे निकालना सभव है। कुछ शालाओमे बालकोके वस्त्रस्वावलबी मडल बने हैं, यह हकीकत भी अुसमे बताअी गअी है।

साक्षरी विषयोंके बारेमें असंतोष

अुद्योग अच्छी तरह चला सकनेके लिअे तमाम शिक्षकोको अुनकी दूसरी तालीमके साथ अुद्योगका विषय सिखानेकी सरकारने योजना बनाअी है। और जैसे जैसे शिक्षक तैयार होते जायगे, वैसे वैसे तमाम प्रारभिक शालाओमें अुद्योग और अनुबद्ध शिक्षा जारी कर दी जायगी। परतु अिस नीति पर अमल करनेके साथ शिक्षा-विभागके अधिकारियोंके मनमें यह चिन्ता बनी ही रही है कि साक्षरी विषयोके ज्ञानका स्तर जरा भी गिरना न चाहिये। नयी पद्धतिमें

साक्षरी विषयोंके पुराने ढगके ज्ञानकी अपेक्षा रखी जाय तो अुसे पहले जितनी मात्रामे देना कठिन है। क्योकि जितना समय दूसरी प्रवृत्तियोमे जायगा अुतना साक्षरी विषयोका काम कम हो जाना स्वाभाविक है। यह बात सच है कि प्रवृत्तियोंके साथ अनुबध साध कर सिखानेकी पद्धतिसे साक्षरी विषयोका ज्ञान अधिक अच्छी तरह दिया जा सकता है, परतु वाचन-लेखन द्वारा ही मिल सकनेवाले और जिसके लिअे रटाअीका भी आसरा लेना पडे अैसे ज्ञानकी अपेक्षा पाठ्यक्रमो और परीक्षाओमे रखी जाय तो अुसके लिअे थोडा ही समय मिलेगा। अिसका सही अुपाय तो यह है कि पाठ्यक्रममे जडमूलसे परिवर्तन करने चाहिये और परीक्षाओका स्वरूप भी जडसे ही बदलना चाहिये। परतु अभी तक अैसा किया नही जा सका। अैसे बुनियादी परिवर्तन करनेका या तो साहस नही हुआ या वे परिवर्तन करनेकी जरूरत ही महसूस नही हुअी। अिसके लिअे सरकारी अधिकारियोंके साथ गैर-सरकारी कार्यकर्ता भी जिम्मेदार है, क्योकि अिस प्रयोगके संबधमें सरकारको सलाह देनेके लिअे अुसके द्वारा नियुक्त 'बेसिक अेज्युकेशन बोर्ड' मे सरकारी सदस्योसे गैर-सरकारी सदस्योकी सख्या अधिक है। अिस स्थितिके लिअे मै अपनेको भी जिम्मेदार मानता हू, क्योकि अढाअी वर्ष पहले बीमार होकर अपग जैसा बन जानेसे पहले मै अिस बोर्डका अध्यक्ष था। अिस बोर्डकी सलाहकी सरकारने अुपेक्षा की हो, अैसी अेक भी घटना मुझे याद नही।

सरकारी विज्ञप्तिमे जितना कहा गया है अुतना भी अभी तक तो अच्छी तरह अमलमे नही लाया जा सका है।

शालाओंकी अुद्योग-संबंधी त्रुटियां

जिन प्रवृत्तियोकी बात अूपर बताअी गअी है, वे सब शालाओमे अच्छी तरह होती नही देखी जाती और अुद्योगके सिलसिलेमे होनेवाला खर्च अुद्योगसे मिल जानेकी जो आशा प्रगट की गअी है वह भी शायद ही कही पूरी हुअी है। अभी तक कच्चे माल और साधनोका

बिगाड होना रोका नही जा सका है।* कुछ शालाओका प्रबध सरकारने गैर-सरकारी कार्यकर्ताओको सौंप दिया है। अुसमे भी अुद्योगके मामलेमे जैसी चाहिये वैसी प्रगति अभी तक शायद ही कोअी शाला दिखा सकी है। मैने सुना है कि अकेली कराडीकी बुनियादी शालामे स्वावलबी दृष्टिसे आशाजनक परिणाम आये है। अिसका मुख्य कारण यह है कि अुस गावकी आबादी कुशल कारीगर लोगोकी है, वे सन् १९२१ से खादीके बारेमे कुछ न कुछ परिश्रम करते आये है, वहाके शिक्षक अुत्साही है और अुन्हे लोगोका अच्छा सहयोग मिलता है। परतु दूसरी शालाओमे जैसे चाहिये वैसे परिणाम दिखाअी नही देते। अिसके कअी कारण है। सबसे बडा कारण तो यह है कि शिक्षकोको स्वय अभी तक अुद्योग अच्छी तरह नही आता। अुन्हें अधकचरा अुद्योग सिखाकर अुनके द्वारा शालामे अुद्योग जारी करनेकी हम अुतावली करते है। ट्रेनिंग कॉलेजके, जहा अिस योजनाके अनुसार शिक्षणकी खास तालीम देनेका दावा किया जाता है, अध्यापक वहा चलनेवाले अुद्योगोमे से कमसे कम अेक अुद्योगमे तो अच्छे निष्णात होने ही चाहिये। तो ही अुद्योगकी विविध क्रियाओमे बालकोकी कर्मेन्द्रियो तथा ज्ञानेन्द्रियोंके विकासकी कितनी संभावना है तथा अुनके साथ साक्षरी विषयोकी कौन कौनसी और कितनी जानकारीका अनुबध हो सकता है, यह वे अपने अनुभवसे जान सकते और सिखा सकते है। साथ ही अुन्हे आसपासकी कुदरत और समाजका केवल पुस्तकोसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान नही, परतु प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये। यह भी सभव है कि कुछ अध्यापकोको अिस प्रयोग पर श्रद्धा ही न हो। ये सब न्यूनताअें तालीम देनेवाले अध्यापकोमे काफी मात्रामें होगी। अिन न्यूनताओको वे पुस्तकोसे प्राप्त शिक्षा द्वारा और तर्क दौडाकर किये गये अनुमानो द्वारा ही पूरी कर लेनेका प्रयत्न करते

---

* यह वर्णन बम्बअी राज्यकी शालाओका और अुनमें भी गुजरातकी शालाओका है।

होगे। परंतु अिसमें आनद नही आता। हमारा सब काम छिछला ही रहता है। जिनके सिर पर सारी योजनाका व्योरा तय करके देने, योजनाको अमलमे लानेवाले शिक्षकोको तालीम देने और अुन्हें रास्ता वतानेकी जिम्मेदारी है, अुन्हीकी अैसी स्थिति हो तो अिसका अर्थ यह हुआ कि अिस योजनामे अुद्योगको शिक्षाका अेक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुअे भी अुसकी पूरी साधना किये विना अिस योजनाको अमलमे लानेकी जिम्मेदारी हमने अुठाअी है। यह वात वैसी ही है जैसे कोअी ककहरा और वारहखडी आये विना भाषा सिखाने लगे अथवा अिस वातकी तालीम देने लगे कि भाषाकी शिक्षा कैसे दी जाय। ट्रेनिंग कॉलेजोमें अुद्योग सिखलानेके लिअे हम अलग अुद्योग-शिक्षक रखते है। यह अुद्योग-शिक्षक शिक्षाकी दृष्टिसे अुद्योगका महत्त्व नही समझता। अनुवधकी पद्धतिकी अुमे कोअी कल्पना नही होती। अुसे अिस प्रकारके शिक्षाशास्त्रका ज्ञान होना चाहिये, यह आवश्यक नही माना जाता। अिस अुद्योग-शिक्षकके वेतनका ग्रेड और विभागमे अुसका दरजा साक्षरी विषयोंके शिक्षकोकी अपेक्षा घटिया होता है। जो शिक्षाशास्त्री माने जाते है अुनका यह खयाल है कि भले ही अुद्योगमे हम निपुण न हो, लेकिन अुद्योगके सचालनके सिद्धान्त तो हम समझते है। अिसलिअे अुसके साथ हम दूसरे विषयोका अनुवध कर सकते है और अुसे करनेकी पद्धति सिखा भी सकते है। यह स्थिति वुनियादी शालाके शिक्षकोंके भी शिक्षकोको, जो ग्रेज्युअेट होते है, तालीम देनेके लिअे खुले हुअे कॉलेजोंके अध्यापकोकी तथा वुनियादी शालाके अध्यापकोको तालीम देनेवाले अध्यापकोकी है। अुद्योग-निरीक्षको (क्राफ्ट सुपरवाअिजरो)की भी कमोवेश यही हालत होती है।

अधिक कठिनाअी तो शालाके शिक्षकोंके मानसकी है। अुन्हें अनेक कारणोसे अपनी नौकरीके वारेमें वडा असतोष है।

शिक्षकोंकी कमियां अिसलिअे अुनमे अिस कामके लिअे अुत्साह या रस नहीं पाया जाता। अुनकी जानकारी और योग्यता

भी बहुत-कम होती है। शिक्षककी नौकरीमे भरती होनेके लिअे प्राथमिक शालान्त परीक्षा पास होनेका जो स्तर रखा गया है, वह बहुत नीचे दरजेका है। अिन शिक्षकोको सिखाये जानेवाले विषयोकी बहुत कम जानकारी होती है। व्यवस्थितता, निश्चितता, नियमितता और स्वच्छताकी तमाम आदतोके बारेमे अुनमे बहुत कमिया पाअी जाती है। जिन लोगोके विचार जीवन-सबधी साधारण बातोमें भी अनुभवसे परिपक्व न हुअे हो, वे भी शिक्षक हो सकते हैं। जो मनुष्य होशियार और अुत्साही होता है वह तो शिक्षकके धधेमें आता ही नही। जो आते हैं वे यह शिकायत करते रहते है कि अिस नौकरीमे निर्वाहके लायक पैसा भी नही मिलता। अिन शिक्षकोको अुद्योगकी तालीम पानेके लिअे आश्रमोमें अथवा अन्यत्र खोले गये केन्द्रोमे भेजा जाता है। वहा जानेके लिअे और जाकर अेकाग्र मनसे तालीम पानेके लिअे बहुत थोडे शिक्षक राजी होते हैं। अधिकाश शिक्षक तो यही सोचकर तालीम लेने जाते है कि नौकरीमे पड गये है और नौकरी करनी है, अिसलिअे अफसरोके हुक्मकी तामील करनी चाहिये, और वहा वे जैसे तैसे अपना समय पूरा करते हैं। अैसे शिक्षको द्वारा अितना बडा प्रयोग करके अुससे अच्छे परिणामोकी आशा कैसे रखी जा सकती है?

माता-पिताका विरोध

थोडी बहुत कठिनाअी माता-पिताकी तरफसे भी होती है। वे अिस प्रयोगका महत्त्व नही समझते। अुनकी आखोके सामने तो पुराने ढगकी शालाअे ही होती है। वे कहते हैं, हम तो अपने बच्चोको पढनेके लिअे शालामे भेजते है, अुद्योग सीखने और सफाअीके काम करनेके लिअे नही। नाट्यप्रयोग, पर्यटन वगैरा अुन्हें निरे खेल मालूम होते है। अिसलिअे वे लोग शिकायत करते है कि आप तो बालकोको खेलाते रहते हैं अथवा अुनसे काम कराते है, पढाते कुछ नही। कामकी तो हमारे घर ही क्या कमी है? गावोके अज्ञान माता-पिता अैसा कहें तो समझमे आ सकता है। परतु सुशिक्षित माने जानेवाले बहुतसे माता-

पिता भी अुद्योगको निकम्मा मानते हैं। वे दलील देते हैं कि हमारे बच्चोको बादमें कहा यह अुद्योग करना है जो आप अुनका समय बिगाडते है और अुनकी असली पढाअीमे कमी करते हैं।

दूसरी बडी कठिनाअी देशकी गरीबीकी भी है। अधिकतर माता-पिताकी आर्थिक स्थिति अितनी तग होती है कि बच्चोको शालामें भेजना अुन्हे पुसाता नही। अुनके १०–१२ वर्षके बालक छोटे भाअी-बहनोको सभालनेमे माकी मदद करते है, ढोरोको चराने या पानी पिलाने ले जाते हैं, बापको खेत पर खाना पहुचाते है, और अिस तरहका दूसरा भी बहुतसा काम करते हैं, और वह काम माता-पिताके लिअे अितना अुपयोगी बन जाता है कि अुसे छुडवाकर वे बालकोको अैसी पढाअीके लिअे पाठशाला भेजनेको तैयार नही होते, जिसकी अुन्हें कोअी अुपयोगिता नही दिखाअी देती। अैसे बच्चोके नाम पाठशालाके रजिस्टरमें दर्ज किये हुअे हो तो भी अुनकी हाजिरी बहुत कम रहती हे।

अिन सब कठिनाअियोके कारण अिस प्रयोगको अनुकूल वातावरण नही मिलता। अुसे पैदा करनेके लिअे सब तरफसे प्रयत्न करने पडेंगे। समाज-शिक्षण अथवा लोकशिक्षण द्वारा माता-पिताकी गलतफहमी दूर करनी होगी। अिस नअी तालीमका महत्त्व अुन्हें समझाना होगा और अिसमें अुनकी दिलचस्पी पैदा करनी होगी। गरीबीके कारण जो कठिनाअिया आती है वे तो गरीबी दूर करनेके अुपाय काममे लेकर ही दूर हो सकती है। देहातकी गरीबीका प्रश्न हल करनेका काम मुख्यत रचनात्मक कार्यकर्ताओका है। अब तो अिसमें सरकारकी मदद भी मिल सकती है। दूसरी तरफ शिक्षकोकी कुशलता और योग्यताका स्तर अूचा अुठानेकी जरूरत है। अुन्हे भरती करनेके लिअे जो योग्यता अिस समय निर्धारित की हुअी है अुसे बढाना ही पडेगा। भरती करनेके बाद अुन्हें जो तालीम दी जाती है वह भी

कठिनाअियोका हल

आजसे अधिक ठोस होनी चाहिये। सरकारी विज्ञप्तिमे बताये अनुसार अुद्योगके सिलसिलेमे होनेवाले चालू खर्च जितना स्वावलबन सिद्ध करनेका सरकार द्वारा रखा गया लक्ष्य गाधीजीकी योजनामें विश्वास रखनेवालोको भले ही कम लगता हो, परतु यदि सारी बुनियादी मानी जानेवाली शालाअे अुस लक्ष्य तक जल्दी पहुच जाय तो अभी तो हमें सतोष कर लेना चाहिये। अुद्योग शुरू करनेके कारण जो अधिक खर्च और बिगाड़ होता है वह तो अेक दम रुक ही जाना चाहिये। साथ ही विज्ञप्तिमें जिन वस्त्रस्वावलबी मडलोकी बात की गअी है अुनकी सख्या भी बढनी चाहिये। अैसे मडल शालाओंके लिअे अवश्य ही शोभास्पद है।

जिन शालाओका प्रबध गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंके हाथमे है, अुनसे अवश्य ही अधिक अपेक्षा रहेगी। माता-पिताके सहयोगके अभाव और अुनकी गरीबीके कारण आनेवाली मुश्किलें अुनके काममें भी बाधक होती है। ये शिक्षक अधिक अुत्साह और रसपूर्वक काम करनेवाले होते हैं, अिसलिअे अुनसे आशा रखी जाती है कि अुद्योग वगैरा प्रवृत्तियोमें वे विद्यार्थियोकी अधिक दिलचस्पी पैदा करेंगे और कुल मिलाकर अधिक अच्छे परिणाम ला सकेंगे।

४

पाठशालायें नहीं परंतु परिश्रमालय

परतु अितनेसे ही गाधीजीका अुद्देश्य पूरा नही हो जाता। अुन्हे तो जनता पर करोका भार बढाये बिना शिक्षाको सार्वत्रिक बनाना था। अिस समय देशी राज्योंके विशाल प्रदेश भारतीय सघमे मिल गये है। अुनमें कअी प्रदेश अैसे है, जहा बालकोंके लिअे शिक्षाकी बहुत कम या नहीके बराबर व्यवस्था है। शिक्षाके विषयमें अुन्हें भारतीय सघके पुराने प्रदेशोकी कतारमे लानेके लिअे वहा बहुतसी नअी शालाअें खोलनेकी जरूरत है। परतु रुपयेकी कठिनाअीके कारण सरकार शीघ्र वैसा नही कर सकती। रुपयेकी तगीके कारण शिक्षाके बजटमें

अिस वर्ष सरकारने कटौती कर दी है। गाधीजीकी योजनाको अमली रूप दिया जा सके तो अैसे प्रश्न आसानीसे हल हो जाय। अिस योजनाको कार्यान्वित करनेका रास्ता हमे खोजना ही होगा। यह भार सरकारी विभाग पर डालना मुनासिब नही। गैर-सरकारी कार्यकर्ताओको ही योजना पर अमल करके दिखाना चाहिये और अुसके परिणाम समाज और सरकारके सामने रखने चाहिये। गुजरातमे स्कूल बोर्डकी शालाओकी व्यवस्था अुससे मागकर गैर-सरकारी कार्यकर्ता चार-पाच स्थानोमे प्रयोग कर रहे है। अुसमे भी परीक्षाओ और पाठ्यक्रमके बधनोकी तथा माता-पिताके पर्याप्त सहयोगके अभावकी कठिनाअिया बाधक होती है। शालाका अर्थ है पढना, लिखना और साक्षरी विषयोका अध्ययन करना। ये सस्कार लोगोके मन पर हजारो वर्षोसे पडे हुअे हैं। लोगोको कितना ही समझाअिये, परतु भाषा, गणित, अितिहास, भूगोल वगैरा साक्षरी विषयोने और अुनमे भी अुनकी अेक खास तरहकी जानकारीने जो महत्त्व प्राप्त कर लिया है, अुसके पैमानेसे ही किसी भी शालाको नापा जाता है। हम यह सोचे कि जिस गावमे शाला हो ही नही वहा शाला खोलकर परीक्षा वगैराके साथ अुसका सबध जोडे बिना हम यह प्रयोग करे तो वहा भी थोडे ही दिनोमे माता-पिता आकर कहने लगेगे कि आप कुछ पढाते नही है, आप तो बालकोसे काम कराते है और अुन्हें खेलाते है। अिसलिअे मुझे लगता है कि यह प्रयोग करना हो तो विद्यालय अथवा शालाका नाम छोडकर हमें काम करना पडेगा। विद्यालयमे अुद्योगको लानेके बजाय अुद्योगालयमे विद्याको ले जाना पडेगा। मुझे याद पडता है कि अेक बार विनोबाने अेक प्रसग पर यह कहा था कि गाव गाव पाठशाला खोलनेके बजाय परि-श्रमालय खोलना ही अधिक अच्छा है। गावके बालक वहा यह समझ कर आये कि वे पढनेके लिअे नही, परतु अुद्योग करनेके लिअे आते हैं। कार्यकर्ता तो सच्चे शिक्षक ही होगे। अुनके मनमे बालकोकी शिक्षा और सर्वांगीण विकासकी निश्चित कल्पनाअे होगी। परतु वे अपने

कार्यका आरभ अुद्योग-शिक्षणसे और वालकोमे व्यवस्थितता और स्वच्छताकी आदते डाल कर करेगे।

कार्यकर्ताकी योग्यता

अैसा प्रयोग करनेवाले कार्यकर्ता अथवा शिक्षककी अपनी तालीम और तैयारी वहुत पक्की होनी चाहिये। हमारे गावोमे सवसे वडा काम वहाकी गरीवी और गदगी दूर करना है। आप दूसरी कितनी ही वाते करे, परतु जव तक लोगोको अुनकी गरीवी मिटानेका प्रत्यक्ष और प्रयोगसिद्ध अुपाय नही वतायेंगे, तव तक लोग आपकी वात नही सुनेंगे और आप गावोकी कोअी ठोस सेवा नही कर सकेगे। अिसके लिअे गाधीजीने खादीका काम वताया है। परतु खादीका अुद्योग अेक सहायक अुद्योग है। वह फुरसतके समयका अुपयोग करके मनुष्यकी मुख्य आयमे थोडी-वहुत वृद्धि कर देनेवाला अुद्योग है। अिस दृष्टिसे अुसका महत्त्व कम नही है, परतु अकेले अुसीसे हमारे गावोकी गरीवी दूर नही हो सकेगी।

खेती और गोपालन

हमारे गावोके मुख्य अुद्योग खेती और गोपालन है। अुन पर ध्यान दिये विना अव काम चल ही नहीं सकता। आज हम अैसी स्थितिमे पहुच गये है कि अिन दोनो धधोमे अुत्पादन वढाये विना हम जी नही सकते। नहरो द्वारा अधिक विस्तारमे पानी पहुचाने और पडती जमीनको खेतीके काममे लेनेकी योजनाओ पर सरकारकी तरफसे अमल हो रहा है। परतु अिसके साथ गावकी मौजूदा खेतीका अुत्पादन भी वढाना जरूरी है। अुसमे अेक वडी रुकावट यह है कि जो खेतीके काममे कोअी भाग नहीं लेते या कोअी मदद नही देते, अैसे गैरकाश्तकार जमीन-मालिकोका भार खेती पर पडता है। यह भार कुछ हद तक घटानेके लिअे सरकारने कानून वनाये है। परंतु कानूनोसे पूरा लाभ अुठानेके लिअे किसानोमें जो साहस और योग्यता चाहिये वह अुनमे पैदा करनेकी जरूरत है।

यह काम कार्यकर्ताओंके स्थायी साथ और मददके विना किसान नही कर सकेंगे। अैसे कार्यकर्ताओंको खेती-कामके सच्चे जानकार बनना पड़ेगा। तभी वे किसानोकी सच्ची मदद कर सकेंगे। जो शिक्षक अथवा शिक्षकगण अुपरोक्त परिश्रमालयकी योजना लेकर गांवमे बैठेंगे, अुनका पहला काम तो गावकी गरीबीका प्रश्न हल करनेमे गांववालोंके सहायक बनना होगा। अुन्हे खेती और गोधन-सुधारका व्यावहारिक ज्ञान होगा तो ही वे अिसमें सहायक बन सकेंगे। व्यावहारिक शब्द मैंने जानबूझकर काममें लिया है, क्योंकि कृषि-विज्ञानके ग्रेज्युअेटको हम गावकी खेती दिखायें तो वह तुरंत कह देगा कि यहा पानीकी सुविधा नही है, किसानोंके पास अच्छे साधन नही है, जमीन सुधारनेको अुनके पास पूजी नही है, अिसलिअे कुछ नही हो सकता। वह भला होगा तो सरकार नये कुअें खुदवानेके लिअे जो मदद देती है अथवा खाद बनानेके लिअे खड्डे खोदनेका जो प्रोत्साहन देती है, अुसके बारेमें लोगोको समझायेगा। हमे तो किसानको यह बताना है कि अुसे बाहरकी मदद न मिले तो भी अपने विशेष परिश्रमसे, विशेष सावधानीसे और आपसमे सहयोग साधकर वह अपनी आजकी स्थितिसे निकलकर अेक कदम आगे कैसे बढ सकता है, अेकके बजाय दो पौधे कैसे अुगा सकता है। कोअी आलोचना करेगा कि आप तो शिक्षकको बहुत बडा काम बता रहे हैं, अुससे आप अत्यधिक अथवा न रखने लायक आशा रखते हैं। परतु अिस समय मै साधारण शिक्षककी बात नहीं कर रहा हू। सामने जो घना अंधेरा दिखाअी दे रहा है अुसमें दीपक बनकर दूसरोंके लिअे पथ प्रकाशित करनेवाले अथवा जंगलकी झाड़िया काटकर दूसरोंके लिअे रास्ता बनानेवाले वीर और साहसी शिक्षककी बात कर रहा हूं। अैसे शिक्षकको सारे गावको अपनी शाला बनाना होगा। तभी वह अपने परिश्रमालय अथवा ग्रामशालाके लिअे लोगोंमें दिलचस्पी पैदा कर सकेगा।

गावकी खेती और गावका गोधन सुधारनेकी दृष्टिसे वह खेती और गोपालन दोनोकी सहकारी समितिया बनाकर सयुक्त खेती और सयुक्त गोपालनकी योजना बनायेगा। अपने परिश्रमालयको भी वह सहकारी समितिका सदस्य बनायेगा। परिश्रमालयके विद्यार्थी भी खेतोंमे मजदूरी करने और ढोर चराने जायगे। शिक्षक स्वय भी मजदूरी करते-करते लोगोका पथप्रदर्शन करेगा।

पहले कदम

यदि दो शिक्षक अिस प्रयोगके लिअे गावमे गये होगे, - और दो जनोका जाना ही ठीक है, तो यह जरूरी है कि दोनोको खेती और गोपालनके सिवाय वस्त्र-विद्या और बढअीगिरीमे से अेक अेक अुद्योग आता हो। साथ ही आठ वर्षके पाठ्यक्रमवाली बुनियादी शाला चलानेके लिअे साक्षरी विषयोका जितना ज्ञान आवश्यक माना जाय अुतना तो कमसे कम अुन्हे होना ही चाहिये। अुनकी दृष्टि वैज्ञानिक होनी चाहिये। वे परिश्रमालयमे विद्यार्थी बढानेकी अुतावली न करे। प्रारभ वे अेक अेक विद्यार्थीसे ही करें तो सुविधाजनक होगा। ये विद्यार्थी स्वतत्र रूपमें अुद्योगकी कुछ खास क्रियाअे करने लग जाय तब दूसरे विद्यार्थी भरती किये जाय। कोअी छ महीनेमे तो शुरूमे आये हुअे विद्यार्थियोसे अुद्योगकी कुछ विशेष क्रियाअे सिखानेके लिअे सहायकके रूपमे भी काम लिया जा सकेगा।

अुद्योग सिखाते-सिखाते ही अुसके स्वाभाविक अनुबधमे आनेवाली वैज्ञानिक, यान्त्रिक और सामाजिक विषयोकी जानकारी वे जबानी ही विद्यार्थीकी योग्यतानुसार देते रहे। फिर छ महीने या बारह महीनेके बाद वे अक्षरज्ञान देना प्रारभ करे। अुनके पास किस अुम्रके बालक आते है, यह देखकर अुन्हे अपने कामका समय-पत्रक बनाना होगा। सभव है- बालवाडी, बुनियादी शिक्षा और प्रौढ-शिक्षा तीनो काम अुन्हे शुरू करने पड़े। दो शिक्षक कितना काम सभाल सकते है और गावमे से कितने सहायक तैयार कर सकते है, अिस पर कामकी

व्यवस्थाका आधार रहेगा। जिस कामकी व्यवस्था स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अनुभवके आधार पर करनी है, अुसके अधिक ब्योरेमें हम नही जा सकते।

शिक्षकोकी आजीविका

अिस प्रयोगके आर्थिक पहलूका थोडासा विचार कर लेना चाहिये। अिस समय हमारे गाव अितनी गरीब हालतमें हैं कि अिन शिक्षकोको अपनी आजीविकाका पाच-सात वर्षका प्रबंध करके ही गावोमें जाना पडेगा। अितने समयमे अुन्हें गाववालोको अपनी अुपयोगिता अिस हद तक सिद्ध कर दिखानी चाहिये और गांवकी आर्थिक स्थिति सुधारनेमे अितना हिस्सा ले चुकना चाहिये कि गाव-वाले अुनके निर्वाहका भार खुशीसे अुठा ले। गाववाले यह भार न अुठा सके तो अपने शरीर-श्रमसे अपना निर्वाह कर लेनेकी शक्ति तो अुनमे होनी ही चाहिये। अितने अर्सेमे अुनका परिश्रमालय अथवा ग्रामशाला अितनी अच्छी तरह चलने लग गअी होगी कि अुसके अुत्पादनसे शिक्षकोंके निर्वाह जितना पैसा मिल जाय। परिश्रमालयके लिअे छप्पर तथा शिक्षकोंके रहनेकी झोपड़िया गावमें मिल जाय तो अुत्तम बात होगी। अुनका किराया देना पडे तो भी चिन्ता नही। वर्ना अुन्हें बनानेके लिअे गाववालोकी मेहनत और बाहरसे कुछ नकद रकम जुटानी पडेगी। अिन मकानो पर गावका ही सार्वजनिक स्वामित्व माना जायगा। थोड़ेसे बढअीके औजार और बुनाअीके लिअे अेक दो करघे शुरूमें बाहरसे लाने पड़ेंगे, फिर तो आवश्यक साधन धीरे धीरे गावमें ही बना लेने चाहिये।

विद्यार्थियोंका मेहनताना

परिश्रमालयमें सीखने आनेवाले जो कुछ अुत्पादन करें अुसका कुछ भाग अुन्हें देना होगा। कुछ भाग व्यवस्थाके लिअे सुरक्षित रखा जाय। कितना भाग दिया जाय, यह स्थानीय परिस्थितियां देखकर तय कर लिया जाय। सीखने आनेवालोको अमुक भाग देनेकी बात में

असलिअे कह रहा हू कि लोगोकी गरीवी अितनी वढी हुअी है कि अुनकी मजदूरीके वदलेमे अुन्हे अुचित रकम मिले तो ही अुनमें काम करनेका अुत्साह रह सकता है। चौदह वर्षके वालकोको घरका खिला कर शालामें पढने भेजने जैसी आर्थिक स्थिति जिन माता-पिताकी नही हो, अुनके वच्चोको अुन्होने जो कुछ अुत्पादन किया हो वह दे देना ही ठीक मालूम होता है।

नअी तालीमके पूरे प्रयोगका प्रारभ किस ढगसे किया जा सकता है, अुसकी थोडीसी कल्पनाके रूपमे मैंने यह कहा है। यद्यपि यह कल्पना है, फिर भी हमारे गरीव गावोकी स्थिति और हमारी वर्तमान वुनियादी शालाओंके निरीक्षण पर अुसका आधार है। अिस प्रकारके प्रयोग तीन चार गावोमे करनेके लिअे पूरी योग्यतावाले साहसी वीर निकल आयें तो हम अुनके पाच सात वर्षके अनुभवसे गाधीजीकी योजनाके अनुसार शिक्षाका श्रीगणेश करनेकी स्थितिमे आ सकेंगे। और वह श्रीगणेश कर सकें तो अुसके आगेके कामके लिअे मौजूदा वुनियादी शालाओंके प्रयोग अुपयोगी सिद्ध होंगे। वे अपनी शक्ति और परिस्थितिके अनुसार कुछ न कुछ तो करती ही हैं। अैसे मौलिक प्रयोगोसे अिन शालाओको वहुत प्रेरणा और जानकारी मिल सकती है। अैसे मौलिक प्रयोगोमे ही अनुवधवाले शिक्षणकी सच्ची कला हाथ लगेगी। वुनियादी शालाओका पाठ्यक्रम कैसा हो, अिसकी कल्पना भी अैसे प्रयोगोसे मिल सकती है, यद्यपि गाधीजीकी शिक्षण-योजनामे तमाम शालाओके लिअे अेकसा पाठ्यक्रम वनाना ठीक नही। स्थानीय परिस्थितिके अनुसार पाठ्यक्रममे फेरवदलके लिअे गुजाअिश होनी ही चाहिये। परतु योजनाको तत्रवद्ध करनेकी जिम्मेदारी जिस पर हैं अुसका काम तो निश्चित पाठ्यक्रमके विना चलेगा नही। अिस हद तक योजनाके प्राण अवरुद्ध भी जरूर होंगे। अिस प्रकार अिस योजनाको सदा जीती-जागती रखनेके लिअे और

तंत्रवद्ध पद्धतिसे काम करनेवालोको प्रेरणा मिलती रहे अिसके लिअे स्वतत्र ढंग पर काम करनेवाले प्रयोग-वीरोकी जरूरत हमेशा रहेगी।

२० मअी, १९५०

२

अितिहासकी शिक्षा — कुछ सुझाव

सन् १९३७ मे गांधीजीने वुनियादी शिक्षाकी योजना मित्रोंके सामने रखी, अुसके बाद अुसका पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिअे अेक कमेटी नियुक्त की। वह जाकिरहुसेन कमेटीके नामसे प्रसिद्ध है। श्री किशोरलालभाअी अुसके अेक सदस्य थे। अुस कमेटीके दिये हुअे पाठ्यक्रममे अितिहासका भी पाठ्यक्रम दिया गया है। अुसके साथ श्री किशोरलालभाअीका मतभेद था। जाकिरहुसेन कमेटीके पाठ्यक्रममें ठेठ प्राचीन कालसे शुरू करके क्रमश. अर्वाचीन कालके अितिहास पर आना होता है। अुसमे पहली कक्षामे अर्थात् सात वर्षकी अुम्रके बालकोको ठेठ प्रारभिक दशामे जीवन वितानेवाले आदिमनुष्य किस तरह शिकार करके अथवा जमीनके भीतरसे कंदमूल खोद कर अपना भोजन प्राप्त करते, पेडो पर या गुफाओमे रहते तथा पेड़ोकी छाल, पत्ते और चमडोका अुपयोग शरीर ढकनेके लिअे करते थे, और अुसमें से वे खुराकके लिअे पशुपालन तथा सादी खेती पर आये, रहनेके साधनोमें अुन्होने कुछ सुधार किये और कपडोंके लिअे अून, कपास और रेशमका अुपयोग करने लगे — वगैरा वाते कहनी होती है। अिसी प्रकार वे लकडी, पत्थर, कासे और लोहेके हथियार और औजार क्रमश' काममें लेने लगे, घोडे, गाय, कुत्ते वगैरा पालकर अुनका अुपयोग करने लगे, अपनी आवश्यकताअे, भावनाअे तथा विचार प्रगट करनेके लिअे भाषाका

प्रयोग करने लगे, चित्र बनाने लगे और लिखना भी शुरू किया — यह सब कहानीके रूपमे और नाटकके रूपमे अैसी प्रवृत्तियां करा कर सिखाना होता है। अिसके बादके काफी प्राचीन कालके मनुष्यका जीवन कैसा था, यह भी कहानियो द्वारा कहना होता है। अुसमे मिस्र देशमे गुलामोंसे मजदूरी कराकर पिरामिड बनवाये गये, मोहन-जो-दड़ोमे बालक क्या क्या करते होंगे, वेदोकी शुन शेपकी कहानी, वगैरा बाते कहना, चीनके पहले पाच बादशाहोकी कहानी कहना अथवा अुसका अभिनय कराना होता है। साथ ही अति प्राचीन कालके प्रारभिक दशाके मनुष्यो जैसा जीवन बितानेवाले जो लोग आज भी पृथ्वी पर कही कही है — जैसे अरबस्तानके बेदू लोग और अुत्तरी ध्रुवके पासके प्रदेशके अेस्किमो लोग — अुनकी बाते भी कहना और अुनका अभिनय कराना होता है। शिक्षक बहुश्रुत और कलावाला हो तो अिसमे बालकोका रस पैदा कर सकता है और आनद भी अुत्पन्न कर सकता है तथा आजकलके साधन-सपन्न जीवनके बजाय अैसा कम साधनोवाला जीवन भी मनुष्यका किसी समय था, अिसके थोड़े बहुत संस्कार बालकके दिमाग पर शायद डाल सकता है। अलबत्ता, अिसमे बालकोकी तर्कशक्ति और कल्पनाशक्ति पर जरूरतसे ज्यादा जोर पडनेका डर भी है।

हकीकत तो यह है कि हमारे आजकलके थोडी ज्ञान-पूजीवाले शिक्षकोके लिअे ही यह पाठ्यक्रम बडा कठिन पडता है। चीज भले ही कठिन न हो, परतु अुसे पाये कहासे? प्रान्तीय भाषाओमे अैसी जानकारी देनेवाली जैसी चाहिये वैसी पुस्तके नही है। अिस पाठ्यक्रमके अनुसार प्रान्तीय भाषाओमें पाठ्यपुस्तकें तैयार की जा सकती हैं। परतु अिससे हमारा दारिद्र्य नही मिटेगा। शिक्षकके पास अिस पाठ्यक्रमके आसपासकी बहुतसी जानकारी हो तो ही वह अिन अैतिहासिक कहानियोको आकर्षक और प्रभावकारी बना सकता है। अंग्रेजीमे अैसी जानकारी देनेवाली अनेक पुस्तके होनेके कारण अंग्रेजी पढे हुअे पाठ्यक्रम तैयार करनेवालोको जो चीज आसान लगती है, अुसका प्रान्तीय

भापाके पूरे साहित्यसे भी अच्छी तरह परिचित न रहनेवाले हमारे शिक्षकोको वहुत कठिन प्रतीत होना स्वाभाविक है।

श्री किशोरलालभाअीका मत यह है कि अितिहासकी शिक्षा निकटके कालसे शुरू होनी चाहिये और धीरे धीरे प्राचीन काल पर पहुंचनी चाहिये। प्राचीन अितिहासका अध्ययन अूपरकी कक्षाओंमे हो। अिसी प्रकार शालाके समीपवर्ती प्रदेशका अितिहास पहले पढ़ाना चाहिये और क्रमश अुसके क्षेत्रका विस्तार करते जाना चाहिये। मुझे यह दूसरी वस्तु अधिक महत्त्वकी लगती है। क्योकि शहरके वालक जिन वस्तुओं और घटनाओमे रस ले सकते है और अुन्हें आसानीसे समझ सकते है, अुनमे गावके वालक रस नही ले सकते। न अुन्हे आसानीसे समझ सकते है। गांवके वालकोका रस विलकुल दूसरी वातो और घटनाओंमें होगा और अुन्हीको वे आसानीसे समझ भी सकते है। अिसी प्रकार जगलके पासके प्रदेशके, पहाड़के पासके प्रदेशके और समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशके अर्थात् भिन्न भिन्न प्रदेशोंके वालकोकी दिलचस्पी और समझके विपय अलग अलग होंगे। अधिक परिचितसे कम परिचित और अुससे अपरिचितकी ओर — अिस क्रमसे आगे वढनेका सिद्धान्त हम स्वीकार करते हो, तो भिन्न भिन्न प्रदेशोंके वालकोंके लिअे अितिहास और भूगोलका क्रम हमे भिन्न भिन्न रखना चाहिये। अिसलिअे अेक ही प्रकारकी पाठ्यपुस्तकोंसे सव जगह काम नही चलेगा। हालमें ही श्री विनोवाने सेवाग्राममे अेक भापण दिया, जिसमें यह विचार प्रगट किया है कि नअी तालीमको नित्य नअी तालीम रहना पड़ेगा। यह भी कहा कि भिन्न भिन्न प्रदेशोंके लिअे भिन्न भिन्न पाठ्यपुस्तकें होनी चाहिये।

> “प्रत्येक गांवकी परिस्थिति अलग-अलग होती है। अुसीके अनुसार शिक्षाका विचार करना पडेगा। जहा नदीतट होगा वहा अेक प्रकारकी, जहा पहाड़ होगा वहां दूसरे प्रकारकी, और जहां आसपास जगल होगा वहां तीसरे प्रकारकी शिक्षा होगी।

प्रत्येक गावका वातावरण देखकर अुसकी रचना करनी होगी। अिसके लिअे खास अेक ही तरहकी योजना अथवा निश्चित पुस्तकें काम नही देंगी। आजकल सव प्रान्तोके लिअे अेक ही प्रकारकी पुस्तके सारी शालाओमें चलती है। अिससे गावकी जो विशेषता और भिन्नता होती है अुसकी कोअी कल्पना नही होती, अेक सर्वसामान्य पुस्तकमें वालकोको रस नही आता और अलग अलग प्रकारके गावोके लिअे वह कामकी नही रहती।

"हमारी पाठशालाओके लिअे पुस्तकोकी जरूरत रहेगी, परतु वे अलग अलग गावोकी स्थितिको ध्यानमे रखकर अलग अलग ढग पर लिखी हुअी होगी। जो अितिहास सेवाग्रामकी शालामे पढाना होगा अुसमे सेवाग्रामकी सव सस्थाओका अिति-हास होगा, अुसमें यह भी होगा कि सेवाग्राम गाव कैसे वना, अुसमें गावके वृद्ध जनोका अनुभव होगा और अिस प्रकार वह सजीव अितिहास होगा। भूगोलमें भी सेवाग्राम और अुसके आसपासकी स्थितिका विशेष वर्णन होगा। जिस गावमे हम रहते होगे अुसे दुनियाका मध्यविन्दु मानकर अुसके आसपास दुनिया मौजूद है, यह समझकर भूगोलकी शिक्षा दी जायगी।"

अिस पुस्तकमे श्री किशोरलालभाअीकी 'जडमूलसे क्रान्ति' नामक पुस्तकसे अुनका 'अितिहासका ज्ञान' नामक लेख लिया गया है। अुसमे अुन्होने अेक दूसरी ही और वडे महत्त्वकी वस्तु पर जोर दिया है। अुन्होने कहा है कि अितिहासके ज्ञान और शिक्षणको आजकल वहुत महत्त्व दिया जाता है, परतु वह अितने महत्त्वका पात्र नही है। क्योकि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा अितिहास हमे शायद ही मिल पाता है। स्वयं अपनी की हुअी या कही हुअी वातोकी भी मनुष्यकी स्मृति अितनी जल्दी मन्द पड़ जाती है कि थोडे समय वाद अुसमे सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। साथ ही, अितिहास पढकर हम भूत-कालके वारेमें जो कल्पनाअे करते है वे अुचितसे वहुत अधिक व्यापक

होती है। लोकजीवनके वर्णनके रूपमे जो जानकारी दी हुअी होती है, वह अधिकाशमे लोगोंके बहुत थोडे भागके जीवनकी जानकारी होती है। फिर भी हम अुसे समस्त जनसमाजकी स्थितिके रूपमे समझते हैं। किसी राजा अथवा राजधानीके शहरकी समृद्धिके वर्णन परसे पाठकके मन पर अैसा असर पड़ जाता है मानो सारा देश समृद्ध होगा। नालदा जैसे विद्यापीठो अथवा गुरुकुलोके वर्णन पढकर अैसी छाप मन पर पडती है कि सारे देशमे विद्याका खूब प्रचार होगा और देशके सभी बालक अिन विद्यापीठो और गुरुकुलोमे पढने जाते होगे। गार्गी जैसी विदुषीके वर्णन परसे यह छाप मन पर पड़ती है कि प्राचीन कालमें सभी स्त्रिया खूब पढी-लिखी होगी। किन्तु यह मानना वैसा ही होगा, जैसा आजकल सरोजिनी नायडू अथवा विजयालक्ष्मी पडितका वर्णन पढकर यह मान लिया जाय कि भारतमें सभी नही तो बहुत बडे भागकी स्त्रिया अैसी ही विद्वान और आगे बढी हुअी होगी। अिसलिअे अितिहास पढ़कर न केवल व्यापक अनुमान ही नही लगाने चाहिये, बल्कि तुरन्त यह भी नही मान लेना चाहिये कि अितिहासमे आनेवाली सभी घटनायें ठीक अुसी तरह हुअी होगी।

आश्रमकी पाठशाला और गूजरात विद्यापीठ दोनोमें अितिहास पढानेका काम मैंने कअी बार किया है। अुस अनुभवसे मैं तो अिस परिणाम पर पहुचा हूं कि जब तक विद्यार्थी बडी अुम्रका न हो जाय तब तक अुसे व्यवस्थित अितिहासकी शिक्षा देना व्यर्थ है। आजका हमारा जीवन — हमारे आदर्श, हमारी आकाक्षाअें, हमारी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक सस्थाअे सब — अब तकके हमारे अितिहासका परिणाम है। यह समझनेके लिअे पहले तो हमे आजके जीवनका अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिये। बादमे अुसके कारणोकी जाच करनी चाहिये। अपने देशका विचार करे तो हमारी वर्तमान स्थिति हमारे पूर्वजोके अच्छे कार्यों और भूलोका तथा विदेशोकी जिन जिन प्रजाओसे हमारे देशका सबध हुआ अुसका परिणाम है। अिस प्रकार

हमारी वर्तमान स्थितिका भूतकालकी अनेक घटनाओंके साथ कार्य-कारण सबध है। यह सब समझानेका अितिहासका दावा है। परन्तु जैसा श्री किशोरलालभाओी कहते है, हमे अुपलब्ध अितिहास ही यदि दोषपूर्ण अथवा भूलभरा हो, तो अुससे न केवल हमारी वर्तमान स्थितिका सही स्पष्टीकरण नही मिलेगा, प्रत्युत वह हमें गलत रास्ते पर भी ले जायगा। यह सब समझना प्राथमिक या माध्यमिक शालाके विद्यार्थीकी शक्तिसे वाहर माना जायगा। जिसे सामाजिक परिस्थितिका और समाजके प्रश्नोका कुछ न कुछ खयाल हो, वही अितिहासको अच्छी तरह समझ सकता है और अुससे लाभ अुठा सकता है। मै मानता हू कि अिस समय प्राथमिक और माध्यमिक शालाओमें जिस प्रकारका और जिस ढगसे अितिहास पढाया जाता है, अुससे विद्यार्थीको कोओी लाभ नही होता, बल्कि नुकसान ही होता है। मेरी राय यह है कि अितिहास पढाना हो तो भी कॉलेजो अथवा अुत्तर-बुनियादी शालाओमे ही पढाना चाहिये। और, वह अितिहास भी अच्छी तरह परिमार्जन करके नओी दृष्टिसे लिखा जाना चाहिये।

यह नओी दृष्टि कैसी हो? पहले तो हमे यह वस्तु मानकर चलना होगा कि भूतकालमें हुओी सभी वाते कोओी याद रखने लायक या अितिहासमे दर्ज करके रखने जैसी नही होती। कुछ वाते तो खास तौर पर भूल जाने योग्य होती है। अैसी भूल जाने लायक वस्तुओको हम अितिहासकी पुस्तकोमे दर्ज करते रहेगे, तो हम मनुष्य मनुष्यके वीच ओीर्ष्या-द्वेष और वैरभावको जीवित रखेंगे और अुने पोषण देंगे। अुदाहरणके लिअे, हिन्दुओका मुसलमानोके साथ आठ नौसे भी अधिक वर्षोका सवध रहा है। अुसमे हिन्दू-मुसलमानोमे कओी वार लडाअिया हुओी है, और दोनो जातियोने अेक-दूसरेके साथ मेल भी साधा है। जिस हद तक मेल साधा है अुस हद तक दोनोको लाभ हुआ है। मनुष्य मनुष्यके वीच भ्रातृप्रेम और समानताकी जिम्मेदारी

भावनाने हिन्दुओकी अधिकार-भेद और अूचनीचकी भावना पर बनी हुअी समाज-रचनाको सुधारनेमे कम असर नही डाला। जब भारतमें राज-सत्ता मुसलमानोके हाथोमे थी तब पद्रहवीसे अठारहवी सदीके बीच हिन्दुओमे जो अनेक साधु-सन्त हो गये, अुन पर अिस्लामी अेकेश्वरवाद और भ्रातृभावका बहुत असर पडा होना चाहिये। अिसी प्रकार मुस-लमान औलियो और सूफीपथके मस्त फकीरो पर वेदान्त और अुप-निपदोके सिद्धान्तोका प्रभाव भी कम नही पडा। अिस प्रकार दोनोके अुत्तम तत्त्वोके सुमेलसे नअी भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी सस्कृति निर्माण हुअी है। भारतकी भाषाअें, लोगोके रीतरिवाज वगैरा अिसी सुमेलके परिणाम है। यह सब किस प्रकार हुआ, यह हिन्दू सतो तथा मुसलमान औलियोंके जीवन कैसे थे और अुनका दोनो जातियोकी आम जनता पर कैसा असर पडा, अिसका वर्णन करके समझानेका काम मैं अितिहासका मानता हू। अुत्तर भारतका अितिहास जैसे मुसल-मानोंके साथ हुअे ससर्गसे रगा गया, वैसे दक्षिण भारतके अितिहासमें ओसाअियोके संसर्गका असर भी काफी पाया जाता है। अितिहासमें यह सब देखने और समझनेके बजाय राजाओके अितिहास परसे — अुन्होने अपनी राजनैतिक महत्त्वाकाक्षाओ तथा स्वार्थोंको पूरा करनेके लिअे देशकी भिन्न भिन्न जातियोको अेक-दूसरेसे लडाया हो, कभी अेक जातिको तो कभी दूसरीको अपने पक्षमे लेकर अुस पर मेहरबानी दिखाअी हो अथवा अुस पर नाराजी जाहिर की हो और अुससे अलग अलग जातियोमे ओर्ष्या-द्वेषके बीज बोनेका प्रयत्न किया हो अुस परसे यह अनुमान लगाकर कि दोनो जातिया अेक-दूसरेके साथ द्वेष करती अथवा लडती रही है हम अुसे अितिहासमे दर्ज करें, तो यह बालकोको ओर्ष्या-द्वेषका अितिहास पढाने और अिस प्रकार ओर्ष्या-द्वेषको जिन्दा रखनेका ही काम होगा। आज मुसलमानोंके सबधमें हिन्दुओंके मनमें और हिन्दुओंके संबधमे मुसलमानोंके मनमे जो द्वेष और अविश्वास अथवा अरुचिकी भावना है, वह अिस बातका परिणाम

है कि दोनो जातियोके बीच हुअी लडाअियोकी घटनाओको हम विस्मृतिके गर्तमे नही दफना सके, कुछ याद रखने जैसी हकीकतोको अच्छी तरह दर्ज करके नही रख सके, कुछ तथ्योका विकृत रूपमें अुल्लेख किया गया है और कुछ घटनाअे जो कभी घटी ही नही सच्ची अैतिहासिक घटनाओके रूपमे अितिहासमे प्रचार पा गअी है। यो तो अितिहास-शोधक कहते है कि बौद्धो और ब्राह्मणोके बीच तथा गुजरातमे जैनो और ब्राह्मणोके बीच कम लडाअिया नही हुअी। परतु साधारण अितिहासोमें यह चीज नही आती, अिसलिअे जनताको अिस विषयका कोअी खयाल नही है और अिसलिअे अिन धर्म-सप्रदायोके लोगोंके बीच आज कोअी अीर्ष्या-द्वेष नही है। अैसा ही हिन्दू-मुसलमानो और अीसाअियोके सबधमे करनेकी जरूरत है। पाकिस्तान अलग हो गया है, फिर भी हिन्दुओ और मुसलमानोको पाकिस्तान और भारत दोनोमे अिकट्ठे रहे बिना कोअी चारा नही है। अेक देशके भीतर रहनेवाली अलग अलग जातियोके बारेमे जैसा विचार करना चाहिये, वैसा ही विचार अलग अलग देशोके बारेमे भी करना चाहिये। अेक देशकी दूसरे देशके साथ लडाअी होनेकी घटनाअे अितिहासमे दर्ज करके रखी जाती है। परतु अेक-दूसरेके बीचके जीवन-व्यवहारकी अनेक शान्तिपूर्ण घटनाअे अुत्पात मचानेवाली न होनेंके कारण दर्ज नही की जाती। अिसलिअे बालकोंके मन पर यह असर पडता है कि विदेशियोको तो शत्रु जैसे मानकर अुनसे हमेशा होशियार ही रहना चाहिये। अिससे बालकोके दिलमे गलत देशाभिमान अुत्पन्न होता है, जिसके कारण अैसी भावनाको पोषण मिलता है कि अपने देशकी बात अुचित हो या अनुचित, परतु हमे तो अपने देशका ही पक्ष लेना चाहिये।

अितिहास-लेखकको भूतकालकी बाते दर्ज करनेमे बडे विवेकसे काम लेना चाहिये। अुसे अेक भी असत्य बातका कभी प्रचार नही करना चाहिये। तथ्योको विकृत रूप देना असत्य जैसा ही अथवा अुससे

भी बुरा है। परतु सच्ची घटनाओको, जिनकी तहमे मनुष्यकी मूर्खता अथवा रागद्वेष हो, भुला दिया जाना चाहिये। अीर्ष्या-द्वेष पीढी दर पीढी बना न रहे परतु भुला दिया जाय और मानवकुलकी भिन्न भिन्न शाखाअे अेक-दूसरेके नजदीक आये और आपसमें मिलजुल कर रहे, अैसा वातावरण पैदा करनेमे अितिहासकार काफी हाथ बटा सकता है।

मैंने अूपर कहा है कि अितिहासकी शिक्षा अैसे विद्यार्थियोको दी जा सकती है, जिनके विचार और अुम्र कुछ पक गये है और जो सामाजिक घटनाओकी तहमें रहनेवाले कार्यकारण सबधको समझ सकते है । तो फिर क्या बुनियादी शालाओमे अितिहासके लिअे स्थान हो सकता है? मेरे खयालसे अुनमे कालानुक्रममे गूथा हुआ सारा अितिहास पढ़ानेकी जरूरत नही। कालानुक्रमका थोडा-बहुत खयाल भी बडी अुम्रमे ही हो सकता है। अिसलिअे बुनियादी शालाओमे तो बच्चोको दिलचस्प लगनेवाले अैतिहासिक व्यक्तियो और घटनाओकी बातें ही कही जा सकती हैं। जनकल्याणके लिअे, स्वाभिमान तथा शीलकी रक्षाके लिअे, अन्त करणके विश्वासके लिअे अथवा अैसे ही किसी अूचे हेतुके लिअे कुर्बानी करनेवाले तथा कष्ट सहन करनेवाले व्यक्तियो, सतजनो, धर्मवीरो, साहसी प्रवासवीरो, वैज्ञानिक शोधको, विद्याके अुपासको, और लोकनेताओ आदिकी बाते आ सकती हैं। अिनमे अच्छे राजाओकी बाते भी शामिल की जा सकती है। व्यक्तियो तथा समूहके सत्याग्रहकी घटनाओंको स्थान दिया जा सकता है। ये बाते कक्षावार चढते क्रमसे रखी जानी चाहिये। अिससे पूरे अितिहासका ज्ञान तो नही मिलेगा, मगर अितिहासके विषयका कुछ परिचय हो जायगा। समाजको किस मार्ग पर ले जाना है, अिसका खयाल शिक्षकके मनमें सदा ही होना चाहिये और अैसी बातोंके द्वारा अुस दिशामे जानेकी वृत्तिको पोषण मिलना चाहिये।

२२ मअी, १९५०

शिक्षाका विकास

पहला भाग

साबरमती

१

शिक्षाके लक्षण

१

जीवामियां नामक अेक मुसलमान किसान है। पहले वह तेलीका धन्धा करता था, परन्तु कुछ वर्षोसे खेती कर रहा है। मामूली लिखना-पढना जानता है। खेतीके काममे फुरसत मिलती है तब वह बढअीका काम करता है; बढअीके रूपमें वह साप्ताहिक बाजारमे बिक सकनेवाला सामान — खाटे, पेटिया, चलनिया वगैरा बनाता है, साथ ही वह कलअी करने और झालनेका काम तथा सादा लुहारी काम भी जानता है। खाट भरनेकी सन वगैराकी डोरी वह अपने-आप बुन लेता है।

अुसके अक्षर अच्छे नही है, (परन्तु सुलेखनकी परीक्षामें कितने अध्यापक पास होगे, यह शकास्पद ही है) फिर भी वे पढे जा सकते है। वह अितना व्यवहार-कुशल है कि अुसे कोअी आसानीसे धोखा नही दे सकता। गावका मुखिया या बाजारका दुकानदार अुसके 'भोलेपनका लाभ' नही अुठा सकता।

मैंने अुसे हमेशा अुत्साहपूर्ण और आत्मविश्वासी देखा है। दो अढाअी महीनेसे वह नअी जमीन लेनेके लिअे अेक आदमीसे बातचीत किया करता था। परन्तु बातका निपटारा न होनेसे घर बैठा था। फिर भी अुसके मुख पर चिन्ता नही थी, क्योकि वह घडी भर भी निकम्मा नही बैठता था। वह अपने बढअीके और दूसरे फुटकर कामोंमे गुजरके लायक कमा लेनेका विश्वास रखता था।

वह अकेला नही है। अुसे अपने सिवाय और चार आदमियोंका पोषण करना पडता है। अुनमें दो छोटे बच्चे है, अेक लडका 'फेरी' में

और सामान अुठाने व ले जानेमे मदद करने लायक ही है। मुसलमान होनेके कारण अुसकी स्त्री बाहर मजदूरीके लिअे नही जाती।

अुसे समझ लेनेकी जितनी फुर्सत मिलती है अुसके हिसाबसे वह देशकी स्थिति काफी समझता है। खादी, चरखा, असहयोग, गांधीजी — अिन सबके बारेमे वह बिलकुल अनजान नही है। अिनमे वह दिलचस्पी भी लेता है, परन्तु अुसकी भावनाये जितनी चाहिये अुतनी विकसित नही हुअी है, अिसलिअे अिन कामोमे अुसका स्वाभाविक अुत्साह तीव्र रूपमे प्रगट नही होता। फिर भी वह कहता था कि अुसने बुनाअी सीखनेके लिअे आश्रममें रहनेकी माग की थी।

लगभग अेक महीने तक मुझे रात-दिन अुसके सहवासमे आनेका मौका मिला। अुस अर्सेमे मैंने अुसके या अुसके बच्चोके मुहसे अेक भी अपशब्द नही सुना। अुसके बच्चोमें मुसलमान जातिका स्वाभाविक अुद्धत तेज था और अुस तेजके कारण अुनका अूधम माता-पिताको जब असह्य हो जाता तब वे बच्चोको मारते भी थे, परन्तु अुनमे क्षण क्षणमे क्रोधसे या गाली देकर बच्चोको बुलानेकी आदत नही थी। जब गुस्सा करनेकी बात न होती तब प्रेमभरे 'बेटा' शब्दसे ही वे बच्चोको संबोधन करते। कभी कभी फारसी या अुर्दू भजन गाते भी मैंने अुस कुटुम्बको सुना था।

अिनके जीवनमें मुझे अेक खामी मालूम हुअी। ये लोग आठ-आठ दिन तक नहाते नहीं थे और कपडे तो न जाने कितने दिनमे धोते होंगे। गदगीसे अुन्हे नफरत नही होती थी।

अिस खामीको छोड दे तो मेरे खयालसे अिस मियाको हम पूर्ण कुमार-मदिरकी शिक्षा पाया हुआ मान सकते है। हमारे देशका अेक-अेक मनुष्य अितना शिक्षित दिखाअी देगा, तब हमारा प्राथमिक शिक्षाका प्रश्न हल हुआ माना जायगा।

अिसमे से कितनी शिक्षा अुसे पाठशालामे मिली होगी? 'शिक्षा' का प्रचार करनेवाले अिस प्रश्नको किस दृष्टिबिन्दुसे देखें,

अिसका मेरे खयालमें यह भाअी अेक अच्छा पदार्थपाठ हमारे समक्ष पेश करता है।

२

अेक वार मै थोडे दिनके लिअे आवू पर्वत पर गया था। मुझे गाडीके 'ठेकेदार' के कार्यालयमें जाना था। रास्तेका मुझे अच्छी तरह पता नही था। अिसलिअे मै रास्ते चलनेवाले आदमियोंमे पूछता पूछता आगे वढ रहा था। दो गोरे विद्यार्थी मामनेसे आ रहे थे। अेककी अुम्र तेरह-चौदह वर्षकी और दूसरेकी ग्यारह-वारह वर्षकी होगी। मैंने अिन लडकोसे ठेकेदारके कार्यालयका रास्ता पूछा।

वडे लडकेने थोडी-सी सूचना दी, परन्तु वह छोटे लडकेको अधूरी लगी। वह जमीन पर घूटनोंके वल वैठ गया और अगुलीसे रेतमें अुसने हम जहा खडे थे वहासे ठेकेदारकी दुकान तकका रास्ता नक्शा खीचकर वता दिया। फिर रास्तेमे आनेवाली मूचक दुकानो और जगहोके स्थान वताये और यह समझाया कि 'अुस कुअेंके पास जरा टेढे सामनेकी ओर जो भूरा वगला आयेगा वही ठेकेदारका दफ्तर है।'

यह समझाने और रास्तेमें नक्शा खीचनेका काम अुस लडकेने अितनी चपलता और विवेकसे किया कि मुझे अैमा लगा कि मचमुच यह लडका 'शिक्षित' है।

रास्ता सीधा नही था। दाअी वाअी तरफ वह कअी तरहसे सापकी तरह मुडता था, परन्तु अुसने मुझे लगभग ठीक रास्ता वता दिया। मै विद्यापीठ कार्यालयसे रोज मावरमती आश्रम जाता हू, परन्तु आज भी मुझे अैसा नहीं लगता कि मै रास्तेके मारे मोड़ अच्छी तरह खीच कर वता सकता हू। मुझे अैमा लगे विना नहीं रहा कि वह लडका मुझसे अधिक अच्छी तरह 'शिक्षित' हुआ है। फिर भी मै अपने नामके आगे दो अुपाधिया लिख सकता हू और शिक्षाके विषयमें

अनेक आचार्य मुझसे सलाह लेनेकी अपेक्षा रखते है। मुझे नही लगता कि जबसे मै राष्ट्रीय मदिरमे रहा तबसे मैने विद्यार्थियोसे जितनी 'शिक्षा' ली है अुतनी मैने अुन्हे दी होगी।

परन्तु अिस दशासे मै लज्जित नही हू, क्योकि छोटे बालकोसे शिक्षा लेकर ही सच्चा शिक्षक बन सकनेकी मै आशा रखता हू।

३

मै आश्रमसे कार्यालयमें आ रहा था। सामनेसे बारह सालका अेक लडका तेज चालसे चला आ रहा था। लडका मुझे नही जानता था, मै अुसे नही जानता था। अुसने मुझे 'वन्देमातरम्' के स्वागतभरे शब्दोसे नमस्कार किया। अुसकी चाल और आवाज दोनोमें विनयके साथ तेज दिखाअी दिया।

फिर अुसने पूछा, "आश्रम यहासे कितनी दूर है?"

"दो मील। वहा तुम्हें किससे काम है?"

"मेरे पिता आश्रममें काम करते है, अुन्हे बुलाने जाना है।"

अिस लड़केको 'साहित्य, सगीत और कला' कितने आते होगे, यह मै नही जानता। परतु मुझे अुसकी चालमे, अुसकी आवाजमे और अुसकी विनयमे 'शिक्षा' के लक्षण साफ दिखाअी दिये।

'साबरमती', १९२३

२

शिक्षित और अशिक्षित

१

पिछले साल आश्रमसे विद्यापीठके रास्ते जाते हुअे मुझे चने-मुरमुरे वेचनेवाला अेक मुसलमान वूढा रोज मिलता था। धीरे धीरे सलामसे आगे वढकर हम वातचीत करने लगे। अुसकी वातो परसे मैंने जाना कि कुछ वर्ष पहले वह मिलमें काम करता था और वहुत अच्छा कमाता था, वादमे वीमारीके कारण कमजोर हो जानेसे मिलमे काम करने लायक नही रहा। "सेठने मुझसे कहा कि 'मिया, अव तुम दफ्तरमें आकर चपरासीकी जगह वैठे रहना, तुम मरोगे तव तक मै तुम्हे वेतन दूगा।' परतु अिस प्रकार सेठकी मेहरवानी पर जीना मुझे पसन्द नही आया। हम दो आदमी है और मेरी सासके साथ शामिलके शामिल और अलगके अलग रहते है। मेरी सास कहती, 'वेटा, अव मैं तुझे नौकरी करने नही जाने दूगी। तू शहरसे चने-मुरमुरे लाकर सामने वाडजके नाके पर वैठा कर। खुदा शाम तक जितना देगा अुससे हम काम चला लेगे।' अिसलिअे मैं सुवह शहरसे यहा आता हू और दोपहरको नदी पार करके सासके घर खाना खा आता हूं। शामको सासके घर टोकरी रख देता हू और घर चला जाता हू। अिस प्रकार मेरा धधा चल रहा है। शाम तक चार-छ आने मिल जाते हैं, और अितना मिल जाय तो क्यो किसीके गुलाम वनकर रहे?"

मुझे अैसा नही लगता था कि अिस आदमीने लिखना-पढना सीखा होगा। शायद थोडा-वहुत आता भी होगा। परतु वह नहीं कहा जायगा कि वह और अुसकी सास शिक्षित नहीं थे।

२

अिससे भिन्न प्रकारका अनुभव मुझे थोडे महीने पहले अेक राष्ट्रीय शालाके विद्यार्थियोने कराया। वहाके विद्यार्थियोंने अपनी पर्-

गानियोकी कुछ वाते मुझसे कही। वे यदि सच हो (और शिक्षक कहते है कि वे सच है) तो वे हमारे कौटुम्विक जीवनकी अधोगतिका करुणाजनक दर्शन कराती है।

अिस शालामे अग्रेजीकी पाचवी कक्षा तक पढाअी होती है। अधिकाश विद्यार्थी वारहसे पद्रह वर्षकी आयुके और खासे सुखी घरोंके है। तुलसीदासजी कहते है कि रघुकुलकी कीर्ति 'प्राण जाय पर वचन न जाअी' की टेक पर वनी थी; अिस गावके पाटीदार कुलोंके वारेमे मुझे विद्यार्थियोने कहा कि वे अपनी कीर्ति वड़ी हवेली और विवाहमें किये जानेवाले भारी खर्च पर मानते है। पास रुपया हो और दूसरे सद्व्ययके मार्ग सूझने जितनी संस्कारिता न आअी हो तो अुसका अुपयोग अैसे कामोमे करनेकी वृत्ति होना स्वाभाविक है। अमीरीके साथ अैसा वड़प्पन प्राप्त करनेकी अिच्छा तो आम तौर पर रहेगी ही; अिसलिअे यह परिस्थिति कितनी ही अनिष्ट हो तो भी अुसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

परतु विद्यार्थियोंने कहा, "अिसलिअे हमारे माता-पिता हमसे कहते है कि 'अव पढना वन्द करो, अफ्रीका जाओ और रुपया कमाकर लाओ। पढ़ना ही हो तो सरकारी स्कूलमे पढो जिससे अच्छी नौकरी मिले।' हमारे विवाह अभीसे कर डाले है। माता-पिता कहते है कि, 'अिस विवाहमे अितना खर्च हो गया; तुम्हारी पढाअी पर अितना खर्च होता है। यह पैसा ला दो नही तो घरसे वाहर निकलो।'"

अपने पुत्रको कोअी माता-पिता अैसे वचन कह सकते है, अिस पर मुझे विश्वास नही हुआ। किसीने पिताके लिये 'आशा रखनेवाला वाप' कहा है, परंतु माताके लिअे तो वह भी 'आशा न रखनेवाली मा' कहता है। परतु अिन विद्यार्थियोमे से कुछने अपनी माताओ पर भी अैसी भाषाका आक्षेप किया। मै अिसे न मान सका और अिसलिअे मैंने यही समझ लिया कि अिन विद्यार्थियोमे अैसी कोअी अुद्धतता रही होगी जिसे सहन न किया जा सके। और अैसा समझकर मैंने

अुनसे मातृ-भक्ति और पितृ-भक्तिके वारेमें वात की। मैंने यह भी कहा कि कभी कभी क्रोधके आवेशमें अैसे शब्द माता-पिता वोल देते है, परतु ये अुनके हृदयके स्थिर भाव नही होते। अिसलिअे अैसे शब्दोमे यह कल्पना न कर ली जाय कि 'मा-वाप पैसेके ही सगे है।'

मैंने अुस समय विद्यार्थियोसे कहा था और अव भी मै मानता हू कि यह सच नही हो सकता कि लडके माता-पिताको कमाअी लाकर दें तो ही अुन्हें प्यारे लगते है। यदि लडके राम या श्रवण जैसे माता-पिताकी सेवा करनेवाले, विनयी और आज्ञाकारी हो, तो वे निर्धन होने अथवा गरीवी और अीमानदारीसे गृहस्थी चलानेका आग्रह रखनेके कारण माता-पिताको वुरे लगे, यह हो ही नही सकता। मेरा तो पिताके वारेमें भी यही अनुभव है और माताके लिअे तो ससारके अधिकतर लोग अिसकी साक्षी देगे कि माताके लिअे पुत्रका प्रेम अितना बधनकारक होता है कि वह तगी भुगतकर भी पुत्रसे दूर रहना नही चाहती।

परतु अिन विद्यार्थियोने व्योरेवार अपने घरकी जो स्थिति मेरे सामने रखी, अुस परसे अैसा माननेके लिअे कुछ कारण जरूर है कि हमारे कुटुम्बोका वातावरण अितनी अधोगतिको पहुच गया है कि अुसमे माता-पिताके मनमे रुपया ही मुख्य वन जाता है — पैसे मिलनेकी दृष्टिसे ही वालकोका पालन-पोषण किया जाता है, अुनके विवाह किये जाते है, अुन्हें पढाया जाता है।

कोअी रम्य स्वप्न देखनेके वाद सत्य जागृतिमे आने पर मन वहुत वार यह माननेको तैयार नही होता कि वह स्वप्न झूठा ही था, अिसी तरह यह मानते हुअे हृदयको आघात लगता है कि माता-पिताके वारेमें मेरी कल्पना गलत और विद्यार्थियोकी वताअी हुवी अुपरोक्त स्थिति सच्ची ही होगी। मै मानता हू कि अिसका दूसरा पहलू भी जरूर होगा। फिर भी वालकोंके प्रति माता-पिताकी शुद्ध वुद्धिके वारेमें दसने पद्रह वर्षके वच्चोके हृदयमें शका अुठ सकती है, यह चीज ही मुझे

आघात पहुंचानेवाली लगती है; और वह — पढाओी कितनी ही हुओी हो, परतु — शिक्षाका अभाव सूचित करनेवाली लगती है।

अिसके विपरीत पचास वर्षके वूढेको 'वेटा' कहनेवाली और स्वतत्रता खोनेकी अपेक्षा थोडी कमाओीसे सतोष माननेवाली सासकी भावना कितनी स्वाभिमानी और प्रेमपूर्ण जान पडती है!

३

तीसरा अनुभव भी आश्रम और विद्यापीठके बीचके रास्तेका ही है। अिस रास्तेसे आनेवाले अेक गावके वालक वाडजकी राष्ट्रीय शालामे पढते थे। जाते आते दोनो समय रोज हमारा मिलाप होता था और अेक वार मैं राष्ट्रीय शाला देख आया था अिसलिअे हमारे वीच काफी मित्रता हो गओी थी। दूरसे मुझे सामने आता देखकर वे 'जय जय, किशोरलालभाओी, जय जय किशोरलालभाओी' कहकर दौड़ते हुअे आते, मुझसे घडी निकलवाकर कितने वजे हैं, यह जाननेका लगभग रोजका कार्यक्रम रहता; कभी कभी वे चनोकी माग करते। शालामें छुट्टी होती तव वे रास्तेके पेड़ पर चढ जाते। मुझे पेड परसे देखकर डालीके पीछे छिप जाते और पुकार कर ढुढवानेकी कोशिश करते। हमारी यह मित्रता कओी महीनो तक चली।

परतु वादमे अुसमें अेक विघ्न आ गया। कुछ मास पूर्व वाडजमे अत्यज-प्रवेश होनेसे अिन लडकोने राष्ट्रीय शालाका त्याग कर दिया और वे मुझसे नाराज हो गये। सभव है अुनका यह भी खयाल हो कि वाड़जमें अत्यजोको लानेमे मेरा हाथ है। अव वे सरकारी शालामे जाते हैं।

अव भी हम आमने-सामने मिलते हैं। परतु अव मुझे 'जय जय' कैसे किया जा सकता है? मैंने अेक वार अुनसे कहा, "तुम सरकारी शालामें भले ही जाओ, परतु अिससे हमारे वाते करनेमें क्या हर्ज है?" परतु यह मित्रता अव अुनके लिअे स्वप्नवत् हो गओी। पहले तो वे

मेरी आखोसे अपनी आखें न मिलने देते। मुझे दाअी ओर चलता देखकर वे बाअी ओर हो जाते और मुह अुल्टी दिशामे कर लेते। अेक विद्यार्थी, जो पहले मुझे देखते ही हस देता था, अब हसी न आने देनेके लिअे मुह बन्द करके दूसरी दिशामे गरदन मोड कर चलने लगा।

मित्रताके स्थान पर तिरस्कारकी वृत्ति अुत्पन्न हो जाय तो वह कितनी तेजीसे बढती है, यह मुझे अब देखनेको मिलने लगा।

धीरे धीरे अिन लडकोकी वृत्तिमे फर्क पडने लगा। अब वे रास्ते या आखोकी दिशा नही बदलते, परतु आखे बडी करके और छाती निकालकर सामने आते है और मेरे दोनो ओरसे पासमे होकर चले जाते है।

अेक दिन मुझे छोडकर बहुत आगे चले जानेके बाद मैने अुन्हे 'केसला, केसला' चिल्लाते सुना। अुस दिन अिसका मर्म मै न समझ सका, परतु बादमें अनुभव बढता गया। अब अुन्हे अैसा नही लगता कि अिस तरह चिल्लानेके लिअे अुन्हे बहुत दूर जाना चाहिये। अब मेरे मुह पर ही कभी-कभी अेकाध गालीके साथ यह आवाज लगाअी जाती है। मैं जानता हू कि यह आदत लबे समय तक टिकेगी नही। थोडे दिन बाद अुनको अिस चिल्लाहटमें आजका-सा रस नही मालूम होगा। और जब चित्तको खीचनेवाला कोअी और विषय मिल जायगा तब वे मुझे भूल जायगे। परतु यह वस्तु विचार करने जैसी है।

वे लडके सातसे दस वर्षके बीचके है। अुनकी पढाअी राष्ट्रीय शालामें या सरकारी शालामे नियमित रूपमे होती रही है। फिर भी अुन्हें सच्ची शिक्षा देनेका घरमें या पाठशालाओमे प्रयत्न हुआ हो, अैसा मुझे नही लगता। अुनकी स्वाभाविक मधुरताका भी हनन होने लगा है, यह स्थिति कितनी दयाजनक है?

नवजीवन, केळवणी अक, २६–७–'२५

३

ज्ञान या अज्ञान ?

१

मै जव छोटा था तव अेक वृद्ध मारवाड़ी महिला मेरे घर पर हमेशा आती थी। सम्राट् जॉर्ज जव राज्याभिषेकके लिअे भारतमें आनेवाले थे, तव अुस प्रसंग पर अुत्सव मनानेके लिअे जैसे स्थान स्थान पर धूमधाम मची हुअी थी वैसे हमारे गांवमे भी हो रही थी। अेक दिन अुस महिलाने मुझसे पूछा, "भाअी, यह क्या हो रहा है? लोग कहते है कि राजा आनेवाला है, राजा आनेवाला है। कौनसा राजा आनेवाला है?"

मैने समझाया, "हमारे देशके वादशाह जॉर्जका राज्याभिषेक होनेवाला है?"

महिलाने कहा, "परतु हमारे देशमे तो रानीका राज है न?"

मै चकित हो गया। रानीकी मृत्यु हो गअी, अेक दशक तक राज्य करके अेडवर्डकी मृत्यु हो गअी और अव अुसके लडकेकी राज्य करनेकी वारी आ गअी, यह सव अिस महिलाको आज भी जानना वाकी है। वॉशिंग्टन अिर्विंगको अमरीकामे वीस वर्षमे हुअे फेरवदलकी विलक्षणता दिखानेके लिअे रिप वान विंकल्को वीस साल तक सुला देना पडा। परतु हमारे देशमे अिस महिलाको तो सारे गावके अेक-अेक देवालयके दर्शनोका नियम पालन करनेके लिअे रोज सुवह छ. मे वारह वजे तक घूमते रहना पड़ता है, तो भी अुसे वारह वर्षमे रानीके मरनेकी वात मालूम हुअी।

मैने रानी और अेडवर्डके मरनेकी वात कही। अुसने कहा: "तो हमारे देशमे अव त्रियाराज चला गया और पुरुषका राज हो गया!"

वेचारी अिस महिलाको अैसा लगता था कि अितने वडे मुल्क पर अेक स्त्री राज करे, यह कैसी अद्भुत वात है! अुस स्त्रीका कितना वल और पराक्रम होगा!

ब्रिटिश राज्यकी रचना अिस प्रकारकी है कि अुसमें राजगद्दी पर बैठनेवाला पुरुष हो या स्त्री दोनों अेकसे ही नि.सत्व है और अुस गद्दी पर बैठनेके लिअे किसी बल-पराक्रमकी जरूरत नही होती, अेक विशेष वर्गमे विशेष प्रकारसे होनेवाले जन्मकी ही जरूरत पडती है, राजगद्दी पर बैठनेवाला राज्य करनेवाला नही होता, परतु राज्य करनेवाला दूसरा ही होता है — यह सब अिस महिलाको किस तरह समझाया जा सकता है, अिस बारेमे मैं विचारमें पड गया।

फिर भी, वह महिला कोअी अज्ञानमे सतोष माननेवाली नही थी। भरी जवानीमे वैधव्य प्राप्त हो जानेके बादसे लकडीके सहारे चलनेकी शक्ति रही तब तक बहूको बाधा होती तब लडकेको खाना बनाकर खिलाने और व्रत न हो अुस दिन अेक बार पेटको भाडा देनेके सिवाय बाकीका सारा समय अुसका साधुओकी खोजमे जाता। गावमे कोअी नये बैरागी आये है, यह सुनते ही वह सबसे पहले अुनकी पूछताछ कर आती। मारवाडी होने पर भी नियमित रूपसे 'वचनामृत' सुन-सुन कर अुसकी भाषा अुसे आने लगी थी और 'भक्त-चिन्तामणि' तथा 'निर्गुणदासजीकी बातें' सुनकर श्री सहजानद स्वामीका चरित्र अुसकी दृष्टिके सामने स्पष्ट तैरता रहता था। भजन तो अुसे अनेक आते थे और वृद्धावस्थामे भी नये नये सीख लेती थी। अेक तरफ अुसे अपने पातिव्रत पर यह विश्वास था कि अुस पर कुदृष्टि रखनेवालेका भला हो ही नही सकता और दूसरी तरफ रक्षा करनेवालेके रूपमे अीश्वर पर अुसकी दृढ श्रद्धा थी। और वह अिसका वर्णन भी करती थी कि जवानीके दिनोमे अुसे तग करने आनेवालोके क्या हाल हुअे थे।

ये सब ज्ञान प्राप्त करनेकी जाग्रत पिपासाकी निशानियां थी, परतु काफी विवेक-शक्ति न होनेसे यह ज्ञान-पिपासा फलीभूत नही हो सकती थी और जिज्ञासा होते हुअे भी अज्ञान ही रहता था। क्योंकि आप अुसके सामने चिढानेके लिअे भी 'छी' करके खडे रहे या प्याज साथ लेकर अुसके सामने जाय तो वह वहींकी वहीं दस मिनट बैठ

जाती, कोअी अच्छा चिकना या रंगीन पत्थर दे दें तो वह अुसके देवताओके संग्रहमें जुड जाता और फिर रोज अुसकी भावपूर्वक सेवा होती। अिस प्रकार ताम्रपात्र भरकर देवता अुसके पास जमा हो गये थे। गावके अेक अेक शिवालय और वैष्णव मदिरके सिवाय हमारे जैसोके यहा जो खानगी देवसेवा होती वहां भी अुसकी बारिया वधी हुअी थी। गरज यह कि अुसमे श्रद्धा थी, पवित्रताका शौर्य था, परतु विवेकके अभावमे अनन्यता — दृढ धारणा — नही आ पाती थी, और अिसलिअे व्यवहारज्ञान या अध्यात्मज्ञानमे से अेक भी वढ नही पाता था।

२

दूसरी वात ताजी ही है। दासबाबूकी मृत्युको दो चार दिन हुअे थे। मै आश्रमसे कार्यालय जा रहा था। रास्तेमे अेक रवारी (अहीर) से भेट हुअी। वहुत दूरसे अकेले ही चल कर आनेकी अुकताहटके कारण या वातूनी स्वभावका होनेके कारण, कोअी निमित्त मिलते ही (जो मुझे याद नही) अुसने मुझसे बाते करना शुरू कर दिया।

अुसने कही सुना था कि अहमदाबादके किसी मदिरके बैरागियो और मुसलमानोमें झगडा हो रहा है। वह मुझसे अिसके बारेमे पूछ-ताछ करने लगा। परतु अिस विषयमे मै अुससे भी अधिक अज्ञानी निकला। मुझे अिस विषयकी कुछ भी जानकारी नही थी। अिसलिअे झगडेकी जड वगैरा अुमीने मुझे समझाअी और अव यह जाननेको अुत्सुक था कि आगे मामला कहा तक पहुचा है। अुसे आश्चर्य हुआ कि मै शहरके अितने नजदीक रहते हुअे भी कुछ नही जानता, परतु जो सत्य था अुमे मै कैसे वदल सकता था!

परतु अुमे तो किसी न किसी तरह वाते करके रास्ता काटना था, अिसलिअे विपय वदला और मुझसे परिचित विपय पर पूछना शुरू किया।

"गाधी महात्मा यही है?"

"नही, बगाल गये है।"

"गाधी महात्मा क्या बगालके है? वे बगालमे क्यो रहते है?"

मैने कहा, "नही, भाअी, वे तो यहीके है। काठियावाडके है। कामके लिअे बगाल गये है।"

"यहाके है? किस गावके?"

"पोरबदरके।"

"यह बगाल तो वही है न जो गोपीचद राजाका मुल्क कहलाता है?"

"हा, वही।"

गोपीचद राजाके कारण ही अुसे बगालका परिचय था। अुसने गोपीचद राजपाट त्यागकर विरागी बने अुसका भजन गाना शुरू किया। अुसका आरभ मै भूल गया हू। परतु बीच-बीचमे अुसकी आलोचनाअे चलती रहती थी।

"कितना बडा राजा था! देखिये न

'अीडा, पिगळा, सुखमणी नारी,
बारसे परणी ने तेरसे कुवारी!'*

अितना बडा वैभव और माया छोडते अुसे जरा भी देर लगी? और हमने छोटासा अेक गधा पाला हो तो अुसकी माया भी हम नही छोड सकते!"

---

* अिस गुजराती लोकभजनका शब्दार्थ है — (गोपीचन्द राजाकी) अीडा, पिगळा और सुखमणी वगैरा सैकडो स्त्रिया थी, अुसके रनवासमें १२ सौ विवाहित और १३ सौ कुवारी लडकिया थी। अिस भजनमे हठयोग सम्बन्धी अिडा, पिंगला, सुषुम्ना वगैरा नाडियोका रूप बिगड कर अूपर जैसा हो गया है और नाडीका नाम बनाकर अुपरोक्त अीडा, पिगळा वगैरा राजाकी सैकडो स्त्रियोकी कल्पना विचित्र ढगसे घुस गअी है।

मैं सोचने लगा कि अिस आदमीको ज्ञानी कहू या अज्ञानी। अेक तरफ गोपीचद राजा और अुस रबारीके बीच कितनी ही शताब्दिया बीत गअी। अिस बीच बंगालमें कितनी ही अुथल-पुथल हो गअी, अिसकी अुसे जरा भी गध नही। अुसके मस्तिष्कमे तो गोपीचद राजाके साथ ही बगालका साहचर्य है। दूसरी तरफ हमारे पढे-लिखोने गोपीचदका नाम सुना होगा, कदाचित् अुसका नाटक देखकर थोडी-वहुत अुसकी कथा जानी होगी, परतु बगाल या अुज्जैनका अुन्हें कुछ भी खयाल नही होगा। अिस रबारीके लिअे गोपीचद और बीसवी सदीके बीचका बगालका अितिहास नीदमे चला गया; हममे से बहुतोको जैसे नीदके बीच-बीचमे सपने आ जाते है, वैसे ही अितिहासमे पठानो या अकबर या शूजाके सवधमे बगालकी कुछ कुछ झाकी हो जाती है, परतु अैसा लगता है मानो बगालके अितिहासका प्रभात सिराजुद्दौला या क्लाअिवसे ही हुआ है।

गोपीचदका धार्मिक जीवनके साथ कोअी सबध न हुआ होता, तो अिस भाअीको गोपीचदका नाम सुननेका प्रसग न आता। धार्मिक जीवनके साथ जुड जानेके कारण गोपीचद सबधी जानकारी भक्तो द्वारा भजनोके जरिये अनजानसे अनजान हिन्दू तक पहुच गअी; परतु अन्य ज्ञानके अभावमे अुस जानकारीका भी शुद्ध स्वरूपमे पहुचना कितना कठिन है यह ‘अीडा, पिगळा सुखमणी नारी, बारसे परणी ने तेरसे कुवारी’ की विचित्र रूपमे भ्रष्ट हुअी साखी दिखा देती है। यह भ्रष्टता केवल भाषाकी भ्रष्टता नही, परतु पदार्थकी पहचान सवधी भ्रष्टता भी है।

दूसरी ओर अिस रबारीको गोपीचन्द राजा अैसा लगता है मानो कलकी ही दुनियाका विषय हो, परन्तु हमारी आजकी दुनियाके विषय —दासबाबू—का अुसके जीवनमे क्या स्थान है? दासबाबू मर गये, यह कहनेमे अुस पर क्या असर होगा? जब वह यही नहीं जानता कि अैसा कोअी आदमी था तब अुसके मर जानेकी बात जानकर अुस पर

भला क्या असर होगा ? और अुनसे भी अधिक प्रसिद्ध महात्मा गाधी है, जिनका नाम तो अुसने किसी प्रकार सुन लिया है, परतु गोपीचदके वगाली होनेका अुसे जितना पता है अुतना गाधीके गुजराती या वगाली होनेका अुसे पता नही है।

दासवाबूके स्मारकका चदा अिकट्ठा करनेके लिअे गाव-गाव जाकर हम किस मुहसे अुस स्मारकके लिअे रुपया देनेको अैसे रवारीमे कह सकते है, यह विचार सहज ही मनमे अुठता है।

वडेसे बडे नेताओ द्वारा निकलनेवाले सभी अखवारो, पुस्तको और भाषणोका यह ज्ञान देनेमें कितना हाथ है ? तमाम राजनैतिक हलचलोमे जनताका यह वर्ग किस प्रकार दिलचस्पी ले सकता है ? जनताका अधिकतर भाग क्या अिस रवारीकी कोटिका ही नही है ? और अिस जनताकी जागृतिके विना क्या देशकी गाडी आगे वढेगी ?

तीसरी तरफ यह भी सोचने लायक वात है कि अिस रवारीके जीवनको अितना सस्कारी बनानेमे किसका हाथ रहा है। गोपीचद विरागीका अितिहास अुसने किसकी शालामे पढा ? गधे जितनी माया भी हम नही छोड सकते, यह आत्म-परीक्षण अुसे कहासे मिला ? हमारे देशके अज्ञानीसे अज्ञानी भागमे भी जो सस्कारिताके कुछ वीज है, अुन्हें डालनेवाला कौनसा वर्ग है ? यह कार्य करनेवालोकी जीवन-पद्धति कौनसी है ? हमारे देशकी परिस्थिति ही अिस प्रकारकी है कि अपने कल्याणके लिअे व्याकुल भक्त ही अुस जनता तक पहुच सकते है, दूसरोका कल्याण करनेका भार लेकर वाहर निकले हुअे लोग अुसे स्पर्श नही कर सकते।

यह सच है कि अुन भक्तोमे भी सकुचित दृष्टि रह जाती है। अिसके कारणो पर स्वतत्र रूपमे विचार करना चाहिये। फिर भी देशको सस्कृत करनेमे अुनका जो वडा हाथ है और अुनके जीवनमें देशको सस्कृत वनानेकी जो शक्ति है, अुसका अुचित मूल्य स्वीकार किये विना काम नही चलेगा।

अेसी है हमारी जनता। अेक तरफ अुसमे कुछ सुसस्कारोके बीज है, दूसरी ओर अज्ञानकी गहरी पैठी हुअी घास है। हमारी वर्तमान शिक्षा अुस अज्ञानकी घासको खोद निकालनेका कुछ प्रयत्न कर रही है, परतु जिस प्रकार हमारे जैसे केवल पढे-लिखे आदमी खेतमे निदाअी करने लगे तो बाजरे और घासका भेद न जान सकनेके कारण घासके साथ बाजरा भी अुखाड डालेगे, वैसे ही हमारी मौजूदा शिक्षा अक्सर अुस अज्ञानके साथ सुसस्कारके बीजोको भी खोद डालती है। नीदनेवालेको अुपयोगी वनस्पति और जगली वनस्पतिके बीचका भेद जानना चाहिये, वैसे ही हमे भी अपनी जनताके अज्ञान और अुसके सुसस्कार दोनोको पहचानना चाहिये।

नवजीवन, केळवणी अक, २७–९–'२५

४

परिचारक भील

जेलके अस्पतालमें मुझे बार-बार जाना पडा था। अस्पतालके परिचारकोमे अेक भील कैदी था। वह बिलकुल जड और स्मरण-शक्ति-हीन लगता था। अुमर पचासके लगभग होगी। मुझ पर बहुत ममता रखता था। मुझे बार-बार यह विचार आता था कि मै अुसे क्या सिखाअू। दो चार बार मैने अुसे लिखना सीखनेको ललचाया, परतु अिस बारेमे वह निराश हो गया था। वह जवाब देता था, "मुझे बहुत लोगोने बार-बार पढनेके लिअे कहा, परतु अुनकी बात मझे जची नही। अब आप कहते है अिसलिअे अैसा लगता है कि पढ लेता तो अच्छा होता, परतु अब बूढा हो गया, अब मुझे नही आयेगा।" मैने अुसे स्वय पढानेका वचन दिया और यह विश्वास दिलाया कि जरूर आ जायगा, परतु अुसे विश्वास नही हुआ।

सारे जीवनमे अुसने दो भजन जितना साहित्य भी नही सीखा था। हिन्दू-धर्मके किसी देवी-देवता अथवा राम-कृष्णके नाम भी नहीं जानता था, तब अवतारोके चरित्र तो कहासे जानता? मैंने सोचा कि पढ नही सकता तो कहानियो और भजनो द्वारा ही अुसे कुछ न कुछ ज्ञान दिया जाय।

काल्पनिक कहानियोके लिअे अपना विरोध अलग रखकर मैंने अुसे चिडा-चिडी और पशु-पक्षियोकी कहानिया सुनाना आरभ किया। वह अुमगपूर्वक सुनने जरूर बैठता और अिस तरह हसता मानो अुसे बडा मजा आ रहा हो। परतु अुसकी आखोसे मुझे मालूम हो जाता कि कहानीका अेक अक्षर भी वह नही समझता। मै अुसे पूछता . "क्यो भाअी, मै किसकी बात कह गया, बता तो?" तब वह जवाब देता "यह मुझे पता नही चलता। आप बात कहते है सो मै सुनता हू। परतु याद रखना मुझे नही आता।"

मै विचारमे पड गया। मुझे लगा कि अिस अुम्रमे अिन तुच्छ बातोमें अुसे मजा नही आता होगा। फिर मैंने रामकी कहानी कहना शुरू किया। अेक दिन थोडीसी कही। दूसरे दिन पूछा कि कल शामको क्या बात कही थी। जवाबमे 'शून्य'। मैंने फिर शुरूसे वह कहानी कही और तीसरी शामको फिर पूछा। फिर वही शून्य। अुसे यह भी याद न रहता कि मनुष्यकी बात कही थी या जानवरकी!

मै सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। अेक दिन मैंने अुससे यो ही पूछा "तुझे तीर-कमान चलाना आता है?" बस, प्रश्न पूछनेकी ही देर थी। जोरसे 'हा' कहकर वह अत्यत अुत्साहमे आ गया। और मुझसे कहने लगा कि वह अैसा बढिया तीरदाज है कि अुडते पक्षियोको भी नीचे गिरा सकता है।

कहानियोका थोडासा मसाला मुझे मिल गया। नाम दिये बिना मै अुसे अब धनुर्विद्याकी विविध कहानिया कहने लगा। दशरथके शब्दवेधकी, अर्जुनके द्रौपदी-स्वयवरकी, द्रोण द्वारा तीरसे कुअेमें से बाहर

निकाली हुअी गिल्ली वगैराकी कहानिया सुनाअी। अब अुसकी स्मृति जाग्रत हो गअी। ये सब बातें वह अच्छी तरह याद रख सकने लगा। (नामोको छोडकर — नाम तो वह किसीका भी याद नही रख सकता था। आठ नौ महीने वह हम सबके साथ रहा, परतु अत तक वह चार जनोको भी नामसे पहचानने नही लगा था। वे 'मोटे भाअी' और वे 'गोरे भाअी' अिस प्रकारके वर्णनसे ही वह निर्देश कर सकता था।)

दशरथकी अपेक्षा अर्जुनके बीधे हुअे यत्र-मत्स्य पर वह अधिक मुग्ध हुआ और द्रोण पर तो वह फिदा ही हो गया। "सच्चा बामन, सच्चा बामन! कुअेंमे गिरी हुअी गिल्लीको तीरसे अुछाल कर बाहर निकाल लिया! वह सच्चा तीरंदाज था!"

अिस परसे मुझे अेक सूचना मिल गअी कि वह कौनसी बातें समझ सकता और याद रख सकता है।

थोडे समय बाद 'यह कैसे सूझा?' नामक रूसी पुस्तक मेरे पास आअी। अिस भीलकी जोड़में अेक दूसरा कैदी भी था। भील जितना जड था, अुतना ही यह चालाक था। लगभग सारी जिन्दगी अुसने जेलमे ही गुजारी थी। मुझे अैसा लगा कि यह बात अुसके अधिक योग्य है, और वह अुमे कहनेका मैंने विचार किया। साथमे भील भी बैठता था। मैंने यह आशा नही रखी थी कि भील अिसे समझ सकेगा। परन्तु परिणाम मुझे अत्यंत आश्चर्यजनक मालूम हुआ।

मै यथाशक्ति नाम छोड कर ही बाते करता था; कभी कोअी नाम देना ही पडता तो अेक भील या दर्जी अैसा साधारण नाम दे देता अथवा रूसीके बजाय कोअी देशी नाम रख देता। कहानी कहा तक पहुची है, यह मुझे भील दूसरे दिन बारीक ब्योरेके साथ कह सुनाता। वह राम-लक्ष्मण अथवा बालकृष्णकी बातें नही समझ सकता था; परन्तु अिस रूसी कहानीके सब पात्रोंके अटपटे पराक्रम बारीकीसे याद रख सकता था।

यह कहानी मैं पूरी नही कर सका, अिसलिअे अुसका महत्त्वका जो अतिम भाग था वहा तक नही पहुचा जा सका। परन्तु मैंने देख लिया कि राम-लक्ष्मण जैसे पात्रोके साथ अुसका अपने जीवनमें कोअी सवध नही वधा था, अिसलिअे अुनकी वातोमे अुसकी स्मृति मद थी, परन्तु झूठे नोट वनानेवाले, दीवारमें सेध लगानेवाले, घोडे चुरानेवाले लोगोको वह अच्छी तरह पहचानता था, अिसलिअे अुनकी कहानिया अुसे आसानीसे याद रहती थी।

मैंने यह सोचकर अिसका वर्णन किया है कि मानसशास्त्री और शिक्षक अिस अनुभवसे वहुत कुछ निष्कर्ष निकाल सकेंगे। अिस पर अधिक विवेचन करनेका काम मैं अुन्हीको सौंपता हू।

'श्री दक्षिणामूर्ति', अगस्त १९३१

५

सभ्यताके आधार-स्तंभ

पढे-लिखे लोगोको शारीरिक परिश्रम करनेमे शर्म आती है। आठ-दस घटे दफ्तरमे वैठना, नकलें करना, टािअप करना, हिसाव मिलाना, प्रूफ देखना, पुस्तके लिखना वगैरा अूचे माने हुअे काम करनेमे वे अितने नही अुकताते, जितने खाना वनाना, कपडे अथवा वर्तन धोना, झाडू लगाना, पीसना, कूटना, कातना, नालिया धोना, पाखाने साफ करना वगैरा कामोमे अुकता जाते है। अिसी तरह यदि अुन्हे कभी छोटासा भी वोझा अुठाकर चलना पडे तो वडी शर्म आती है। तव वढअी, लुहार, राज वगैरा कारीगरोका काम तो वे थोडा भी कैसे सीख सकते है? और यदि छोटासा भी अैसा काम निकल आये तो अुन्हे हाथ जोडकर खडे रहना पडता है। कलम, स्याही और कागजसे चिपटे रहकर काम करनेमें जितने ही

घंटोका श्रम क्यो न करना पडे और अुससे अर्थप्राप्ति कितनी ही कम क्यो न हो, तो भी अुसमे प्रतिष्ठा मानी जाती है। परन्तु मेहनत-मजदूरीका काम, भले अुसमे स्नायुओ पर जोर पडता हो, शरीरको लाभ होता हो और रुपया भी अधिक मिलता हो, अप्रतिष्ठित माना जाता है।

अमुक काम अूचा अथवा प्रतिष्ठायुक्त है और अमुक नीचा अथवा प्रतिष्ठाहीन है, यह खयाल कभी कभी लोकसेवकोमे भी पाया जाता है। हरिजन वगैरा पिछडी हुअी जातियोमे विद्याप्रचारकी अपनी प्रवृत्तियोके साथ हम कभी कभी अिन विचारोका भी प्रचार कर देते है। 'विद्या पढो जिससे तुम अच्छी नौकरी पा सकोगे, पाठशालामें शिक्षक बन सकोगे और तुम्हे घरनौकर, मजदूर, कारीगर और भगीका काम नही करना पडेगा।' अिस प्रकारकी बाते कभी कभी दलितोके सेवक नासमझीमे कह डालते है। अिसी तरह स्त्रियोसे भी कहा जाता है कि 'आज तक तुमने खाना बनाया, बर्तन मले, बच्चोको सभाला, अब चूल्हा छोडो, चक्की बन्द कर दो, बच्चोको छात्रालयमे भेज दो, और बाहर निकलकर समाजके काममे लगो।' अिस प्रकारकी बातोंसे यह मालूम हो जाता है कि अैसे कामोके बारेमे लोकसेवकोके कैसे खयाल है।

मेरी समझसे अैसे विचार हम खुद अपने लिअे रखे यह भी दुर्भाग्य है। तब जिन लोगोकी हम सेवा करना चाहते है, अुनके दिमागमे अैसे विचार अुत्पन्न करना अुनकी सेवा नही परन्तु कुसेवा ही है। विचार करने पर मालूम होगा कि दफ्तरोके कामके बिना मानव समाजके लिअे सभ्य जीवन बिताना असभव नही है। परन्तु भोजन, बच्चोका पालन आदि गृहिणी-कर्म, झाडना, लीपना, माजना, धोना आदि भृत्यकर्म और अनाज अुगाना, मकान बनाना, कपडे बुनना वगैरा किसान और कारीगरके कर्मके बिना सभ्य जीवन जीना असभव है। अितिहाससे भी जान पडता है कि अनेक जातिया अैसी

हो गअी है, जिनमे कारकुनी या लेखनवृत्ति न होते हुअे भी वे सस्कृत और समृद्ध थी। अितना ही नही, परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि कारकुनी– कार्यालयविद्या –कायस्थविद्या तो हाल ही में अुत्पन्न हुअी है। मनुष्य समाजका काम हजारो वर्ष तक अुसके बिना ही चलता रहा। और आज भी यह माननेका कोअी कारण नही कि यदि सारी कार्यालय-व्यवस्था अेकदम वन्द कर दी जाय तो मनुष्य-समाज पर भूकम्प जैसी कोअी वडी आफत टूट पडेगी।

अिग्लैण्डमे वकील, डॉक्टर तथा अध्यापकके धधोको माननीय धधे कहनेका रिवाज है। अिन धधोको साधारण लोगोने यह विशेपण नही दिया है, परन्तु अिन धंधोवालोने स्वय ही अपने धधोके लिअे यह विशेषण लगा लिया है। अिसी प्रकार हम दफ्तरका काम करने-वालोने कारकुनीके कामको प्रतिष्ठित धधा मान लिया है।

वास्तवमे देखा जाय तो मानव-सभ्यताकी स्थिति और वृद्धिके लिअे मुशीगिरीकी अितनी जरूरत नही, जितनी गृहिणी-कर्म, भृत्य-कर्म, कृषिकर्म तथा कारीगरके कामकी है। भले यह कर्म स्त्री करे या पुरुष, शिक्षित लोग करें अथवा अशिक्षित, हाथसे करे या यत्रसे, प्रेम और धर्मबुद्धिसे करें अथवा रुपयेके लिअे करे। जिम समाजमें धान्य पैदा करना, पीसना, कूटना, खाना वनाना, कपडे वुनना और सीना, घर, कपड़े और वर्तन साफ रखना, मुहल्ला, नगर और स्मशान स्वच्छ रखना अित्यादि काम सुव्यवस्थित ढगसे होते रहनेका प्रवध न हो, अुस समाजमें कितने ही विद्वान तर्कशास्त्री, प्रतिभावान कवि, प्रखर गणितशास्त्री, सूक्ष्म ज्योतिषशास्त्री, कुशल मत्री और कार्यालय-व्यवस्था करनेमें प्रवीण प्रवधक हो तो भी अुनकी सभ्यता टिक नही सकती। अिन कार्योके लिअे यत्रका अधिकसे अधिक अुपयोग हो तो भी अिन यत्रोके लिअे किसी मनुष्यके हाथकी जरूरत रहेगी ही। और जिन हाथोंसे जमीन जोतने, वीज वोने,

अिकट्ठा करने, अुसे कूटने, पीसने और पकाने, बच्चोको पालने, मकान बनाने, कपडा बुनने, नालिया, पाखाने और मुहल्ले साफ करने वगैराके यत्र चलेगे, वे हाथ सभ्यताके आधार-स्तभ होगे; न कि वे हाथ जिनसे केवल कागज पर अक्षर लिखे जाते रहेगे। यह सच है कि पढे-लिखे लोगोने मानव-सभ्यताको बढानेमे और सुशोभित करनेमे काफी भाग लिया है और अुसकी ख्याति भी बढाओी है। परन्तु साथ ही यह न भूलना चाहिये कि दीवारकी शोभा रगसे बढती है तो भी दीवार ही रगका आश्रय है और दीवारके बिना रगको स्थान ही नही मिल सकता। अिसी तरह सभ्यताके आधार-स्तभ प्रतिष्ठित माने हुअे धधे नही, परन्तु पढी या बेपढी गृहिणियो, भृत्यो, कृषको और कारीगरोके धधे है। अिन धधोको अप्रतिष्ठित कहना अथवा समझना या अुनके प्रति अनादर रखना, अुन्हे करनेमे शर्म आना और अुन्हे अच्छी तरह करनेके अुपाय खोजनेमे रस न लेना विद्वत्ताका लक्षण भले ही हो परन्तु सभ्यताका नही, और लोकसेवकोके अनेक कर्तव्योमे अेक यह भी समझना चाहिये कि वे स्वय अिन कामोमे भाग लेकर अिनकी प्रतिष्ठा बढाये और अुन्हे करनेकी पद्धतियोमे सशोधन करे। गाधीजी जिसे शरीरश्रम (श्रमयज्ञ, ब्रेड लेबर) का सिद्धान्त कहते है, वह यही है।

हरिजनबन्धु, ३–२–'३५

६

धन्धेका निश्चय

१

अपने गुजरातके दौरेमे सरकारी या राष्ट्रीय, हरिजन अथवा हरिजनेतर, जिन जिन शालाओ या छात्रालयोमे मुझे बोलनेका मौका मिला, वहा मै जो अेक प्रश्न सबसे पूछता था वह यह है · 'तुम वडे होकर कौनसा धधा करके अपना गुजारा करोगे, यह तुमने तय कर लिया है?' वेशक, कोअी दर्जनभर तरुण या लडके मुश्किलसे अैसे मिले, जिन्होने अपना भावी धधा निश्चित कर रखा था। कॉलेजके विद्यार्थी भी अधिकतर यह नही जानते थे कि वे ग्रेज्युअेट होनेके वाद निश्चित रूपसे कौनसा धधा करेगे। विनय-मदिरोके विद्यार्थियोमे से अधिकाशको यह सवाल सुनकर अुलटा आश्चर्य हुआ। अैसा प्रश्न विनय-मदिरकी भूमिकामे पूछा ही कैसे जा सकता है? कुमार-मदिरके विद्यार्थियोको जब मैने यह प्रश्न पूछा तब तो शिक्षकोको भी आश्चर्य हुआ। और जब मैने वाल-मन्दिरोके शिक्षकोके सामने यह वात रखी कि प्रत्येक वालकको वडा होकर जीविकाके लिअे क्या धन्धा करना है, अिसका निश्चय आपके वालकोसे वाल-मदिरमे ही करा लीजिये, तब अुन्हे कैसा लगा होगा, यह मै नही जानता।

प्रवाससे लौटनेके वाद अेक शिक्षककी तरफसे मिले पत्रमे से नीचेका भाग अुद्धृत करता हू

"आप छुटपनसे ही अिस वातका विचार करनेकी सलाह देते है कि वालकको वडा होकर किस धधेमे जाना है। परन्तु क्या छोटी अुम्रमे यह तय करने लायक समझ वालकोमें आ जाती है? जिस अुम्रमे दुनिया देखी न हो, अपनी अभिरुचि

या कुशलताका पता न हो, अुस अुम्रमें अैसा प्रश्न निश्चित ही कैसे हो सकता है? मुझे तो लगता है कि विनीत होने तक वालक साधारण शिक्षा ले, हाथ-पैर हिलाना सीखे, भिन्न भिन्न धंधोंके वारेमें जानें, और वादमें वे अपना मार्ग निश्चित करें। अुद्योगोंमें वढअी, लुहार और दरजीका काम थोडा-थोडा सीखा हो तो अुस परसे वे अपना मार्ग निश्चित कर सकते हैं। अिसमें विचारदोष या दृष्टिदोष हो तो वताअियेगा और अपनी दृष्टि अधिक समझाअियेगा।"

अिस मागको पूरा करनेका प्रयत्न करता हूं।

हमारे देशमें शिक्षाका अंग्रेजी काल आरंभ हुआ अुससे पहले अिस वारेमें परेशानी पैदा नहीं होती थी कि लडका वडा होकर क्या धधा करेगा। जैसे हिन्दू हो तो चोटी रखनी ही चाहिये और मुसलमान हो तो सुन्नत करानी ही चाहिये, यह चीज शका अुठाये विना वालक स्वीकार कर लेता था, वैसे ही वह नि शक होकर यह मान लेता था कि वडा होने पर अुसे माता-पिताका धधा ही करना है। वेदान्तका अध्ययन करे, भक्त वने, कविता रचे, वड़ी वडी हवेलिया वनवाये, पुल खडे करे, रास्ते वनाये, चित्र खीचे, अपने धंधेमें कम प्रवीण हो या ज्यादा, थोडा यशस्वी हो या वहुत, फिर भी दरजीका लडका जियेगा तव तक सियेगा तो जरूर और वनियेका वेटा किसी प्रकारके पैतृक व्यापार-व्यवसायमें ही रहेगा। अिस प्रकार रोजगार-धन्धेके मामलेमें किसी प्रकारकी अनिश्चितता नहीं थी। गाधीजीकी भाषामें कहे तो 'वर्णव्यवस्था कायम थी'।

शिक्षाके अंग्रेजी कालमें यह स्थिति वदल गअी। अिसका कारण कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा अुत्पन्न की हुअी शिक्षा-प्रणाली है, कुछ हद तक अंग्रेजी राज्य द्वारा निर्माण किये हुअे नये धधे हैं, और कुछ हद तक यन्त्रयुगके कारण जगत्‌के अुद्योग-धधों और आर्थिक व्यवहारोंमें हुअी भारी क्रान्ति है।

अंग्रेजी कालसे पहलेकी शिक्षामें परम्परागत धघोकी शिक्षाकी व्यवस्था जरूर होगी, परन्तु सभव है व्यवस्थित ढगसे साधारण शिक्षा देनेकी कोअी ठीक योजना न हो। यह अेक दोष था। यह दोप अंग्रेजी राज्यको खटका। अुसे राज्यके अलग-अलग विभाग चलानेके लिअे जिन जिन लोगोकी जरूरत थी — नौकरीमे या स्वतत्र धधेवालोंके रूपमे — अुन्हे साधारण शिक्षाके अभावमे जुटानेमे कठिनाअिया मालूम हुअीं। अिसलिअे अुसने जो शिक्षा-प्रणाली तैयार की, वह पहले केवल साधारण शिक्षा देनेवाली और बादमें विभागोका धधा सिखानेवाली ही तैयार की। साधारण शिक्षाका अभाव हमारे प्राचीन जीवनका दोष था, और यह दोष अंग्रेजो द्वारा खडी की गअी शिक्षा-सस्थाओमे पढे हुओ और अुनमें न पढे हुओके बीचका भेद दिखाअी देने पर लोगोके ध्यानमे आ गया। अिसलिअे अिस शिक्षाके प्रति लोगोमे दिनोदिन आकर्षण बढता गया। यहा तक कि अिस शिक्षाके अन्य दोषोकी ओर जब लोकनायकोका ध्यान आकर्षित हुआ और वे राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनाअें सोचने लगे, तब भी अिसकी चिन्ता कभी दूर नही हुअी कि सामान्य शिक्षामें कोअी कमी न आने पाये। अुल्टे, अैसी योजनाये सोची गअी कि सरकारी शिक्षाकी कमी विशेष प्रकारकी सामान्य शिक्षासे ही पूरी की जाय। अंग्रेजीके बजाय मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना, हिन्दीकी राष्ट्रभाषाके रूपमे स्थापना करना, अितिहासका सशोधन करके अुसे अिस ढगसे सिखाना कि वह राष्ट्रीय भावनाका पोषक बने, मातृभाषाका विकास करना, और थोडे वर्षोंमें अधिक पढाअी कराना — आदि आदि राष्ट्रीय शिक्षाके ध्येय बने। अिस सरकारी और गैरसरकारी शिक्षाका सादा नाम 'साधारण शिक्षा' है। अिसका रोचक नाम है 'मस्कारिताकी शिक्षा'।

परन्तु जितने समय तक बालक या किशोर साधारण शिक्षा पाता हो अुतने ममयमें अुसे अपने पैतृक धधे या जीविका देनेवाले किसी

अन्य धंधेकी शिक्षा किस तरह मिले, अिसका विचार करना किसीको नहीं सूझा था। दोष तो धंधोंकी शिक्षामें भी आ गया था। अेक या अनेक कारणोंसे धंधे नष्ट होते जा रहे थे, कलाअें नाशको प्राप्त हो रही थीं, और जनतामें अज्ञान बढ़ता जा रहा था। अुसमें भी प्रवाह सामान्य शिक्षाकी ओर ही मुड़ा। अिसलिअे धंधोंका जो थोड़ा-बहुत ज्ञान परम्परासे चला आ रहा था, अुसे भी लोग भूलने लगे; और कुछ तो बिलकुल स्मृतिका विषय ही बनकर रह गया। परिणाम यह हुआ कि आज हम यह मानने लगे हैं कि बीस वर्षकी अुम्रसे पहले धंधा तय करना संभव ही नहीं है। जीवनमें बीस वर्ष — कमसे कम पंद्रह वर्ष तो जरूर — सामान्य शिक्षा पानेके लिअे होने चाहियें। नतीजा यह हुआ कि बाप किसान होगा और अुसके लड़कोंमेंसे अेक वकील, अेक डॉक्टर, अेक अिंजीनियर, अेक व्यापारी, अेक आबकारीका दारोगा, अेक रसायनशास्त्री, अेक पाठशालाका शिक्षक और अेक सम्पादक या लेखक होगा, और अुनके लड़कोंमें भी अैसी ही विविधता हो सकती है।

अिस परिणामको लानेमें सरकारी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा, सनातनी और सुधारक, हिन्दू तथा मुसलमान — सभीने समान रूपमें हाथ बटाया। किसीने रुकावट तो डाली ही नहीं। वर्ण अर्थात् धंधा — गांधीजीका यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय, तो सबने मिलकर समाजमें पूरी तरह वर्ण-संकरता और अव्यवस्था स्थापित कर दी। जन्मसे किसीका वर्ण तय नहीं होता, अितना ही नहीं, आदमी बीस-बाअीस वर्षका हो जाय, कदाचित् अेक-दो बच्चोंका बाप हो जाय तो भी वह नहीं जानता कि अुसका वर्ण क्या है अथवा क्या होगा। जिसे अपना ही वर्ण जाननेकी कठिनाअी हो, वह बालकको भला कौनसे धंधेके आनुवंशिक संस्कार देगा?

यह है हमारी आजकी स्थिति। अिससे बाहर निकलनेकी जरूरत है। केवल आर्थिक दुर्दशाका हल ढूंढनेके लिअे ही नहीं, यद्यपि यह

कारण भी कोअी तुच्छ या गौण समझने जैसा नही है, परन्तु लोगोके बौद्धिक और चारित्रिक विकासके लिअे भी। मनुष्य बी० अे० और अेम० अे० तक पढाअी करे, पूर्ण तारुण्यमे आ चुका हो, तो भी यह न जान सके कि वह जीवनमे कौनसा धधा कर सकता है, किस धधेके अनुकूल अुसका शरीर और मन है, तो यह कैसी विषम और दया-जनक स्थिति है। यह भी सभव है कि वह कोअी धधा जानता हो, परन्तु आर्थिक परिस्थिति अुसे बेकार रखती हो। परन्तु वह कुछ भी करनेके लिअे तैयार ही न हुआ हो और किसकी तैयारी करनी चाहिये — यह परेशानी अुसे बीसवे वर्षमे भी रहे, तो यह केवल आर्थिक दुर्भाग्य ही नही, परन्तु मानसिक और नैतिक दुर्भाग्य भी है।

अिसका अेक ही अुपाय है। गाधीजीके शब्दोमे वह यह है कि वर्णव्यवस्थाको हम फिर अुसके शुद्ध स्वरूपमे स्थापित करे। व्यवहारकी भाषामे अिसका अर्थ यह है कि कमसे कम अुम्रमें हम प्रत्येक बालकको यह निश्चय करा दे कि 'तुझे बडा होकर अमुक प्रकारके धधेमे लगना है। तू कुटुम्बकी या अपनी शक्ति, अुमग, परिश्रम और बुद्धिके अनुसार कितनी ही साधारण अर्थात् सस्कारिताकी शिक्षा प्राप्त कर, तुझसे हो सके अितने कला-कौशल सपादन कर, परन्तु यह न भूलना कि तुझे अमुक धधा करना है और अुसके लिअे तुझे छुट-पनसे तैयारी करनी चाहिये। अिस धधेमे तुझे अपना पुरुषार्थ और भाग्य साथ दे तो तू अूचीसे अूची श्रेणी पर चढना, वे साथ न दे तो सामान्य कक्षामे रहना। परन्तु यह निश्चय रखना कि तुझे धधा तो यही करना है।'

यह निश्चय करनेमे माता-पिता तथा शिक्षक बालकके आनुवशिक सस्कार, स्वभाव, जन्मजात सिद्धिया, श्रमप्राप्त सिद्धिया, माता-पिताकी आर्थिक शक्ति वगैराका जरूर विचार कर ले। परन्तु यह विचार करनेमें वर्षोका समय न लगना चाहिये। जितना जल्दी

निश्चय कराया जा सके अुतना अच्छा। और, अिसमे आम तौर पर कौटुम्बिक धंधेको पसंद करनेका रुख होना चाहिये। अपवादरूपमे ही बालकको माता-पिताने भिन्न प्रकारके धंधेमें पढ़नेका अवसर पैदा होना चाहिये।

२

आजके समयमे भले ही अठारह नही, अठारह सौ प्रकारके धंधे हो गये है और अुनमें दिनोदिन वृद्धि होती ही जा रही है। फिर भी अिन सब धंधोकी जाच करे तो संभव है सारे धंधोको आठ-दस गोत्रोमे बांटा जा सकता है। अुदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि बढ़अी, लुहार, राज, टर्नर, फिटर, रिपेरर, सिविल अिंजीनियर, मेकेनिकल अिंजीनियर, बिजलीका अिंजीनियर, विमानका अिंजीनियर, अेंजिन बनानेवाला वगैरा लोगोका गोत्र अेक ही है। हम अिन्हे मिस्त्री अथवा कारीगरके रूपमें जानते है। अिनमें से भले ही कोअी आठ आने रोज कमानेवाला हो, और कोअी अस्सी रुपये लानेवाला हो। यहा हम अिसमे जो कुछ अन्याय हो अुसे मिटानेका विचार नही कर रहे है। धंधेका प्रारंभिक निश्चय करानेका अर्थ है कमसे कम बालकके धंधेके गोत्रका निश्चय कराना। फिर वह ज्यो-ज्यो बड़ा होता जाय त्यो-त्यो अुसकी शाखाओ और अुपशाखाओका निर्णय होता जायगा।

अिस प्रकार यदि बालक अपने भावी धंधेके बारेमे निश्चित हो जाय तो अिससे केवल अुसीको सीधा मार्ग ढूंढनेमें सहायता नहीं होगी, परन्तु हमारी शिक्षा-प्रवृत्तिया भी अधिक निश्चित मार्ग ग्रहण करेंगी। साधारण शिक्षा भी सब मनुष्योंके लिअे साधारण संस्कारोकी ही शिक्षा नही होती। अेक खास मर्यादाके बाद वकीलके धंधेके लिअे तैयार होनेवालेकी सामान्य शिक्षा अेक प्रकारकी होगी, डॉक्टरके लिअे दूसरी तरहकी होगी; किसानोकी शालामें सामान्य शिक्षाकी अेक दृष्टि होगी और मजदूरोकी शालामें दूसरी होगी। अिस प्रकार जिस गोत्रके

धधेके लिअे शाला होगी, अुसकी सामान्य शिक्षामे भी विलकुल आरभमे ही कुछ न कुछ विशेषता होगी।

अर्थात्, अिसमें यह सूचना भी है कि केवल सामान्य शिक्षा — सस्कारिता — की शाला त्रुटिपूर्ण सस्था है। अिसका परिणाम यह हुआ है कि जैसे-जैसे विद्यार्थी वडा होता है वैसे-वैसे कौनसा धधा किया जाय अिसके विषयमें वह केवल सशयात्मा ही नही वनता, वल्कि वाप-दादेका धधा भी विलकुल भूल जाता है और अुसकी व्यापक शिक्षा अुसके पैतृक धधेके विकासके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेके वजाय अुल्टे अुस धधेके लिअे अुसे अयोग्य ही वनाती है।

धधेका निश्चय और अुसकी शिक्षाकी वचपनसे ही व्यवस्था होनेके सिवाय प्रत्येक वालकके लिअे अेक अितर अुद्योग — अतिरिक्त धधे — की भी जरूरत मानी जायगी। अितर अुद्योगमें दो लक्षण होने चाहिये . मुख्य धधेके साथ आरामके समय रुपयेके लिअे नहीं, परन्तु केवल शौकके तौर पर भी वह प्रिय लगे। आवश्यकता पडने पर, अथवा अैसी अनुकूलता मिल जाने पर, अुसे रोजी देनेवाला भी वनाया जा सके। अिसके अलावा, कभी कभी अेक तीसरा लक्षण भी अुसका हो सकता है। वह यह कि अुसका ज्ञान मुख्य धधेको अलकृत — कलामय — वनानेमें अुपयोगी हो। अिस अितर अुद्योगके चुनावमे वालकके व्यक्तित्वको — अुसके मनको अनुकूल लगनेवाली प्रवृत्ति ढूढनेका पूरा अवकाश रहता है। (अर्थात् मै यहा अितर अुद्योगके तौर पर सहायक अुद्योग अर्थात् कातने-पीजने जैसे अेक धधेके साथ चलनेवाले दूसरे धधेका विचार नही कर रहा हू। अुसका समावेश तो मुख्य अुद्योगमे ही होगा।)

प्रत्येक मनुष्य अपने मनके अनुकूल प्रवृत्तिमे ही रातदिन लगा रह सके और अुसके द्वारा अपनी आजीविका भी कमा सके तो कितना अच्छा हो! परन्तु जिस प्रकारके ससारमे हम रहते है, अुसमें अैसी

अनुकूलता सबको प्राप्त नही होती, बहुत कम लोगोको प्राप्त होती है। अिसलिअे अुदास होने, निराश होने, बडबडाहट करनेसे कुछ नही होगा। अिसीलिअे धर्म मनोनुकूल प्रवृत्तियोका मार्ग नही माना गया, परन्तु कर्तव्यका मार्ग माना गया है। अत मनोनुकूलताकी अपेक्षा कर्तव्यको हम पहला आदर देना सीखे — यह पहला धर्म है। और मनोनुकूल प्रवृत्तियोको आजीविकाके लिअे नही परन्तु शौकके लिअे, निवृत्तिके लिअे, वैयक्तिक विकासके लिअे रखे — यह दूसरा धर्म है।

हरिजनबन्धु, १२–१–'३६

शिक्षाका विकास

दूसरा भाग

सेवाग्राम

१

शिक्षा और श्रम

शिक्षामे अुद्योगका स्थान अवश्य होना चाहिये, अिस बारेमें अब शिक्षाशास्त्रियोमे शायद ही कोअी मतभेद है। परन्तु अुस दिशामे आगे कैसे बढा जाय, यह अभी तक बहुत स्पष्ट नही हुआ है। 'अुद्योग द्वारा शिक्षा' का अेक अर्थ मैं यहा पेश करता हू।

मैं मानता हू कि प्रत्येक शालाके साथ अुद्योग-विभाग होना चाहिये, और अिसके विपरीत प्रत्येक अुद्योग-सस्थाके साथ अुसमे काम करनेवालोके लिअे शालाकी योजना होनी चाहिये। बालक शालामे पढें और अुसके अुद्योग-विभागमें काम करे और अुद्योग भी सीखे। बडे लोग अुद्योग करे और साथ ही अुद्योग-सस्थाओकी शालाओमे पढें। अिस प्रकार अेकके साथ दूसरी सस्था होनी ही चाहिये।

दुनियामे मनुष्य – जातिके बडे भागको मेहनत-मशक्कतका कठिन जीवन बिताना पडता है, किसी न किसी प्रकारका स्नायु-श्रमवाला अुद्योग करके ही निर्वाह करना पडता है। और जिन्हे अैसा नही करना पडता अुनके भी विकासके लिअे अुनकी स्नायुश्रमवाले अर्थात् मेहनतके काम करनेकी शक्तिका विकास करनेकी जरूरत है। अिसलिअे शालाओकी योजना अिस ढगमे होनी चाहिये कि अुनका पाठयक्रम पूरा करनेवाला युवक अथवा युवती मजदूरी (स्नायुश्रम) करनेकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक योग्यता रखे। बडी अुम्रमे अैसा श्रमपूर्ण अुद्योग न करना पडे और अिसलिअे वह न करे तो कोअी हर्ज नही। परन्तु यह नहीं होना चाहिये कि जरूरत पडने पर भी अपनी शिक्षाके कारण (बल्कि शिक्षाकी न्यूनताके कारण) वह अैसा अुद्योग करनेके लिअे शरीरसे, मनसे या बुद्धिसे अयोग्य साबित हो।

स्नायुश्रम करानेवाली मजदूरीके तीन वर्ग किये जा सकते है :

१ जिन कामोमे यंत्रवत् अेक ही तरहका (monotonous) स्नायुश्रम करना हो, अैसे जड मजदूरीवाले।

२ जिन कामोमे ध्यानपूर्वक, थोडी बहुत तालीमके साथ तथा विविध प्रकारका स्नायुश्रम करना हो, अैसे कारीगरी अथवा कुशल मजदूरीवाले।

३ जिन कामोमें हिसावके साथ, शास्त्रज्ञानपूर्वक स्नायु-श्रम करना हो, अैसे मिस्त्रीगिरी या अिजीनियरीके।

मनुष्योमे मेहनत-मजदूरीके लिअे जो अरुचि वढ गअी है, अुसके फलस्वरूप जैसे मजदूरीके कामोकी अपेक्षा वैठकके अथवा वुद्धिके कामोके लिअे अधिक मोह होता है, वैसे ही मजदूरीके धधोमे भी अूपरके विभागोमें अेकसे दूसरेकी कीमत ज्यादा समझी जाती है।

परन्तु मानव-जीवनका विचार करने पर जान पडता है कि केवल जड परिश्रमके काम किये विना जीवन-निर्वाह हो ही नही सकता। अरुचिसे करो, अुमगके साथ करो या कर्तव्यवुद्धिसे हर्ष-शोक-रहित होकर करो, वे करने तो पडते ही है। अुल्टे जैसे-जैसे यत्रोमे सुधार होते जा रहे है वैसे-वैसे कुशलतावाले कामोके लिअे भी यत्र वनाये जा रहे है और अुन्हे केवल जड मजदूरीके काम वना डाला जाता है। मतलव यह है कि अुद्योगोकी क्रियाअे यंत्रोसे हो या हाथसे, परन्तु जड स्नायुश्रमसे सवको मुक्ति मिलना सभव नही। अिसलिअे अैसे कामोंके प्रति मनमे अरुचि वढाना, अुन्हे करनेकी आदत छोड देना तथा अुन्हे करनेमे असमर्थ होना मानव-जीवनको टिकाये रखनेकी अेक अनिवार्य शर्त न पालनेके वरावर है। अिससे मानव-जीवनको सजा मिले विना रही नही सकती। जो अिसमे भागते है अुनका स्नायुविकास कम होता है और अुनमें पीढी दर पीढी अपंगता आती जाती है। अिसमें दोनो तरहसे हानि ही होती है। अिस वातका प्रमाण हमारे पीढी दर पीढी वैठकके काम करनेवालो और 'पढे-लिखो' के शरीर देते है।

अिसलिअे मेरी दृष्टिमें अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि केवल मजदूरीके अेक ही तरहके और श्रमपूर्ण कामोंके लिअे शरीरकी शक्ति बढाअी जाय और कायम रखी जाय तथा अैसे कामोके प्रति अरुचि अुत्पन्न करनेवाले सस्कारो और परिस्थितियोको मिटाया जाय। अिसके लिअे विद्यार्थियोको अैसे कामोमें भी लगाना चाहिये, जिनसे अुन्हे जड श्रम करनेकी आदत रहे।

अिसका अर्थ यह नही कि कारीगरी और अिजीनियरीकी शिक्षाको गौण स्थान देना है। अैसा किया जाय तो स्नायुश्रमवाले अुद्योग करनेकी बौद्धिक योग्यता नही बढेगी। और यह भी समाजके लिअे हानिकारक ही होगा।

अिस प्रकार शालाओकी योजना अैसी होनी चाहिये जिसमे विद्यार्थी काफी जड मजदूरी करते हो, कारीगरी सीखते हो और साथ ही पाठ भी पढते हो। अिन सस्थाओके अुच्च पाठ्यक्रममें अिजीनियरीकी शिक्षा आ जायगी।

अैसे अुच्च पाठ्यक्रमके लिअे विशेष शालाओकी अपेक्षा अुद्योग-सस्थाये भिन्न-भिन्न धधोके अधिक सुविधापूर्ण स्थान हो सकती है। यह सिद्धान्तकी अपेक्षा सुविधा और किफायतका विषय है।

परन्तु औद्योगिक शिक्षाके अेक दो आवश्यक लक्षणोके प्रति ध्यान खीचनेकी जरूरत है।

अेक तो 'अुद्योग' को बिलकुल शुरूसे अुसके शुद्ध अर्थमे ही समझना चाहिये। अर्थात् छोटी या बडी जो भी वस्तु बालक बनाये, वह जीवनमे किसी न किसी अुपयोगमे आनेवाली वस्तु हो या अुसका कोअी भाग हो। खिलौना हो तो भी सच्चा खिलौना हो, केवल बनानेवाले बालकके विनोदके लिअे बनाया हुआ न हो। वह जो कुछ बना रहा है अुसका कुछ न कुछ अुपयोग होगा, अिस ज्ञानके साथ बालककी अुसमे प्रवृत्ति और योजना होनी चाहिये। तभी यह कहा जा सकता है कि बालक 'अुद्योग' करता है।

दूसरे, व्यायाम वगैरा शारीरिक शिक्षाको अुद्योगके अेवजमे रखनेसे काम नही चलेगा। व्यायाम, खेलकूद, कवायद वगैराका क्षेत्र और प्रयोजन स्वतंत्र है। वे आवश्यक है, परन्तु वे औद्योगिक शरीरश्रमकी जगह नही ले सकते।

गाधीजीका सुझाव है कि अिन शालाओका खर्च अुनके विद्यार्थियोंके अुद्योगसे ही निकलना चाहिये। अैसा न हो सके तो अन्य दो सूचनायें ये है कि विद्यार्थियोका अपना खर्च अुनकी मेहनतसे निकलना चाहिये अथवा कमसे कम शालाओका अुद्योग-विभाग स्वावलवी होना चाहिये। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि अैसी अेकाध शर्तका पालन करके ही शालाकी योजना करनेका मार्ग मुझे अभी तक स्पष्ट दिखाअी नही देता। अितना कहा जा सकता है कि वर्तमान जनमानस और गरीवीकी दृष्टिसे विद्यार्थीके श्रमका मेहनताना फीसके खातेमे जमा होनेकी अपेक्षा अुसे कमाअीके रूपमें मिलनेकी व्यवस्था करना अिन तीनोमे अधिक सतोषजनक और परिणामकारक होगा। परन्तु साथ ही जिस विद्याकी कीमत न चुकानी पडती हो वह वहुत सफल नही होती। अिसलिअे मैं वीचका मार्ग सुझाता हू: विद्यार्थियोकी मजदूरीका अेक हिस्सा फीस माना जाय और वाकीका अुनकी कमाअी।

अुद्योगसे शालाका सारा खर्च निकले या न निकले, यह मुख्य प्रश्न नही है। क्योकि किसी भी हालतमें हमें शिक्षाका प्रचार तो करना ही चाहिये। अिसके लिअे दूसरे विभागोंसे अेक अेक पाअी वचानेको हम तैयार होगे। शिक्षाके खर्चके प्रति हमें भविष्यमे आय देनेवाली पूजीकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। अव तक तो केवल पुस्तकीय शिक्षाके खर्चको भी हम अच्छी पूजी समझते आये है। तो फिर औद्योगिक शिक्षाकी तो हमें अधिक अूची कीमत समझनी चाहिये।

असल प्रश्न खर्चका नही, परन्तु कुशल शिक्षाका है। गाधीजी कहते है कि कुशलता सिर्फ शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे ही नही, वल्कि अर्थशास्त्रकी और शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे भी होनी चाहिये। अिनमें

दोष निकालने जैसी कोअी बात दिखाअी नही देती। कुछ व्यक्तिगत शालाओको हम आर्थिक दृष्टिसे कुशल न बना सके। फिरभी यदि अिस बात पर हमारा ध्यान रहेगा तो हम कमसे कम नुकसानको कम करनेमें तथा अमुक प्रकारकी शालाओको स्वावलबी बनानेमे भी सफल हो सकेंगे। और यह भी न हो तो भी अिससे हमारे साधन बढेंगे, घटेंगे नही। शिक्षाशास्त्रकी दृष्टिसे निकम्मी शिक्षासे सन्तोप मान लेना गाधीजीके स्वभावमें नही है, और यदि यह मान लिया जाय कि आर्थिक लाभ पर बहुत नजर रखनेसे शिक्षामे निकम्मापन आ रहा है, तो वे अैसे लाभको छोडनेमें डरनेवाले नही है। यह तो हम जानते है कि कत्तिनोकी मजदूरीकी दरोसे असतुष्ट होकर अुसे बढानेमे और अिस तरह महगी खादीको और महगी करके चरखा-सघको जोखिममे डालनेमें अुन्हे कोअी सकोच नही हुआ।

अिसलिअे, अिस मामलेमे हल ढूढनेका मार्ग यह बतानेकी दिशामें हमारी विचारशक्तिको मोडना नही है कि किस प्रकार गाधीजीकी दलीलोका खडन किया जाय और गाधीजी जो चाहते है वह असभव है; परन्तु यह बतानेकी दिशामे अुसे मोडना है कि हम अुनकी कल्पनाको किस प्रकार अधिकसे अधिक सफल कर सकते है।

हरिजनबन्धु, २४-१०-'३७

२

वर्धा-पद्धति*

१. पूज्य गाधीजी द्वारा प्रतिपादित शिक्षाकी योजनाको अिस लेखमे 'वर्धा-पद्धति' कहा गया है।

२. यह योजना वताती है कि अेक बालकको आगे चलकर मनुष्य-परिवारमे अेक जिम्मेवार कुटुम्बीजनका स्थान लेने लायक वनानेके लिअे हम किस प्रकार अहिसाका प्रयोग कर सकते है।

३ अिस योजनाके सबधमे व्यापक रूपसे यह दावा किया गया है कि यदि हमे मानव-समाजमे खूनी और लडाकू वृत्तिके स्थान पर शान्ति-स्थापक वृत्ति निर्माण करनी है, तो आवश्यक फेरफारोके साथ यह तमाम देशोमे और सभी जातियोमे काम दे सकती है। हिन्दुस्तानके लिअे तो आज यही अेक योग्य पद्धति है।

४ अिस पद्धतिका ध्येय यह है कि वच्चेके अन्दर भले-वुरेका खयाल पैदा होते ही अुसे सामाजिक जीवनके कर्तव्योमे भाग लेना शुरु करा देना चाहिये।

५. अिस पद्धतिका मध्यविन्दु होगा कोअी अुत्पादक पेशा। आम तौर पर हर किस्मकी शिक्षा अिस अुद्योगके जरिये और अिसके साथ गूथ दी जानी चाहिये। अुदाहरणार्थ, अितिहास, भूगोल, गणित, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र अेव साहित्य आदि सव विषयोकी शिक्षा अिस अुद्योगके साथ ग्रथित करके अिसके साथ-साथ दी जाय। अिन विषयोकी अन्य वाते छोड़ी नही जायगी। पर ग्रथित शिक्षा पर अधिक जोर दिया जायगा।

---

* अिस लेखको पहले 'सेगाव-पद्धति' शीर्षक दिया गया था, परन्तु अब 'वर्धा-पद्धति' नाम रूढ हो जानेसे शीर्षक वदल दिया है।

६. अुद्योग भी शिक्षाका केवल साधन या वाहन नही होगा। बल्कि जिस हद तक वह मानव-जीवनमे अनिवार्यत आवश्यक है, अुस हद तक वह हमारी शिक्षाका साध्य भी होगा। अर्थात् अिस शिक्षाका यह भी अेक ध्येय होगा कि अिसके द्वारा हर तरहके शरीरश्रमके प्रति, चाहे वह भगीका भी काम क्यो न हो, बालकमे आदर-भाव अुत्पन्न हो; और अेक अैसी कर्तव्य-निष्ठा अुत्पन्न हो कि अुन्हे अपनी रोजी भी ओमानदारीके साथ शरीरश्रम द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिये।

७ अिस पद्धतिके अनुसार पढानेवाले शिक्षकका लक्ष्य यह होगा कि विद्यार्थी जो भी अुद्योग सीखे अुसीके जरिये अुसकी तमाम शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तिया प्रकट हो।

८ अिसमे समाज-शास्त्र तथा आरोग्य-शास्त्र केवल शिक्षणवर्गके विषयोंके रूपमे ही न पढाये जाय, बल्कि मूक प्राणियो सहित सारे गावकी भिन्न-भिन्न रीतिसे सेवा करनेके लिअे सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यक्रम बनाकर अुनके द्वारा अिन विषयोकी प्रत्यक्ष शिक्षा दी जाय। अिस नवीन विद्यालयकी हस्ती अेक दीप-स्तभकी तरह हो, जो समाज पर चारो तरफसे संस्कृतिका प्रकाश फैलाता रहे।

९ सक्षेपमे कहे तो "हाथ और ज्ञानेंद्रियो द्वारा यह पद्धति व्यक्तिकी बुद्धि और हृदयको सुसस्कृत करे और विद्यालयके जरिये अुसे समाज तथा परमात्मा तक पहुचावे।"

१० शालाके सामुदायिक जीवनमे रहकर रोज तीन या चार घंटे तक सह-परिश्रम करना लडके-लडकियोंके लिअे आरोग्यदायक और अुत्तम रीतिसे शिक्षाप्रद भी है। "मनुष्य चाहे किसी भी पेशेका हो, विज्ञान तथा अुद्योगके विकासके लिअे और सारे समाजके सामूहिक लाभकी दृष्टिसे भी अुसे अैसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वह विज्ञानकी पूरी शिक्षाके साथ-साथ दस्तकारीकी शिक्षाको जोड दे।" (क्रोपाटकिन)

११. मौजूदा शिक्षा-पद्धतिमे तो अधिकाश विद्यार्थी अपनी कॉलेजकी पढाओी खतम कर लेने पर भी यह निश्चय नही कर पाते कि अब आगे वे क्या काम करेगे? हम अक्सर देखते है कि अैसे बहुतसे लडके और लडकिया, जिनके घरकी स्थिति बहुत ज्यादा खराब नही होती, प्राथमिक शालाओसे माध्यमिक शालाओमे और वहासे कॉलेजोमे भारी खर्च अुठाकर जाते रहते है। अिसका कारण यह नही बताया जा सकता कि वे अिन शाला-कॉलेजोमे सिर्फ अुन शुभ सस्कारोको पाने जाते है, जिनका कि ये सस्थाअें दावा करती है। वास्तवमे तो वे अिसलिअे पढते चले जाते है कि अुन्हे कुछ सूझता ही नही कि अिसके अलावा वे और क्या कर सकते है। आजीविका कमानेके लिअे अुपयुक्त धधेके चुनावकी घडीको जहा तक बन पडता है वे आगे ढकेलते जाते है और अेकके बाद अेक अिम्तिहानोमें बैठते चले जाते है। जिस स्त्री अथवा पुरुषको अपने जीवनके प्रारभिक बीस-पचीस साल अिस तरह निरुद्देश्य बिताने पडते है, अुसके अन्दर दीर्घसूत्रता, सशय-वृत्ति, अनिश्चितता और अपने आप किसी निर्णय पर पहुचनेकी अक्षमता आये बगैर रही नही सकती। वर्धा-पद्धतिका अुद्देश्य यह है कि प्रत्येक बालक या बालिकाको वह जल्दी-से-जल्दी अिस बातका निर्णय करा दे कि अुसे अपने भावी जीवनमें कौनसा व्यवसाय करना होगा, और अुसे किसी अेक धधेकी कम-से-कम अितनी तालीम भी जरूर दे दे, जिससे वह जीवनके योग्य धारण-पोषणके लिअे आवश्यक न्यूनतम कमाअी जरूर कर सके।

१२. साक्षरता — यानी लेखन-वाचन द्वारा अनेक विषयोकी जानकारी तथा तार्किक अथवा अैसी ही अन्य चर्चाओको समझनेकी शक्ति — को वर्धा-पद्धतिमें न तो ज्ञान माना गया है और न ज्ञानका साधन ही। बल्कि, अुसमें तो अिसे ज्ञान अथवा अलकृत अज्ञानको प्रकट करनेकी साकेतिक पद्धतिमात्र माना है। अिन सकेतोका ज्ञान तो तब अुपयोगी और जरूरी हो सकता है, जब ज्ञानकी जडें हरी हो। वर्धा-

पद्धतिका अुद्देश्य यह है कि अिन जडोको हरा-भरा रखा जाय। अिसके साधन है प्रत्यक्ष कार्य, अवलोकन, अनुभव, प्रयोग और सेवा। अिनके बगैर कोरी किताबी पढाअी विद्यार्थीके हृदय और बुद्धिके विकासमें विघ्नरूप सिद्ध होती है और अुसके शरीरको भी बिगाडती है।

१३ वर्धा-पद्धतिके अनुसार जो पढाअी होगी अुसमे विद्यार्थीको पढाअीकी बुनियादके रूपमे जो सिखाया जायगा अुसमे नीचे लिखे विषयोका समावेश होना जरूरी है—मातृभाषाका अच्छा ज्ञान, मातृभाषाके साहित्यका साधारण परिचय, देशकी राष्ट्रभाषाका व्यावहारिक ज्ञान, गणित, अितिहास, भूगोल, भौतिक तथा सामाजिक शास्त्र, आलेखन, सगीत, कवायद, खेल-व्यायाम वगैरा। अिन विषयोका साधारण ज्ञान और किसी अेक धधेमे अितनी कुशलता जो साधारण शक्तिवाले विद्यार्थीको मामूली कमाअी करनेकी शक्ति दे सके और अगर वह होशियार तथा परिश्रमी भी हो तो अुसे अिस लायक बना दे कि वह साहित्यिक अथवा औद्योगिक क्षेत्रमे अधिक शिक्षा पानेका पात्र बन जाय। अिस 'बुनियादी तालीम' मे नीचे लिखे विषयोका समावेश आवश्यक नही है—अग्रेजी अथवा अैसे तमाम विषय जिनकी साधारणतया व्यवहारमे जरूरत नही होती, अथवा बुद्धिके विकासके लिअे जो अनिवार्यत आवश्यक नही होते या खुद-ब-खुद अपनी शिक्षाको आगे बढानेकी पूर्व तैयारीके रूपमे जिनकी जरूरत नही होती।

१४ 'बुनियादी तालीम' का अध्ययन-क्रम सात वर्षसे कमका नही होना चाहिये। हा, अगर जरूरत हो तो समय बढाया जरूर जा सकता है। अगर आगे लिखे अनुसार शालाअे स्वावलम्बी हो सकीं, और विद्यार्थियोके पालकोको भी अिनसे कुछ लाभ मिल सका, तो बच्चोको अधिक समय तक पढानेमे अुनके पालकोको कोअी कठिनाअी नही होगी।

१५. वर्धा-पद्धतिके संबंधमे राज्यके कुछ कर्तव्य तथा जीवन-वेतनकी कम-से-कम मर्यादाके विषयमे कुछ सिद्धांत निश्चित कर लिये गये है। वे नीचे दिये जा रहे है।

१६. जो स्त्री या पुरुष मेहनत करनेके लिअे तैयार हो और जिन्हे सरकार पढनेके लिअे मजबूर करे, सरकारका कर्तव्य है कि अुन्हे वह काम दे और अिस कामके बदलेमे कम-से-कम अितना वेतन तो जरूर दे जिससे कि अुनका ठीक तरहसे निर्वाह हो जाय। जिस सरकारमे अितना करनेकी शक्ति नही है, वह 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नही रखती।

१७. अैसा अनुमान लगाया गया है कि आजकलके बाजार भावोंके अनुसार हिन्दुस्तानमे योग्य निर्वाहके लिअे पूरा काम करनेवाले आदमीका मेहनताना फी घटा अेक आनेसे कम नही पडना चाहिये। 'पूरा काम' यहा अुतना काम समझा जाय, जितना कि (तालीम पाया हुआ) अेक साधारण आदमी घटे भरमे कर सके।

१८ हमारे देशकी वर्तमान शासन-पद्धति तथा समाजकी रचना भी अिस कसौटी पर खरी नही अुतरती। अिसलिअे हमारे देशकी सरकारे 'राज्य' कहलानेकी पात्रता नही रखती। अिस खामीका कारण चाहे विदेशी सत्ता हो या खुद हम ही हो, अुसे दूर करना ही पडेगा। वर्धा-पद्धतिका दावा है कि अगर अुस पर साहसपूर्वक और सच्चे दिलसे अमल किया जाय, तो राज्यमे तथा समाजमें आवश्यक फेरफार करनेके साधन और शक्ति वह हमें देगी।

१९ अिसके लिअे राज्यको कम-से-कम अेक अुद्योगको अपना लेना होगा, वह अुद्योग अैसा हो कि जिससे वह लगभग असंख्य आदमियोको काम दे सके और फिर भी अुसे खुद घाटा न अुठाना पडे।

२०. हिन्दुस्तानके लिअे तो हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअी ही अेक अैसा धधा है। अिसमे कच्चा माल, थोडी पूजीमे काम चल

निकलना और अपार मनुष्य-बल आदि वे सारी स्वाभाविक अनुकूलताअें हैं, जो अुसे देशका खास अुद्योग बना देनेके लिअे आवश्यक हैं। फिर अिसके पीछे लंबी परंपरा भी तो है। क्योंकि सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुस्तानने ही संसारको सूतसे ढका है।

२१ यों तो पहले ही कातनेकी मजदूरी असंतोषकारक थी। पर आगे चलकर वह कलोंके बने मालकी प्रतिस्पर्धामें और भी अधिक घट गअी। राज्य तथा जनताको चाहिये कि वे अिस प्रतिस्पर्धाको मिटा दें। और जब तक वे अैसा नहीं कर सकते, खादी-अुद्योगको जिलानेके लिअे प्रतिस्पर्धाकी किसी प्रकारकी परवाह किये बगैर वे कातनेवालेको अितनी मजदूरी देना शुरू कर दें जिससे अुनका अच्छी तरह निर्वाह हो सके।

२२ अिसी तरह सभी प्रकारकी मजदूरीके दर बढ़ानेकी जरूरत है, जिससे कि मजदूरोंका धारण-पोषण पूरी तरहसे हो सके। सरकारको चाहिये कि यह करनेकी शक्ति वह प्राप्त करे। जनताका भी यह कर्तव्य है कि सरकारकी अिसमें मदद करे, जिससे कि वह अिस लायक बन जाय।

२३ अूपर बताअी हुअी अल्पतम मजदूरी बड़ी अुम्रके आदमीके लिअे है। वर्धा-पद्धतिकी शालाके विद्यार्थीके लिअे अुसका दर फी घंटा आध आना पड़ता है।

२४ हम रोजाना कामके तीन घंटे मान लें और यह मान लें कि सालमें नौ महीने शाला लगेगी, तो वर्धा-पद्धतिकी शालाकी कुशलताकी कसौटी यह होगी कि सात दर्जे (हर दर्जेमें २५ विद्यार्थी) और लगभग आठ-नौ शिक्षकोंवाली शालाकी आय अितनी हो जानी चाहिये कि अुपर्युक्त हिसाबसे अगर मजदूरी आंकी जाय तो अुसमें से शिक्षकोंका वेतन निकल आये। शिक्षकका वेतन कम-से-कम [illegible] मासिक मान लिया गया है। (वह [illegible] मासिकसे कम तो किसी हालतमें न हो।)

२५ विद्यार्थियोकी कार्यशक्ति, साधनो तथा शिक्षा-पद्धतिमे अितने सुधार हो जाने चाहिये कि कुशलताकी अुपर्युक्त कसौटी पर तो कम-से-कम प्रत्येक शाला खरी अुतर जाय।

२६ अुपर्युक्त दरसे शालाके विद्यार्थीकी मजदूरी आकते हुअे तथा गावोमे खानगी कारीगरोको आज जो मजदूरी मिलती है अुसका विचार करते हुअे यह तो भय नही रहता कि खानगी कारीगरोके मालके साथ शालाओके मालकी प्रतिस्पर्धा होगी। गावोके कारीगरोकी मजदूरीके दरोको अिस सीमा तक आनेमे जरा समय लगेगा और तब तक तो गावोके कारीगरोकी कार्यशक्ति और साधनोमे भी अितने ही सुधार हो चुके होगे। अिसलिअे यहा प्रतिस्पर्धाका भय रखनेकी कोअी जरूरत ही नही है।

२७ फिलहाल तो शालाको अुपर्युक्त मजदूरी चुकानेका आश्वासन सरकारको दे ही देना चाहिये। कम-से-कम चरखा-सघ तथा ग्रामोद्योग-सघ द्वारा मजूर किये गये दर तो जरूर देने चाहिये। और जब तक विद्यार्थीको फी घटा आध आना मजदूरी नही पड जाती, ये सस्थाअे ज्यो-ज्यो अपने यहा मजदूरीके दर बढाती जाय त्यो-त्यो शालाओकी मजदूरीके दर भी बढते जाने चाहिये। अिस पर शायद यह आक्षेप किया जायगा कि यह तो शालाको प्रत्यक्ष रूपसे सहायता करनेकी बात हुअी। और अुससे मौजूदा बाजार-भावोको देखते हुअे सरकार पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ पडेगा। मगर कारीगरोकी कार्यशक्ति और साधनोमे भी सुधारके लिअे अितनी गुजाअिश है कि हम यह आशा रख सकते है कि पदार्थोकी कीमतें अधिक बढाये बगैर भी पाच वर्षके अदर शाला तथा खानगी (तालीम पाया हुआ) प्रत्येक कारीगर हकके साथ जीवन-वेतनकी न्यूनतम मर्यादा तक पहुचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेगे।

२८. यह जो सिद्धान्त कहा गया है कि अूपर बताये अर्थमें प्रत्येक शालाको स्वाश्रयी हो जाना चाहिये, अुसमे केवल आर्थिक

दृष्टि नही है। बल्कि अिसे शालाके औद्योगिक विभागकी कुशलताकी व्यावहारिक कसौटीके रूपमे रखा गया है।

२९ अभी तो खादी-अुद्योग द्वारा 'बुनियादी-तालीम' देनेकी दृष्टिसे वर्धा-पद्धतिका सागोपाग विचार किया गया है। अिससे कोअी यह न समझ ले कि अिसमे हम अन्य अुद्योगोको प्रोत्साहन नही देना चाहते, बल्कि बात यह है कि दूसरे अुद्योगोके सबधमे योजना बनाने और अनुमान निकालनेके लिअे अभी हमारे पास आवश्यक सामग्री नही है।

३० वर्धा-पद्धतिके सिद्धात आवश्यक फेरफारोके साथ अुसके बादकी शिक्षामे भी लागू करने चाहिये। हर प्रकारकी शिक्षामे स्वाश्रयका तो स्थान होना ही चाहिये। अुच्च शिक्षामे सस्थाका खर्च या तो विद्यार्थियोकी मेहनतसे निकल आना चाहिये या अुनकी फीसमे। और अगर फीस न देनी पडती हो, तो विद्यार्थी अपना खर्च शालामे या बाहर की गअी मजदूरीसे निकाल ले।

हरिजनसेवक, ४–१२–'३७

३

दो संस्कृतियां*

जो विचार मैं पेश कर रहा हू, अुन्हे आप मेरे ही विचार माने। यह न मान ले कि ये विचार तालीमी सघ या गांधीजीका मत भी अुपस्थित करते ही है।

जो शिक्षा-पद्धति हमारे देशमे प्रचलित है, अुस पर अनेक प्रकारके आक्षेप किये जाते है। ये आक्षेप आजसे नही, परन्तु वर्षोंसे होते रहे है। तो भी वह पद्धति अभी तक कायम है और समझाने लायक बात

---

* वर्धामे हिन्दुस्तानी तालीमी सघके तत्त्वावधानमे दिया गया अेक भाषण।

तो यह है कि आक्षेप करनेवाले हम लोगोमे से अधिकतर अुस पद्धतिका सचालन करनेवालोमे से ही पैदा हुअे है तथा आक्षेप करने पर भी अुनी पद्धतिको चलाते रहते है। अिसलिअे हमें विचार करना चाहिये कि हम अिस शिक्षा पर आक्षेप क्यो करते है और अिसके बावजूद अुसीको क्यो चला रहे है।

हम अिस शिक्षा पर आक्षेप करते है, अिसका अर्थ यह है कि अिसके द्वारा हमारी आवश्यकताये अथवा हमारी आकाक्षाअे अथवा दोनो अच्छी तरह पूरी नही होती। हम अिसी शिक्षाको कायम रखते है, अिसका अर्थ यह होता है कि कुछ भी कहे तो भी अिसके द्वारा हमारी कुछ आवश्यकताअे अथवा आकाक्षाअे अथवा दोनो पूरी होती है। अिन दोनो बातोका हमे ध्यान रखना चाहिये और अुनका रहस्य समझना चाहिये।

तो हमे अितना याद रखना चाहिये कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति भी अेक विशेष प्रकारकी सस्कृतिकी प्रतिनिधि है। वह सर्वथा विदेशी है, यह कहना ठीक नही। मेरे मतानुसार जिस प्रकारकी शिक्षा-प्रणाली प्राचीन काशी (अथवा आजकी भी सनातनी काशी) और मुसलमान समयमे हमारे देशमे प्रचलित थी, अुससे आजकी शिक्षाका प्रकार भिन्न नही है। यह सही है कि अिन तीनो युगोमे अलग अलग भाषाओको प्रतिष्ठा मिली है। अेक कालमे सस्कृत भाषाकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक थी; बादमे फारसीकी, फिर हिन्दुस्तानीकी और फिर अग्रेजी भाषाकी — अिस प्रकार अेकके पश्चात् दूसरीकी प्रतिष्ठा बढी। परंतु अुनके द्वारा जिस सस्कृतिको पोषण मिला, वह तो अेक ही रही है। वह सस्कृति अुनकी है, जिन्हें हम भद्र लोग अथवा सफेदपोश लोग मानते है। मेरा तो यह खयाल है कि कमसे कम पिछले अेक हजार वर्षोंमे राज्यकी तरफसे बालको और बडोको शिक्षा और सस्कार देनेका जो काम हुआ है, वह केवल सफेदपोश लोगोमें ही हुआ है।

आर्य — भद्र — सम्मानित जातिया हमारे देशमे आरंभसे ही रही है। वे अग्रेजोकी पैदा की हुअी नही है। सभव है कि अग्रेजोने अुनका क्षेत्र कुछ बढा दिया हो, परतु अग्रेजोने अुन्हे पैदा नही किया।

भद्र सस्कृतिका लक्षण मनुष्यकी तर्क और कल्पना-शक्तिका विकास है। सस्कारिताके क्षेत्रमे शास्त्री, पडित, अुलेमा, कवि, ललित कलाकार (जैसे चित्रकार, गायक अित्यादि) लोग अुसके प्रतिनिधि है। दुनियादारीके क्षेत्रमे अुसके प्रतिनिधि वकील, वैद्य, डॉक्टर, हकीम, अध्यापक, अुस्ताद और मुशी है। अग्रेजी शिक्षा-पद्धतिका सस्कृतिके विकासकी ओर दुर्लक्ष नही था, हा, अुस पद्धतिने अुसे अपने विचारोका वेश जरूर पहना दिया है। परतु यह तो अिस्लामने भी किया था। दुनियादारीके क्षेत्रमे अग्रेजोने अैसे भी कुछ भद्र धधे निर्माण कर दिये है, जिनमे बुद्धि और परिश्रम दोनोकी आवश्यकता पडती है। अिनमे बुद्धि और परिश्रम दोनोके कामोको अलग करके अुनके बौद्धिक विभागोके भद्र धधे बना दिये गये है। अुदाहरणार्थ, अिजीनियरी, खेती वगैरा। अग्रेजोने अपनी सूक्ष्म शास्त्रीय नियम-पालनकी आदतोके जरिये अिन दुनियवी धधोका अधिक विकास भी किया है।

अग्रेजी शिक्षाके विरुद्ध आक्षेप करनेके बावजूद हमारा भद्र वर्ग अुसे छोड नही सकता, अिसके कारण अूपर बताये गये है।

भद्र सस्कृति मनुष्योकी समानताके सिद्धान्त पर खडी नही हुअी है। तात्त्विक दृष्टिसे वह केवल मनुष्योकी नही परतु भूतमात्रकी समानता बतायेगी, परतु दुनियादारीके कामोमे वह केवल अितना ही नही कहती कि मनुष्य मनुष्यके बीच भेद होते है, परतु यह भी कहती है कि ये भेद रहने ही चाहिये। अिसलिअे वह समाज-व्यवस्थाके लिअे हिंसा — पशुबल — को अनिवार्य मानती है और कहती है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपनी-अपनी मर्यादामे रखनेके लिअे समाजको राजदण्डको सदा घूमते रहना चाहिये।

यह कहा जा सकता है कि व्यवहारमें भद्र संस्कृति अुतने ही मानव-विभागको मनुष्य-जातिमें गिनती है, जिसे वह भद्र जीवनमें निभाये रखना योग्य अथवा संभव मानती हो। बाकीके लोग संस्कृतिके क्षेत्रसे बाहर और अिसलिअे अुसकी सभ्यताकी व्याख्याके भी बाहर हैं। वे शूद्र, दास, गुलाम, गिरमिटिया अथवा और कुछ भी हो सकते हैं, परन्तु अुसके समाजके नहीं हो सकते और समाजके सारे अधिकार या सुविधाअें भोगनेके पात्र नहीं हो सकते।

भद्र संस्कृतिसे अूंचे दर्जेकी अेक और संस्कृति भी प्राचीन कालसे जगत्में चली आअी है। अुसे मैं संत अथवा औलिया संस्कृति कहूंगा। कभी कभी अिसे पूर्वकी संस्कृति और भद्र संस्कृतिको पश्चिमकी संस्कृति कहा जाता है। परन्तु मुझे यह परिभाषा अुचित नहीं जान पड़ती। फिर यह भी नहीं है कि भद्र संस्कृति आसुरी है और भद्र संस्कृतिसे बाहर रहनेवाले लोग दैवी संस्कृतिके ही हैं। दोनों संस्कृतियां दुनियाभरमें प्रचलित हैं और जैसे भद्र संस्कृतिमें कुछ दैवी अंश भी हैं, वैसे ही अुसके बाहर रहनेवाले लोगोंमें आसुरी भाव भी हैं। फिर भी सारी दुनियाके देशोंमें औलियों और संतोंकी भी अेक परंपरा सदासे चली आअी है। अिन संतोंका काम जितना और लोगोंमें हुआ है अुतना भद्र लोगोंमें नहीं हुआ। वे या तो भद्रेतरोंमें पैदा हुअे हैं अथवा भद्र वर्गमें जन्म लेने पर भी अुन्होंने भद्रेतरोंके साथ तादात्म्य साध लिया है। प्रायः भद्र लोगोंने अुनका विरोध किया है और अुन्हें कष्ट भी दिये हैं। परंतु अन्तमें, कमसे कम, जबानसे अुन्हें स्वीकार किया है और अुनकी स्थूल वन्दना की है। गांधीजी अुसी परंपराके अेक पुरुष हैं।

भारतकी हो या बाहरकी, संत सभ्यताके तीन सिद्धान्त हैं: मानवमात्रकी समानता, अहिंसा और परिश्रम। भद्र लोग मानते हैं कि सभ्यताके विकासके लिअे फुरसतका होना बहुत आवश्यक है। संतोंका यह मत नहीं। अुनका कहना यह नहीं है कि फुरसत अथवा आराम

विलकुल नही चाहिये। परतु अुनका मत यह है कि सस्कृतिके विकासके लिअे परिश्रम अनिवार्य है और फुरसतमे कुछ न कुछ खरावीका डर भी है।

अिसका कारण समझना कठिन नही। यह सही है कि मनुष्य केवल अन्न पर नही जीता, परतु साथ ही यह भी मानना पडेगा कि मनुष्य अन्नके विषयमे वेपरवाह भी नही रह सकता। अुसे अन्न पैदा करना ही पडता है, फिर भले वह केवल मनुष्यके ही वलसे करे अथवा मनुष्यवलके साथ पशुवल अथवा यत्रवलका भी अुपयोग करे। साथ ही यह भी है कि दूसरे वलोकी मदद ली जाय, तो भी मनुष्यवलको विलकुल अनावश्यक नही वनाया जा सकता और मनुष्योंके वहुत वडे भागको तो अन्न पैदा करनेके लिअे अपना ही वल काममे लेना अनिवार्य होता है। अव हमारा राज्यतत्र पूजीवादी सिद्धान्तो पर वना हुआ हो या साम्यवादके सिद्धान्तो पर, जव तक मनुष्योमें यह सस्कार वढाया जाता है कि परिश्रम अेक महान कष्ट है, अुसकी अनिवार्यता मानव-जातिके लिअे अेक घोर शाप है, तव तक अेक ओर तो मनुष्यसे परिश्रम करानेके लिअे कानून-कायदे — अर्थात् जवर-दस्ती — अनिवार्य हो जायगे और दूसरी ओर मनुष्य हमेशा अुससे वचनेका प्रयत्न करता रहेगा। जव साम्यवादकी यह आदर्श स्थिति आ जाय कि केवल दो ही घटे काम करनेकी जरूरत रहे, तव भी जव तक परिश्रमको आफत समझनेकी हमारी मनोवृत्ति वनी रहेगी तव तक अुतना काम भी टालनेका मनुष्य प्रयत्न करता रहेगा। दूसरे शब्दोमे कहे तो तव तक अुस सस्कृतिको कायम रखनेके लिअे हिंसाका आश्रय लेना ही पडेगा।

मतलव यह है कि परिश्रम — यत्रवत् अथवा वुद्धियुक्त दोनों — और अहिंसा सगे भाअी-वहन है। परिश्रमके प्रति अरुचि पैदा करेंगे तो साथ साथ असमानता और अुसे टिकाये रखनेवाली हिंसाकी मनोवृत्ति वढाये विना काम नही चलेगा। [illegible] [illegible]

आवश्यकता रहती है। परतु आरामका स्थान अुसके जीवनमे वैसा ही होना चाहिये जैसा हृदयकी क्रियामे होता है। हृदय हर वार जब फूलता और सकुचित होता है, तव अुसके वीचमे अुसे कुछ देर आराम लेना पड़ता है। परतु विचार कीजिये कि कोअी हृदय अपने आरामके क्षणोका ही आदर करे, फूलने और सकुचित होनेकी क्रियाका तिरस्कार करने लग जाय, तो अुसके मालिककी क्या दशा होगी? अिसी प्रकार जो समाज आरामको जीवनका ध्येय वना ले और परिश्रमकी तरफ अरुचिकी दृष्टिसे ही देखे, अुसे तो अन्तमे मरना ही होगा।

'वर्धा-पद्धति' केवल पढानेका अेक नया ढग ही नही, परतु जीवनकी नअी रचना और नया तत्त्वज्ञान है। यह तत्त्वज्ञान स्वीकार हो तो अुसके अनुसार समाजकी रचना करनेका वुद्धिपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। अिस तत्त्वज्ञान पर निर्मित शालाअे भद्र शालाओसे भिन्न प्रकारकी हो, यह अनिवार्य है। मै कह चुका हू कि भद्र जीवनमे हिसाका स्वीकार किया गया है, अर्थात् युद्धको भी वह जीवनकी अेक आवश्यकता मानता है। अिसलिअे वचपनसे ही वह वालकमे युद्धके लिअे आदर पैदा करता है। वह युद्धके और रणवीरोके यशोगान करता है और अन्य देशोमे तो मनुष्यको मारनेकी शिक्षा सवको अनिवार्य रूपमे प्राप्त करनी पडती है। हमारी दतकथाअे और अैतिहासिक कथाअे अधिकतर मनुष्यके हाथो हुअी मनुष्यो अथवा पशुओकी हत्याओका वृत्तात ही होती है। धार्मिक कथाअे भी अिससे मुक्त नही होती। और रूपकात्मक कथाअे भी लडाअी और मारकाटकी मनोवृत्तिका आश्रय लेती है।

अिस प्रकार, हमे यह भी अेक वात ध्यानमे रखनी पडेगी और अपने साहित्यमे से अत्यत सावधानीपूर्वक अैसी कथाअे निकाल देनी पडेगी, भले वे कितनी ही धार्मिक और आकर्षक क्यो न हो। और वाल-मानसके वारेमे हमने जो पूर्वग्रह वना लिये है वे भी छोड़ देने होगे। जैसे, यह मान्यता है कि अमुक आयुका वालक अमुक गुणके

मनुष्यका प्रतिनिधि है, अिसलिअे अुसे अुस दशाकी पोषक कहानिया कहनी ही चाहिये। सच पूछा जाय तो मनुष्य भले और बुरे भाव तथा सच्चे या झूठे तर्कको प्रगट करनेके तरीकोंमें हजारो कदम आगे बढा होगा, फिर भी हजारो वर्षोंमें अुन भावो और तर्कोंके प्रकार या मात्रामे शायद ही कोअी फर्क पडा है। यह नही कहा जा सकता कि मनुष्योके हृदय और बुद्धिका आगे विकास हुआ है।

अिसका अेक कारण कदाचित् यह हो कि मनुष्यने प्राचीन कालसे आज तक हिंसाकी कलाका विकास करनेके लिअे बुद्धिपूर्वक अत्यत परिश्रम किया है। परतु अहिंसाकी कलाका विकास करनेके लिअे शायद ही कोअी परिश्रम अुठाया है। बेशक, प्रत्यक्ष जीवनमें तो अहिसाका अुपयोग वह शुरूसे ही करता रहा है। परतु यह अुपयोग अुसने वैसे ही किया है, जैसे कोअी अपढ मजदूर 'लीवर' या 'गुरुत्वाकर्षण' के बलोका सहज अुपयोग करता है, वह अुनका गणित अथवा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण नही जानता। जब विज्ञान-शोधकोंने अिसके गणित और स्पष्टीकरण समझ लिये, तब अुन्होंने अिनके अुपयोगकी सैकडो नअी तरकीबे निकाली। अेक जमाना अैसा था जब वैज्ञानिक मलिन विद्याके अुपासक माने जाते थे। परतु अिन शोधोंने विज्ञान सबधी हमारी वृत्ति ही बदल डाली है।

अिसी तरह जब अहिंसा-शक्तिका बुद्धि और मानसशास्त्रके साथ सशोधन होगा और तदनुसार मानवजातिके पालन-पोषणकी पद्धतिया ढूढी जायगी, तब कदाचित् हमे यह भी अनुभव होगा कि बाल-मानस जैसा हम मानते है अुससे भिन्न प्रकारका हो सकता है।

हरिजनबधु, २४, ३१–७–'३८

४

शिक्षा-संबंधी गांधीजीके विचार*

मुझसे आपके सामने गाधीजीके कुछ महत्त्वके विचार प्रगट करनेको कहा गया है। यह काम कठिन तो है, फिर भी अपनी मर्यादाअें ध्यानमे रखकर मैंने अिसे स्वीकार कर लिया है। पहली बात तो यह है कि मै गाधीजीके जो विचार प्रगट करूगा अुनकी जिम्मेदारी मेरी है, अुनकी नही। और अुनके विचारोको मै अपनी समझके अनुसार आपके सम्मुख रखूगा। मेरी अिस समझमे अुनकी दृष्टिसे भूल भी हो तो ये विचार अुनके नही, परतु मेरे मान लिये जाय। दूसरी बात यह है कि अुनके सब विचारोका विवेचन करना कठिन है। केवल शिक्षा-सबधी कुछ विचार यहा पेश करूगा।

गाधीजीने अनेक बार कहा है कि अुनका कोअी नया तत्त्वज्ञान नही है। अुन्होने जो नअी चीज बताअी है वह है दुनियादारीमें पैदा होनेवाली कठिनाअिया और झगडे मिटानेमे मूल सिद्धान्तोका अुपयोग करनेका व्यावहारिक मार्ग। अुनकी मशा भिन्न भिन्न महान सनातन धर्मोका वैयक्तिक नही, परतु सामाजिक जीवनमे सामूहिक रूपमे अुपयोग करनेकी है। तत्त्वज्ञान तो वह है जो प्रत्येक धर्मके महात्माओंने बताया है और जिसके तीन मुख्य अगोका पिछली बार मैंने विवेचन किया था। वे अग है अहिसा, समानता और परिश्रम। जिन्हें अुस तत्त्वज्ञानमे श्रद्धा नही, अुनकी गाधीजीके अन्य विचारो पर भी श्रद्धा नही बैठेगी। अिसलिअे अिन तीनोकी जडमें रहे सिद्धान्तोका विचार करना चाहिये।

---

* वर्धामे हिन्दुस्तानी तालीमी सघके तत्त्वावधानमें दिया हुआ दूसरा भाषण।

कुछ लोग पूछते हैं कि समानता और परिश्रम तो ठीक है, परन्तु अहिंसा किसलिअे? हिंसा भी क्यो नही? अिसका अुत्तर गाधीजीके पास अितना ही है कि औीश्वर पर विश्वास। हालमे ही (१८–६–'३८ के) 'हरिजन' मे गाधीजीने अिस विषयके लेख लिखे हैं। अुनमे वे बताते हैं

"शान्ति-सेनाके सदस्यका — वह स्त्री हो या पुरुष — अहिंसामे अटल विश्वास होना चाहिये। और यह तभी हो सकता है जब औीश्वरमे अुसका सच्चा विश्वास हो। अहिंसाको माननेवाला मनुष्य औीश्वरकी कृपा और शक्तिके बिना कुछ नही कर सकता।"

परन्तु प्रश्नकर्ताओंको अितनेसे सन्तोष नही होता। वे कहते है कि औीश्वरका अस्तित्व आज शकास्पद है। बडे बडे मनुष्योंकी बुद्धिने यह सिद्ध किया है कि औीश्वर नही है, अिसलिअे अुनके साथ यह भी सिद्ध हो जायगा कि अहिंसा भी नही है।

यहा फिरसे भद्र सस्कृति और सत सस्कृतिके बीचका अन्तर समझनेकी जरूरत है। पिछली बार मैंने कहा था कि भद्र सस्कृतिमें तर्क और कल्पना-शक्तिका (जिसे हम बुद्धि कहते हैं) बहुत विकास हुआ है। परन्तु औीश्वरको खोजनेमे अथवा यह निश्चित करनेमे कि अुसका अस्तित्व है या नही, बुद्धि काम नही आती। हमारी पद्धति ही गलत है। जैसे कानसे देख नही सकते और आखसे सुन नही सकते, वैसे ही औीश्वर-सबधी ज्ञान हम केवल बुद्धिसे प्राप्त नही कर सकते। क्योकि यदि अुसे विषय मान लिया जाय तो भी वह हृदयका विषय है। हृदयकी शिक्षा पर आजकल अितना कम ध्यान दिया जाता है कि अधिकाश बुद्धिमान लोग अुसे समझ भी नही सकते। जैसे कान और आख सुनने और देखनेकी आवश्यक और प्रत्यक्ष अिन्द्रिया हैं, वैसे मन भी हमारी प्रत्यक्ष अिन्द्रिय है। हम अपनी भूख-प्यास आप-आप अनुभव कर सकते है। हममें अुत्पन्न होनेवाले दया, मोह, प्रेम आदि भाव हम स्वय अनुभव कर सकते हैं। [illegible]

पचेन्द्रियोकी जरूरत नही पडती। तर्क और कल्पनासे वे समझे नहीं जा सकते और यदि किसीको अुनका अनुभव कभी हुआ ही न हो तो वर्णन द्वारा अुसे मनकी कल्पना नही कराओी जा सकती। अिसी प्रकार ओीश्वर भी अिस सीधे ज्ञानसे समझनेका विषय है। 'सा' और 'रे' अथवा लाल और पीलेका अिन्द्रियोको अनुभव हो जानेके बाद अुस पर कुछ तर्क अथवा वाणीका प्रयोग हो सकता है और जिसे अिस भेदका पता न हो अुसे यह भेद समझानेका तरीका ढूढा जा सकता है। अितनी शर्त जरूर है कि सुननेवालेके आख-कान पूर्ण स्वस्थ होने चाहिये।

अिस प्रकार पहले हृदय यदि तैयार हो तो तर्कयुक्त वाणी द्वारा अुसे थोडा-बहुत समझाया जा सकता है। अिसलिअे सत-सस्कृतिमे बुद्धि और ज्ञानकी अपेक्षा हृदयकी शिक्षा पर अधिक भार दिया जाता है। हमारे बालकोमें प्रेम, आदर, दया, करुणा आदि भाव अुत्पन्न होनेकी और अुन्हे विवेकसे काबूमे रखनेकी शक्ति आनी चाहिये। यह हृदयकी शिक्षा है। जब वह हृदयके अिस साधनको पहचानने लगेगा और अुसका विकास करेगा तब वह ओीश्वरके अस्तित्व अथवा नास्तित्व सबधी विचार सुनने या करनेके योग्य बन सकेगा। अनुभवी मनुष्योका कहना है कि ओीश्वरकी खोज करनेका स्थान बुद्धि नहीं परन्तु हृदय है। फिर भी हम तर्क और कल्पनासे अुसे खोजनेका प्रयत्न करते है और न मिलने पर निराश होते है।

प्राचीन सतोंने ओीश्वरके बारेमे जो शब्द काममे लिया है, वही गांधीजी लेते है और वह है 'सत्' या 'हक'। अिसका अर्थ यह है कि सारे जगत्‌के मूलमे अेक महान सत्य — हकताला — निहित है, और जहांसे हमारे तरह तरहके अनुभव और अहवृत्ति — खुदनुमाओी — अुत्पन्न होते है वह हमारा हृदय ही अुसे ढूंढनेका स्थान है। अिसका सबसे बडा प्रमाण संसारमे चल रहा नियमपालन — हुक्म — का राज्य है। संसारमे दिखाओी देनेवाली सारी भलाओी-बुराओी नियम — हुक्म — से होती है। भलाओी भलाओीके नियमसे और बुराओी बुराओीके

नियमसे। भलाअीके लिअे भलाअीके नियम ढूढने चाहिये और यही अीश्वरको जाननेका रास्ता है। अुसमे से अहिंसा, अपरिग्रह, अस्पृश्यता-निवारण, सेवा आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले गाधीजीके सारे व्रत-विचार मिल जाते है।

✓ अिनमे वर्धा-योजनाकी दृष्टिसे अेक महत्त्वका सिद्धान्त है और वह है 'सर्व-धर्म-समभाव' का। अुस योजनामें धार्मिक शिक्षाकी क्या प्रणाली होनी चाहिये? मुझे भय है कि अिस मामलेमे हमारे विचार पूरी तरह स्पष्ट नही है।

✓ अिसमे यह कहा जाता है कि सब धर्म समान है, सब सत्यकी ओर ले जानेवाले है और अिसलिअे सबके प्रति समान आदर रखो। अिस बातको बुद्धि और हृदयसे समझनेमे बडा अन्तर है। दो भाअियोंमें झगडा हो और यदि अुसके निपटारेके लिअे वे कचहरीमे जाय, तो न्यायाधीश अपनी न्यायबुद्धिसे जो निर्णय देता है वह अेकपक्षी होता है। परन्तु यदि वही झगडा वे अपनी माके पास ले जाय तो वह हृदयसे जो न्याय प्रदान करेगी वह दूसरी तरहका होगा। अिसी तरह हम यदि बुद्धिसे सब धर्मोकी समानताका सिद्धान्त समझने जाय, तो अेक ओर वेद या गीता, दूसरी ओर बाअिबल और तीसरी ओर कुरानको रखते है। और सब शास्त्रोको समझने बैठ जाते है तथा प्रत्येकका पृथक्करण करने लग जाते है। अेक ओर हम कृष्ण, बुद्ध, अीसा, मुहम्मद आदिकी अेक-दूसरेके साथ तुलना करने लग जाते है और फिर आश्चर्य प्रगट करते है कि अिन सबको पूरी तरह कैसे समझा जा सकता है, अथवा कोअी बुद्धिशाली मनुष्य कहता है हा, ठीक है, क्योंकि अिनमे से किसीमें भी सार नही है। अथवा समभाव साधनेवाला मनुष्य अेक दिन कृष्णका भजन, दूसरे दिन पैगम्बर मुहम्मदका और तीसरे दिन अीसाका गुणगान करेगा और अिस प्रकार प्रत्येकको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करेगा। अिससे भले ही सर्व-धर्म-समानता सधती हो, परन्तु अैसा करनेसे [illegible]

नही मिलता। सर्व-धर्म-समानताको समझनेका सच्चा मार्ग हृदयका है। प्रत्येक धर्ममे जो सत या औलिया हो गये है, अुनकी तरफ देखे तो अुनके जीवनकी बाहरी तफसीलोको न देखते हुअे अुनके हृदयकी गहराअीको देखना चाहिये। अैसा करनेसे मालूम पड़ेगा कि अुन सबका 'हक' और हुक्म (सत्य और नियम) मे समान विश्वास है। सभीके सद्‌गुणोके विकासमे लगभग समानता है। मानो सब अेक ही मा-बापके बेटे है। अेकका जन्म हिन्दुस्तानमे हुआ हो, दूसरेका अरबस्तानमे और तीसरेका युरोपमे तथा चौथेका चीनमे हुआ हो, तब भी सब अीश्वरका अेकसा अनुभव और वर्णन करते है और हृदयके सद्‌गुणो और भलाअीके बारेमे अेक ही प्रकारके नियम बनाते है।

मूर्ति, काबा, क्रॉस, स्तूप अथवा लिंगकी पूजा की जाय अथवा अेक स्त्रीसे विवाह किया जाय या चारसे, ये बाते तो देशकाल —परिस्थिति — के भेद है। जो सत जिन लोगोमे पैदा हुआ, वहा जिन साधनोका अुसे पता था अुनका अुसने अीश्वर-प्राप्तिके लिअे अुपयोग किया। परन्तु ये तो मानवीय नियम है। अीश्वरीय नियम अिनसे अधिक गहरे है और अिनके विषयमे सब धर्म और सब औलियो और साधु-सतोका अेक ही मत है। 'सर्व-धर्म-समभाव' को समझनेकी यही कुजी है। अिसलिअे बालकोको सब धर्मोके शास्त्र पढानेकी अितनी जरूरत नही, जितनी सब देशोके अीश्वरीय पुरुषोके हृदयोकी गहराअी प्रगट करनेवाले जीवन-चरित्र पढानेकी है। और सब विद्यार्थी अेक दिन हिन्दू पद्धतिसे अुपासना करे, दूसरे दिन अिस्लामी पद्धतिसे और तीसरे दिन अीसाअी पद्धतिसे प्रार्थना करे, यह भी जरूरी नही है। जो विद्यार्थी जिस धर्ममे पला हो वह अुसी धर्मके ढग पर प्रार्थना करे। सब धर्मोके चिह्नोका शालामे प्रदर्शन होना चाहिये, अिसे भी मै आवश्यक नही मानता।

शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाला गाधीजीका अेक और विचार वर्ण-व्यवस्थाके बारेमे है। वर्णव्यवस्थाका जो अर्थ सनातनी हिन्दू मानते

है अुसमे और गाधीजीकी कल्पनामे भेद है। 'सनातनी वर्णव्यवस्था' शब्द जाति-व्यवस्था और अूची-नीची श्रेणियोका दूसरा नाम है। गाधीजी वर्णव्यवस्थाका जो अर्थ करते है, वह अलग-अलग धधे करनेवाले लोगोकी सगठित व्यवस्था है। परन्तु दोनो वर्णव्यवस्थाओमें अेक अश समान है। पुरानी वर्णव्यवस्थामे भी यह आवश्यक माना जाता था कि प्रत्येक मनुष्य अपने ही वर्णका धधा करे। गाधीजी भी यही ठीक मानते है कि जहा तक हो सके हरअेक वालक अपने माता-पिताका ही धधा करे। अिससे वचपनसे ही धधेके मामलेमे अेक निश्चित धारणा वन जाती है। हमारी आधुनिक शिक्षामे धधेकी दृष्टिसे वर्ण-व्यवस्था टूट गअी है। अिससे मनुष्य वीस-पचीस वर्षका हो जाता है, तव भी यह निर्णय नही कर पाता कि वह किस धधे द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करेगा। वह अेकके वाद अेक परीक्षा पास करता जाता है, परन्तु अुसे यह पता नही होता कि वह किसलिअे अिस प्रकारकी शिक्षा ले रहा है और अपनी परीक्षाअे पास करनेके वाद कौनसे धधेसे अपना निर्वाह करेगा। अुद्योग द्वारा शिक्षा देनेकी योजनामे अेक विचार यह भी होना चाहिये कि जहा तक हो सके वालकको अपने जीवनके धधेके वारेमे स्थिर वुद्धिवाला वनाया जाय।

अन्तमे, शिक्षा-सबधी गाधीजीके कुछ मुख्य विचार सक्षेपमें कह दू :

(१) शिक्षाका ध्येय 'सा विद्या या विमुक्तये' है। अर्थात् विद्या द्वारा वालकको अपनी मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये। मुक्ति शब्दके आध्यात्मिक और भौतिक दोनो अर्थ लिये जा सकते है।

(२) जब तक अुनकी आजीविकाका प्रश्न हल न हो, तब तक यह ध्येय सिद्ध नही हो सकता। अर्थात् अिस हेतुसे भी वालककी शिक्षा अक्षरज्ञान द्वारा नही परन्तु अुद्योग द्वारा होनी चाहिये।

(३) अुद्योग और शिक्षा-पद्धतिका निश्चय करनेमे हम दस प्रतिशत लोगोको भी नब्बे प्रतिशत लोगोका खयाल रखना चाहिये।

(४) बहुत छोटे बालकोकी शिक्षाका आरभ स्वच्छताकी शिक्षासे होना चाहिये। और अक्षर लिखानेसे पहले चित्रकला (ड्राअिग) सिखाना चाहिये। बालकके हाथमे कलम या पेन रखनेमे देर लगे तो अिसमे बुराअी नही है। परन्तु तब तक अुसका अज्ञान रहना जरूरी नही है। अनेक प्रश्नोका ज्ञान अुसे जबानी देना चाहिये।

(५) शिक्षाका माध्यम स्वभाषा ही होनी चाहिये।

(६) अितिहासमे हमे अधिकतर राजवशोकी अुथल-पुथल, लडाअिया वगैरा ही पढाअी जाती है। मानव-जीवनमें ये चीजे प्लेग या हैजेकी तरह कभी कभी फूट निकलनेवाली बीमारिया है। वे कोअी मनुष्योका नित्य जीवन नहीं है। अुनका नित्य जीवन तो अहिंसात्मक समाज-सगठन द्वारा चलता है और अुमीके द्वारा मनुष्य-जातिने अपना अब तकका विकास किया है। अितिहास द्वारा अिस विकासक्रमका ज्ञान होना चाहिये।

(७) अिसके सिवाय सगीत और कवायद पर गाधीजी बहुत जोर देते है।

हरिजनबन्धु, ३०–१०–'३८

५

‘द्वारा’, ‘और’, ‘की’?

‘अुद्योग और शिक्षा’ तथा ‘अुद्योगकी शिक्षा’ यह भाषा और अिसका अर्थ हम जानते है। परन्तु अब ‘अुद्योग द्वारा शिक्षा’ यह नअी भाषा निकाली गअी है।

अिस लेखमे मैं अिन तीनोके बीचका भेद बतानेका प्रयत्न करूगा।

जहा साधारण लिखने-पढनेके साथ दो तीन भाषाअे, अितिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि पढाया जाता है और अिनके सिवाय कारीगरोके धधोकी भी कुछ न कुछ शिक्षा दी जाती है, अुसे ‘अुद्योग और शिक्षा’ कहते है। यह चीज सबकी परिचित होनेसे अिसका विस्तार करनेकी आवश्यकता नही।

जहा भाषाअे, अितिहास, भूगोल आदि कुछ नही पढाया जाता, केवल कारीगरोके या किसी और अेकाध धधेकी शिक्षा दी जाती है और अुस धधेके लिअे गणित, विज्ञान आदिका जितनी आवश्यकता हो अुतना ही ज्ञान दिया जाता है, वह ‘अुद्योगकी शिक्षा’ है। अिसमे भाषा, अितिहास, भूगोल आदि विषयोकी शिक्षाकी या तो आवश्यकता ही नही मानी जाती अथवा अैसा नियम होता है कि ये सब जो पढ चुके हो वे ही अिन अुद्योगोकी शिक्षा ले। डाक्टरी, वकालत, अिजीनियरी, हिसाब-किताब, शॉर्टहैण्ड, टाअिप-राअिटिंग आदि सब मुशीगिरीके धधोकी शिक्षा अधिकतर अिसी ढगसे दी जाती है। अिसमें जिस अुद्योगके साथ जितने विषयोका सबध हो [illegible] शिक्षा दी जाती है। यह अुद्योगकी शिक्षा है। परन्तु वह [illegible] द्वारा ही नही दी जाती। फिर भी जीवन-निर्वाहकी दृष्टिसे अुद्योग और धधेके बीच कुछ समानता होनेसे ‘अुद्योग द्वारा शिक्षा’ [illegible] कुछ अग होता है।

अब अेक और अुदाहरण लें।

सॉलीसिटरका पेशा लीजिये। सॉलीसिटर बननेके लिअे अुम्मीदवारको किसी अन्य सॉलीसिटरके मातहत कुछ वर्ष तक काम करना पडता है। अुसमें सॉलीसिटर अुस तरुणको अपने पास बिठाकर शिक्षककी भांति पाठ नहीं पढ़ाता, और न अिस पेशेकी शिक्षा देनेवाली कोअी शाला ही होती है। वह तो केवल अुम्मीदवारको दूसरे कारकुनोंके साथ अपने दफ्तरके काममें लगा देता है। धीरे धीरे अुम्मीदवार अुस कामको समझने लगता है। जो कानून अुसे सीखना है, वह अुसे स्वयं ही पढ लेना होता है। अिस प्रकार काम करते-करते वह दो तीन वर्षमें सॉलीसिटरके धंधेके सब रंगढंग जान लेता है। अिस धंधेके लिअे लगभग बी० अे० के बराबर साधारण शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। अिसलिअे सॉलीसिटर अैसोंको ही अुम्मीदवारके रूपमें ले सकता है।

पहले ही दिनसे अुम्मीदवारसे जो काम कराये जाते हैं, अुनमें शायद ही कोअी अैसा काम होता है, जो केवल अुसे सिखानेके लिअे ही शुरू किया गया हो। दफ्तरके किसी आवश्यक काममें ही अुसे लगाया जाता है। वह भूल करे तो भले ही अुसका काम रद्द कर दिया जाय, परन्तु अुसके लिअे अैसा काम नहीं ढूंढा जाता जो दफ्तरके लिअे आवश्यक न हो, और केवल अुसे सिखानेके लिअे ही किया जाय। वह फुरसतके समय पुरानी फाअिलें ढूंढ ढूंढ कर देखता अवश्य है, परन्तु यह तो अुसकी सीखनेकी तीव्र अिच्छाकी ही निशानी है।

अिसमें (मोटे अर्थमें) अुद्योगकी शिक्षा है। और वह अुद्योग द्वारा शिक्षा भी है। परन्तु अुसमें साधारण शिक्षा नहीं है। अिसी तरह वह शिक्षाको आधारस्वरूप भी नहीं है। जिसकी साधारण शिक्षा हो चुकी हो वही अिसका विद्यार्थी हो सकता है।

अिस प्रकारकी अुद्योग द्वारा शिक्षा बहुत पुराने समयसे तरह तरहके धंधोंमें दी जाती रही है। जब आजकी तरह सार्वजनिक शालायें

नही थी, तब बनियोंके लडके हिसाब और बहीखाता किस तरह सीखते थे? कायस्थोंके लडके चिट्ठीपत्री और दस्तावेज लिखनेका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते थे? गावके पडितजीके पास आठ या नौ वर्षकी अुम्र तक कुछ न कुछ लिखना-पढना और गणित सीख लेनेके बाद किसी सराफकी दुकान पर या बडे कायस्थके पास बैठकर अुसके काममे सहायता करते-करते वे यह ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। मुझे स्वय बहीखातेकी शिक्षा शालामे बहुत कम मिली है। व्यापारी जिस चतुर्थांश या पाअी पद्धतिसे (जैसे ५०॥=॥ x ३८। रु०) हिसाब करते है, वह बम्बअीकी जिस शालामे मैं पढता था अुसमे नही सिखाअी जाती थी। बहीखाता भी नही सिखाया जाता था। ये चीजें मैंने बचपनसे अपने पिता और भाअियोकी दुकान पर फुरसतके समय अुनके काममे मदद करते-करते सीखी थी। अिसके लिअे मुझे कोअी खास हिसाब नही लिखवाये जाते थे; पैसेके लेनदेनमे तथा बहीखाता देखते और लिखते-लिखते अुसके नियम समझमे आ गये थे। जहा नहीं समझमे आता या भूल हो जाती वहा पिताजी बता देते थे। अिसकी पाठचपुस्तके तो जब ये विषय सिखानेका भार मुझ पर राष्ट्रीय पाठशालामे आया तब देखी।

आज भी खेतीका जो ज्ञान परपरासे हमारे लोगोमे है, अुसे करोडो किसान बालक किस तरह सीखते है? गावका जुलाहा, दर्जी लुहार, कुम्हार, मोची, तेली आदि अपने-अपने धधेका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त करते है? यह सच है कि हमारी जनता बहुत अज्ञान है और पीछे रह गअी है। फिर भी यह तो हरगिज नही कहा जायगा कि वह बिलकुल मूर्ख है अथवा निरी जगली दशामे है। न अुसमे खेतीका ज्ञान है, न किसी कलाका। अुल्टे अितिहाससे तो यह मालूम होता है कि सार्वजनिक पाठशालाओं द्वारा [illegible] [illegible] अुद्योगोको सिखानेकी सगठित व्यवस्था न होने पर भी [illegible]

लोग आजकी अपेक्षा वहुत आगे वढे हुअे थे। अव तो वे अपनी कलाअें अुल्टे भूलने लगे है।

वात यह है कि शालाअें न होने पर भी जीवनरूपी पाठशाला तो हमारे देशमे सदा वनी ही रही है, और वह शाला असगठित रूपमे प्रत्येक धन्धेदारके घरमे ही चलती है। छोटे वच्चे वडोकी सहायता करते है और सहायता करते-करते धधा सीख लेते है। कभी-कभी वे अुम्मीदवार भी रखते है। कभी अुन धधोवालोकी पचायतो या सघोकी तरफसे भी अपने धधेकी शिक्षा देनेका कुछ प्रवन्ध होता है।

ये सव अुद्योग द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त है। अैसे और भी कअी दिये जा सकते है। सामान्यत शालामे न गअी हुअी लडकिया जिस तरह खाना वनाना, शृगार करना, सीना, लीपना वगैरा घरके काम सीखती है, जिस प्रकार वालक स्वभापा सीखते है, अथवा घरमे वोले जानेवाले नित्यपाठके स्तोत्र आदि सीखते है, वे शास्त्रीय पद्धतिसे विकसित न होने पर भी अुद्योग (अथवा काम) द्वारा शिक्षाके दृष्टान्त है। परन्तु अिन सवमे दोप यह है कि अुनमे केवल अुन-अुन अुद्योगोकी ही शिक्षा मिलती है। वालकको सव तरहकी शिक्षा नही मिलती। जिसे हम विद्या-सस्कारकी शिक्षा कहते है, वह अुनमें नही मिलती है।

मेरा आशय यह कहनेका नही कि विद्या-सस्कार या लिखने-पढनेकी शिक्षाके लिअे हमारे देशमे कोअी प्रवध ही नही था। परन्तु अुसे देनेवाला अेक स्वतत्र वर्ग था। वह पुराणिक, व्यास, कथाकार, अुपदेशक और साधु आदिका था।

कथाओ और अुपदेशो द्वारा साहित्य, अितिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदिका जो कुछ ज्ञान अुस जमानेके पडितोको प्राप्त था, अुसे वे लोगोमें फैलाते थे। अिससे पढाअी न होने पर भी लोगोमे साधारण ज्ञानका प्रचार होता था। वेशक, अिन पडितो, साधुओ, मुल्लाओ और फकीरोका अपना ही ज्ञान प्राचीन ग्रथोमें

मर्यादित था और वे स्वय भी वर्तमान युगके ज्ञानसे अपरिचित थे। अिसलिअे प्राचीन साहित्य, धर्म, नीति, सदाचार, तत्त्वज्ञान आदि विषयोंमें अुनके ज्ञानका कुछ महत्त्व था, परन्तु अितिहास, भूगोल और विज्ञानकी विविध शाखाओमे वह अधिकतर बेकार होने लगा था।

अिस प्रकार अुद्योगका और साधारण शिक्षाका, भले वह अशास्त्रीय ही हो, स्वतत्र रूपमे प्रबन्ध था। अुद्योगकी शिक्षाके लिअे पिछली कममें कम पाच-सात शताब्दियोमें तो शायद ही सार्वजनिक सस्थाअें रही होगी। वह अुद्योगके जरिये ही दी जाती थी। साधारण शिक्षाके लिअे अुपरोक्त पडित और पडितोकी शालाअें तथा कथा-कीर्तनकी सस्थाअें थी। शालाओमें केवल ब्राह्मण-बनिये आदि अूची मानी जानेवाली जातियोंके लडके ही पढते थे। अुनमें से भी कुछ बिलकुल नही पढते थे। परन्तु कथा-कीर्तनका लाभ सभी लोग अुठाते थे, अथवा अलग-अलग जातियोमे अुनके स्वतत्र भक्त पैदा होते थे।

अब हम अिस योजना और वर्धा-योजनाके बीचका फर्क देखें।

अुद्योग द्वारा शिक्षाका पुराना ढग व्यक्तिगत और खानगी पद्धतिका है। वह या तो पिता-पुत्र-पद्धति होती है अथवा अुम्मीदवार-पद्धति होती है। जहा अुम्मीदवार-पद्धति है, वहा कभी-कभी कानूनी बधन भी होते है। अिस हद तक वह व्यवस्थित (organised) होती है। परन्तु बडे पैमाने पर देशके सब बालकोंके लिअे सार्वजनिक शालाओके रूपमे अैसी कोअी व्यवस्था नही है। वर्धा-योजनाका हेतु जीवनकी अिस स्वाभाविक पद्धतिको बडे पैमाने पर, सार्वजनिक शालाओके रूपमें, सभी बालकोके लिअे लागू करना है।

अिसका अर्थ यह है कि जैसे किसान खेती, बढअी बढअीगिरी, लुहार लुहारी, बनिया दुकानदारी, गृहिणी घर-काम आदि धधोंकी शिक्षा अपना धधा करते-करते अपने बच्चोंको देते है, अुसी प्रकार परन्तु शास्त्रीय पद्धतिसे हमारी सारी आवश्यक शिक्षा देशके समस्त बालकोको सार्वजनिक शालाओ द्वारा देनेका प्रबध सरकारी तौर

जरिये किया जाय। अिसका दूसरा अर्थ यह है कि सरकार दो-चार अैसे अुत्पादक धधे शुरू करे (१) जो बड़े पैमाने पर सीधे सरकारकी तरफसे चलाये जा सके, (२) जो बालकोके लायक हो, (३) जिनमे अितनी सामग्री भरनेकी गुजाअिश हो कि वे अुद्योग कराते-कराते अुनके द्वारा साहित्य, अितिहास, भूगोल, विज्ञान आदिकी पर्याप्त जानकारी बालकोको दी जा सके, और (४) जो केवल बालकोके मनोरजन, खेलकूद या शिक्षाके लिअे ही नियोजित कृत्रिम अुद्योग न हो, परन्तु लाखो लोगोके जीवन-निर्वाहके भी साधन माने जा सकनेवाले सच्चे अुद्योग हो। अिससे अुनमे राज्य-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, सपत्ति-व्यवस्था आदि सारी समाज-विद्याओका भी व्यावहारिक ज्ञान देनेकी कुदरती सुविधा मिल जायगी।

अिनमें पहली दो शर्ते सबसे महत्त्वकी है। पहली यह कि सरकारकी सीधी देखरेखमे बड़े पैमाने पर चलाये जा सकनेवाले कुछ अुत्पादक धधे ढूढ लिये जाय। अर्थशास्त्रकी भाषामें कहे तो वे अिस देशके जीवन-अुद्योग (key-industries) होने चाहिये। दूसरी शर्त यह है कि वे धन्धे बालकोके लायक होने चाहिये। कितने ही धधे अैसे है जो देशके लिअे जीवनरूप है, परन्तु बालकोके लायक नही है। दूसरी ओर, कुछ धधे अैसे है जो बच्चोके लायक तो है, परन्तु देशके जीवन-धधे नही है।

अिन पिछले धंधोकी अुद्योग द्वारा शिक्षाकी शालाये हो सकती है; शर्त यह है कि अुन्हे खानगी सस्थाअे सरकारकी देखरेखमें चलाये। बेशक, अिनकी सख्या बहुत थोड़ी होगी। परन्तु अुद्योग द्वारा शिक्षाके सिद्धान्तकी दृष्टिसे अिनके लिअे गुजाअिश है। परन्तु सरकारकी दृष्टिसे प्रश्न यह है कि बालकोके लायक राष्ट्रके जीवन-अुद्योग क्या है? स्पष्ट है कि अिनमे पहले नम्बर पर कताअी-बुनाअी ही आती है। संपत्ति-शास्त्रियोंके सभी सम्प्रदाय कपड़ेके धधेको हमारे देशका जीवन-अुद्योग स्वीकार करते है, और अुसे सरकार-नियत्रित (राष्ट्रीय—Nationalized)

बनानेमे भी विश्वास रखते है। बडे और बालक, दोनोंके लिअे वह पूरा धधा हो सकता है। हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअीके रूपमें अिसमें बडो और बालकोके बीच स्पर्धाका कोअी प्रश्न पैदा नहीं होता। साथ ही, कपास अेक अैसी चीज है, जिसने अितिहासमें पहले दर्जेका भाग लिया है। अुसके आसपास खेती, बढअीगिरी, लुहारी, रगाअी, धुलाअी, छपाअी आदि स्वतत्र धधोंके अनेक भागोकी योजना की जा सकती है।

अिस प्रकार, अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ यह है कि सरकार देशके हितके कुछ धधे अिस ढगसे चलाये कि अुनमे देशके लिअे माल भी पैदा हो और बाल-शिक्षाकी व्यवस्था भी हो जाय।

बहुत बडे पैमाने पर प्रबध किया जा सके, अैसा दूसरा कोअी धधा अभी तक ध्यानमे नही आता। खेती, गोपालन आदि देशके जीवन-अुद्योग तो हैं। परतु अुनमे बालकोका अुपयोग करना असभव नही तो भी कठिन अवश्य है। अिनमे बडे-छोटोकी बराबरी भी नही हो सकती। अिसलिअे यद्यपि अैसी कुछ शालाअें सरकार चला तो सकती है, परतु अुनकी सख्या थोडी ही रहेगी।

अुद्योग द्वारा शिक्षाके लिअे अलग अलग धधोकी खोजमें बहुतसे शिक्षाशास्त्री लगे हुअे है। यदि हम समझ लें कि वही धधे शालाओंके लिअे अच्छा काम दे सकते हैं, जिन्हे सरकार-नियत्रित बनाना सभव हो तो खोज आसान होगी। जो अैसे नही बनाये जा सकते, अुनमे स्पर्धाके कारण बालकोकी बेगार, महगाअी और महगाअीके कारण नुकसान वगैराकी कअी अुलझनें पैदा होगी। जिन धधोको सरकारी बनाया जा सकता हो, अुनमें मालकी कीमत ठहराना सरकारके हाथमें रहेगा। जो धधे सबके लिअे खुले हो, अुनमें स्पर्धा और स्पर्धाके प्रश्नोको हल करना कठिन है।

अुद्योग द्वारा शिक्षाकी पुरानी पद्धतिमें और भिन्न नअी योजनामें जो दूसरा भेद है, वह अुपरोक्त बातोंसे ध्यानमें आ सकता है। सब

यह है कि हानिका धधा न तो किया जा सकता है और न बालकोंसे कराया जा सकता है। यह तत्त्व दोनो पद्धतियोमे समान है। परतु पुरानी पद्धतिमे धधेका अुद्देश्य लाभ अुठाने (profit-making) का होता है, जब कि वर्धा-योजनामे लाभ अुठानेका हेतु नही हो सकता। यह हेतु छोड कर धधा करनेका अर्थ ही तो धधेको सरकारी बनाना है।

दोनो पद्धतियोमे अेक और भी भेद है। पुरानी पद्धतिमे गुरु और शिष्य दोनोका यह अुद्देश्य होता है कि अुम्मीदवारको अिस ढगसे तैयार किया जाय (बल्कि वह तैयार हो जाय) कि अुस धधेसे वह अपनी जीविका चला सके। और केवल अितना ही अुसका अुद्देश्य होता है। नअी योजनामे अैसा अुद्देश्य और अितना ही अुद्देश्य नही होता कि विद्यार्थी अुसे सिखाये जानेवाले धधेसे ही अपनी जीविका चलाये। अुसमे कातने-बुनने पर अिस हेतुसे जोर नही दिया जाता कि हिन्दुस्तानको कातने-बुननेवाले लोगोका राष्ट्र बना दिया जाय। परतु अुसका अुद्देश्य यह है कि अुसके द्वारा बालकोंके शरीर, अिन्द्रियो, मन और बुद्धिको पूरी तालीम मिले और लडका या लडकी मनचाहा धधा सीखनेके योग्य बने। परतु साथ ही विद्यार्थीको यह आश्वासन भी दिया जाता है कि यदि वह किसी और धधेमे सफल न हो सके तो भी कमसे कम कातने-बुननेका धंधा करके तो अपना गुजर चला ही सकेगा। अिसके अलावा यह बात भी है कि किसी अपढकी अपेक्षा ही नही परतु केवल आजकलकी पाठशालाओमे पढे हुअे विद्यार्थीकी अपेक्षा भी वह किसी कामको ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा, और जिससे दोनो अपरिचित हो अुसे सीख लेनेमें वह अधिक होशियार साबित होगा। यदि यह परिणाम न निकले तो समझना चाहिये कि शिक्षामें कहीं न कहीं दोष है।

अिस प्रकार, यह केवल साधारण शिक्षा + अुद्योगकी शिक्षा ही नही है और न (अुद्योगके मारफत या स्वतत्र रूपमें) केवल अुद्योगकी शिक्षा है, परन्तु अुद्योग द्वारा पूरी शिक्षा देनेकी कल्पना है। अैसा हो

सकता है कि अविवेकसे हम अिस कल्पनाको विगाड दे या हास्यास्पद दिखाअी देनेवाला स्वरूप दे दें। वह अनुभवहीनता अथवा नासमझीका परिणाम होगा। परतु अिससे डरनेकी जरूरत नही। अनुभव अुसे सुधार देगा। मूल वस्तु यह है कि जीवनमे चल रही कुदरती पद्धतिको शास्त्रीय रूप देनेका यह प्रयत्न है और अिस रूपमे यह योजना पहली ही बार शिक्षाशास्त्रियोंके सामने रखी गअी है। यह भी याद रखना चाहिये कि अुद्योगके सिवाय जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसे भी शिक्षाका साधन बनाने पर अिसमें जोर दिया गया है।

चरखा-सघने हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअीके धधेको देशमे फैलाया है। अिसमे चरखा-सघका हेतु किसी कपनीकी तरह अिस अुद्योगसे नफाखोरी करना नही है, परतु देशमे धन पैदा करनेके साथ अुसे पैदा करनेवालोकी स्थिति सुधारना है। अिसलिअे चरखा-सघको कातने-बुननेवालोका शोषण करनेकी नीति स्वीकार नही है। जो चीज चरखा-सघ बडी अुम्रके लोगोमे कर रहा है वही तालीमी सघको देशके बालकोमें करनी है। बालक छोटे जरूर है, परतु अिसलिअे यह जरूरी नही कि वे घरमे या शालामे बेकमाअू और बेअुपजाअू (unproductive) बन कर बैठे रहे। देशका धन बढानेमें वे भी हाथ बटा सकते है। परतु अिस काममें अुन्हे लगानेमे हमारी दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिये। वह यह कि जिस काममें अुन्हे लगाया जाय अुसमें अुन्हे लाभ होना चाहिये। अिसलिअे यह काम धधा चलाने-वाली सस्थाओंका नही है। अिसे स्वय सरकारको या तालीमी सघ और विद्यापीठ जैसी सस्थाओंको करना चाहिये।

'अूर्मि', अक्तूबर १९३८

६

अुद्योग द्वारा शिक्षा

[गूजरात विद्यापीठके शिक्षक-प्रशिक्षण वर्गके सामने दिये हुअे संशोधित भाषण।]

गांधीजीने अुद्योग द्वारा शिक्षाका अेक नया विचार देशके सामने रखा है। अुसे पेश करते समय अुन्होंने कहा था कि यह मेरी आखिरी विरासत है और मुझे लगता है कि अिससे अधिक महत्त्वकी भेंट मैं देशको नहीं दे सकता। स्पष्ट है कि अैसी प्रस्तावनाके साथ पेश की गअी योजनाका हमें भी गंभीरतासे अध्ययन करना चाहिये। हम देखें कि अुनके विचारोंमें नया क्या है।

हम दो प्रकारकी शिक्षासे परिचित हैं। पुस्तकोंकी शिक्षा और अुद्योगकी शिक्षा। हम कहते हैं कि बढअी, लुहार, कुम्हार, रंगरेज, अिंजीनियर वगैराके काम सीखनेवाले अुद्योगकी शिक्षा ले रहे हैं। आप सब औद्योगिक शिक्षाके शिक्षक नहीं हैं। आपके विद्यार्थीसे कोअी पूछे कि तुम क्या जानते हो, अथवा आपसे पूछे कि आप क्या पढाते हैं, तो अुत्तर मिलेगा कि दूसरी, चौथी या छठी किताब, फलां भूगोल, अमुक अितिहास, गणितका अमुक भाग आदि। अर्थात् कुछ पुस्तकीय विद्यायें वे जानते हैं और आप अुन्हें पढाते हैं।

कुछ जगहों पर पुस्तकों और अुद्योग दोनोंकी शिक्षा दी जाती है। अैसी शालाका विद्यार्थी (अुदाहरणके लिअे) कहेगा कि मैं पांचवीं किताब पढता हूं और अिसके सिवाय बढअीका काम सीखता हूं। यह नहीं कहा जा सकता कि अुसकी पुस्तक-शिक्षाके विषयों और अुद्योगके विषयोंके बीच कहीं संबंध आता ही होगा। अुदाहरणार्थ, यह हो सकता है कि अुसे गणितमें अितनी शराफ़में अितनी लेन अथवा जितनी

गैलन शरावमे अितना गैलन पानी मिलानेसे मिश्रणका या नफे-नुकसानका क्या अनुपात आयेगा यह जाच करनी हो। भूगोलमें वह अमरीका महाद्वीपके विषयमे सीखता हो और अितिहासमें वावरके विषयमें पढ रहा हो; और विज्ञानमें आवाज या विजलीका विषय सीखता हो। अिन सबका वढअीके कामसे कोअी सवध नही हो सकता। िस प्रकार पुस्तकोंके विषयको पुस्तकशालामें और अुद्योगके विषयको अुद्योगशालामें अलग करके रखा जाता है। पुस्तकशालाका शिक्षक अुद्योगशालाके शिक्षकके और अुद्योग-शिक्षक पुस्तक-शिक्षकके विषय नही समझ सकता।

यह ढग अशास्त्रीय है, यह समझानेकी शायद ही जरूरत होनी चाहिये। वालक जो जो विषय सीखे अुनका परस्पर काफी सबध होना चाहिये। जो अनेक वस्तुअे वह सीखता हो, अुनमे से महत्त्वकी वस्तुओके आसपास दूसरे विषय गुथे होने चाहिये। अेक विषयमें से दूसरा विषय जुडकर निकलना चाहिये।

क्या यह सभव है? यह सभव है और अैसा ही होना चाहिये, यही वतानेका वर्धा-योजनाका प्रयत्न है।

अुद्योग द्वारा शिक्षा अुसका मुख्य विन्दु है। मुख्य विन्दु कहा है, अिसलिअे यह समझ लेना चाहिये कि अुसमे कुछ अुपविन्दु भी है। जाकिरहुसेन कमेटीने तीन विन्दुओ पर जोर दिया है। अुद्योग, समाज और कुदरत। प्रत्येक मनुष्य त्रिविध वातावरणसे घिरा रहता है। अपनी जलवायुके वातावरणसे, अपने सामाजिक वातावरणसे और अपने औद्योगिक वातावरणसे। जलवायु और समाज मिलकर अुसके अुद्योग पर असर डालते हैं। परतु अेक वार अुसके स्थिर हो जानेके वाद अुसके जीवनका अधिकतर भाग अुसके औद्योगिक वातावरणसे घिरा रहता है। वही अुसके जीवनका सबसे वडा आधार बनता है। अिस प्रकार व्यवहारमें अुद्योग मनुष्यके बाह्य जीवनका मुख्य विन्दु है और समाज तथा कुदरत दूसरे दो अुपविन्दु हैं, यह वर्धा-योजनामें कहा गया है। अिस मुख्य विन्दुकी तरफ ध्यान खींचकर,

अुसके आसपास शिक्षाको गूथना चाहिये, अैसा पहली बार गाधीजीने बताया है।

परतु अुद्योग तो अनेक है। अुनमे से शिक्षाके लिअे कौनसा चुना जाय? और शिक्षा भी किसकी? बडी आयुके स्त्री-पुरुषोकी नही; परतु सातसे चौदह वर्षके छोटे बालकोकी। अुदाहरणार्थ, अिसमे मोटर बनाने या छत पर डालनेके टीन बनानेका अुद्योग नही सोचा जा सकता। साथ ही अिसमे थोड़ेसे शहरी बालकोका ही विचार नही करना है, परतु दूर दूरके गावोमे बसनेवाले करोडो गरीब और पिछडे हुअे बालकोका विचार करना है। अिस प्रकार हमें अैसे अुद्योगोका विचार करना है, जो करोडो बालकोके लिअे सोचे जा सके और जिनके आसपास अुनकी सारी शिक्षा गूथी जा सके।

अैसे अुद्योगोंमे पहले नम्बर पर और अधिकसे अधिक व्यापक खादीका अुद्योग ही नजर आता है। यह सच है कि खेती हमारे देशका पहले नबरका और सबसे अधिक व्यापक व्यवसाय है, परतु यह व्यवसाय बालकोका नही है। अिसमे बहुतसे बडोके साथ थोडेसे बालक सहायकके तौर पर काम कर सकते है, परतु अुनकी बराबरी नही कर सकते। बारह वर्षकी अुम्रसे कमके बालक अिसमे महत्त्वपूर्ण भाग नही ले सकते। अिसे बारहो महीने चलानेके लिअे जो प्राकृतिक अनुकूलताअें और जमीनका साधन चाहिये, वे सब जगह नही मिल सकते। अिस प्रकार महत्त्वका व्यवसाय होने पर भी शिक्षाके माध्यमके रूपमें अुसका अुपयोग मर्यादित क्षेत्रमें ही हो सकता है। दूसरे व्यवसाय अितने व्यापक भी नही है और अुनमें भी बालकोकी अुम्र तो बाधक होती ही है। अिसलिअे खादीका अुद्योग ही अधिकसे अधिक व्यापक और अनुकूल मालूम हुआ है।

परन्तु अिसके साथ अुद्योग द्वारा शिक्षाके माध्यमके रूपमें भी खादी-अुद्योगमें आश्चर्यजनक सुविधाअें है। अत्यन्त प्राचीन कालसे लेकर आज तक कपासने हमारे देशका अितिहास निर्माण करनेमें बडा भाग

अदा किया है। अैसा मालूम होता है कि कपासकी खेती और अुसे कातने, बुननेकी खोज हमारे ही देशने पहले की होगी। । 'पेड पर अुगने-वाली अून' और अुसके महीन और मुलायम कपडे देखकर विदेशी आश्चर्यचकित हो गये और अुससे भारतका कपडेका आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार जमा। अुसने विदेशियोको भारतकी ओर आकर्षित किया और अुसके कारण जो अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुअे अुनका परिणाम आजका हमारा भारत है। अिस प्रकार खादीके साथ हमारे देशका अितिहास गुथा हुआ है। अिसी प्रकार भारतके बाद जिन जिन देशोंने कपासकी खेती या कपासके कपडेके अुद्योगका विकास किया, अुन देशोका विचार करे तो लगभग सारे जगत्‌के अितिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज-रचना तथा राजनीतिके अनेक प्रश्नोमें हमें जाना पडेगा। कपासने मानव-जीवनमे अितना अधिक महत्त्वका भाग अदा किया है।

कपासकी खेतीसे लेकर विविध रंगोसे छपी हुअी खादी तकका सारा ज्ञान देने लगे तो अुसमें विज्ञान और गणितके कितने विषयोका अध्ययन करना पडेगा, यह विचार करना कठिन नहीं। यंत्रशास्त्र, पदार्थविज्ञान, रसायनशास्त्र, कृषिविद्या, वनस्पति-विद्या, जन्तु-शास्त्र, अंकगणित, भूमिति आदिके विविध प्रकरण अिसमें से अनिवार्य रूपमें पैदा होगे। खादी द्वारा यह शिक्षा किस हद तक दी जा सकती है, यह परेशानी होनेके बजाय किस हद तक शिक्षा देकर संतोष माना जाय, यही परेशानी हो सकती है।

अिसके सिवाय अिसकी आध्यात्मिक संभावना भी कम नहीं है। अिसमें अहिंसाप्रधान संस्कृतिकी बुनियाद है। जोर-जबरदस्ती नहीं, परंतु परिश्रम ही अिसका मूल मंत्र है। कबीर जैसे जुलाहेने अिसमें से केवल खादीके थान नहीं निकाले, परंतु धर्म और तत्त्वज्ञानके सिद्धान्त भी बुनकर बताये हैं। हमारी भाषाकी कितनी ही कहावतों और रूढ प्रयोगों तथा हमारे जीवनकी कितनी ही रूढियोंके आसपास चरखा, पीजन, करघा, रंगाअी-काम वगैरा गुथे हुअे हैं।

मैं यहां केवल दिग्दर्शन ही करा रहा हू। व्यवहारमे यह कैसे आयेगा, अिसका आधार शिक्षको पर है। यह अभी तक व्यवहारमे सागोपाग व्यवस्थित करके दिखाया नही गया है। अिसीलिअे मै मानता हू कि अिसका प्रारभ करनेके लिअे शिक्षा-विभागके अनुभवी, अुत्साही और भावनावाले शिक्षक पहले चुने गये है। अिसलिअे अिस शिक्षाकी सफलताका बहुत कुछ आधार आप लोगो पर है। आपको अपनी कल्पना-शक्तिका पूरी तरह अुपयोग करके अुद्योग और अलग अलग विषयोका भरसक कुदरती मेल साधना है। साथ ही दूसरे दो अुपविन्दुओको भी भूलना नही है। अिन दो अुपविन्दुओ पर मै बोल नही रहा हू, क्योकि ये नवीन नही है। अिसका अर्थ यह नही कि अुन्हे मै भुलाना चाहता हू।

अिसके लिअे आपको स्वयं अुद्योगमे पूरी प्रवीणता प्राप्त करनी होगी। केवल पुस्तक-शिक्षकोसे यह काम नही होगा। यह असंभव नही कि कोअी बालक आपसे भी अुद्योगमें बढ़ जाय, क्योकि आप देरसे प्रारंभ कर रहे है। परतु आप अुद्योगमें काफी कुशलता प्राप्त नही करेंगे तो काम नही चलेगा।

तकली पर आपको दायें बायें दोनो हाथोकी पूरी गति प्राप्त कर लेनी चाहिये। अिसी तरह रूअी पीजने और चरखा चलानेमें। अिन सबके लिअे जिसे अरुचि होगी वह यह प्रयोग सफल नही कर सकता। मै मानता हू कि आप तो अुत्साह और श्रद्धासे आये है, अिसलिअे आपको अिस बारेमें बहुत कहनेकी जरूरत नही।

हरिजनबंधु, २६-३-'३९

७

जीवन-निर्वाहकी शिक्षा

हम सब जानते हैं कि हमारा देश शिक्षामे बहुत ही पिछडा हुआ है। अिसलिअे कितने ही वर्षोसे हम यह माग कर रहे है कि शिक्षाका प्रसार करो, शिक्षाका प्रसार करो। काग्रेस सरकार बननेके बाद स्वाभाविक रूपमे हम अिसके लिअे अधिक अधीर हो गये है।

परन्तु दूसरी ओर जो लोग शिक्षा पाये हुअे है, अुनमे से बहुतोकी स्थितिकी जाच करे तो हमें निराशा अुत्पन्न होती है। शिक्षा पढाती अधिक है या भुलाती अधिक है, यह अेक प्रश्न ही है। हम जानते है कि जो पढते है वे बापदादोका धधा भूल ही जाते है, और अुसके बदलेमें बहुत ही थोडे लोग कोअी नया धधा सीखते है। किसानका पढा-लिखा लडका खेतीके बारेमे कुछ नही समझ सकता। कुम्हारका अपढ लडका मिट्टीके घडे अुतार सकता है, परन्तु अुसके पढे-लिखे लडकेको मिट्टी गूदना भी नही आता। दरजीका शिक्षित लडका न सी सकता है, न नाप ले सकता है। पढनेके बाद अिन सबकी दृष्टि कोअी क्लर्कीकी नौकरी प्राप्त करने पर ही जाती है। हमारी भाषा (गुजराती) में कारकुन और शिक्षक दोनो 'महेता' (मुशी) कहलाते है, क्योकि दोनोका कागज-कलमके साथ सम्बन्ध रहता है। बहुतसे अपढ माता-पिता यह परिणाम समझते है, अिसीलिअे अुन्हे अपने बालकोको पढानेका अुत्साह नही रहता। हमारे देशमें शिक्षाका परिणाम अुल्टा यह आया है कि कअी प्रकारका परम्परासे चला आया ज्ञान भी खतम होता जा रहा है। बुढियाका घरेलू वैद्यक बुढियाके साथ मर जाता है, क्योंकि अुसकी पढी-लिखी लड़की अुसमें रस नही लेती। अिसी प्रकार कितने ही प्रकारके कला और कारीगरीके काम जिस प्रकार होते थे, सब जाननेवाले अब नही रहे।

परन्तु शिक्षितोकी दशा कुछ सतोषजनक हो तो हम कहेगे कि भले यह पुराना ज्ञान गया तो गया। परन्तु अैसी बात भी नही। लडका चार किताब पढ लेता है और प्रश्न खडा हो जाता है कि अब क्या किया जाय? चार वर्षमे पिताके धधेसे अरुचि हो जाय, अितना ही वह पढता है। अब कोअी मार्ग सूझता नही, अिसलिअे आगे पढनेका निश्चय होता है। अिस प्रकार वह मैट्रिक तक चला जाता है और फिर वहीका वही प्रश्न पैदा होता है। लेकिन फिर भी कुछ नही सूझता। और आशा तो अमर है। अिसलिअे वह कॉलेजमे जाता है। अिस प्रकार जीवनके बीस-बाअीस वर्ष बिना किसी ध्येयके चले जाते है। जीवनके बीस अमूल्य वर्ष अनिश्चितताका सस्कार मजबूत करनेमे ही बीते, तो सारे जीवन पर अुसका कैसा परिणाम होगा?

अिसके सिवाय हमारी शिक्षा अेक और दृष्टिसे भी पगु सिद्ध हुअी है। हमने जो कुछ पढा है, वह अपने अपढ माता-पिता, भाअी-बहन या पत्नीको हम नही दे सकते। बालक पाठशालामे जो कुछ सीखता है अुसकी बात वह घर जाकर नही कर सकता। अुल्टे, यदि अुसकी मा पूछे कि 'क्यो बेटा, तू क्या पढता है, मुझे समझा तो', तो बालक कहेगा, 'वह कठिन है, तेरी समझमें नही आयेगा।' शालामें हम गरमीका विज्ञान जानते और प्रयोगशालामें अुसका प्रयोग करते है, परन्तु घर पर अुसका कोअी अुपयोग नही कर सकते। ज्ञान सक्रामक होना चाहिये। अिसके बजाय वह प्राप्त करनेवालेमें ही कैद रहता है। अिसका परिणाम यहा तक होता है कि आजकलका ग्रेज्युअेट बीस वर्ष पहलेके ग्रेज्युअेटको भी अपढ-जैसा ही समझता है।

शिक्षाकी यह स्थिति है। अब अशिक्षितोको देखें तो अपढ बालक सात-आठ वर्षकी अुम्रमे ही अपने माता-पिताकी कुछ न कुछ सहायता करने लगता है। पाच-छः वर्षका होने पर ही जब मा काम पर जाती है, तब वह छोटे भाअी-बहनोंको संभालता है। जरा बडा होते ही ढोरोंको संभालने लगता है और घरके छोटे-छोटे काम कर डालता

है। बारह वर्षका होने पर बापके साथ काम करने जाता है, और सोलहवें वर्षमे तो घरका भार अुठाने लायक माना जाता है। अिस तरह पाच-छ: वर्षमे ही वह कुटुम्बका बोझा हल्का करनेमें सहायक होता है। भले ही प्रत्यक्ष मजदूरीके रूपमे अुसके हाथमे कुछ भी न रखा जाता हो, परन्तु अुसके कामका आर्थिक मूल्य तो है। हमारा देश अितना गरीब है कि कुटुम्ब यह लाभ छोड नही सकता। माता-पिता कोअी अपने बालकोके शत्रु नही। साथ ही अपढ होने पर भी वे बिलकुल मूढ है, यह समझनेका भी कारण नही है, परन्तु आर्थिक परिस्थितिसे विवश हो जानेके कारण ही वे बालकोको आसानीसे शालामें नही भेज सकते।

फिर भी, हम अनिवार्य शिक्षाका विचार करते है, क्योंकि देशको शिक्षा दिये बिना भी काम नही चल सकता। वर्तमान शिक्षाके बारेमे असतोष हो तो अुसे सुधारे, नअी शिक्षाके विषयमे सोचे, परन्तु शिक्षाहीन स्थिति कायम नही रखी जा सकती।

अब अनिवार्य शिक्षाके अर्थका विचार करे। अिसका अर्थ यह है कि लगभग चौदह वर्षका हो तब तक बालक कमसे कम छ: घटे रोज सरकारके अधिकारमे रहे। माता-पिताको अुसे सरकारको सौंपना ही पडेगा। अिस प्रकार जो सरकार लोगो पर बन्धन लगाती है, अुस पर दो जिम्मेदारिया सहज ही आ पडती है। सरकार जनताकी है, अिसलिअे ये दो जिम्मेदारिया अुठानेकी तैयारी हो तो ही वह शिक्षाको अनिवार्य करके अपना अस्तित्व बनाये रख सकती है। अेक जिम्मेदारी यह है कि माता-पिताने बालकको ले लेनेके फलस्वरूप अुन्हें जो आर्थिक असुविधा अुत्पन्न हो, अुसका बदला वह बालकके द्वारा ही किसी न किसी तरह चुका दे, और दूसरी यह कि सरकार माता-पिताको यह आश्वासन दे कि अिस प्रकार शिक्षा पाया हुआ बालक शिक्षाके परिणामस्वरूप बेकार नहीं बनेगा। मतलब यह कि यह बालक स्वा-

सरकारको अपना परिश्रम देनेको तैयार हो तो अुससे काम लेकर अुसे जीवन-निर्वाह होने लायक मजदूरी देनेकी सरकार तैयारी रखे।

देशकी परिस्थिति, गरीबी, बेकारी, अब तककी शिक्षाकी त्रुटियां और ये दो जिम्मेदारियां, अिन सबका अेक साथ विचार करने पर अिसका अुपाय 'अुद्योग द्वारा शिक्षा' ही सूझ सकता है।

अुद्योग द्वारा शिक्षाका अर्थ किसी धंधेकी पूरी तालीम नहीं है। अिसका अर्थ यह भी नहीं है कि बालक जो अुद्योग करता हो, वही धंधा अुसे जीवनमें करना है। बालकको हम कक्का घुटवाते हैं और पहाड़े रटवाते हैं, अिसका अर्थ यह थोड़े ही है कि वह बाल-पोथी और पहाडोंकी पुस्तक पढकर ही रह जायगा? जो पहली, दूसरी या अन्य पुस्तकें वह वर्गमें पढता है या सवाल करता है, अुसीमें अुसकी पुस्तकीय शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती। यह कक्का और पहाड़े अुसे लेखन-वाचन और गणितकी कुंजियां जरूर देते हैं। परन्तु यह शिक्षा अुसे किसी तरह अुद्योगमें लगनेकी कुंजी नहीं देती; क्योंकि सारी शिक्षामें अुससे किसी अुद्योगके मूलाक्षर अथवा पहाड़े रटवाये ही नहीं जाते। अुल्टे, अुसका मन अिस ढंगसे तैयार होता है कि अुद्योगके प्रति अुसे अरुचि हो जाय।

अतः अुद्योग द्वारा शिक्षा अिस त्रुटिको सुधारनेके लिअे है। जड और कुशल दोनों प्रकारकी मजदूरी करनेकी बालकको आदत पड़े और बनी रहे, अुसे करनेकी जानकारी हो, अुसमें अुसे रस आये, किसी भी अुद्योगमें लगने और अुसे सीख लेनेमें अुसे प्रतिष्ठा मालूम हो, यह अुद्योग द्वारा शिक्षाका अेक अंग है।

परन्तु यह भी कअी तरहसे किया जा सकता है। अैसी-अैसी युक्तियां ढूंढी जा सकती हैं, जिनसे बालक सुबहसे शाम तक तोड़-फोड़ करता रहे, कठिन परिश्रम करे, अुसके द्वारा कुछ हद तक अुसका शरीर और अिन्द्रियां भी कसें, और फिर भी अुसे अुद्योगका अर्थात् जीवनके लिअे

आवश्यक किसी वस्तुके अुत्पादनका वातावरण न मिले। यह सब अेक प्रकारके खेलकी तरह ही किया जाय।

तब अुद्योग द्वारा शिक्षामें अुद्योगका अर्थ जीवनमें महत्त्वका भाग अदा करनेवाला कोअी अुद्योग समझना चाहिये। और अैसे अुद्योग द्वारा शिक्षाकी योजना करनी है। दूसरे शब्दोंमें यह अुत्पादक अुद्योगकी अथवा जीवन-निर्वाहकी शिक्षा कही जा सकती है।

अिसलिअे बालक शालामें आकर किसी न किसी अुद्योगमें लग जाय। अिस अुद्योगका अुसके और जिस समाज या गांवमें वह रहता है अुसके जीवनमें महत्त्वका स्थान होना चाहिये। शालामें आकर अुसे अैसा कुछ करना और सीखना चाहिये, जिससे अुसके माता-पिता भी थोड़े ही समयमें जान लें कि अुनका शाला जाना स्वागतयोग्य है, वह घरमें कुछ न कुछ लानेकी शक्ति प्राप्त कर रहा है; वह कुछ अैसा पढ रहा है जिसकी छूत घरमें लगे तो घरको भी लाभ होगा।

आजके ग्रामजीवन पर दृष्टि डालें तो चारों ओर निराशा फैली हुअी दिखाअी देती है। अपनी आर्थिक चिन्तायें कैसे मिटें, अिसका किसीको कोअी मार्ग नहीं सूझता। अिस निराशाकी ग्लानिको मिटानेके लिअे लोग गलत मार्ग पर लग जाते हैं। निराशाको भूलनेके लिअे वे सट्टा, जुआ, नशा आदिके व्यसनोंमें फसते हैं। जीवनकी आवश्यकताअें पूरी करनेवाला अुद्योग ही अिस निराशाको मिटानेका अेकमात्र अुपाय है।

माता-पिता देखेंगे कि बालक शाला जाकर आलसी नहीं, परन्तु काम करनेवाला बनता है। अपने कपड़ोंके लायक सूत तो वह थोड़े ही समयमें कातने लगता है, फुरसतके समयमें तकली चलाता है, पींजन चलाता है या कोअी न कोअी सफाअी-काम करता है, फुलवाड़ी लगाता है या अैसा ही कुछ करनेमें मशगूल रहता है। अिसके अलावा, मैं तो यह भी चाहूंगा कि बालककी मजदूरीका कुछ हिस्सा अुसे मुनाफेके तौर पर मिले। मुझे निश्चित ही अैसा लगता है कि अिससे बालकोंकी सुस्ती, शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता और मंद बुद्धि

कारण अुचित पौष्टिक खुराककी कमी है। वैसे भी सरकारने गाधीजीका स्वावलंबी शिक्षाका आग्रह स्वीकार नहीं किया है। अिसका अर्थ यह है कि वह शिक्षाका खर्च दूसरी तरह भी निकालनेकी हिम्मत करेगी। तो पैदावारका अेक अंश बालकको देनेकी बात गंभीरतासे विचारने जैसी है। अैसा हो तो माता-पिताको बालकका व्यर्थ घरसे गैरहाजिर रहना नहीं खटकेगा। अुन्हें मवेशी सभालनेकी परेशानी होगी। अिसके लिअे वे दूसरा रास्ता खोजेंगे। परन्तु वे बालकको शाला जानेसे रोकना नहीं चाहेंगे। अिसके सिवाय यदि अुन्हें यह विश्वास हो जाय कि बालक और कुछ चाहे न कर सके लेकिन कातने-बुननेकी मजदूरी करके तो पेट जरूर भर सकेगा, तो अुन्हें अुसके भविष्यकी चिन्ता नहीं रहेगी। अिस प्रकार अुद्योग द्वारा शिक्षा अुनके लिअे आशाका स्थान बन जायगी।

हरिजनबन्धु, २-४-'३९

८

नअी तालीमका शिक्षक

चरखा-संघके नामसे आप सब परिचित हैं। आप अुसे खादी अुत्पन्न करनेवाली संस्थाके रूपमें जानते हैं। अिसका अंग्रेजी नाम अधिक सूचक है। अुसका अर्थ होता है कातनेवालोंका संघ। यह संस्था साधारण अर्थमें व्यापारिक संस्था नहीं है। मजदूरोंको हाथ-कताअी और बुनाअी सिखा कर तथा लोगोंकी देशभक्तिकी भावनासे लाभ अुठाकर और प्रजाके खर्चसे व्यापार हथिया लेना और नफा कमाना अुसका अुद्देश्य नहीं है। अिसके कार्यकर्ताओंको जितनी खादी वे अुत्पन्न करें या बेचें अुसके हिसाबसे कमीशन या नफेमें हिस्सा नहीं दिया जाता। अुन्हें तो अपना निश्चित वेतन ही मिलता है। अिसका कारण यह

है कि चरखा-सघ खादीका व्यापार करनेके लिअे खादीके काममे नही पडा है, परन्तु कताअी द्वारा गरीब ग्रामीणोकी आर्थिक और सामाजिक सेवा करनेके लिअे अिसमे पडा है। अुसके कार्यकर्ताओका कर्तव्य सस्तेसे सस्ते मजदूर ढूढकर खादीके ढेर पैदा कराना और अुन्हे महगीसे महगी कीमत पर वेचना नही है, न निश्चित मजदूरी अीमानदारीके साथ चुका देनेसे ही अुनका कर्तव्य पूरा हो जाता है। परन्तु कार्यकर्ताओसे यह अपेक्षा रखी जाती है कि वे कातनेवालो और वुननेवालोके जीवनमे प्रवेश करे, अुनके जीवनको सुधारे और अुनमे जागृति पैदा करे।

नअी तालीमके शिक्षकोका कर्तव्य भी अिससे मिलता-जुलता है। अुनका भी सपत्ति अुत्पन्न करनेवाले कार्यकर्ताओका अेक समूह है। अुनका अुद्देश्य व्यापार करना नही, परन्तु अिस सपत्तिको पैदा करनेवालोका हित साधना और अुनकी सेवा करना है। यहा जिनके द्वारा सपत्ति पैदा करनी है, वे वडी अुम्रके स्त्री-पुरुप नही है, परन्तु छ-सातसे चौदह-पद्रह वर्षके लडके-लडकिया है। अिनके लिअे शिक्षाकी दृष्टिसे, गावोकी दृष्टिसे और समाजकी दृष्टिसे अनुकूल कुछ धधे ढूढे गये है या ढूढे जायगे। अिन कार्यकर्ताओ या शिक्षकोसे यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे ये धधे अुत्तम ढगसे सिखाये, कराये और अिस निमित्तसे वालकोके जीवनमें प्रवेश करके अुन्हे जीवनोपयोगी शिक्षा दे तथा दूसरे प्रकारसे अुनका जीवन सुधारे। जहा खादीका अैसे धधेके रूपमें चुना गया होगा, वहा अैसा मानिये कि वह चरखा-सघकी अेक स्वतत्र और विशिष्ट शाखा है। अेक अेक शाला अेक अेक अुत्पत्ति-केन्द्र है। अुसमे सात-आठ सस्कारी, सुशिक्षित और खास तालीम पाये हुअे कार्यकर्ता — खादीसेवक — रखे गये है। चरखा-सघकी तरह ही अिनके वेतन निश्चित है और अुन्हे स्वतन्त्र रूपमें मिलते है। फिर भी, जैसे चरखा-सघ अपने कार्यकर्ताओसे यह अपेक्षा रखता है कि वे कत्तिनोके हितोकी रक्षा करे और अुनके हितार्थ ही अिस ढगसे काम करे कि कत्तिनोकी कुशलता वढे, मालका विगाड न

हो और कमसे कम अुस केन्द्रका खर्च वहासे निकल आये, अुसी तरह शिक्षा-विभाग भी अपने कार्यकर्ताओंसे अैसी ही अपेक्षा रखेगा। अिसमें कुशलता, बिगाड वगैराके मामलेमें यह बात अवश्य ध्यानमें रखी जाय कि अुन्हें बालकोंके द्वारा काम लेना है।

अब अैसा समझिये कि अेक शालाका अर्थ सात-आठ बडे कार्यकर्ताओं और कोअी दो सौ बालकोंका अेक बडा कुटुम्ब है। अुन्हें पूंजीके सिवाय दूसरा खर्च खादी पैदा करके निकालना है। और पासमें जो दो-चार बीघा जमीन है, अुसमें थोड़े-बहुत फलफूल, शाकभाजी भी पैदा करे, जिनकी कीमत शिक्षा और मनोरंजनकी दृष्टिसे तो बडी होगी, परन्तु आयके खयालसे तुच्छ मानी जायगी। कपास ओटनेसे लगाकर अेक खास प्रकारकी बुनाओ तकका धधा करनेकी अिसमें छूट है। बालक अलग-अलग अुम्रके होंगे। अुनकी अुम्रका खयाल रखकर ही अुनसे काम लिया जा सकता है। जो काम कराया जाय अुसमें अिन बालकोंके हित और शिक्षाकी जाच करनेकी जिम्मेदारी भी है। अिन मर्यादाओंके बीच काम करना है।

अिनमें अुम्रके कुछ स्वाभाविक विभाग जरूर होंगे। प्रत्येक कार्यकर्ता अेक-अेक समूहको संभालेगा। जिस समूहसे जो काम कराना हो अुस कामकी वह देखरेख रखे और बालकोंके साथ अुस काममें शरीक हो। अुदाहरणार्थ, कभी कभी वह छोटे बालकोंके साथ कपास साफ करने बैठे। अुस समय वह अुन्हें कपास साफ करनेका तरीका बताये, साथ साथ बिना रुकावटके कपास अिकट्ठी करनेकी बात करे। कपासमें आनेवाले कचरेके प्रकार समझाये। अपने गांव जो कपास हो अुसकी किस्म वगैराके बारेमें बालकोंसे कहे। शालामें और किसी किस्मकी कपास हो तो अुसके साथ अपनी कपासकी तुलना करावे। अिसी तरह अलग-अलग समूहोंमें खादी-सम्बन्धी अलग-अलग क्रियायें होती रहे; और अुनके सम्बन्धमें विविध जानकारी बालकोंको मिलती रहे। अुनमें काम आनेवाले औजारों, साधनों और सभी

आदिका ज्ञान, गणित और अितिहास भी बताया जाय। अिस प्रकार खादीको केन्द्रमे रखकर बालकको विविध प्रकारसे पढा-गुना और विविध जानकारीसे पूर्ण बनाया जाय। अिसीमे से खादीकी और गावोकी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याये भी अुत्पन्न होगी। अिसलिअे अिसमे देशकी वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सस्थाओके प्रश्नोकी चर्चा करनी पडेगी। विद्यार्थीका अुनके कामोंके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेसे वह केवल पुस्तकीय जानकारी रखनेवाला या 'नागरिक-धर्म' की पुस्तक पढा हुआ नागरिक नही बनेगा, परन्तु व्यवहारमे पडा हुआ नागरिक बनेगा।

यह तो केवल अुद्योगका विचार करके चित्र खीचा गया है। परन्तु अिसके सिवाय जिस कुदरत और समाजके बीच बालक रहता है, अुसका विचार करके भी अुसे विविध प्रकारसे कुशल बनाना पडेगा।

अैसा भी अेक वर्ग है जो अुद्योग द्वारा शिक्षाकी हिमायत करता है, परन्तु अुसमे अुद्योगसे बननेवाली वस्तुको महत्त्व नही देता। वह बिलकुल निरुपयोगी और बनाकर फेंक देने जैसी भी हो सकती है, शायद थोडे समय शोभा बढानेके लिअे या कुतूहलसे आलमारीमे दिखानेकी भी हो सकती है। वे यह मानते है कि अिस शिक्षासे बालकके हाथ-पैरोको तालीम मिले और अुसे मनोरजनके साथ शिक्षा मिले तो काफी है। अिसलिअे वे मानो सिद्धान्तके तौर पर यह मानते है कि अुद्योग द्वारा शिक्षामे बिगाड तो होता ही है। वर्धा-योजना जिस शिक्षाकी हिमायत करती है, अुसमें बिगाड़का अनिवार्य स्थान नही है। अनिवार्य रूपमें कुछ न कुछ बिगाड हो और अुसे हिसाबमे लेना पडे, यह अलग बात है, परन्तु बिगाड ध्येयके रूपमें नही होना चाहिये। अिसी तरह केवल शोभा या कुतूहलको महत्त्वका स्थान नही मिलना चाहिये। आप अपनेको अेक अुत्पत्ति-केन्द्रके कार्यकर्ताके रूपमें समझने लगें, तो यह बात तुरंत ध्यानमे आ सकती है। अथवा, यो सोचिये कि कोअी

बढ़अी या दर्जी अपने बालकको अपना धंधा करते-करते सिखाये तो वह बिगाड़के लिअे लकड़ी या कपड़ेकी कितनी सुविधा अुसे देगा? जलानेके टुकड़े या कतरनों पर वह थोड़े दिन बालकको खेल करने देगा, परन्तु बादमें वह अुसे छोटे-छोटे किन्तु अैसे काम सौंपेगा जिनके लिअे अुसे मजदूरी मिलनेवाली हो। आज बनाया और कल जला दिया, अैसी पद्धतिसे सिखाना अुसे कभी पुसायेगा नहीं। अिसलिअे यह समझकर चलना चाहिये कि सिखानेके लिअे कच्चा माल खरीदना और अुसका अधिकतर भाग बिगाड़ खाते लिख डालना पुसायेगा नहीं।

शालामें चलाया जानेवाला धंधा भले ही आसान हो, परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि वह धंधा है, मजाक नहीं। अेक पद्धतिके रूपमें ही कुछ बेकार नहीं फेंका जा सकता या नहीं बिगाड़ा जा सकता।

यदि आप मेरी बात अच्छी तरह समझ गये हों तो अब आपको यह सोचने लगना चाहिये कि आप शिक्षक न रहकर अुद्योगके कार्यकर्ता बन गये हैं। अब आप बुनाअीके धंधेमें लग गये हैं। और फिर आपके स्त्री-बच्चे भी होंगे ही। वे भी अिसमें मदद दें। अिससे शाला, आप, आपका परिवार सबकी मानो अेक बड़ी सहकारी समिति बन जायगी।

परन्तु आप तो बुनाअीका धंधा करनेवालेके अुपरान्त शिक्षक — अर्थात् ब्राह्मण — भी हैं। आपको अपना यह धर्म छोड़ नहीं देना है। अिस प्रकार आपकी केवल अेक धंधा करनेकी ही जिम्मेदारी नहीं, बल्कि अुसे सिखाने और अुसका शास्त्र निर्माण करनेकी भी जिम्मेदारी है। अैसा नहीं लगता कि पहलेके ब्राह्मण केवल साहित्य, व्याकरण, [illegible] या कर्मकाण्डके ही शास्त्र रचते या सिखाते थे। [illegible] वे सम्पूर्ण [illegible] शिक्षक थे। यही [illegible] था। अिसी प्रकार [illegible] ब्राह्मण भी ब्राह्मण ही [illegible]।

परन्तु द्रोण स्वय अुत्तम योद्धा न होते तो वे शस्त्रविद्या कैसे सिखा सकते थे? धधे अैसी चीज नही है, जिन्हे अेक आदमी सिखाये और दूसरा न जाननेवाला आदमी अुनका शास्त्र वना सके।

अिसका अर्थ यह है कि नअी तालीममे यह भेद नही रखा जा सकेगा कि अुद्योगके शिक्षक अलग और पुस्तकके शिक्षक अलग हैं। प्रत्येक शिक्षकको धधेकी क्रियामे कुशल होना ही चाहिये। आज हमारी स्थिति यह है कि हमारी शालामे अगर कोअी धन्धा चलता होगा तो अुसमें काम आनेवाले औजारो या यत्रोंके भागोके नाम तक पुस्तक-शिक्षकको मालूम न होगे। दूसरी अनेक देश-विदेशकी वाते वह कर सकेगा, कमलके दस पर्याय वता सकेगा, विज्ञानकी सूक्ष्म परिभापा दे सकेगा, परन्तु चरखेके अलग-अलग भागोके नाम अुसके विद्यार्थी पूछे तो वह नही वता सकेगा। अुनमे से प्रत्येकके अलग-अलग नाम खोजने और न हो तो रखनेका भी हम परिश्रम नही करते। नअी तालीममे यह स्थिति नही रहनी चाहिये। जो शिक्षक अिस प्रकार वारीकीमे जायगा, अुसे पता चलेगा कि अुद्योग द्वारा कितना भापा-ज्ञान, विज्ञान, गणित वगैरा वढ सकता है, कितना नया साहित्य निर्माण हो सकता है, कितना वुद्धिका विकास और अिन्द्रियोकी सूक्ष्मता साधी जा सकती है और किस तरह समाजकी नवरचनाकी वुनियाद डाली जा सकती है। अिसका क्रान्तिकारी असर पहले हमारे अपने ही जीवनमे मालूम होने लगेगा।

हरिजनवन्धु, ९–४–'३९

९

वर्धा-शिक्षाका अेक नमूना

मेरे घरकी खिडकीके सामने अेक सूखे हुअे पेडका तना खडा था। कल सुबह मकान-मालिकके नौकरने अेक साथीकी मददसे अुसे गिरा दिया और दोपहरके बारह बजे तक करवतसे काटकर अुसके बडे-बडे टुकडे कर दिये। अुनके साथ अुसकी पत्नी और पांचेक वर्षका अेक लडका भी आया था। पत्नीने लकडियां अुठा ले जानेमें साथ दिया, बारह बजे काम पूरा हुआ तब लम्बा करवत भी वही अुठा कर ले गअी। जो तीन-चार घंटे अिस काममें लगे, अुतने समय तक वह लडका भी साथ रह कर कुछ न कुछ करता रहा। छोटे टुकडे अुठे अुन्हें अुठाकर वह अेक जगह रखता; साथ ही करवत चलता अुसका मजा भी देखता। बारह बजे नौकरने करवत हाथसे छोडा कि लडकेने तुरन्त अुसे दोनों हाथोंसे घसीटकर लकडीके अेक टुकडे पर सटाकर टिका दिया। करवतके दांते पहले अूपरकी ओर रखे। फिर कुछ विचार आया, अिसलिअे पलट कर नीचेकी ओर कर दिये। फिर कुछ विचार आया, अिसलिअे टुकडे परसे अुतारकर व्यवस्थित रूपसे करवतको जमीन पर लिटा दिया। फिर पासमें पडी हुअी रस्सी हाथमें ले ली। यह सब अुसने खुद ही किया, किसीके कहनेसे नहीं। अुल्टे, अिस क्रियाके साथ वह कुछ बोलता जा रहा था।

यह सब हो रहा था, अितनेमें नौकरने करवत पत्नीके सिर पर रखा और अेक बडा लक्कड साथीके सिर पर रखा। और सब अपने घरकी ओर विदा हुअे।

नौकर और अुसकी पत्नी अपढ थे। बालकको अपने मांबापसे सहज कुछ न कुछ शिक्षा लेनेका मौका मिल रहा था। [illegible], अिस बुद्धिके [illegible] अुसे साथ [illegible] न होगा। [illegible] [illegible] होता [illegible]। परन्तु मुझे सहज-शिक्षाका [illegible]

आया। यह काम अुनके जीवनके साथ सम्बध रखता है और किसी न किसी तरह आवश्यक है, यह भी अुसे जरूर पता चल गया होगा। अिसलिअे अुसने माता-पिताके कामका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, और अपनी बालबुद्धिके अनुसार अुसमे रसपूर्वक भाग भी लिया। अिस कारणसे वह तीन-चार घटे माता-पिताको तग किये विना वहा मौजूद ही नही रहा, बल्कि अपनी छोटी छोटी क्रियाओ और मीठी बोलीसे अुसने माता-पिताका श्रम भी मिटाया।

अिसी वस्तुको शास्त्रीय पद्धतिसे व्यवस्थित रूप दे दिया जाय तो वह विद्या बन जाय और अुससे वर्धा-शिक्षाका शास्त्र निर्माण हो जाय।

‘शिक्षण अने साहित्य’, अप्रैल १९४०

१०

कमानेवाली शिक्षा

[सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनमें पेश किया गया प्रस्ताव और अुस पर किया गया विवेचन।]

प्रस्ताव

“अिस सम्मेलनकी यह राय है कि गावोमे शिक्षाकी अैसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे किसी भी साधारण प्रौढ विद्यार्थीको वह शिक्षा पा रहा हो अुसी कालमे शिक्षाका खर्च निकाल सकने लायक मजदूरी मिल सके। यदि गावोकी शिक्षा-सस्थायें अैसी चीजे बनाने लगें जो अुपयोगी भी हो और शिक्षाकी दृष्टिसे कीमती भी हो तो ही यह हो सकता है। यह हो सके अिसके लिअे देशकी आर्थिक व्यवस्थामे भी साथ ही साथ क्रान्ति करनी पडेगी। अर्थ-व्यवस्था और शिक्षाके क्षेत्रमें अैसी दोहरी क्रान्तिके फल-स्वरूप साधारण और बुद्धि-

कहासे मिले? वह तो बम्बअी जैसी जगहोमे ही मिल सकती है। परन्तु अमरीकामे हमारे यहाके विद्यार्थियोने बेशक अिस ढगसे शिक्षा प्राप्त की है।

रूसमें वहाकी सरकार अिसके लिअे जबर्दस्त कोशिश करती है कि कोअी भी प्रजाजन अपढ न रहे। परन्तु वहाका तरीका दूसरा ही है। हमारे यहा मजदूरी करनेवालेके लिअे प्रगतिकी कोअी दिशा ही नही होती। अेक बार मनुष्य रसोअिया बना कि सदाके लिअे रसोअिया ही रहता है। अुसके जीवनमे प्रगतिके लिअे स्थान ही नही होता। मनुष्य जो काम करता हो वह भी प्रगतिशील होना चाहिये। अमरीकामे अैसा नही है। कार्नेगी, फोर्ड और अेडिसन जैसोके अुदाहरण जानने लायक है। वे मेहनत-मजदूरी करके आगे बढे और समाजमे प्रमुख स्थान पर पहुचे।

यह मार्ग हमारे यहा खुला नही है, अिसके लिअे हम ब्रिटिश सरकारको दोष नही दे सकते। यदि हम चाहते हो कि हमारे यहा भी अैसा हो तो अिसके लिअे अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिये। अमरीकामे यह कैसे सभव हुआ है? अिसलिअे कि वहा मजदूरीका स्तर अूचा है। मजदूरीका स्तर अूचा हो अिसके लिअे आर्थिक स्थितिमे क्रान्ति करनेकी जरूरत है। मजदूरीका स्तर अूचा अुठायेंगे तो ही मजदूरी करनेवालेके जीवनमे अुत्साह आ सकता है। दस-ग्यारह घटे कडी मेहनत करनेके बाद वह रात्रिशालामे कैसे आ सकता है? अिसलिअे मजदूरी देकर पढाया जा सके, अैसी स्थिति अुत्पन्न करनी चाहिये। यह हाथके अुद्योगकी विद्या द्वारा ही सभव हो सकता है। अन्न-वस्त्र आदिकी कमी नही होनी चाहिये। हवा और पानीकी तरह ये चीजे पूरी मात्रामें मिल सकनी चाहिये। अन्न और वस्त्र पूरी मात्रामे मिलनेके लिअे कोअी हमें अमरीका और रूसकी अुत्पादन-पद्धति बताये तो वह हमारे कामकी नही। क्योकि बेकार आदमी अुन्हे कैसे प्राप्त कर सकते है? अिसलिअे छोटे पैमाने पर और अलग-

अलग बिखरे हुअे केन्द्रोमें अुत्पादन करनेकी पद्धति हमें स्वीकार करनी चाहिये। अिस काममें हमें विज्ञानका अुपयोग करना पडेगा। यह देखना होगा कि ये धधे आर्थिक दृष्टिसे कैसे सफल बनाये जा सकेंगे। यह मैं कोअी अवैज्ञानिक बात आपसे नही कह रहा हूं। यह सच है कि अिस प्रकारके औद्योगिक 'टेकनिकल' सशोधनकी जिम्मेदारी तालीमी सघके सिर पर आती है। सभव है कि यह सब करनेके बाद भी हमारी स्थितिमें सुधार न हो। अिसलिअे अेक और वस्तुका विचार करना होगा। यह सब करनेका प्रयोजन क्या है? नफा, ब्याज आदि कमाना? नही। अिस्लाममें ब्याज लेना हराम है। यही बात हमें करनी होगी। सोनेवाले हिस्सेदार, अनुपस्थित जमींदार अथवा साहूकार जैसी कमाअी करते है, वैसी नही हो सकती चाहिये। रुपया देनेवाला आदमी यह कह सकता है कि भाअी, मैं तुम्हारा सूदका सूद चुकाअूंगा, बल्कि पाच सौके चारसौ निन्यानवे दूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारी पूंजीकी रक्षा करूंगा!

ये सब धधे नफेके लिअे नही चलने चाहिये। हमें देशके चालीस करोड लोगोंकी आवश्यकताअें पूरी करनी है। देशको स्वयपूर्ण बनानेका प्रयत्न करना है। जीवनके साधनोंका अभाव किसीको कही भी बाधक नही होना चाहिये। आज तो किसानोंमें जीनेका भी अुत्साह नही रहा। मोक्षका हमारा तत्त्वज्ञान थोडेसे लोगोंके लिअे भले ही बना हो, परन्तु वह सर्वोदयका ध्येय नही हो सकता। अिसलिअे जिये, यही प्रश्न है। [illegible] जन्म मिलनेके बाद मृत्यु भी वैसी ही मिलती है। [illegible] सर्वत्र अभाव दिखाअी देता है। लोगोंका किसी कामकी अुत्साह नही रहा। [illegible] है कि यदि ज्यादा [illegible] साहूकार या सरकार छीन लेंगी। अैसी प्रथायें [illegible] — हम अुनका ध्यान रखना चाहिये। [illegible] है। [illegible] मे समृद्धि, [illegible] मे आराम और [illegible]

समानता — अेकताकी तरफ अुसे प्रगति करनी है। नौकर मालिकका काम भले ही करे, परन्तु अिस कारणसे अुसका स्थान मालिककी बराबरीमे क्यो न हो? वह भी मालिकका अेक प्रकारका मत्री या सेक्रेटरी ही तो है? मालिकके लिअे पत्रादि लिखनेवाला अुसका सेक्रेटरी कहलाता है, तो मालिकके लिअे रसोअी बनानेवाला भी सेक्रेटरी क्यो नही माना जाना चाहिये? यह सच है कि मैने यह वस्तु सिद्ध नही की है, परन्तु मुझे अिसका भान हुआ है कि यह दोष है। हममे यह भावना जाग्रत होनी चाहिये कि मैले कपडेवाला प्रतिष्ठाका पात्र है।

कामके कारण मनुष्यको प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये, न कि स्वच्छ अुजले कपडोके कारण या आरामसे बैठे रहनेके कारण।

‘शिक्षण अने साहित्य’, फरवरी १९४५

११

‘नअी तालीम’ का संदेश

पिछले कुछ वर्षोंसे गाधीजी अपने पहलेके प्रिय विषय चरखेके बनिस्वत ‘नअी तालीम’ के बारेमे अधिक बोलते थे। अिसका कारण यह नही था कि अुनकी दृष्टिमें चरखा पहलेसे कम महत्त्वका हो गया था। अुल्टे, हाथ-कताअी और हाथ-बुनाअीके बिना अुनकी कल्पनाकी ‘नअी तालीम’ का अमल करना ही असभव है।

नअी तालीम और चरखेके बीचके सबधकी गाधीजीकी कल्पना सत्य और अहिंसाके बीचके सबधसे लगभग मिलती-जुलती है। गाधीजीकी रायमे सत्य ही अीश्वर और ध्येय है, और अहिंसा अुसे प्राप्त करनेका साधन — अेकमात्र सच्चा और सबल साधन है। अिसी प्रकार नअी तालीम ध्येय है और चरखा अुसे प्राप्त करनेका साधन है। और जिस प्रकार अहिंसा शब्दसे केवल अहिंसा ही न

समझकर अुसमे सयम, अपरिग्रह आदि दूसरे यमोका समावेश करना होता है, अुसी प्रकार चरखेमे भी विश्वशातिकी पक्की वुनियाद डालनेके लिअे आवश्यक धधे-सवधी, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक आदि सारी मानव-प्रवृत्तियोका समावेश कर लेना है।

नअी तालीमको जिस तरह मै समझता हू, अुसके अनुसार यह शब्द किसी वुनियादी अुद्योग अथवा जिसे 'अुत्पादक प्रवृत्ति' कहा जाता है अुसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षाका पर्यायरूप ही नही है। अुसी तरह, जैसा कअी वार कहा जाता है, अिसका अितना ही भावार्थ नही है कि वुनियादी अुद्योगके साथ पाठचक्रमके सव विषयोका सवध जोड दिया जाय अथवा आयोजन कर दिया जाय। शिक्षाकी अेक नअी कला अथवा पद्धति कहने मात्रसे जो कुछ सूचित होता है, अुससे कही गहरा रहस्य अिसमे छिपा हुआ है।

विचार करने लायक प्रश्न तो यह है कि हमे आजकल कौनसा ध्येय सिद्ध करनेके लिअे तालीम दी जाती है? हम अपनी शिक्षा-सवधी सारी प्रवृत्तियोंसे — फिर भले ही वे प्राथमिक, माध्यमिक, अुच्च अथवा निष्णातोकी शिक्षाकी हो — किस प्रकारका समाज पैदा कर रहे है या करना चाहते है? आधुनिक शिक्षाकी सारी सीढिया पार कराकर अेक महत्त्वाकाक्षी, वुद्धिशाली युवक (अथवा युवती) को हम किस प्रकारके जीवनके लिअे तैयार करना चाहते है? विद्यार्थीको युद्धकी तत्परताके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिअे तैयार करना चाहते है या शातिस्थापनके साथ मेल खानेवाले जीवनके लिअे? आज अुसे अनिवार्य फौजी शिक्षा पानेके लिअे और फौजी नौकरी, मुल्की नौकरी, वडी मात्रामे अुत्पादन, विराट अुद्योग, पूर्ण शस्त्र-सज्जता, राजनैतिक दलोका संगठन आदि 'करियरो' के लिअे तैयार किया जाता है। वह अेक समर्थ राजनीतिज्ञ, अेक सफल पत्रकार, अेक प्रभावकारी प्रचारक अित्यादि वनना चाहता है। अुसे अैसा जीवन जीनेकी तालीम दी जाती है, जिसमे अुसे सतत विमानोमे घूमनेको मिले

तथा जो अद्यतन विपुल साधन-सम्पत्तिवाला हो। अुसका बस चले तो वह देहातमे व्यतीत करनेका, जन्मसे लेकर मृत्यु तक खेतोमे पशुओके साथ रहनेका अथवा हाथ-करघे पर बुनाअीके काममे लगे रहनेका तथा गावोके प्रश्नो पर ध्यान देकर गावोका जीवन-स्तर अूचा अुठानेके काममें व्यतीत करनेका जीवन पसद नही करेगा। आज हम अपनी प्रजाको जिस प्रकारकी शिक्षा देते है, वह अेक बुद्धिशाली और महत्त्वाकाक्षी युवक अथवा युवतीको अिस प्रकारके जीवनसे सतुष्ट रहनेवाला हरगिज नही बनाती। फिर भले ही अिस जीवनके साथ यह आश्वासन दिया जाय कि वह काम करेगा तो अुसे अेक अच्छासा घर, पेटभर पौष्टिक भोजन, पर्याप्त वस्त्र, अच्छी सगति और निर्दोष आनद लेने लायक सस्कारी प्रवृत्तिया मिल जायगी। अिससे अुसे सतोष नही होगा, क्योकि अुसे बचपनसे अेक और चीजको अिसमे अधिक चाहनेकी तालीम मिली है, अर्थात् हमेशा आगे आनेकी और चकाचौंध पैदा करनेवाली परिस्थितिमें रहनेकी। अुसे धाधली चाहिये, शाति नही, फिर भले वह धाधली आग बरसानेवाले बॉम्बर हवाअी जहाजकी और मानवजातिके सर्वनाशकी ही क्यो न हो। किसी प्राणीके जीवनके लिअे, सादगीके लिअे और सदाचरणके लिअे अुसके मनमें आदर नही रहा। स्वतत्रताका भी बलिदान कर दिया जाता है। मौजूदा शिक्षा-प्रणालीका — पुरानी तालीमका — केन्द्रबिन्दु भौतिक शास्त्रो द्वारा सामर्थ्य बढाते जाना है।

नअी तालीमका सन्देश अिससे अुल्टा है। वह भलाअीका विकास करना चाहती है, सामर्थ्यका नही, अपने विद्यार्थियोमें — फिर वे बालक हो या बडे — वह लडाअी और झगडेके बजाय शाति और सुमेलका, सादे आनदोका, सादी सुख-सुविधाओका, सच्चाअीका तथा नीतिमत्ताका प्रेम, काम करनेका आनन्द और स्वतत्रताका जोश पैदा करना चाहती है। वह जीवित प्राणियोको अेक बडे यत्रके दातोकी तरह नही मानना चाहती, ताकि वे अुसके साथ मेल खाय तो ही किसी महत्त्वके रहे,

अन्यथा जरासी भी आनाकानीके बिना 'खतम' कर देने योग्य माने जाय।

चरखा अिस प्रकारकी सस्कृतिके विकासके लिअे सबसे अधिक महत्त्वके स्थूल साधनोमे से अेक है। वह केवल पुराने जमानेका सूत पैदा करनेवाला यत्र नही है। वह तो अेक अैसा केन्द्र है, जिसके चारो ओर शान्तिकी सस्कृति खडी की जा सकती है। अिसलिअे अुसे शिक्षाकी सारी मजिलोमे केन्द्रीय स्थान दिया जाना चाहिये। बचपनसे ही चरखा बालकके जीवनका अेक अग न बने और अुसके जीवनके अन्त तक वैसा न रहे, तो खादी स्वय ही जड नही जमा सकती। चरखा गाधीजीके सारे रचनात्मक कार्यक्रमका प्रतीक है। अिसका जब हम विचार करते है, तो अुन्होने 'लोकसेवक-सघ' नामक अपनी अन्तिम टिप्पणीमे (देखिये 'हरिजन', १५–२–'४८) जो यह जोर दिया है कि लोकसेवकको "ग्रामीण लोगोकी जन्मसे लगाकर मृत्यु तककी शिक्षाकी व्यवस्था 'नअी तालीम' के मार्ग पर, हिन्दुस्तानी तालीमी सघकी निश्चित की हुअी नीतिके अनुसार करनी चाहिये", अुससे कोअी आश्चर्य नही होता।

'शिक्षण अने साहित्य', मार्च १९४८

१२

अितिहासका ज्ञान

पिछले पचास वर्षोसे विद्वानोने अितिहासके ज्ञानकी वडी महिमा गाअी है, और अनेक दिशाओमें अैतिहासिक शोध करने तथा अनेक विषयोका अितिहास लिखनेकी काफी कोशिश हुअी है। अपने देश, जगत् तथा जीवनकी अनेक वातोका पिछला अितिहास जानना मनुष्यकी सर्वांगीण और सामान्य तालीमका आवश्यक अग माना गया है। अर्थ-शास्त्रियोमें अितिहासवादियोका अेक सम्प्रदाय ही है। कम्युनिस्ट अपनी विचारसरणीको अैतिहासिक सत्यो पर ही आधारित मानते हैं और अुस परसे मानव-जीवनके भविष्यके सम्बन्धमें निश्चित मत प्रतिपादित करते हैं। अैतिहासिक ज्ञानकी महिमामे से अितिहासको 'सुरक्षित रखनेका' भी अेक आग्रह पैदा हुआ है और वह अिस हद तक वढा है कि मानवके आदियुगके नमूने लुप्त न हो जाय, अिसलिअे कुछ पुरातत्त्व-वादियोका विचार है कि जगली व पिछडी हुअी जातियोको अुनकी आदिदशामें ही रहने दिया जाय। अैसे लोग भी हैं, जो अनेक रूढियो तथा सस्थाओको आजके जीवनमे अर्थहीन और असुविधाजनक होते हुअे भी अितिहासको सुरक्षित रखनेके लिअे वनाये रखना चाहते हैं।

जब अितिहासका अितना ज्यादा महत्त्व माना जाता हो, तव मेरे यह कहनेमे धृष्टता मालूम होगी कि यह मान्यता लगभग वहमकी कोटिकी है। मगर वडी नम्रतासे मै कहना चाहता हू कि अितिहासके ज्ञानका जितना महत्त्व माना जाता है, अुतने महत्त्वका पात्र वह नहीं है। अिसमें पीतलके गहनेको सोनेका गहना मान लेने जैसी ही भूल की जाती है।

सच बात तो यह है कि किसी भी घटनाका सोलह आने सच्चा अितिहास हमे भाग्यसे ही मिलता है। खुद ही की हुअी और कही हुअी बातोकी भी याददाश्त अितनी तेजीसे घुधली पड जाती है कि थोडे समय बाद अुसमे सत्य और कल्पनाका मिश्रण हो जाता है। किसी मानसशास्त्रीने अेक प्रयोगका वर्णन किया है। विद्वानोकी सभामे अेक नाटचप्रयोग किया गया। अुसमे अेक दुर्घटनाका प्रदर्शन किया गया। प्रयोगके साथ ही अुसकी फिल्म भी अुतार ली गअी। प्रयोग कुछ मिनटोका ही था। प्रयोग होनेके आधे घटे बाद श्रोताओंसे कहा गया कि अुन्होने जो देखा अुसका ठीक ठीक वर्णन लिखें। नतीजा यह आया कि तीस साक्षियोमें से अेक दोके वर्णन तो फिल्मके साथ ८० फीसदी मिलते थे, शेष सबके वर्णनोमे ४० फीसदीसे ६० फीसदी तककी भूले निकली।

अिसमे आश्चर्य करने जैसी कोअी बात नही है। जब तटस्थ और सावधान साक्षी भी घटनाओको यो तेजीसे भूल जाते है, तब फिर जिनमे घटनाओको जन्म देनेवाले तथा अुन्हे लिख रखनेवाले लोगोका कोअी रागद्वेष — पक्षपात वगैरा हो, अुनके वर्णनोमें अगर सचाअीका हिस्सा कम हो और जैसे जैसे समय बीतता जाय, वैसे वैसे ज्यादा कम होता जाय, तो अिसमें आश्चर्यकी क्या बात है? वर्तमान घटनाअें भी अेक ही दिनमे अैसी सशयास्पद बन सकती है कि सच सच घटना क्या घटी, यह कभी भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। कल तक कलकत्तेकी 'काल कोठरी' की बातको सभी विद्यार्थी और शिक्षक सच्ची घटना समझते थे। वही अब गप साबित हुअी है। अभी हाल ही मे पडित सुन्दरलालजीने यह बतलाकर हमे आश्चर्यचकित कर दिया है कि सोमनाथको लूटनेकी बात भी सच नही है। अगस्त १९४६के बाद देशभरमे होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम अत्याचारो और दंगोका सोलह आने सच्चा अितिहास कभी भी नही मिल सकेगा। कृष्णका सच्चा जीवनचरित्र कौन जान सकता है? रामका ही नही

अीसामसीहका भी कभी जन्म हुआ था या नही, और अुन्हे क्रॉस पर चढाया गया था या नही, अिस पर भी शका की गअी है। शेक्सपीयरके नाटकोके सम्बन्धमे प्रेमानन्दके नाटको जैसा ही विवाद है। अिधर विद्वानोमे अिस सम्बन्धमे चर्चा चली है कि कालिदास कितने हो गये है।

अिस तरह जिस अितिहासके ज्ञानकी हम महिमा गाते है, वह भले ही अितिहासके नामसे और सेक्रेटरियेटके दफ्तरो तथा प्रत्यक्ष भाग लेनेवालोके मुहसे सुनकर लिखा गया हो, फिर भी वह अुपन्यास या सम्भाव्य घटनासे ज्यादा कीमती नही होता। अिसका वाचन और पिछली कडियोको खोजने और जोडनेकी बौद्धिक कसरत मनोरजक अवश्य है, मगर शेक्सपीयर, कालिदास, बर्नार्ड शॉके अुत्तम नाटको, या पौराणिक वार्ताओ तथा परपरागत दतकथाओसे ज्यादा कीमत न तो अिसकी करनी चाहिये, और न अुनसे ज्यादा अिसके ज्ञानका मोह रखना चाहिये।

अितिहास पढकर भूतकालके सम्बन्धमे हम जो कल्पनाअें करते है, वे योग्य मात्रासे वहुत ज्यादा व्यापक रूप लिये होती है। और अुन परसे हम जो अभिमान या द्वेष अपने दिलोमें पालते है, वे तो वेहद अनुचित होते है। प्रजाजीवनके वर्णनोमे प्रजाके वहुत ही थोडे भागके जीवनकी जानकारी अुसमे दी हुअी रहती है, मगर हम समझ लेते है कि वह पूरी प्रजाकी हालतका वर्णन है। भूतकालमे भी समृद्धि थी। वडे वडे नगर थे, नालदा जैसे विद्यापीठ थे, अिस जमानेमें भी है। मगर हमे अैसा नही लगता कि आजकी तरह अुस समय भी थोडे ही लोग अुस समृद्धिका अुपभोग करते होगे, ज्यादातर लोग गरीव ही होगे, गुरुकुलोका लाभ गिनेचुने लोग ही लेते होगे, गार्गी जैसी विदुषी कोअी हर ब्राह्मणके घरमे नही होगी, अनेक ब्राह्मणिया तो आज जैसी ही निरक्षर होगी, और दूसरे वर्णोके स्त्री-पुरुष भी आज जैसे ही होगे। मगर हम समझते है कि अुस समय तो सभीकी हालत

अच्छी ही थी, वादमे बदल गअी। लेकिन वहुत वड़े प्रजा-समूहके लिअे अैसा कहा तक कहा जा सकता है, अिसमे शका ही है।

शिवाजीने अुस जमानेके मुसलमान राज्योके खिलाफ मोर्चा लिया और स्वतत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना की, अिस परसे मराठा मात्रको लगता है कि मुसलमानोसे द्वेष करना अुनका कुलधर्म है, अिसी न्यायसे शिवाजीने सूरतको लूटा था, अिसे पढ़कर मेरे अेक वचपनके साथीको, जिसके पूर्वज सूरतमे रहते थे, अैसा लगता था कि शिवाजी और मराठे सव लुटेरे ही थे और महाराष्ट्रीयोके प्रति घृणा रखनेमें अुसे कुलाभिमान मालूम होता था। अगर अितिहास जैसी कोअी चीज न हो, मनुष्यको भूतकालकी कोअी स्मृति ही न रहती हो, तो देश-देश और प्रजा-प्रजाके वीचकी दुश्मनियोको पोषण न मिले। अभी तक अैसी कोअी प्रजा या व्यक्ति नही हुअे, जिन्होने अितिहास पढकर कोअी शिक्षा ली हो और समझदार वने हो।

सच पूछा जाय तो अितिहास स्मृति या याददाश्तका ही दूसरा नाम है। क्योकि ज्यादातर अितिहास लिखनेकी प्रवृत्ति अुस समय नही होती जब कि स्मृति ताजी होती है, वल्कि अुस समय होती है जव वह धुधली पड जाती है और सच्ची घटनाये जाननेके साधन भी लुप्त होने लगते है। मगर ताजी और सच्ची स्मृति भी मनुष्यको मिला हुआ वरदान ही नही, वल्कि शाप भी है। दो गायोके वीच सहानुभूति — प्रेम सदा रहता है। अुनके बीच हुआ झगडा क्षणिक होता है, क्योकि अुनकी याददाश्त वहुत कमजोर होती है। और जव झगडा न हो, अुसकी याद भी न हो, तव अुनकी आपसकी सहानुभूति स्वभावसिद्ध होती है। मगर मनुष्य स्मृतिको ताजी रखकर ज्यादातर द्वेषको ही जीवित रखते है, यानी सहानुभूतिको — प्रेमको घटाते है। स्वभावसिद्ध सहानुभूति — प्रेम अगर किसी खास कर्म द्वारा व्यक्त किया गया हो, तो वह याद रहता और पुष्ट होता है; मगर अुसके अभावमे

या अुसे भुला सकनेवाला झगडा कही अेक वार भी हो जाय, तो वह स्मृति द्वारा लम्वे अरसे तक टिकता है।

यह सब देखते हुअे मुझे नही लगता कि अितिहासका शिक्षण काव्य-नाटक-पुराण-अुपन्यास वगैरा साहित्यके शिक्षणसे ज्यादा महत्त्व रखता है । अितिहासका अज्ञान अेकाध प्रसिद्ध नाटक या काव्यके अज्ञानसे ज्यादा वडी खामी नही है। अिसे मनोरजक साहित्यका ही अेक विभाग समझना चाहिये।

आजका मानव-जीवन अितिहासका ही परिणाम है। हमे वर्तमान मानव-जीवनका अच्छी तरहसे निरीक्षण करना चाहिये और अितिहासकी कैदमे पडे वगैर अुसकी समस्याओका हल खोजना चाहिये। अैसा भय रखनेका कोअी कारण नही है कि अितिहास टूट जायगा या अुसकी परम्परा कायम नही रहेगी । क्योकि अुसके मम्कार तो पहलेमे ही हमारे जीवनमे दृढ हो चुके है । अिसलिअे चाहे जितना प्रयत्न कीजिये, अुसकी कारण-कार्य शृखला टूट ही नही सकती। जो अुपाय हम मोचेगे, वे हमें भूतकालके किसी सस्कारमे से ही सूझेंगे, यानी विना पढे हुअे अितिहासमे से ही सूझेंगे। पढे हुअे अितिहासका अुलटे अिसमे विघ्न-रूप होना ही ज्यादा सभव रहता है।

अगर अितिहास न होता, तो झडेके चक्रकी अशोकके धर्म-चक्रसे या कृष्णके सुदर्शन चक्रसे तुलना करनेकी अिच्छा न होती, और चाद-तारेके झडेको भी महत्त्व न मिलता । अितिहामका ज्ञान क्षीण होनेके कारण जिस तरह मध्यकालमें हिन्दुस्तानमें आये हुअे शक, हूण, यवन, वर्वर, असुर वगैरा लोगो तथा अुनके धर्मों और आर्योंके वीच आज कोअी स्वदेशी परदेशीका भेद नही करता या हिन्दूकी 'सावरकरी' व्याख्या पढने नही वैठता, अुमी तरह आज मुसलमान, अीसाअी, पारमी वगैराके सम्वन्धमे भी हुआ होता । पौराणिक चतु.मीमाके अनुसार अरवस्तान, तुर्कस्तान, मिस्र, यरना वगैरा सव देश भरतखडके ही देश माने जाते । अिस तरह अिति-

हासके अज्ञानके कारण कुछ लोग मानते है कि सारे पुराण अेक ही कालमें और अेक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये है, अुसी तरह सारे धर्म सनातन धर्मके ही भेद समझे जाते । अितिहास पढ़नेके परिणाम-स्वरूप हम दूसरोंसे अलग होना सीखे हैं, मिलना नही।

शिक्षणमें अितिहासको गौण स्थान देनेकी जरूरत है । अुसकी कीमत भूतकाल सम्बन्धी कल्पनाओ अथवा दन्तकथाओंके बराबर ही समझनी चाहिये ।

'जड़मूलसे क्रान्ति', ३०-१-'४८

शिक्षामें विवेक

लेखक
कि० घ० मशरूवाला
अनुवादक
खुशालसिंह चौहान

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति, ३०००

डेढ़ रुपया

मार्च, १९५६

निवेदन

अिस सग्रहकी तैयारीसे लेकर प्रकाशित होने तक जो कुछ भी मेहनत करनी पडी है अुसका सारा श्रेय श्री रमणीकलाल मोदीको है। मै जब गूजरात विद्यापीठमें महामात्र था, तबसे आज तक शिक्षा-सम्बन्धी जो भी लेख मैंने लिखे है अुनका सग्रह करके श्री मोदीने अुन्हे दो भागोमे बाटा है। अुनमे से अेक है 'शिक्षामें विवेक'। अिसे 'तालीमकी बुनियादे' का अनुग्रंथ कहा जा सकता है। अिनमे अुन्ही लेखोका सग्रह किया गया है, जो आज भी पढने और विचार करने योग्य मालूम हुअे है। जो लेख आज अप्रासगिक मालूम हो सकते है वे निकाल दिये गये है। छपनेके पहले अिस सग्रहको मै देख गया हू। और देखते-देखते कुछ लेखोके मैंने शीर्षक बदले है, और कुछमें जहा विचारोकी पुनरावृत्ति मालूम हुअी अुतना हिस्सा निकाल दिया तथा घटा-बढाकर अुन्हें अेकमे मिला दिया है। कही कही भाषा भी सुधारी है। अिसके सिवा अिस पुस्तकके लिअे मैंने नया कुछ भी नही लिखा है।

दूसरी पुस्तकको 'शिक्षाका विकास' नाम दिया है। अुसमें भी पुराने लेख ही रहेगे। लेकिन वे बुनियादी शिक्षाके सम्बन्धमे है। गाधीजीके साथ कोचरब (अहमदाबाद) तथा साबरमती आश्रममें काम करते-करते वर्धा पहुचने तक किस प्रकार धीरे-धीरे वर्धा-योजनाके सिद्धान्तोका विकास हुआ, वह अिस पुस्तकमें देखा जा सकता है। अिस सम्बन्धमें विशेष जानकारी अिस पुस्तकके प्रकाशित होने पर दूगा।

वर्धा, १०-१२-१९४९ कि० घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

शिक्षामें विवेक

पहला भाग

तत्त्व-विवेक

१

शिक्षाका दर्शन *

१

आचार्य जैक्सकी ख्याति तो मैंने सुनी थी, लेकिन अुनकी कोअी रचना नही पढी थी। 'शिक्षण अने साहित्य' (शिक्षण और साहित्य) मासिकके अेक अकमे 'फुरसदनु शास्त्र अने कळा' (फुरसतका शास्त्र और कला) नामके अिस पुस्तकके अेक प्रकरणका अनुवाद मैंने पढा। वह मुझे विचारप्रेरक मालूम हुआ और पसन्द आया। अिससे अिस लेखककी दूसरी रचनाये भी प्रकाशित करनेकी मैंने सपादक महोदयमे प्रार्थना की। अुत्तरमे अुन्होने लिखा कि आचार्य जैक्सकी दो पुस्तकोका अनुवाद श्री गोपालदास पटेल तैयार कर रहे हैं। अुनमें से अेक पुस्तक है 'सर्वोदयनी जीवनकळा' (सर्वोदयकी जीवन-कला) और दूसरी यह पुस्तक। मेरी अुस प्रार्थनाके परिणामस्वरूप अिम पुस्तककी भूमिका लिखनेका भार भी मेरे ही सिर डाल दिया गया।

अिस पुस्तकका विषय तो 'शिक्षा' है, परतु अिससे अैसा नही समझना चाहिये कि यह केवल शिक्षकोंके लिअे बनाअी गअी कोअी पाठचपुस्तक है। यह जितनी अध्यापकोके लिअे है, अुतनी ही, बल्कि अुससे ज्यादा, साधारण मनुष्योंके लिअे है। क्योंकि अुनकी रायमें "शिक्षा कोअी अैसी प्रवृत्ति नही है, जिसे पैसे लेकर काम करनेवाले धधेदार लोग चलाते हैं और जिसकी नीरस गुनगुनाहट स्कूल-कॉलेजोकी

* 'मनुष्यनी सर्वांगीण केळवणी' (मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा) नामक गुजराती पुस्तककी प्रस्तावना।

दीवारोके बीच चला करती है," वल्कि वह तो अैसी "प्रधान प्रवृत्ति है जिसे सारे समाजको अपनाना चाहिये।" "हर नागरिकसे अुसका खास सवध है, और वह (शिक्षा) भी कुछ समय तक चलनेवाली नही, वल्कि जीवनभर व्याप्त रहनेवाली। अुसका क्षेत्र विश्वव्यापी होगा। वह आदिसे अन्त तक मनुष्यका सर्वांगीण निर्माण करनेका प्रयत्न करेगी; तथा अुसका ध्येय सपूर्ण ज्ञानको मानव-कुशलतामे परिणत करनेका और सामाजिक प्रवृत्तिके प्रत्येक विभागमे अुत्तमताकी अुपासनामे लगानेका होगा।" (पृ० १३-१४) वर्धा-योजनाकी परिभाषामें कहू तो हर अुद्योगका तीन तरहसे विचार किया जा सकता है. शिक्षाके माध्यमके रूपमें, जीविकाके साधनके रूपमें और कलाके रूपमे — अर्थात् आत्म-विकास और आत्म-तृप्तिके साधनके रूपमे। अुदाहरणके लिअे, कताअी और खेतीको सभी वालकोकी वुनि-यादी शिक्षाका माध्यम वनाया जा सकता है; अपने अुदर-निर्वाहके लिअे वालक भले कोअी दूसरा अुद्योग करनेवाला हो या करता हो; और आत्म-विकास तथा आत्म-तृप्तिके लिअे कोअी तीसरी ही प्रवृत्ति करे, जैसे, चित्रकारी। अुसी तरह मनुष्य राज या डॉक्टरीका धधा निर्वाहके साधनके रूपमे कर सकता है, परतु वह वुनियादी शिक्षाका माध्यम वनाया जा सके या न भी वनाया जा सके और अुससे आत्म-विकास तथा आत्म-तृप्ति हो या न भी हो। आचार्य जैक्सके विचारके अनुसार शिक्षा मनुष्यके जन्मसे मृत्युपर्यन्त निरन्तर चलनेवाली प्रवृत्ति है, जो अुसे आत्म-विकास और आत्म-तृप्तिके लिअे करते रहना चाहिये, जो अुसकी वुनियादी शिक्षाके और जीविकाके अुद्योगमें भी व्याप्त है और अुन अुद्योगोंके वाहर भी व्याप्त है। "अिस प्रकारकी व्यापक कल्पनामे शिक्षा तो . . (हर मनुष्यका) धधा ही वन जाती है। . . . अिस प्रकार जव शिक्षा स्कूल-कॉलेजकी चीज मिटकर सामाजिक चीज वन जाती है, तभी वह युद्धके अेवजके रूपमें पेश की जा सकती है, तभी वह अैसी चीज वन सकती है, जिसके खातिर

मरना अुचित माना जायगा और अिसलिअे जिसके खातिर जीना भी योग्य कहा जायगा।" (पृ० १४)

यह 'शिक्षा' कौनसी है? हम सब 'शिक्षा, शिक्षा' का शोर तो मचाते हैं और 'हमारे देशके शिक्षामे पिछडे हुअे' होनेका रोना रोते हैं। 'अनिवार्य शिक्षा', 'प्राथमिक शिक्षा', 'प्रौढ शिक्षा', 'अुच्च शिक्षा', 'बुनियादी शिक्षा', 'राष्ट्रीय शिक्षा', 'सास्कृतिक शिक्षा', 'धार्मिक शिक्षा', 'औद्योगिक शिक्षा', 'व्यापारिक शिक्षा', 'व्यावहारिक शिक्षा' आदि नामो और भेदोंके जरिये हम शिक्षाका तेजीसे प्रचार करनेकी लालसा रखते हैं और अुसके लिअे प्रयत्न करते हैं। फिर भी यदि यह कहा जाय कि शिक्षाके ठीक-ठीक अर्थके बारेमें तथा अुसे देनेकी पद्धतिके बारेमे अभी हमारे मत और दृष्टि स्पष्ट नहीं है, तो अनुचित नही होगा। यह स्थिति कोअी हमारे ही देशकी नहीं है। जो राष्ट्र सभ्यताके शिखर पर पहुचे हुअे माने जाते हैं और जिन्होंने शत प्रतिशत निरक्षरता दूर कर दी है, अुनकी भी यही स्थिति है।

मनुष्य ध्येयो और आशाओंके साथ जन्म लेता है और अुन्हें क्रम-क्रमसे सिद्ध करनेके अुपाय और साधन जुटाता है। अुन साधनोमे 'शिक्षा' को भी अेक आवश्यक अुपाय मानकर वह अुसके पीछे पडता है। वह शिक्षा अुसे अपनी आशाओको बढाती और अुनका पोषण करती हुअी मालूम होती है, तथा आरभमे अुन्हे सफल करती या करनेका मार्ग बतलाती हुअी मालूम होती है। परतु बादमे यह अनुभव होने लगता है कि आशायें तो बढी हैं, ध्येय भी कुछ अधिक स्पष्ट या विकसित हुअे हैं, लेकिन अुन्हे सिद्ध करनेका कोअी रास्ता दिखाअी नही देता। अुसकी अपनी और दूसरोंकी आशाओ और ध्येयोंके बीच कोअी मेल नही बैठता। अुसके ध्येयो और आशाओंको दूसरे तोडते हैं और दूसरोंके ध्येयो और आशाओंको वह खुद तोडता है। अथवा, अेकका ध्येय दूसरेकी पीठ पर सवार होकर ही सिद्ध किया जा सकता है। और हर मनुष्यमे जीवनके अतिम समयमे किसी न किसी रूपमें

या तो 'मनकी मन ही माहि रही' का भाव पैदा होता है या जीवन व्यर्थ बीतता हुआ मालूम होता है। अुसे जीवनका कोअी अुपयोग नही मालूम होता। अिसका परिणाम यह होता है कि जगत् अुसे नन्दनवन जैसा नही, बल्कि हिसक पशुओसे भरा हुआ, बार-बार दावानलसे सुलग अुठनेवाला अथवा मारवाडकी मरुभूमि जैसा वीरान लगता है। लाखोमे अेकाधको ही जीवनके अन्तमे वह सफल हुआ लगता है, और करोडोमे अेकाध मनुष्यको ही यह अनुभव होता है कि समग्र जीवन सफलताके साथ अुत्तरोत्तर चढती हुअी सीढियो जैसा है।

जब अैसा होता है तो वह फिरसे विचारमें पडता है और अपनी भूलको ढूढनेका प्रयत्न करता है। और आखिरमें हमेशा वह अिसी निर्णय पर आता है कि भूल 'वर्तमान शिक्षा' मे ही है, अर्थात्, शिक्षाके अभावमे है या गलत शिक्षामे है। फिर वह शिक्षा-पद्धतिको वदलनेका प्रयत्न करता है। अिस प्रकार दुनियामें शिक्षाकी अनेक पद्धतिया पैदा हुअी है। किन्तु अभी तक जीवनको सफल करनेवाली शिक्षाका पता नही लग पाया है।

तब स्वाभाविक ही यह शका अुठती है कि पढ-पढकर भी मनुष्य तेलीके बैलकी तरह जहाका तहा क्यो रहता है? जीवनके अनेक वर्ष विविध विद्यायें सीखने और प्राप्त करनेमे लगाने पर भी परिणाम शून्य क्यो दिखाअी देता है? अूपर अूपरकी तो बहुतसी बाते दीखती है, लेकिन तत्त्वकी बात क्यो नही दिखाअी देती?

युगोसे अिस प्रश्न पर विचार होता आ रहा है। अिसी विचारसे विविध दर्शन और तत्त्वज्ञान पैदा हुअे है। अुसीमें से अनेक प्रकारकी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाअें पैदा हुअी है और हो रही है। अुसीमे से बार-वार क्रान्तिकारी अुथल-पुथल और भयकर युद्ध अुत्पन्न हुअे है। प्रत्येकने कुछ-न-कुछ नया प्रकाश डाला है। अुनमें से कुछ चीजोका मनुष्य-जातिको लाभ भी मिला है। परतु वहुत वार

अिन दर्शनो और तत्त्वज्ञानोका कुछ हिस्सा अच्छी तरह दृढ न हो पानेके कारण विस्मृतिके गर्भमे लुप्त हो गया है, अथवा अुनका कुछ अश दृढ हो जानेके बाद अधूरा मालूम हुआ है; किन्तु दृढ हो जानेके कारण ही वह आसानीसे भुलाया नही जा सका है। मतलब यह कि या तो 'शिक्षा' अधूरी मालूम हुअी है या गलत पद्धतिसे दी गअी मालूम हुअी है। अिस प्रकार, यह शोध अभी तक पूरी नही हुअी है; और अधिक सभव तो यह है कि जब तक मानव-वश चलता रहेगा, वह पूरी नही होगी।

२

जीवन क्या है, अुसका प्रयोजन अथवा योग्य ध्येय क्या है, अुस ध्येयको सिद्ध करनेका साधन-मार्ग क्या है, अिसकी प्रत्येक नअी और स्वतंत्र व्यवस्थाको 'दर्शन' कहा जाता है। आत्मा या जगत्के नामसे जीवन सबकी शोधका समान विषय है, अिसलिअे सभी दर्शन जीवनके — अथवा अधिकतर सिर्फ मानव जीवनके — दर्शन है। लेकिन हरअेकका दृष्टिकोण या साधन-मार्ग अलग-अलग होनेके कारण हर-अेकको अपनी विशेषताके अनुसार अलग-अलग नाम दिया जाता है। अिस प्रकार न्यायादि वैदिक दर्शन, जैन, बौद्ध आदि अवैदिक दर्शन तथा अतिपूर्व और पश्चिमके विविध प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन प्रसिद्ध है। काकासाहब कालेलकरने शिक्षाको भी अेक स्वतत्र दर्शन माना है और अिस पुस्तकको देखते हुअे आचार्य जैक्सको भी 'शिक्षा-दर्शन' का अेक विवेचक माना जा सकता है।

जीवन — अथवा आत्माका स्वरूप — 'अखण्ड ज्ञान' है, 'अखण्ड योग' है, अथवा 'सतत चलनेवाली शिक्षा' है, वगैरा प्रयोग अेक अर्थमें ठीक ही है। अैसे और भी बहुतसे विधान किये जा सकते है। जैसे कि किसीने कहा है, जीवन 'अनुभवकी महान धारा' है, अथवा 'सतत सग्राम' है, 'सतत विकास' है, 'अज्ञान, अगति, अशुभ,

मृत्यु, शोक आदिमे से ज्ञान, सत्य, शुभ, अमरता, आनन्द आदिकी ओर ले जानेवाला महान प्रवाह' है; अथवा गांधीजीके शव्दोमें वह 'सत्यकी अविश्रान्त शोध' है, आदि आदि। ये सव विधान सच्चे होते हुअे भी अधूरे है। जैसे किसी मकानके अलग अलग कोनो परसे लिये हुअे चित्र सच्चे होते हुअे भी अलग अलग कोनो परसे दिखनेवाले चित्र ही होते है, अुनमे से अेक भी संपूर्ण मकानका चित्र पेश नही कर सकता, वही वात अिन विधानोकी भी है। और अिसीलिअे अेक चित्रको मुख्य मानकर अुसके आधार पर वतलाया हुआ साधन-मार्ग पूर्ण नही हो सकता। अुसका दोष दूसरे कोनो परसे लिये हुअे चित्रो द्वारा ही दूर किया जा सकता है। अिस प्रकार प्रत्येक दर्शन दूसरे दर्शनोकी कुछ-कुछ न्यूनताये पूरी करनेवाला और कुछ हद तक जीवनको समझानेवाला होता है। परतु ये सव दर्शन मिलकर भी जीवनका समूचा दर्शन नही करा सकते। क्योकि जीवन आखिर जीवन ही है और चित्र यानी दर्शन चित्र और दर्शन ही है। अुसकी विशालता और सूक्ष्मता दोनो कल्पनातीत है। जैसा कि अेक अमरीकन लेखक अेमरेम शाअिनफेल्ड (Amram Scheinfeld) कहता है: "आकाशकी ओर देखकर विश्वकी अनन्त महत्ताका खयाल करनेकी शायद आपको आदत पड़ गअी होगी। सूर्य पृथ्वीसे करोड़ो मील दूर है; तेजकी विन्दियो जैसे दिखाअी देनेवाले तारे सभव है पृथ्वीसे अब्जो गुने वडे हो, अमुक तारेकी जो किरण आप आज देखते है वह छह हजार वर्ष पहले सुलगे हुअे पदार्थसे निकली होगी; और आकाश हमारी वडीसे वडी दूरवीनकी पहुचसे भी परे है, और अुसमें शायद अब्जो तारे (यानी सूर्यमण्डल) घूमते है। यह सव माननेके लिअे आप तैयार है। यह आपके वाहरकी सृष्टिकी अनन्त महत्ता है। अव अपने अन्दरकी सृष्टिकी ओर मुडिये। वहा अनन्त सूक्ष्मताका वास है।" (You and Heredity)। अुसके आकारके प्रमाणकी कल्पना करनेके लिअे अेक चनेकी दालके वरावर जगहकी कल्पना कीजिये। अुसमे

दो अब्ज यानी सारी दुनियाकी जितनी मनुष्य-सख्या है अुतने मानव जैसे प्राणियोका निर्माण कर सकनेवाले 'सर्जक बीज' (Spermatozoa) रह सकते है। अेक अेक सर्जक बीज सूर्यके जैसे अनेक ग्रहो और अुपग्रहोका मण्डलाधीश है। अुदाहरणके लिअे, मानव-सर्जकमे अडतालीस 'अुपसर्जक' (Chromosomes) होते है, और प्रत्येक अुपसर्जकमें सैकडोकी तादादमे सूक्ष्म जनको (Genes) की शृखला रहती है। अच्छेसे अच्छे सूक्ष्म-दर्शक यत्रोमे यही तक बतलानेकी शक्ति है। लेकिन वैसा प्रत्येक सूक्ष्म 'जनक' भी अधिक सूक्ष्म जीवोकी माला हो सकता है। अैसे अेक सूक्ष्म जनककी शक्तिका विचार करने पर हमे मालूम होगा कि दो जनकोके बीच रहा हुआ कोअी सूक्ष्म भेद दो मनुष्योमें प्रह्लाद और हिरण्यकश्यपु जैसा दैव-आसुर स्वभावभेद निर्माण कर सकता है। विशालताकी तरह जीवनकी सूक्ष्मता भी अुतनी ही कल्पनातीत है। तब परिमित मानव अुसका समग्र दर्शन न कर सके तो अुसमें आश्चर्य कैसा ?

यदि हम हिन्दुस्तानके किसी पुराने गावमे देखे तो वहाकी बस्ती अक्सर बहुत ही अव्यवस्थित ढगसे बसी हुअी दिखाअी देती है। मकान चाहे जैसे बधे होते है, गलिया टेढी-मेढी होती है, हवा, प्रकाश, आने-जानेके रास्ते, सीध, ढाल वगैरा किसीका भी किसीने विचार किया हो अैसा नही मालूम होता। जिसके मनमे जैसा आया वैसा दूसरेकी सुविधा-असुविधाका खयाल किये बिना मकान बाध दिया है। गावोकी यह हालत देखकर हमारे सुधरे हुअे अिजीनियर लोग अब ग्राम-रचनाके नकशे बना रहे है। लेकिन वे भी हर गावको अेक स्वयपूर्ण स्वतत्र बस्ती समझकर ही नकशे बनाते है। अैसे आस-पासके पाच-छह गावोका मिलकर अेक शहर बन जाय तो सभव है हर गावके व्यवस्थित रूपसे बसे होने पर भी सारा शहर अव्यवस्थित रूपमें बसा हुआ सिद्ध हो, क्योकि ग्राम-रचना करते समय दूसरे गावोके साथ मिलनेका तथा शहर-रचनाका खयाल ही नही किया गया था।

यही वात 'शिक्षा' के द्वारा की गअी मानव-जीवनकी रचनाके सम्वन्वमे हुअी है। करोड़ो प्रकारकी सूक्ष्म और लाखो प्रकारकी स्थूल जीवयोनियोका मिलकर ससारमे जीवन प्रकट हुआ दिखाअी देता है। अुन सवकी हम पूरी कल्पना भी नही कर सकते तो परिचय तो सवसे हो ही कैसे सकता है? जितनी योनियोसे हमारा परिचय है, अुनके भी परस्पर सम्वन्ध हम नही समझते। यदि कही समझते है तो वह अधूरा या विरोधात्मक सम्वन्ध होता है; मेलका सम्वन्ध हम नही जानते। अैसी अनेक योनियोमे अेक मानव-योनि है। अुसके समग्र जीवनकी भी हमे पूरी कल्पना नही है। वहुत हुआ तो हमे अुसके अलग-अलग व्यक्तियोका या छोटे-छोटे समूहोके जीवनके कुछ अशोका ज्ञान है। जीवन-रचनाके नकशे वनानेके लिअे हमारे कुशलसे कुशल अिंजीनियरके पास भी अितनी ही ज्ञान-सामग्री है।

अैसे सीमित नये दर्शनकार भी कअी वर्षोमे दुनियाके किसी अेक कोनेमे ही पैदा होते है, और अुनका प्रभाव भी अेक सीमित क्षेत्रमे या सीमित समय तक ही रहता है। अिसलिअे व्यवस्थित जीवन-रचनाके छुटपुट प्रयत्न होते हुअे भी कुल मिलाकर मानव-जीवन अभी भारतके अव्यवस्थित गावो जैसा ही वेडौल, गन्दा और असुविधाओसे भरा हुआ है। कवियोने सुन्दर और आह्लादक गावोकी कल्पना जरूर की है, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभवमें वह गावोंके भीतर नही मिलती। वहा तो धूल, घूरे, दुर्गन्ध और गिचपिच टेढी-मेढी झोपड़ियोके समूह ही दिखाअी देते है। सुन्दरता और प्रसन्नता गावके **वाहर** है। अुसी प्रकार हम भी जीवनकी सुन्दरता और प्रसन्नताका दर्शन जीवनके **वाहर**, कल्पनाके क्षेत्रमे, परलोकमें, कर रहे हैं। जीवनके **भीतर**, अिस लोकमें, तो दुःख और शोकका समुद्र ही माना गया है, वर्णन किया गया है और अनुभव किया गया है।

वहुतेरे दर्शनोका तो यह निश्चित मत है कि जीवन दुःखरूप ही है। अिसलिअे सुखकी तृष्णा मिथ्या प्रयत्न ही है; ज्यादासे ज्यादा

दु खका नाश ही किया जा सकता है, और अैसा विरले व्यक्ति ही कर सकते है, और वह भी प्रत्यक्ष रूपमे स्थूल दु खोको मिटा कर नही, बल्कि चित्तको अुनकी अवगणना करनेकी शिक्षा देकर ही किया जा सकता है। अुनके मतानुसार नित्य-सुखका वस्तुत अभाव होनेके कारण अुसे ध्येय नहीं बनाया जा सकता। दूसरे कुछ दर्शन नित्य-सुखके अभावको नही मानते। वे अुसकी प्राप्तिको जीवनका ध्येय अवश्य मानते है, किन्तु वे भी अुसका दर्शन अिस भौतिक लोकमें नही, बल्कि अपने आध्यात्मिक जीवनमे और परलोकमे करते है। अुनकी रायमे भी यह भौतिक लोक तो दु खरूप ही है।

जो बात अवतारी पुरुषो, बुद्धो, तीर्थंकरो, पैगम्बरो और अनेक ज्ञानी सद्‌गुरुओने बजा बजा कर कही है, अुसमे श्रद्धा न रखने या शका करनेकी साधारण मनुष्यमे ताकत ही कहा है? और जब यह बात मूढ जीव भी जानता है कि ससारमे दु खका अनुभव होता ही है, तब फिर शका करनेका प्रयोजन भी कहा रह जाता है?

परन्तु अिस बातमे श्रद्धा रखते हुअे, बोलते हुअे और अनुभव करते हुअे भी, जीवमात्रके मनमें सुख प्राप्त करने और जगत्‌मे सुख पैदा करनेकी आशा अटल स्थान बनाये रहती है। कभी-कभी अैसे मनुष्य अवश्य मिल जाते है, जिनका मानो दु खका अनुभव करनेके लिअे ही जन्म हुआ हो। परन्तु अैसा कोअी मनुष्य नही मिलता जो अपने-आपको केवल दु ख झेलनेके योग्य ही मानता हो। प्रत्येकको यही लगता है कि वह है तो सुखका पात्र, केवल कुछ अभागी घटनाओके कारण जाने-अनजाने दु खका पात्र बन गया है। परन्तु अुसे मनमें तो यह आशा रहती है कि कभी ये दु खके दिन बीत जायगे और सुख मिलेगा, और जब भी सुखप्राप्तिका कोअी अुपाय अुसे दिखाअी देता है, वह अुसे आजमानेके लिअे तैयार हो जाता है।

आत्माके स्वरूपकी व्याख्या करनेमें भिन्न-भिन्न दर्शनो और धर्मोमे चाहे जितना फर्क हो, फिर भी आत्मा-अनात्मा-विवेक जबरा

जीव-शरीर-भेद तो सभीमें किया जाता है और अुस पर जोर भी दिया जाता है। अमुक शक्तिया, भावनाअे, सस्कार, विषय आध्यात्मिक क्षेत्रके है और अमुक भौतिक क्षेत्रके, अमुक चीजें परलोककी हैं और अमुक चीजे अिस लोककी — अिस प्रकारका भेद करनेकी, अुसके अनुसार जीवनके आदर्शों और कर्मोंका विचार करनेकी और अुनके अभिमानका पोषण करनेकी रूढि सब जगह है, और वह अिस रूपमे स्वीकार की गअी है मानो कोअी स्वयसिद्ध सत्य हो। फिर भी, यह बात विचारने और समझने जैसी है।

यह बात तो हम सब समझ सकते हैं कि समुद्र और तरगोंके बीच भेद है। तरगको समुद्र नही कहा जा सकता, परन्तु तरंग समुद्रकी है यह समझना कठिन नही। फिर भी समुद्रसे अलग तरंगके दर्शन नही किये जा सकते, अुसकी कल्पना भी नही हो सकती। तरगके बिना समुद्रकी कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु अुसका दर्शन नही हो सकता। आप तरगोकी अेक, दो, तीन अैसी गिनती भले कर ले, परन्तु किसी तरगको समुद्रसे अलग करके अुठा नही सकते। तरंगोको पार करनेमें समुद्र लाघा ही जाता है, किन्तु यदि तरंगोको पार किये बिना आप केवल समुद्रको पार करना चाहे तो वह नही हो सकता। अिसके विपरीत यदि आप समुद्र पार करनेका लक्ष्य न रखकर केवल तरगो पर ही झूले तो आप अूचे-नीचे या आगे-पीछे हिल सकते है, लेकिन आगे नही बढ सकते। अिस प्रकार समुद्र और तरंगका अन्वय-व्यतिरेक है।

आत्मा और देहके बीच समुद्र-तरग जैसा सम्बन्ध है। देहोकी — अथवा भौतिक — शिक्षामे अेक तरहसे आध्यात्मिक शिक्षा भी हो ही जाती है। परन्तु देहोकी अवगणना करके यदि आप केवल आध्यात्मिक प्रगति करना चाहे तो वह नही हो सकती। अिसके विपरीत आप अध्यात्मकी ओर लक्ष्य न रखकर सिर्फ दैहिक — भौतिक — प्रगति

करना चाहे, तो आप अूचे-नीचे या आगे-पीछे तो हिल सकते हैं, परन्तु प्रगति नही कर सकते।

अिस प्रकार आत्मा-अनात्मा-विवेकमे केवल दोके बीचकी विलक्षणता ही समझने जैसी चीज नही, बल्कि दोनोके बीचका गाढ़ अन्वय भी ध्यानमे रखना आवश्यक है।

लेकिन दोनोका खयाल रखनेवाले भी दोनोंके परस्पर ओत-प्रोत सम्बन्धका खयाल रखना भूल जाते हैं। आध्यात्मिक जीवनका क्षेत्र अलग है और भौतिक जीवनका अलग है, अेकका विचार करते समय दूसरेको भूल जानेमे वे कोअी दोष नही देखते; अुलटे, अेकमे दूसरेको मिला देनेवाले दोषपात्र माने जाते हैं। गाधीजी पर लगाया जानेवाला यह आक्षेप तो जग-जाहिर है कि अुन्होने सत्य, अहिंसा आदि आध्यात्मिक जीवनके गुणोको भौतिक क्षेत्रमे दाखिल करके बडी अव्यवस्था पैदा कर दी है। अुसी प्रकार अैसे लोगोको भौतिक विद्याकी खोजोका अनुसरण करके अध्यात्म-ज्ञानके क्षेत्रमे आनेवाले विषयोका संशोधन करनेमें भी अुतनी ही अरुचि रहती है। विज्ञानकी प्रयोगशालामें व्याख्यान देनेवाला शास्त्री और मदिरमें प्रवचन करनेवाला शास्त्री — दोनो अेक ही व्यक्ति हो तो भी अुसका व्यवहार दो अलग-अलग व्यक्तियोकी तरह रहता है। यह भी शरीर और आत्माके बीचका अन्वय न समझनेका परिणाम है। जैसा कि आचार्य जैक्सने कहा है

"मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा साधनी हो, तो सबसे पहले हमें भूतकालसे चले आ रहे अेक हानिकारक भ्रमको दूर करना होगा। वह भ्रम अिस मान्यतामे है कि मनुष्य शरीर और मन अिन दो अलग-अलग तथा जैसे-तैसे जुडे हुअे अशोका बना हुआ है। अिन दोनोंमे बादमें मनरूपी अशको ही दैवी मानकर अुसका शिक्षाके क्षेत्रमें समावेश किया जाता है। परन्तु शरीरको अिहलौकिक पार्थिव वस्तु मानकर शरीर-विज्ञानियो या डॉक्टर-वैद्योके लिअे छोड दिया जाता है। अिस

भ्रमको हमे छोडना होगा और विकासकी हर सीढी पर शरीर और मनको अेक अभेद्य अिकाअी मानकर अुनके समान तीव्र सहशिक्षणकी योजना गढनी होगी।" (पृष्ठ १८-१९)

जीवनको अलग-अलग हिस्सोमे बाट देनेकी आदत भौतिक शिक्षाके विभिन्न विषयोमें भी फैली हुअी है। आचार्य जैक्स द्वारा अपनी शिक्षाका दिया हुआ नीचेका वर्णन आजकी शिक्षा-पद्धति पर भी भली-भाति लागू होता है.

"हमारे शिक्षा-शास्त्रियोको मनुष्यके टुकडे करके ही अपना काम करनेकी आदत पडी हुअी है और अिसलिअे अुनकी सारी प्रक्रिया टुकडोमे ही होती है। सबसे पहले तो शिक्षाको अलग अलग 'विषयो' मे बाट दिया जाता है, परतु अुनके पीछे अैसा कोअी व्यापक हेतु नही होता जो अुन सबका अेकीकरण कर सके। . . . शिक्षकोका अेक वर्ग शालाके कमरेमें हमारे मनको तालीम देता; और दूसरा वर्ग, जो विलकुल असस्कारी था, अखाडे या खेल-कूदके मैदानमे हमारे शरीरोको तालीम देता था। अेक तीसरा सद्‌गृहस्थ, जो धर्मशिक्षक कहलाता था, हमारे चरित्रका निर्माण करता था। . . . परतु अिन तीनोमे अेक-लक्ष्यता विलकुल न थी। मानसिक विभाग, शारीरिक विभाग, चरित्र-विभाग या आध्यात्मिक विभाग — अिन तीनोके बीच जरा भी सह-योग न था। शालाके वर्ग, खेल-कूदके मैदान और धर्मपीठ — तीनो अेक-दूसरेकी सहायता करनेके वदले अेक-दूसरेके काममे अडचन डालते थे। अिन सारी विखरी हुअी प्रक्रियाओमे शुरूसे आखिर तक अेक ही सत्य पर दुर्लक्ष्य किया जाता था और वह यह कि वास्तविक मनुष्य . . . मन, शरीर, चरित्र और जीवात्मा — अिन सवके मेलसे वना हुआ है। . . . हम कक्षामें, मैदानमे या चर्चमें जो कुछ भी अलग अलग पढते थे, अुसे यथासभव जोड़ने, अुसका अेकीकरण करनेका काम हम पर ही छोडा गया था। . . ." (पृष्ठ २५-२६)

अूपर ‘मनको शिक्षा देनेवाले’ जिन शिक्षकोंके वर्गका जिक्र किया गया है, अुनके ‘विषयो’ में भी समन्वय स्थापित कर देनेकी आशा नही की जा सकती। हम गणितके केवल तीन ही विभाग — अंकगणित, बीजगणित और भूमिति — लें, तो अंकगणितका जो प्रकरण वर्गमें आज पढाया जाता है अुससे संबंध रखनेवाला बीजगणितका प्रकरण छह महीने या साल भर बाद भी पढाया जा सकता है, और भूमितिका तो जब अुसकी बारी आये तब। अुसी प्रकार अितिहास तथा भूगोलका, विज्ञान तथा चित्रकारी आदिका है।

“शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रोमें से अिकट्ठे किये हुअे टुकडोको अेक-दूसरेके साथ जोडकर या चिपटाकर प्राप्त की हुअी मनुष्य-विषयक कल्पनाके आधार पर शिक्षाकी योजना बनाये तो अुससे भारी गडबडी ही पैदा होगी। आज हममे से कुछ वस्तुत अैसा ही करते हैं। हमे तो मनुष्य-जीवनसे संबंध रखनेवाले सभी शास्त्रोका समन्वय चाहिये, और वही वस्तु हमे अभी तक मिली नही है।” (पृ० ३१)

अिस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न ही अिस पुस्तकका मुख्य अुद्देश्य है, और आचार्य जैक्सने जिस सुन्दर ढंगसे यह प्रयत्न किया है, वह ‘शिक्षाशास्त्री’ और ‘साधारण पाठक’ दोनोंके लिअे समान रूपसे बोधप्रद और विचारप्रेरक बन सकता है। आचार्य जैक्सने अिसे मनुष्यकी ‘सर्वांगीण शिक्षा’ कहा है। अुनके कुछ प्रतिपादन अिस प्रकार है :

> १ ज्ञानमात्र आज्ञार्थक है। ‘अैसा है, वैसा नही है’ यह जानकारी न तो ज्ञान है और न शिक्षा, बल्कि ज्ञान तो ‘अैसा करो, वैसा करो’ की आज्ञा देगा और शिक्षा अुसकी आदत डालेगी।
>
> २. “मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा सिद्ध करनी हो तो . मनुष्य शरीर और मन दो अलग अलग और जैसे-तैसे जुडे

हुअे अशोका वना हुआ है, अिस मान्यताके भ्रमको . . . छोड़कर . . . विकासकी हर सीढी पर शरीर और मनको अेक अभेद्य अिकाअी मानकर अुनके समान तीव्र सहशिक्षणकी योजना गढनी" चाहिये। (पृ० १८–१९)

३. शिक्षा व्यक्तिके जीवनके अेक छोटेसे भागका कार्यक्रम नही है। वह तो जन्मसे मृत्युपर्यन्त चलनेवाली अेक अखण्ड साधना है। अुसे मनुष्यके हर काममे — मेहनत करते समय तथा फुरसतमें, सुखके तथा दु खके प्रसगोमें — सिद्ध करना है और अुसके जरिये जीवनकी सफलता प्राप्त करना है। अुसमे देह या मन, धर्म-अर्थ-काम या 'मोक्ष' किसीकी भी अवगणना नही की जा सकती और न अेकको दूसरेसे अलग करके अुसके वारेमें विचार किया जा सकता है। अुसमे व्यवस्था, सुघड़ता और सुन्दरता भी होनी ही चाहिये। वह शिक्षा न तो श्रमकी विरोधिनी होगी और न फुरसतके समयका दुरुपयोग करेगी। वह जीवनमें अैसा ध्येय सिद्ध करनेवाली होनी चाहिये, "जिसके लिअे मनुष्यको मरनेके लिअे भी तैयार रहना चाहिये और जीनेके लिअे भी तैयार रहना चाहिये।"

यह तो अुनके प्रतिपादनोका कुछ ही हिस्सा मैंने यहां पेश किया है। सारी पुस्तक अप्रचलित स्वतत्र विधानोंसे भरी पडी है और विचारको अेक नअी ही दिशा प्रदान करती है। फिर भी यह तो नही कहा जा सकता कि अिस पुस्तकमें शिक्षा या जीवनका स्पष्ट और अन्तिम दर्शन मिल जाता है। क्योकि जीवन अितना सर्वव्यापी है कि अुसका समूचा दर्शन सभव ही नही है। अेक कोनेसे अुसके छोटेसे हिस्सेका ही हमें आकलन होता है। अुदाहरणके लिअे, हमारे सभी दर्शन आज भी मनुष्यको विश्वसे तथा समूचे मानव-जीवनसे भी अलग किया जा सकनेवाला अेक स्वतत्र व्यक्ति मानकर ही अुसका निरूपण करते है। मोक्ष और भोग, अुद्धार और वन्धन, अुन्नति-विकास-

प्रगति या अवनति, ह्रास और निष्फलता — अिन सबमे हम व्यक्तिको ही अिकाअी मानकर विचार और आचरण करते हैं। प्रत्यगात्मा तथा ब्रह्मके वस्तुत अभेदका प्रतिपादन अवश्य हुआ है, परतु फिर भी हम किसी न किसी रूपमें प्रत्यगात्माके ब्रह्मसे भिन्न अस्तित्व, विकास, बधन, मोक्ष आदिको भूल नही सकते। नतीजा यह है कि जैसे शिक्षाके संबधमे विचारे जानेवाले भिन्न-भिन्न विषयोंके बीच हम समन्वय नही साध सकते, वैसे ही व्यक्तियो और समाज, समाजो और समग्र मानव-जीवन तथा मानव-जीवन और विश्वजीवनके बीच हम समन्वय नही साध सकते। पहले समन्वयके अभावमे हर मनुष्यके मनमें ही रात-दिन झगडा चला करता है; दूसरे समन्वयके अभावमें बाह्य ससारमें भी झगडा चला ही करता है। यह समन्वय कर देनेवाला दर्शनशास्त्र तो जब बनेगा तब बनेगा। लेकिन अैसी पुस्तकोंको अुस खोजकी ओर बढानेवाली सीढियोंके रूपमें माना जा सकता है। यों कहकर मैं अिस पुस्तककी कीमत घटा नही रहा हू, बल्कि यही बतलाना चाहता हू कि सत्यकी खोज कितनी गहन है।

'शिक्षण अने साहित्य', अगस्त १९४२

२
अुच्च शिक्षा

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी या विद्यासभाने अेक शताब्दी पूरी की, यह गुजरातके लिअे गौरवकी बात है। अिस प्रकारकी पुरानीसे पुरानी सस्था गुजरातमे शायद यह पहली ही है। मै व्यक्तिगत रूपमे विद्यासभाके गाढ सपर्कमें आया हू, यह तो नही कहा जा सकता। परतु गुजरातके जिन महान विद्वानोने अिसकी नीव डाली और अिसका सिंचन करके बडी लगन और अुद्यमके साथ अिसे परिपुष्ट किया, अुनकी दूर तक फैली हुअी जीवन-सुगन्धने, अुनके प्रेरणादायक साहित्यने और अुनकी निष्ठापूर्ण साहित्य-सेवाने मुझ पर अनेक शुभ सस्कार डाले है, मेरा साहित्य-रस बढाया है, और जिस जमानेमे मातृभाषाका ज्ञान हाअीस्कूलो और कॉलेजोमे मिल ही नही सकता था, जिसे रस होता अुसे खानगी अध्ययन और अभ्याससे ही वह ज्ञान बढाना पडता था, अुस जमानेमे मूल गुजरातके बाहर जीवन बितानेवाले मुझको गुजराती पढनेका शौक लगानेमें तथा शुद्ध गुजराती लिखनेका आग्रह रखनेवाला करनेमे अिस सभामे शरीक हुअे अनेक विद्वानोने बहुत ही बडा योग दिया है। कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाअी, या श्री महिपतराम नीलकण्ठ, श्री नवलराम पडित, श्री रमणभाअी, या श्री विद्याबहनके भी व्यक्तिगत सपर्कमे आनेका मुझे सौभाग्य मिला है, यह नही कहा जा सकता। श्री रमणभाअीको मैने देखा है, सुना है, अेकाध बार अुनकी दृष्टिमे भी आया हू। श्री विद्याबहनको तो मैने देखा भर है। परतु अिन सब विद्वानोके साहित्य द्वारा मुझे गुजरात और अर्वाचीन गुजराती भाषाका ज्ञान मिला है, और अेक गुजरातीके रूपमें मेरा निर्माण हुआ है। गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीने जो साहित्य प्रकाशित किया है, और अुसे प्रकाशित करनेके लिअे जो सुव्यवस्था कर रखी है तथा अुसे

सौ वर्ष तक सतत चलाये रखा है, वह व्यवहारकुशल और चतुर माने जानेवाले गुजरातके लिअे भी साधारण बात नही है। राजनीतिक और धार्मिक नेताओकी अपेक्षा साहित्यके अग्रगण्य लोगोमे स्पर्धाकी भावना और सस्था तोडनेवाला स्वभाव कम नही होता। गुजरात विद्यासभाको अिस स्वभावसे परेशान होना पडा है या नही, यह मै नही जानता। परंतु अुसे अपनी शताब्दी मनानेका सौभाग्य मिला है अिससे अितना तो साफ जाहिर होता है कि विघ्नोको पार करके जीवनका धारण और पोषण करनेकी अिसमें बहुत बडी शक्ति है। अिसका श्रेय अिसके मूल स्थापको और दाताओके शुद्ध सकल्प, शुद्ध चरित्र और शुद्ध जीवनको ही देना होगा। कवि दलपतरामसे लेकर श्री विद्यावहन तकके लोगोकी स्थिर धर्मभावना और नीरोग दीर्घायुके साथ साथ जीवनको रसपूर्ण रखनेवाली अुनकी सरलता, गभीरता तथा शुद्ध विनोदी वृत्तिने वर्नाक्युलर सोसायटीको अैसा यश प्रदान करनेमें अवश्य ही बडा हिस्सा लिया होगा।

अिसके लिअे मै गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीको आदरके साथ बधाअी देता हू, और आशा करता हू कि भावी पीढी गुजरातकी अिस सुन्दर सस्थाको अखण्ड, शुद्ध मार्ग पर प्रगतिशील और प्राणवान बनाये रखेगी तथा अिसकी कीर्तिको बढायेगी। अिस सस्थाके प्रति मेरे मनमें जो आदर है, अुसे व्यक्त करनेके लिअे मुझे जो यह मौका दिया गया अुसके लिअे मै श्री विद्यावहनका अन्त करणसे आभार मानता हू।

अिस प्रसग पर अेक भाषण लिख भेजनेके लिअे श्री विद्यावहनने मुझसे कहा था। अुनकी अिस अिच्छाको आज्ञारूप न मानना मेरे लिअे कठिन हो गया। लेकिन मुझे क्या कहना चाहिये यह मै निश्चित न कर सका। अभी मेरे विचारोका मुख्य विषय यही है कि 'हरिजन' पत्रोमे क्या कहा या लिखा जाय। जिनके सिवा अन्यत्र कही बोलने-लिखनेका प्रसग आता है, तो मै परेशान हो जाता हू। मैने

श्री विद्यावहनसे ही विनती की कि वे अपनी आज्ञाको पूर्ण बना कर विषय भी सुझावे। अुन्होने दो विषय सुझाये: युनिवर्सिटीकी रचना या युनिवर्सिटी शिक्षाका माध्यम। मैने अुस आज्ञाको सिर-माथे पर लेकर अिन दोनो विषयोको अिकट्ठा करके 'अुच्च शिक्षा' के बारेमे कहनेका विचार किया है।

सभव है मै यहा जो कुछ भी कहूंगा, अुसका बहुत-कुछ भाग पहले कही और कभी कह चुका होअू। अुसमे नया शायद ही कुछ हो। यहा पर अुसे सिर्फ कुछ व्यवस्थित करके ही रख दूगा।

मुझे शुरूमें ही कह देना चाहिये कि अुच्च शिक्षाके बारेमें आज जिस दिशामे प्रवाह बह रहा है, अुससे भिन्न दिशामें मेरे विचार बहते है। अिस शताब्दीके आरभमे श्री गोपालकृष्ण गोखलेने जब बडी धारासभामें अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाका बिल पेश किया, तब मै मैट्रिक या कॉलेजमे था। अुस समय प्राथमिक शिक्षाके सबधमें तत्कालीन विचारको और लेखकोका कुछ साहित्य मेरे पढनेमे आया था। और तबसे अुच्च शिक्षाकी अपेक्षा प्राथमिक शिक्षामे मेरी दिलचस्पी बढती गअी। मेरी यह श्रद्धा या विचारधारा लगभग १९०७ से ही बन चुकी थी कि हिन्दुस्तानकी सुलझाने योग्य समस्या और अच्छी तरह विकसित करने योग्य प्रवृत्ति अुच्च शिक्षा नही, बल्कि प्राथमिक शिक्षा है। चालीस वर्ष बाद भी मेरी अिस श्रद्धा और विचारधारामें तत्त्वत कोअी फर्क नही पडा है। हा, अुसके विशिष्ट स्वरूपसे सबध रखनेवाले विचारोमें बहुत-कुछ फेरफार हुआ है।

गुजरात जानता है कि अुस समय मै स्वामिनारायण सप्रदायका पक्का अनुयायी था। अिस सप्रदायकी विपुल साधन-सपत्तिसे मै परिचित था। मेरी यह महत्त्वाकाक्षा थी कि अिस सप्रदायकी ओरसे अेक विशाल शिक्षण-सस्था स्थापित की जाय और मेरी कल्पनाके अनुसार प्राथमिक शिक्षासे लेकर क्रमश अूची चढनेवाली शिक्षाकी प्रवृत्ति

सब जगह शुरू की जाय; और असा हो तो मैं अपना जीवन असी सस्थाको समर्पित कर दू।

स्वामिनारायण सप्रदायके प्रति मेरे मनमे जो निष्ठा थी, अुसमे मेरे अपने श्रेयकी अिच्छाके अलावा अिस आकाक्षाका भी भाग होगा। गुजराती भाषा तथा कुछ अशमे सस्कृत भाषाका रस पैदा होनेमे तथा कॉलेजके विषयोमे विज्ञान तथा अर्थशास्त्रकी पसदगीमे भी यह कारण-भूत होगी। लेकिन अुस वक्त तो मुझे परिस्थितिया वकालतके धधेकी ओर खीच कर ले गयी और यह अिच्छा तब तक मनमे ही मनोरथ निर्माण करती रही जब तक गाधीजीकी राष्ट्रीय गुजराती शालाके बारेमे मैंने सुन नही लिया।

मनमे विचार थे, अनुभव बिलकुल नही था, किसीको कभी खानगी रूपमे भी नही पढाया था, अिसलिअे मार्गदर्शककी जरूरत तो थी ही। अिसलिअे जब मुझे अेक ओर सार्वजनिक जीवनमे शरीक होनेके लिअे पारिवारिक अनुकूलता मिली और दूसरी ओर गाधीजीने मुझे राष्ट्रीय गुजराती शालामें शामिल होनेके लिअे कहा, तो अुस सबधमे निर्णय करनेमें मुझे बहुत समय न लगा।

गाधीजीका भी सारा जोर प्राथमिक शिक्षा पर ही था, और अिस सबधमें मैंने जो अस्पष्ट विचार गढ रखे थे, अुनकी गाधीजीके पास सशोधित और स्पष्ट योजना थी। अुनमे स्वामिनारायण सप्रदाय तो नही था, किन्तु अुसके अलावा मैंने जो कुछ भी सोच रखा था अुससे बहुत ज्यादा और मुझे पसन्द आये असा सब कुछ था।

अुस शालाका काम करते-करते गूजरात विद्यापीठका जन्म हुआ। अुसका क्षेत्र केवल अुच्च शिक्षाकी मर्यादामें ही नही था। अुसमे प्राथमिक शिक्षासे लेकर अुच्च शिक्षा तकके सपूर्ण शिक्षण-क्षेत्रका [illegible] गया था। सयोगवश अुसका जन्म असहयोगके राजनीतिक आन्दोलनके अगके रूपमें हुआ। अिसलिअे प्राथमिक, माध्यमिक और अुच्च तीनो क्षेत्रो और तीनो प्रकारकी सस्थाअें अुसके हाथमें शुरूसे ही आ गयी।

लेकिन राजनीतिक परिस्थितियोंने अिसमे जो भाग लिया, अुसके परिणाम-स्वरूप अुसके सचालनमे महाविद्यालय और विनय-मदिरका महत्त्व प्राथमिक शालाओकी अपेक्षा बढ गया। यह अनिवार्य था; किन्तु अुससे विद्यापीठकी प्रवृत्तिमें मेरी दिलचस्पी घट गअी, और दिल-चस्पीके विना महामात्रका काम करनेसे मै दूसरे कार्यकर्ताओंके मार्गमें वाधक भी वन गया। गुजरातकी सेवा करनेकी अिच्छासे आया हुआ परदेशी-जैसा मै गुजरातके मार्गसे बाधाअें अुत्पन्न करनेवाला वनू, यह वात मुझे अखरी, और मै अन्तर्मुख वन गया। व्यक्तिगत रूपमें अुस समय मेरे जीवनका रस भी अधिकाधिक आध्यात्मिक चिन्तनकी ओर बढता जा रहा था, अिसलिअे कुछ ही महीनोमें मै गाधीजीकी अिजाजत लेकर विद्यापीठसे अलग हो गया और डेढ-दो साल निवृत्त रहा। वादमे सरदार पटेलकी अिच्छाको मान कर मुझे फिरसे महामात्रका पद स्वीकार अवश्य करना पडा, और दो-तीन वर्ष मैने अुस पद पर काम भी किया, लेकिन अुस वक्त मै बहुत-कुछ वदला हुआ मनुष्य था और वातावरण तथा परिस्थितिया भी वदली हुअी थी। अुस समय शिक्षा-सवधी मेरे विचार विशेष परिपक्व हो गये थे, किन्तु मेरे दुरा-ग्रह जैसे मालूम होनेवाले आग्रह मिट गये थे, और मै जो झगडा करनेवाला और हठीला माना जाता था, अैसा बन गया कि अपने साथियोको पसन्द आ सकू।

परतु दिनदिन राजनीतिक वातावरण वदलता जा रहा था, असहयोगका जोश ठडा पडता जा रहा था, और अुच्च शिक्षा तथा विनय-मदिरोंके लिअे खूब श्रम और धन खर्च करने पर भी ये सस्थाअे वन्द होती या अलग होती जा रही थीं। अिसे रोक सकना किसी तरह सभव नही था। अुलटे, राजनीतिक दृष्टिसे आये हुअे आचार्य और अध्यापक राजनीतिक आन्दोलनका रूप वदलते ही खुद अुसमें वह गये, और विद्यापीठ क्षीण-प्राय हो गया। ववअी युनिवर्सिटी और हाअीस्कूलोके प्रतिस्पर्धियोके रूपमे पैदा हुअे महाविद्यालय और विनय-

मंदिर वन्द हो गये और अुतने ही क्षेत्रको राष्ट्रीय शिक्षण माननेवाला राष्ट्रीय शिक्षणका काम वन्द हो गया।

मेरा पहलेसे ही यह मत था कि वम्वअी युनिवर्सिटी या हाअीस्कूलोकी प्रतिस्पर्धामें गैर-सरकारी सस्थाये चलाना राष्ट्रीय शिक्षाका सच्चा कार्य या क्षेत्र नही है। मेरी कल्पनाके गूजरात विद्यापीठके लिअे कुछ करने जैसा हो तो वह नये ढगसे सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षणके क्षेत्रमें ही था और है।

फिर भी, गूजरात विद्यापीठने जितने समय तक विनय-मदिर और महाविद्यालयके क्षेत्रमे काम किया, अुतने समयमे अुसने शिक्षाके अुन क्षेत्रमें भी शिक्षाकी दृष्टिसे वहुत ही अच्छा योग दिया और कुछ सिद्धान्तोको सर्वमान्य करवानेमे वह सफल हुआ। अुदाहरणके लिअे .

१. चाहे जैसी अुच्च शिक्षा गुजरातीके द्वारा देनेमें कोअी वडी कठिनाअी नही है, यह अिसने जितने विषयोमें निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया अुतनोमे सिद्ध कर दिखाया। वेशक, सव विषयोमें वह वैसा न कर सका, क्योकि कुछ विषयोके अध्यापक ही गुजराती नही थे। अत अुनके लिअे यह असभव था। लेकिन गुजराती भाषामे अुच्च शिक्षा किस तरह दी जा सकती है, यह भय गुजराती अध्यापकोंके मनसे निकल गया। वेशक, अुन्हे पाठ्य-पुस्तको या पारिभाषिक शव्दोकी कमी मालूम हुअी, लेकिन अुन्होने यह अनुभव न किया कि अुनके वगैर काम ही नही चल सकता। पढाते-पढाते अुन्होने कुछ पुस्तके भी लिखी और पारिभाषिक शब्द भी वनाये। ये पुस्तकें पढाअीके अनुभवके साथ तैयार की गअी थी, अिसलिअे वे अग्रेजी पाठ्य-पुस्तकोकी अनूदित रचनाये न रही। अुनके लिअे अग्रेजी पुस्तकोका आधार लिया गया था, फिर भी वे स्वतत्र रचनाये ही थी। पारिभाषिक शब्द भी कल्पित ही नही वनाये गये। वे अैसे थे कि विद्यार्थियोकी जवान पर चढ जायं और गुजराती भाषाके साथ अुनका मेल वैठे। वे अुपयोगमें आते-आते पैदा हुअे थे।

विद्यापीठकी प्रवृत्ति बहुत मन्द पड़ जाने पर भी अुसके प्रचलित किये हुअे बहुतसे शब्द समस्त गुजरातने अपनाये है और आज तक जीवित रहे है। पहले पाठ्य-पुस्तकोकी रचना हो, पारिभाषिक शब्द निश्चित हो, अुसके बाद ही स्वभाषा द्वारा शिक्षा दी जा सकती है — यह मान्यता मुझे मन्द-पुरुषार्थ, आलस्य या वहमका चिन्ह दिखाअी देती है। जो शिक्षक घरसे पाठ्य-पुस्तकोमे से पाठ रटकर लाते है और वर्गमे आकर अुगल देते है, अुन्हे ही स्वभाषाकी पाठ्य-पुस्तको और तैयार पारिभाषिक शब्दोका अभाव बाधक मालूम हो सकता है। जिसे अंग्रेजी आती हो, जिसके पास अुस भाषाकी पाठ्य-पुस्तके हो, जिसे विषयका ज्ञान हो, अुसे यदि तुरन्त पारिभाषिक शब्द न सूझे तो वह अुन शब्दोके लिअे अग्रेजी शब्दोका अुपयोग कर सकता है। किन्तु अपनी भाषामे विषय समझानेका आत्म-विश्वास तो अुसमे होना ही चाहिये, और यदि वह आजमा कर देखे तो दो-चार बार प्रयत्न करनेसे वह सफल भी हो सकता है। अिससे अुसे अपनी पढानेकी तथा विद्यार्थियोकी ग्रहण करनेकी शक्ति भी बढती हुअी दिखाअी देगी। पारिभाषिक शब्दोकी रचनामें तो विद्यार्थी भी मदद कर सकते है। दूसरे शिक्षक तो करते ही है। सभव है अेक ही विषय पढानेवाले भिन्न-भिन्न महाविद्यालयोमे भिन्न-भिन्न पारिभाषिक शब्द रचे जाय। वे शब्द परस्पर पत्र-व्यवहार या अुस सबधमें चलनेवाले मासिकके द्वारा सुधर सकते है। विद्यापीठ अुन्हे अिकट्ठा करने और अुनमे से चुनाव करनेका काम भी कर सकता है। सक्षेपमे कहा जाय तो पाठ्य-पुस्तको और पारिभाषिक शब्दोकी रचना पहले हो और शिक्षाके माध्यमको बदलनेका विचार बादमे, अिस क्रमको यदि हम अुलटा न कहे तो भी अिसे अनावश्यक शर्त तो कहना ही होगा।

२. गूजरात विद्यापीठकी प्रवृत्तिने गुजरातकी यदि दूसरी कोअी सेवा की हो, तो वह गुजराती भाषाका गौरव बढानेकी है। अग्रेजोकी तरह ही अग्रेजी भाषा लिखना और बोलना आना चाहिये — अिसका

हमारे पढे-लिखोको मोह रहता था, और जिसे अच्छी तरह अंग्रेजी लिखना-बोलना आता, अुसे अिसका घमण्ड भी रहता था। लेकिन अगर वह गुजरातीमे चार वाक्य भी शुद्ध न लिख सके, तो अिसके लिअे न तो अुसे शर्म आती थी, न अिसका अुसे भान ही रहता था। अैसी हमारी स्थिति थी। यदि कोअी Seen का अुच्चारण या हिज्जे Sin जैसा करता, Law का अुच्चारण Lo जैसा करता, या किसीके मुहसे I had went निकल जाता तो अुसकी अैसी हसी अुडाअी जाती कि वह शर्मसे गड जाता था। लेकिन ये हसी अुडानेवाले 'शिला' और 'शीला' का या 'सीमन्त' और 'श्रीमन्त' का भेद नही समझते थे, तथा 'स्थित' की जगह 'स्थगित' का अुपयोग करते थे। और अिसका अुन्हे खयाल तक न होता था, न लज्जा ही आती थी। मै मानता हू कि अिस स्थितिको बदलनेमें गूजरात विद्यापीठके स्नातकोकी विशेष शुद्ध भाषाने अच्छा काम किया है। अिसके कारण गुजरातियोको यह भान हुआ कि हमारी मातृभाषाका शुद्ध न होना हमारा अेक बडा दोष है।

युनिवर्सिटीकी परीक्षाओ वगैराकी पद्धतियोमें भी गूजरात विद्यापीठके अुदाहरणसे बहुत-कुछ सुधार हुअे।

फिर भी यह बात मुझे कभी नही जची कि बम्बअी युनिवर्सिटीकी समकक्ष अेक दूसरी गैर-सरकारी युनिवर्सिटी खडी करना राष्ट्रीय शिक्षाका मुख्य कार्य है। बम्बअी युनिवर्सिटी आम जनताके अुपयोगकी शिक्षण-सस्था नही है। वह कुछ विशेष प्रकृति और रुचिके लोगोके लिअे है और कुछ चुने हुअे क्षेत्रोमे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली शिक्षा देती है। आम जनताके अुपयोगकी बचपनसे लेकर अूची कक्षा तककी शिक्षा देनेवाली कोअी सस्था न होनेके कारण और युनिवर्सिटी शिक्षाकी बहुत प्रतिष्ठा और अेक समय बहुत कीमत होनेके कारण आवश्यकतासे अधिक तरुण अुसकी ओर खिचे और अभी तक भी

खिंचते जा रहे है। नतीजा यह है कि अेक ओर स्कूल और कॉलेज बढते जा रहे है, फिर भी जितने विद्यार्थी अुनसे लाभ अुठाना चाहते है और परीक्षाओंके परिणामोके अनुसार योग्य ठहराये जाते है, अुनके लिअे वे काफी नही होते। और दूसरी ओर यह शोर मचा रहता है कि स्कूल-कॉलेजोकी शिक्षा सतोषजनक नही है, अुससे बेकारोकी सख्या ही बढती है। दूसरी आश्चर्यकी बात यह है कि जितने विद्यार्थी परीक्षाओमें बैठते है अुनमे से किसी परीक्षामे अठारह-बीस प्रतिशत ही पास होते है, किसीमें तीस-पैंतीस प्रतिशत, तो किसीमे पचाससे साठ प्रतिशत तक। जब पचाससे साठ प्रतिशत तक परिणाम निकलता है तब हम अुसे सतोषजनक मानते है; तीससे पैंतीस प्रतिशत तक हो तो जरा असतोष व्यक्त करते है, और अिससे भी कम हो तो शिकायत करते है। पचाससे साठ प्रतिशत परिणामसे हमे सतोष होता है, अिससे मालूम होता है कि हम भी यही मानते है कि विद्यार्थियोका अेक-तिहाअीसे ज्यादा भाग या तो युनिवर्सिटी शिक्षाके योग्य नही है या फिर वह शिक्षा विद्यार्थियोके लिअे योग्य नही है। मतलब यह कि अेक-तिहाअी या अिससे ज्यादा विद्यार्थियोका या अुनके लिअे लगनेवाले धन, श्रम और समयका दुरुपयोग होता है। अितना सब अपव्यय होनेके बावजूद हम अिस परिणामको सतोषजनक मानते है, अिससे यही सिद्ध होता है कि सतोप पानेका हमारा माप-दण्ड कितना छोटा है। असलमे तो यदि विद्यार्थियोको योग्य प्रकारकी शिक्षा मिले, और वे वही शिक्षा लेते हो जो अुनके योग्य है, तो लगभग शत-प्रतिशत नही तो नब्बे-पचानवे प्रतिशत विद्यार्थी क्यो पास न होने चाहिये? पाच-दसके लिअे यह माना जा सकता है कि सयोगवशात् वे किसी परीक्षामे असफल रहे। किसी स्विमिंग बाथमें सौ मनुष्य तैरना सीखनेके लिअे दाखिल होना चाहें, अुन्हें दाखिल किया जाय, सारा पाठ्यक्रम पूरा किया जाय और अन्तमें जब परीक्षा ली जाय और यह परिणाम निकले कि चालीस प्रतिशत विद्यार्थियोको

अभी तैरना नही आया, तो अुसका क्या अर्थ किया जायगा? अुनका अर्थ मेरे विचारसे यही होगा कि या तो ये चालीस प्रतिशत भरती होने पर भी तैरना सीखनेके लिअे नही जाते थे, या फिर किसीने अुन्हें तैरना नही सिखाया। चूंकि अुन्हे परीक्षामें बैठने दिया गया है, अिसलिअे यह तो नही कहा जा सकता कि वे तैरना सीखनेके लिये नही जाते थे। वे बराबर हाजिर न रहे होते तो अुन्हे परीक्षामें बैठनेकी अिजाजत ही नही दी जाती। अिसलिये दूसरा ही अर्थ करना होगा कि जितने विद्यार्थियोको भरती किया जाता है अुतने विद्यार्थियोको सिखानेके लिअे वहा ठीक व्यवस्था नही है। अुसी प्रकार जिस सस्थामे चालीस-पचास प्रतिशत विद्यार्थी हर साल नापास होते है, अुसमें पढाअीकी व्यवस्था ठीक नही है अिसके सिवा और क्या कहा जा सकता है?

अिसका कारण भी है। हमारी शिक्षा-पद्धति यान्त्रिक है। 'गुरु प्राज्ञ और जड दोनोको समान रूपमें विद्या देता है', जिस प्राचीन प्रणालीका अनुसरण हमारी शिक्षा-सस्थाये करती है। मतलब यह है कि गुरु ग्रामोफोनका रेकार्ड बनकर बैठता है, और विद्यार्थी अुस रेकार्डको सुनकर जितना योग्य समझता है अुतना बोध लेता है अथवा नही भी लेता। जब रेकार्ड बजता है तब ग्रामोफोनको यह नही मालूम होता कि अुसे सुननेवाले दरअसल सुनते है या नही, अथवा कितना सुनते है। अुसकी तो चाबी भर दी गअी है, अिसलिअे वह बजता रहता है। कॉलिजके अध्यापककी भी क्या यही स्थिति है? बिलकुल अैसी तो नही है, फिर भी अितना तो निश्चित है कि शिक्षा-सस्थाओमे बहुत कम अध्यापकोमे गुरुकी योग्यता होती है, अुनमे और विद्यार्थियोमे गुरु-शिष्य भाव ही पैदा नही होता। किसी योग्य अध्यापकके साथ प्रतिवर्ष जिन दो-चार विद्यार्थियोका अैसा सबध बनता है, अुतने ही सच्चा लाभ अुठाते है। शेष तो अध्यापक अपने-आपको ग्रामोफोनकी तरह जो बजा देते है अुनमें से जितना अच्छा लगता है अुतना

ले लेते है, बादमे अध्यापक अपनी राह और विद्यार्थी अपने शौकोंकी राह चले जाते है।

विद्यार्थियोके सच्चे गुरु कौन होते है, यह बाल-मदिरसे लेकर युनिवर्सिटी तककी सस्थाओंके विद्यार्थियोके जलसोमें स्पष्ट हो जाता है, तथा अुनके रोजके चलने-फिरने और शरीर-शृगार वगैरासे प्रकट हो जाता है। सिनेमाके नट-नटी, नृत्यकार, गायक और कहानी-लेखक विद्यार्थी-समाजके हृदयमे समाये हुअे गुरु है। अुनकी सच्ची युनिवर्सिटिया थियेटरोमें है। अुन्हे देखकर वे अपनी आकाक्षाये गढते है, रुचि-अरुचिका निर्माण करते है, अर्थात् अपना चरित्र गढते हैं। स्कूल या कॉलेज तो अुनके लिअे केवल 'क्लास' या वर्ग है। यानी जैसे कोअी हिसाबनवीसीके क्लासमे जाते है, कोअी शॉर्ट हैण्डकी क्लासमें जाते है, कोअी सिलाअीकी क्लासमे जाते है, अुसी तरह विद्यार्थियोका अेक बडा समूह स्कूल और कॉलेजकी क्लासोमे जाता है। अुसमे अुनका अुद्देश्य कमाअीका कोअी साधन प्राप्त करना ही रहता है। यदि कोअी हिसावनवीसी, शॉर्ट हैण्ड या सिलाअीकी क्लासमे गया हो और वहाका प्रमाणपत्र भी अुसनें प्राप्त किया हो, किन्तु यदि वह हिसाब-किताब लिखकर न बतला सके, शॉर्ट हैण्डमे पत्र न लिख सके या कपडे न सी सके, तो अुसके प्रमाणपत्रकी कोअी कीमत नही होती। काम देखकर ही अुसकी कीमत होती है। लेकिन स्कूलो और कॉलेजोके प्रमाणपत्रोकी हमनें पहलेसे ही प्रतिष्ठा मान रखी है। अिससे भ्रम बढता है और विद्यार्थी वहांसे पूरा ज्ञान प्राप्त किये बिना ही वहाका प्रमाणपत्र हासिल करनेके लिअे अधीर हो जाते है।

अिसके अलावा, शिक्षाकी अेक अुलटी व्यवस्था बन गअी है। अुच्च शिक्षाकी व्यवस्था करते समय विद्वान अध्यापक जवाहरलाल नेहरू, राधाकृष्णन्, चन्द्रशेखर व्यकटरमनको आदर्श बनाते है। कुशाग्र बुद्धिके विद्यार्थी बीस-बाअीस वर्षकी अुम्रमें जितना सीख सकते है अुतना सभी विद्यार्थी सीख सकते है, यो मानकर अुन्होनें बी० अे०

की पढाअीमे वीसवें वर्ष तक जितने विपय अच्छी तरह ग्रहण कर लिये थे वे सब विषय अुस आयु तक सभी विद्यार्थियोको सिखाये जाने चाहिये और अुन्हे आने ही चाहिये, अिस खयालसे बी० अे० का स्तर तय किया जाता है। अिसके वाद यह ठहराया जाता है कि विद्यार्थीको चार वर्पमे अितना पढाया जाना चाहिये। अुसके आधार पर यह तय किया जाता है कि यह सब चार वर्पमे पढ लेनेके लिअे विद्यार्थीको कितनी तैयारी करके वहा जाना चाहिये। यही मैट्रिकका पाठ्यक्रम बनता है। यह पाठ्यक्रम १६ वर्षकी अुम्रमे पूरा हो जाना चाहिये, अैसा मानकर अुसका ६ से १६ वर्षके वीच बटवारा किया जाता है। यो अूचाअीका स्तर और होशियार विद्यार्थीकी अुम्र निश्चित करके हम अुसके नीचेके हिस्से करते है। अिसका परिणाम यह हुआ है कि शिक्षाका विकास वृक्षकी तरह वीजमे से अूपर नही बढता, बल्कि जैसे जैसे विद्याये अूपर बढती और विकसित होती जाती है, वैसे वैसे अुसका नीचेका बटवारा करनेकी व्यवस्था बदलती जाती है, और वही प्राथमिक, माध्यमिक आदि शिक्षाका रूप लेती है। यह शिक्षा मुट्ठीभर लोगोके लिअे ही अुपयोगी होती है, और अुसका सदुपयोग तो और भी कम लोग करते है। लेकिन अुसके वितरणका प्रयत्न अिस ढगसे किया जाता है, मानो वह शिक्षा सभीके लिअे हो।

राष्ट्रीय शिक्षाके नामसे शिक्षाका जो स्वरूप रचनेके लिअे गाधीजी और अुनके साथियोने आश्रममे प्रयत्न किया, वह अिससे अलग प्रकारका है। अुसका ध्येय यह नही है कि लाखों मे दो-चार बहुत ही कुशल विद्यार्थियोकी खोज निकाला जाय और अुन्हे पारगत या 'रेकार्ड ब्रेकर्स' बनाया जाय, बल्कि वह तो अैसी शिक्षा है जो किसीको भी अपने दायरेसे अलग नही रखती तथा जिससे सबको आवश्यक योग्यता मिल ही जाती है। यह बात मैं अेक दूसरे अुदाहरणसे समझाता हूं। व्यायामशालाके दो प्रकारके ध्येय हो सकते है. अेक यह हो सकता है कि बहुतसे विद्यार्थियोमे से नाम कमावें अैसे दो-चार पहलवान तैयार करना

जो तैरनेमे, दौडनेमें, कूदनेमे या कोअी दूसरी शारीरिक शक्तिमे दुनियाके पहले दो-चार लोगोंमें आवे और तमगे तथा अिनाम प्राप्त कर सके। अैसी व्यायामशाला अिन दो-चार विद्यार्थियोकी दृष्टिसे सब विद्यार्थियोके लिअे कसरतका पाठचक्रम बनायेगी। अैसे विद्यार्थी विरले ही निकलेंगे, लेकिन अुनके लिअे वह अपनी सारी शक्ति खर्च करेगी। दूसरे विद्यार्थी अुनके साथ नही चल सकेंगे, अुलटे हैरान होंगे, या फिर अुनकी ओर ध्यान नही दिया जा सकेगा। युनिवर्सिटी शिक्षाकी आज अैसी ही हालत हो गअी है। दूसरी व्यायामशाला 'रेकार्ड ब्रेकर्स' निर्माण करनेका ध्येय ही नही रखती। वह मानती है कि अैसे विद्यार्थी अपना स्थान आप खोज लेंगे। कोअी जवाहर अनुकूल परिस्थिति न मिलनेके कारण दबा हुआ रह जाय तो भी अुसे वह खास चिन्ताका विषय नही मानेगी। अुसका ध्येय यह होगा कि किसी भी संपूर्ण अवयवोवाले मनुष्यको शरीरकी अमुक योग्यता रखनी ही चाहिये। अमुक समय तक काम करनेकी, अमुक दूरी तक अमुक तेजीसे चलनेकी, दौड़नेकी, या बोझ अुठानेकी शक्ति हरअेकमें होनी ही चाहिये, अमुक हद तक श्रम करनेकी आदत सबको होनी ही चाहिये; अमुक रूपमें स्नायुओका विकास होना ही चाहिये। अिसलिअे अुस व्यायामशालाके सचालक अैसे स्तर निश्चित करके, जिन तक सभीको पहुचना ही चाहिये, सबको शिक्षण देंगे। जो शिक्षा लेनेके योग्य है वे तो अुसमें नापास होंगे ही नहीं; हा, कुछ अुनसे आगे भले निकल जाय।

अिस प्रकार दुनियामें मनुष्योकी बहुत बडी सख्याको शरीरश्रम और मेहनत-मजदूरी तथा अुत्पादक धधे ही करने होंगे। कारकूनो, शिक्षको, वकीलो, डॉक्टरो, अिंजीनियरो, राजनीतिज्ञों, बडे अधिकारियो, मत्रियो, नेताओ आदिकी सख्या सब मिलाकर हजारके पीछे दो-तीन ही होगी। हमारे देशमें तो बहुत बड़ी सख्याको खेती करनी होगी, ग्राम-जीवन बिताना होगा और वहांकी मेहनत-मजदूरी कुशलता या अकुशलतासे करनी होगी। यह स्थिति होते हुअे भी हम अिस प्रकार

शिक्षाका विचार करते है, अैसा आदर्श पेश करते है और अुसके पीछे सबको पागल बनानेका प्रयत्न करते है, मानो सभीको नेता बनना हो, सभीको फौजमे भरती होना हो, सभीको जगदीशचन्द्र और रवीन्द्रनाथ बनना हो। शिक्षाका यह मनोरथ बहुजन-समाजके लिअे निरुपयोगी और घातक है। शिक्षाकी योजना अैसे ढगसे विचारी जानी चाहिये कि वह सबसे पहले तो जो प्रवृत्तिया सारे समाजको जीवनभर करनी होती है अुन्हें अुत्तम रीतिसे, शास्त्रीय ढगसे करनेकी तालीम दे, मनुष्यके शरीर, मन, बुद्धि, चरित्र आदिको अुन प्रवृत्तियोके अनुकूल बनाये, अुनमे अुसे आनन्द आये और कुशलता प्राप्त हो, वह ग्राम-वासी, नगरवासी, कुटुम्बीजन, और समाजके अेक व्यक्तिके रूपमे अच्छी तरह जीना सीखे। अुसमें स्वावलबन और आत्मविश्वास पैदा हो। वह नेता न बने, लेकिन स्वाभिमानी तो बने ही, वह अमीर न बने, लेकिन स्वाश्रयी बननेकी हिम्मत तो रखे ही। वह राममूर्ति न बने, लेकिन हाथ-पैरसे अपग तो हरगिज न रहे। सबके लिअे अैसी योजना बनानेके बाद तथा लगभग सोलह वर्षकी अुम्रमें हरअेक स्वाश्रयी बन सके अितनी योग्यता अुसमें पैदा कर देनेके बाद जिसे शौक हो, सुविधा हो, बुद्धि हो, अुसके लिअे आगे बढनेकी व्यवस्था करे। अुसे अपने पसन्द किये हुअे अुद्योग, औद्योगिक विज्ञान या बौद्धिक विषयकी शिक्षा दे। तब यह प्रश्न ही न रहेगा कि अुन सस्थाओंका लाभ लेनेके लिअे जो प्रारभिक ज्ञान आवश्यक है अुसके लिअे आवश्यक तैयारी तथा बादमें अुसका सपूर्ण शिक्षण अुसे कितने समयमें पूरा कर लेना चाहिये। विद्यार्थी तीस वर्ष तक निष्णात बने तो भी कोअी हर्ज नही। अुसे यदि बीचमे कही रुकना हो तो रुक भी सकता है, क्योंकि वह अपने पिछले शिक्षाकालमे स्वाश्रयी तो बन ही गया है।

'बुनियादी तालीम' या 'वर्धा-योजना' के नामसे जो शिक्षण प्रख्यात हुअी है अुसका यही ध्येय है। 'बुनियादी तालीम' की योजनामें अुसके मुद्दे जितने स्पष्ट रूपमें पेश किये गये है, अुतने स्पष्ट रूपमें

जब हम साबरमतीकी राष्ट्रीय शाला चलाते थे अुस समय हमें शायद वे न भी दिखाअी दिये हो, फिर भी बीजरूपमे तो हमारे मनोरथ अैसे ही थे। अुसमे बम्बअी युनिवर्सिटी जैसी सस्थाकी शिक्षाका निषेध नही है, वह सिर्फ अुसका मूल्य मर्यादित करती है। युनिवर्सिटी शिक्षाका अुपयोग अल्पसख्याके लिअे है, बहुजन-समाजके लिअे नही। परतु अुसे जिस ढगसे प्रतिष्ठा मिली है, अुसके कारण जिनके लिअे वह योग्य नही होती अुन्हे भी प्राप्त करने योग्य वस्तु मालूम होती है; और अिसलिअे विद्यार्थियोंके बहुत बडे हिस्सेकी शक्ति, समय और पैसेका अपव्यय होता है। अैसी सस्थाओमे जितनी जगह होती है, अुससे सौ गुने अधिक अुम्मीदवार होते है, और असतोष बढता है। फिर भी विद्यार्थियोको बहुतसा जानने लायक भी सामान्य ज्ञान नही मिलता। जो मिलता है अुसमें से बहुतसा तो कभी भी अुनके अुपयोगमें नही आता, और कितना ही ज्ञान तो परीक्षाके दूसरे दिन ही वे भूल जाते है। ज्यादातर विद्यार्थी तो परीक्षाके बाद अध्ययनको सदाके लिअे तिलाजलि दे देते है; अुनमे यावज्जीवन विद्यार्थी रहनेकी अुमग ही नही रहती। जिस अग्रेजी ज्ञानके लिअे बेहिसाब समय लगाया जाता है, वह भी कामचलाअू ही रहता है, और जिन्होने स्वभाषाको खास विषयके रूपमे लिया हो अुन्हे छोडकर शेषको अुसका ज्ञान भी नही-जैसा ही मिलता है।

फिर भी, युनिवर्सिटी शिक्षाका अुसके मर्यादित क्षेत्रमे अुपयोग है। अिसलिअे अुस सबधमे विवादास्पद प्रश्नो पर दो-चार विचार पेश करता हू।

आधुनिक शिक्षाशास्त्री अुच्च शिक्षाके बारेमे तीन भिन्न भिन्न आदर्शोकी कल्पना करते पाये जाते है। अेकका आदर्श है 'ऑक्सफर्ड-कैम्ब्रिज' जैसे या 'नालदा-तक्षशिला' जैसे छात्रालय-विद्यापीठोका। ऑक्सफर्ड-कैम्ब्रिज तथा नालदा-तक्षशिलाके आदर्शोमे प्राचीनता-अर्वाचीनताका भेद अवश्य होगा, परतु दोनोका स्वरूप छात्रालय-विद्यापीठका है। अिस आदर्शमें माननेवालोका आग्रह है कि अब जो भी नअी

युनिवर्सिटी स्थापित की जाय, वह छात्रालय-विद्यापीठ ही होनी चाहिये। आगे मैं अैसी युनिवर्सिटीके लिअे 'विश्वविद्यालय' शब्दका प्रयोग करूंगा।

दूसरा आदर्श प्रान्तव्यापी सस्थाओंको मान्यता देकर तथा परीक्षायें लेकर प्रमाणपत्र देनेवाले भारतकी आधुनिक युनिवर्सिटियों जैसे मण्डलका है। अुसमें छात्रालयको महत्त्व नहीं दिया जाता, न वह किसी अेक स्थानके लिअे होता है। वह व्यापक विद्यापीठ है। अुसके लिअे आगे मैंने 'ज्ञानपीठ' शब्द सुझाया है।

तीसरा आदर्श गुरुकुल विद्यापीठका है। यह नालंदा-तक्षशिलासे कुछ अलग ही कल्पना है। सांदीपनिके पास रहकर शिक्षा पानेवाले कृष्ण-बलदेवके जीवनका जो वर्णन मिलता है, 'अभिज्ञान शाकुंतल'में कण्वके आश्रम परसे जो कल्पना होती है, छांदोग्योपनिषद्‌में अुद्दालक आदिके गुरुगृहोंकी जो कल्पना होती है, यह आदर्श अुसीके आधार पर रचा हुआ है। अिसके विशाल स्वरूपमें रवीन्द्रनाथ टागोर जैसे किसी प्रतापी कुलपतिके पास, जिसके आसपास अनेक विद्वानोंका मण्डल होगा, विद्यार्थी बचपनसे लेकर बीस-पच्चीस वर्षकी अुम्र तक रहेगा, आश्रमके सचालनसे सबध रखनेवाले सभी छोटे-बडे काम करेगा, गुरुजनोंकी व्यक्तिगत परिचर्या करेगा, और विद्वानोंमें से किसी अेकके साथ विशेष सम्बन्ध रखेगा। वह अध्यापक जो पढायेगा वह पढेगा, विद्याके अनुसधानसे सबध रखनेवाला जो कुछ भी काम अध्यापक करता होगा अुनमें वह अुसकी सहायता करेगा, अुसीमें से अुसकी शिक्षा भी होती रहेगी, और जब अध्यापकको लगेगा कि अुसका विद्यार्थी बुद्धि आदिके प्रमाणमें जितना सीख सकता है अुतना सीख चुका, तो वह अुसे प्रमाणपत्र देगा और वह विद्यार्थी स्नातक माना जायगा। जहां रवीन्द्रनाथ जैसे कोअी मण्डलवर्ती कुलपति न हों, बल्कि [illegible] विद्वान हो तो अुसका शिष्य भी अिसी तरह स्नातक बनेगा। जैसे, काका साहब, पं० सुखलालजी, या धर्मानन्द कोसाम्बी जैसोंके पास [illegible],

अुनके कामोंमें हाथ बंटाकर और अुसमें से खुद भी सीखकर तैयार हुअे विद्वानोंको अिस प्रकारके स्नातक कहा जा सकता है। ये स्नातक अमुक विद्यालयके स्नातक नहीं, परन्तु अमुक गुरुके स्नातक माने जायंगे।

हिन्दू त्रिवर्णोंमें गोत्र-शाखा-प्रवर आदिके जो नाम चले आते हैं, वे शायद किसी गुरु-परम्पराके सूचक हैं। अेक गोत्रके मनुष्य किसी अेक पूर्वजके ही वंशज होंगे, यह विश्वासके साथ नहीं कहा जा सकता। जैसे, कौशिक गोत्रवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य सारे भारतमें पाये जाते हैं। अुन सबका कोअी अेक ही पूर्वज होगा यह कहना कठिन है। परन्तु संभव है अुन सबके कोअी-न-कोअी पूर्वज किसी कौशिक ऋषिके गुरुकुलके शिष्य-प्रशिष्य रहे होंगे और अुन्हें गुरुके रूपमें स्वीकार किया होगा। अुनका गोत्र अुनके गुरुकुलकी पहचान है।

अैसे विद्यापीठको सरकारी मान्यता मिलती ही है, अैसा नहीं कहा जा सकता। यदि मिले भी तो वह अुसके स्नातकोंका अनुभव होनेके बाद ही मिलेगी। सरकारका ताम्रपत्र — चार्टर — लेनेके बाद अुसकी स्थापना नहीं होती। अुस पर सरकारका कोअी अंकुश नहीं रह सकता। अुसे मान्यता देनेमें और अुसकी सहायता करनेमें सरकारको भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती हुअी मालूम होगी। जैसे, सरकारको जब अमुक प्रकारके काम करनेके लिअे लोगोंकी जरूरत होती है, तो वह चरखा-संघ, तालीमी-संघ, ग्रामोद्योग-संघ वगैरासे मांग करती है। सरकारको जब पाली भाषाके अध्यापककी आवश्यकता होती तो वह कोसम्बीजीसे पूछती थी; प्राकृतके अध्यापक चाहिये तो वह मुनि जिनविजयजी, पं० सुखलालजी, या पं० बेचरदासजीसे पूछेगी। अुन गुरुकुल या गुरुके स्नातकोंकी सरकार या प्रजामें अैसी प्रतिष्ठा रहेगी। यही अुनकी पदवीकी मान्यता है।

अैसे विद्यापीठोंका क्षेत्र सदा ही खुला रहेगा। ये जैसे सरकारी तंत्र द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयोंका स्थान नहीं ले सकते, वैसे ही

अुनकी वजहसे अिन विद्यापीठोके 'बरखास्त' होनेका भी कोअी कारण नही है। यह तो स्पष्ट है कि ज्यादातर विद्यार्थी तत्र-स्थापित विश्वविद्यालयोमे ही जायेगे।

यह लिखते समय मुझे विश्वविद्यालय और विद्यापीठ अिन दो शब्दोमे से किस शब्दको पसन्द किया जाय अिस सम्बन्धमे आज जो चर्चा चल रही है अुसके बारेमे कुछ सुझाव पेश करनेकी अिच्छा होती है। यो तो 'विश्वविद्यालय' युनिवर्सिटी शब्दका शब्दानुवाद है। अिसके सिवा अुसमें मुझे कोअी सार्थकता नही मालूम होती। लेकिन यह शब्द भी अब रूढ हो गया है, अिसलिअे भले रहे। मै समझता हू कि अेफिलियेटिंग युनिवर्सिटी, रेसिडेन्शियल युनिवर्सिटी और अूपर बताअी विशिष्ट गुरुओ या गुरुकुलोकी सस्थाअे -- अिन तीनोके लिअे यदि हम तीन अलग-अलग शब्द रखे तो अच्छा होगा। मेरा नम्र सुझाव है कि सरकारके चार्टर द्वारा स्थापित की हुअी रेसिडेन्शियल युनिवर्सिटीके लिअे विश्वविद्यालय शब्द मर्यादित कर देना ठीक होगा। खास गुरुकुल या गुरु किसी विषयमे यदि आरभसे लेकर अुच्चतम शिक्षा तक विद्यार्थियोको ले जाते हो और अुसका विकास करते हो — भले अुन्हे सरकारकी मान्यता प्राप्त हो या न हो — तो अुन्हे विद्यापीठ कहा जाय, और अेफिलियेटिग युनि-वर्सिटीके लिअे हम 'ज्ञानपीठ' या अैसा ही कोअी शब्द काममे ले।

अब गुजरातके लिअे सोची गअी नयी युनिवर्सिटीका स्वरूप 'विश्वविद्यालय' — रेसिडेन्शियल — जैसा ठीक है या ज्ञानपीठ-जैसा अिस विषयमे :

मुझे लगता है कि आज तो वह ज्ञानपीठ जैसा ही हो सकता है या होना चाहिये। साथ ही अुसमे कोअी विश्वविद्यालय भी हो सकता है। अहमदाबाद, वडोदा या सूरत जैसी जगहोमें कअी प्रकारके महाविद्यालय चलते हो और अुन विद्यालयोका अेक अलग मोहल्ला — प्रचलित भाषाके अनुसार अेक 'नगर' — बने, तो अुन

सबको अेकसाथ काम करने और जोड़नेके लिअे अेक विशिष्ट नियमावली भी हो सकती है। आगे चलकर अुनमें से हरअेक यदि स्वतंत्र विश्वविद्यालय बन जाय, अपनी ही परीक्षायें ले और पदवियां दे तो भले दे सकता है। परन्तु आज तो समूचे गुजरातका अेक ज्ञानपीठ हो, यही मुझे अिष्ट मालूम होता है। यहां यह याद रखना चाहिये कि मैं जब गुजरात शब्दका अुपयोग करता हूं तो मेरी भाषामें काठियावाड-कच्छ आदि प्रदेशोंका भी समावेश होता है। अैसे समग्र गुजरातमें भविष्यमें अैसे बीस-पच्चीस स्वतंत्र विश्वविद्यालय भी बन सकते हैं।

राजनीतिक या शासन-व्यवस्थाकी दृष्टिसे भाषावार प्रान्तरचना हो जानेके बाद ही भाषावार प्रान्तीय विश्वविद्यालय या ज्ञानपीठ स्थापित किये जाने चाहिये, अैसा मैं नहीं मानता। राजनीतिक या व्यवस्था सम्बन्धी विभाग करनेमें अनेक पहलुओं पर विचार करना पड़ता है। अुसमें क्षेत्रफल, जनसंख्या, आय–व्यय, रक्षा तथा यातायातकी सुविधायें, नदी-नाले-पहाड़ आदिकी कुदरती सीमायें आदि अनेक बातोंकी जांच करनी पड़ती है। परन्तु प्रत्येक भाषाका अैसा प्रदेश अिन सब बातोंका विचार करके नहीं बना होता। अुनके प्रदेश लोगोंकी बसाअी हुअी बस्तीके आधार पर बने होते हैं। अुनकी बिलकुल स्पष्ट सीमायें नहीं बांधी जा सकतीं। अिस कारणसे ज्ञानपीठोंका अधिकारक्षेत्र स्थूल सीमासे भी बाहर जाय — अर्थात् वह extra-territorial हो — तो अुसमें मुझे कोअी दोष नहीं दिखाअी देता। यदि और बातोंकी सुविधा हो तो 'गुजरात ज्ञानपीठ' द्वारा मान्य किया हुआ महाविद्यालय नागपुर या कलकत्तेमें भी हो सकता है और महाराष्ट्र ज्ञानपीठका बड़ोदेमें, तथा अिन दोनोंका और अिनके अलावा प्रयाग या काशीका महाविद्यालय बम्बअीमें भी हो सकता है।

तब प्रश्न अुठ सकता है कि प्रान्तीय ज्ञानपीठकी विशिष्टता क्या है?

मेरा खयाल तो यह है कि प्रान्तीय भाषाको अूचीसे अूची शिक्षाका माध्यम बनाना, अुस भाषामें किसी भी प्रकारकी विद्याका ज्ञान मिल सकने और अुसका विकास करनेकी सुविधा पैदा करना और अुस भाषाका विकास करना अुस विद्यापीठकी मुख्य विशिष्टता और क्षेत्र है। कोअी राजनीतिक दृष्टिसे बना हुआ प्रान्त द्विभाषी या विविध-भाषी हो, तो वह अिसमे बाधक बनता है यह मै कतअी नही मानता। अिसमे यदि अलग-अलग युनिवर्सिटियोके क्षेत्र अेक-दूसरे पर व्याप्त हो, तो अुसमें मुझे बाधा जैसा बिलकुल मालूम नही होता। गुजराती, मराठी, बगाली, हिन्दी आदि जो-जो साहित्यिक भाषाये है और जिन्हे बोलनेवाले प्रजाके विशाल समुदाय है, अुन अुन भाषा-भाषियोको अुनकी अपनी भाषाओमे ही पूरी शिक्षा मिल सके अिसका खयाल रखना सरकारका, विद्वानोका, साधन-सम्पन्न लोगोका और प्रजाके सेवकोंका कर्तव्य है और जनताको अिन सबसे वैसी अपेक्षा रखनेका अधिकार है। अिस प्रकार गुजरातके ज्ञानपीठो, विश्वविद्यालयो या विद्यापीठोकी विशिष्टता अुनकी शिक्षाके माध्यममे रहेगी।

अैसी प्रत्येक सस्थाकी अलग-अलग विशेषतायें भी हो सकती है। वे समग्र प्रान्तकी विशिष्टता, स्थानीय विशिष्टता तथा सस्थाके कार्यप्रदेश और अुद्देश्यकी विशिष्टताके अनुसार अलग-अलग होगी। हो सकता है कि अहमदाबाद-जैसे व्यापार-प्रधान क्षेत्रमे शिक्षाके अेक अगका अधिक विकास हुआ हो, समुद्रके पासके क्षेत्रमे दूसरे अगका और आणन्द जैसे स्थानमे तीसरे अगका अधिक विकास हुआ हो।

अिसमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाके बीच कोअी विरोध पैदा होनेकी आवश्यकता मुझे नही दिखाअी देती। जहा गलत अभिमानोका पोषण किया जाता है वही विरोध पैदा होता है। हरअेक अपनी मर्यादा समझे तो व्यवस्था हो सकती है।

यदि राष्ट्रभाषाको किसी अेक खास दिशामे ही खींचनेका प्रयत्न हो — जैसे, सस्कृत-प्रचुर या अरबी-फारसी-प्रचुर या कृत्रिम शब्दोंसे

भरी हुअी हिन्दी — तो सभव है कठिनाअिया पैदा हो। हां, सभी प्रान्त अपनी प्रान्तीय भाषाओमे यह रुख अख्तियार करे तो बात अलग है। परन्तु यदि हम याद रखें कि भारतकी सभी प्रचलित प्रान्तीय भाषाये जितनी सस्कृतके निकट है अुसकी अपेक्षा वे अपनी रचनामें अेक-दूसरेके ही ज्यादा निकट है — सस्कृतसे तो अुलटे वे भिन्न है — तथा सबके विकासमे लगभग समान शक्तियोने काम किया है, तो हमे अिन सभी भाषाओका साम्य विशेष रूपमे दिखाअी देगा। यदि लिपियोकी विविधता न होती, तो सभव है ये और भी अेक-दूसरेके निकट होती। अरबी-फारसी-अग्रेजी आदि विदेशी भाषाओका प्रभाव सभी भाषाओ पर समान रूपमे पडा है, अुन भाषाओंके शब्द सभी प्रान्तोमें लगभग समान रूपमे मिल गये है, कभी-कभी तो सस्कृतकी अपेक्षा भी ज्यादा समान रूपमे। शुद्ध सस्कृत साहित्यसे लिये हुअे शब्द अवश्य सब भाषाओमे समान है, परन्तु जो सस्कृत साहित्यमें नही वरते गये हैं तथा जिन्हे प्रान्तीय भाषाओके तथा आधुनिक जीवनके विकासके दरमियान विद्वानोने गढा है, अैसे नये सस्कृत शब्द प्रान्त-प्रान्तमे भिन्न रूपमें बने हुअे दिखाअी देगें।

अिसलिअे जो शब्द प्राचीन सस्कृत साहित्यमें या मूल प्रान्तीय भाषामें न हो, वल्कि नयें गढने हो तथा किसी विदेशी भाषामे हो लेकिन वरते न जा सकते हों, अुन शब्दोकी रचनाके लिअे कोअी यदि निश्चित मापदण्ड तय किया जा सकता हो, तो मैं नि शक होकर कह सकता हू कि अुनसे प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषाके बीच विशेष अन्तर नही पडेगा।

मेरे अिस कथनका प्रयोजन यह है कि मेरी कल्पनामें प्रान्तीय भाषाओंके ज्ञानपीठ होते हुअे भी हर प्रान्तमे कुछ अैसे विश्वविद्यालय हो सकते हैं, जो सारे भारतके लिअे या भारतके वहुतेरे प्रान्तोकी दृष्टिसे वनाये गये होगे। अुनमे प्रान्तके वाहरके विद्यार्थी, अध्यापक आदि भी आते होगे। अिसके अलावा मै अिस वातकी भी कल्पना करता हू

कि प्रान्तीय ज्ञानपीठोमें भी परप्रान्तके अध्यापक वार-वार आ सकते है। यदि गुजरात विश्वविद्यालयमें अैसी नीति चलने लगे कि अुसमें परप्रान्तके अध्यापको या विद्यार्थियोके लिअे स्थान ही न हो, तो अुसे मै विचार और दृष्टिका दोष मानूगा। अिसी तरह हमारे विशाल देशमें यह हमेशा ही होता रहेगा कि हमारी प्रान्तीय भापामे किसी खास विषयकी अुत्तम पुस्तक न हो और दूसरी किसी भाषामे हो। अुसका सबसे पहला अनुवाद राष्ट्रभापामे ही होना सभव है। लेकिन हो सकता है अुसमे भी न हो। अुसके लिअे यदि यह कहा जाय कि वह पुस्तक पाठ्य-पुस्तक नही बनाअी जा सकती, तो अैसी सकीर्ण दृष्टिसे काम नही चलेगा।

अिसलिअे मेरी कल्पनाके अनुसार अुच्च विद्याके हर अध्यापक और विद्यार्थीको कमसे कम दो भापाये तो पूर्ण रूपसे जानना ही चाहिये। अेक तो प्रान्तीय भापा और दूसरी राष्ट्रभापा। दोनो भापाओमें अुसे शुद्ध लिखना और बोलना आना चाहिये। राष्ट्रभापामें दिये जानेवाले व्याख्यान समझनेमे और अुस भापाकी पुस्तके पढनेमें अुसकी योग्यता आज जितनी अग्रेजीमे है अुससे ज्यादा होनी चाहिये।

यदि हम यह बात मान लें तो राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भापाये अेक-दूसरेके साथ और सहारेसे ही आगे बढती रहेगी, यह नही हो सकता कि अेक भाषा दूसरीकी अपेक्षा वहुत ही आगे वढ जाय या वहुत पीछे रह जाय। तव यह माननेके लिअे भी कोअी कारण नही रह जायगा कि अेक प्रान्तके मनुष्योको दूसरे प्रान्तकी सस्थामे अध्ययन, अध्यापन तथा सरकारी विभागोमे नौकरी वगैरा करनेमे वहुत असुविधायें होगी।

पारिभाषिक शब्द वनानेमे कौनसे शब्द परभापाके ही रखे जाय और कौनसे वदले जाय तथा किस भापाका आधार लेकर नये शब्द गढे जाय, यह वादविवाद कुछ अश तक स्वाभाविक जरूर है। परन्तु यदि मुख्य सिद्धान्त निश्चित हो जाय, तो वहुत हद तक वह

आवश्यक नही है, प्रत्यक्ष रूपमे पढानेकी शुरुआत किये विना घर वैठे-वैठे पाठ्य-पुस्तके लिखने या शव्दकोश वनानेके प्रयत्नसे अैसा वादविवाद पैदा होता है।

मेरी दृष्टिसे मुख्य सिद्धान्त ये है

१. आन्तर-राष्ट्रीय पारिभाषिक शव्दोको वदलनेका मोह न रखना चाहिये। अैसे शब्दोका मुख्य क्षेत्र केवल प्राकृतिक विज्ञानकी शाखाये ही है। आन्तर-राष्ट्रीय परिभाषाओमे भी कभी-कभी दोहरी शव्दमाला होती है . राष्ट्रीय और आन्तर-राष्ट्रीय। अुदाहरणके लिअे, कुछ रासायनिक पदार्थो, तत्त्वो, प्राणियो अित्यादिके नाम। अिनमें से कुछके लिअे अपनी-अपनी भाषाके शब्द पहलेसे ही प्रचलित है, अिसलिअे वे भी चलते है और अुनकी पारिभाषिक सज्ञा भी दी जाती है। जैसे तावेको हम 'तावा' कहते हुअे और पारिभाषिक अर्थमे निस्सकोच भावसे अुसका अुपयोग करते हुअे भी अुसकी पारिभाषिक सज्ञा (Cupram-Cu)का अुपयोग करेगे। परन्तु अेल्युमिनियमके लिअे नया देशी शव्द नही वना है और वह शव्द प्रचलित हो गया है, अिसलिअे यदि अुसे वदलनेका प्रयत्न किया जाय तो वह अनुचित माना जाना चाहिये। अिसी तरह सोडियम और सोडा शव्द अग्रेजी होने पर भी हमारे देशमे प्रचलित हो गये है। अुन्हे गुजराती या हिन्दी समझकर ही वरतना चाहिये, यद्यपि अुनकी आन्तर-राष्ट्रीय संज्ञा (Natrum-Na) भी रहेगी ही। अिसी तरह विज्ञानकी दूसरी शाखाओमे भी होना चाहिये।

२. अूपरके अुदाहरणोसे यह भी फलित होता है कि जो विदेशी शव्द हमने पूरी तरह पचा लिये है, जो जो मनुष्य अुन चीजोको वरतते या देखते है वे अुन्ही शव्दोसे अुन्हे पहचानते है, अुनके लिअे अव भिन्न शव्द गढने और प्रचलित करनेका मिथ्या मोह हमें छोड देना चाहिये। यह सिर्फ प्राकृतिक विज्ञानकी शाखाओको ही लागू नहीं होता, वल्कि जीवनके सारे व्यवहारोमे वरते जानेवाले शव्दोको लागू होता है। जैसे, विल, रसीद (रिसीट), वाअुचर, कम्पनी, शेअर,

डिविडण्ड, थरमॉमीटर, ऑपरेशन आदि सैकडो शब्द है। अिनमें कुछके देशी पर्याय भी साथ-साथ प्रचलित है। वे और विदेशी शब्द दोनो विकल्प रूपमें बरते जा सकते है, और यदि अिन दोनोके स्वरूपमे कुछ भेद हो तो अेकके लिअे अेक और दूसरेके लिअे दूसरा भी निश्चित किया जा सकता है। जैसे (गुजराती भाषामे) 'आकडा' शब्द लीजिये। यह बिल, अिन्वॉअिस (बीजक), वाअुचर तीनो शब्दोंके लिअे काममे लिया जाता है। लेकिन अिन्वॉअिसके लिअे 'भरतियु' (बीजक) शब्द ज्यादा निश्चित है। तब अिस प्रकारके आधारोके लिअे सामान्य शब्द 'आकडा' रख कर अुसके भेदोके लिअे बिल, अिन्वॉअिस अथवा 'भरतियु' तथा वाअुचर काममे लिये जा सकते है। लेकिन अिन सबके लिअे या अिनमे से किसी अेकके लिअे 'आधार-पत्र' शब्द बनाना गलत मोह कहा जायगा।

३ कोअी शब्द फारसी, अरबी या अंग्रेजीका है, अिसीलिअे अुसे बदलनेकी मनोवृत्ति ठीक नही। जो शब्द हमारी भाषामे घुल-मिल गये है, अथवा जो वस्तुये या भाव ही अैसे विशिष्ट और नये है कि अुनके लिअे हम जो नये शब्द गढेंगे वे कृत्रिम और अुनके विदेशी नामोके जैसे ही नये होगे, अुनके लिअे अुन विदेशी शब्दोको अपनानेमें ही भाषाकी सेवा है। जैसे, पावर, फोर्स, अेनर्जी। जहा ये शब्द पदार्थ-विज्ञानके पारिभाषिक शब्दोंके रूपमे नही, बल्कि सामान्य साहित्यमें अुपयोगमे लिये जाते है, वहा वे अेक-दूसरेके पर्याय-जैसे भी होते है, और अुनका अर्थ हमारी भाषामे जोर, दम, बल, ताकत, शक्ति, अुत्साह, वीर्य आदि शब्दोसे अच्छी तरह बताया जा सकता है। परन्तु अिन छ-सात देशी शब्दोमे से किस आधार पर अेक या दो शब्द 'पावर' के लिअे, दूसरे अेक-दो शब्द 'फोर्स' के लिअे और तीसरे 'अेनर्जी' के लिअे निश्चित करेंगे? और अैसा करनेमे यदि कुछ गडबडी पैदा होनेकी सभावना हो, तो क्या बिल्कुल नये ही शब्द गढ़ेंगे? जैसे, प्रबल या सुबल, प्रशक्ति, प्रोत्साह, प्रवीर्य आदि?

अिसकी अपेक्षा अधिक अिष्ट तो यह है कि पावर, फोर्स, अेनर्जीको ही पारिभाषिक शब्दोकी तरह रखा जाय और निकम्मी शब्द-वृद्धिकी मेहनतसे बचा जाय।

४ यह ठीक है कि नये शब्दोकी रचनाके लिअे हमें संस्कृतका आश्रय लेना ही विशेष अनुकूल होगा। परन्तु अिस कारणसे जो फारसी, अरबी या अग्रेजी शब्द हमारी भाषामें प्रचलित हो गये हैं अुन्हें बिना कारण बदलनेमे मुझे लाभ नही दिखाअी देता। और संस्कृतका आश्रय लेनेका मतलब यह न होना चाहिये कि संस्कृतके व्याकरण और अुसकी क्लिष्टताका भी आश्रय लिया जाय, या फिर अैसे शब्द बनाये जाय जो अपने-आप समझमें न आ सकें। अैसे नये शब्द बनानेकी अपेक्षा तो किसी भाषाका प्रचलित शब्द दाखिल करना ज्यादा अच्छा माना जायगा।

प्रान्तकी बड़ी अदालतोकी और दफ्तरोकी भाषा कौनसी हो, अिस सम्बन्धमे कठिनाअिया पेश की जाती है। मेरी रायमें साधारणतया वह भाषा प्रान्तकी भाषा ही होगी। बडी बडी अदालतोका सब काम प्रान्तीय भाषामे ही चलेगा, यहा तक कि फैसला भी अुसी भाषामे दिया जायगा। सभी फैसलोकी फेडरल कोर्टमे अपील नही की जाती और और न सब 'लॉ रिपोर्ट्स' मे प्रकाशित ही करने पड़ते है। अैसे महत्त्वके फैसलोका राष्ट्रभाषामे अनुवाद किया जा सकता है। आज भी अनेक दस्तावेजो, छोटी अदालतोंके फैसलो वगैराका अग्रेजीमें अनुवाद करके ही बडी अदालतोमे कार्रवाअी की जाती है। वही राष्ट्रभाषामें भी हो सकता है। न्यायाधीशोको यह अधिकार भी दिया जा सकता है कि वे जिस फैसलेको राष्ट्रभाषामें देना अुचित समझे, अुसे राष्ट्रभाषामें भी दे सकते हैं। परप्रान्तके नियुक्त किये हुअे न्यायाधीशोको वैसा करनेकी छूट अवश्य दी जा सकती है। अुनके लिअे प्रान्तकी भाषा समझना काफी होगा।

प्रान्तीय दफ्तरोकी व्यवस्था भी अिसी प्रकार होगी। अगर अंग्रेजी हुकूमतके दिनोमे अंग्रेजी और प्रान्तीय भाषाकी जोडी चल सकती थी, तो प्रान्तीय भाषा और राष्ट्रभाषाकी जोडी तो अुससे ज्यादा अच्छा काम कर सकती है।

अिस कार्यमे जो बडी बाधा है वह प्रान्तीय भाषा नही, बल्कि प्रान्तीयता है, अपने प्रान्तकी मिथ्याभिमानी अस्मिता है। अिस मामलेमे प्रान्तमें स्थिर रूपसे रहनेवाले लोगोको व्यापार, धन्धे, नौकरी वगैराके लिअे अनेक प्रान्तोमे घूमनेवाले लोगोसे विशाल दृष्टि ग्रहण करनी चाहिये। मेरे पास अैसे कुछ पत्र आते है, जिनमे प्रान्तीय सकुचिततासे अूबकर सभी प्रान्तीय भाषाओको हटाकर सबके लिअे राष्ट्रभाषाको ही मातृभाषा बनाने तककी हिमायत की जाती है। मैंने देखा है कि अिन पत्र-लेखकोमे अधिकतर गाधीवादी, समाजवादी या साम्यवादी नही होते, बल्कि गुजरात-काठियावाडके भिन्न-भिन्न प्रान्तोमें व्यापार-धन्धा करनेवाले, या दक्षिण भारतके भिन्न-भिन्न भागोमें नौकरी करनेवाले लोग होते है। जिसे जगम जीवन बिताना होता है, वह अेक ही स्थानका बहुत ज्यादा अभिमान नहीं रखता।

जो आज गुजराती बोलते है, अुनके पूर्वज गुजराती ही बोलते थे अैसा नही कहा जा सकता। गुजरातके ही राजाओमें जिनके नाम हम अभिमानके साथ लेते है अुन चावडा और सोलकी राजपूतोकी भाषा कौनसी होगी सो भगवान जाने! धीरे-धीरे वह गुजराती बनी। जो यह कह सके कि अुनके पूर्वज कमसे कम पाच हजार वर्षोसे गुजरातमे ही रहते आये है, वे अपने अुन पूर्वजोकी भाषाके कितने शब्द आज समझ सकेगे यह कहना कठिन है। भाषाओका स्वरूप भिन्न प्रकार अनजाने ढगसे बदलता ही रहता है। दो सौ या पाच सौ वर्षोमे भाषामें अितना परिवर्तन हो जाता है, मानो पुरानी भाषा मर गअी और अुसकी जगह नअी आ गअी है। अिसलिअे मेरी नम्र रायमें हमें यह मिथ्याग्रह नही रखना चाहिये कि हमारे जो वशज

परप्रान्तमें स्थायी रूपमे वसे वे अपने प्रान्तकी भाषा न छोडे। मेरी रायमे श्री मावलकर गुजराती है। मै गुजराती हू, लेकिन मेरी भतीजी कुमारी तारा महाराष्ट्रीय है; और मध्यप्रान्तके अर्थमत्री श्री दुर्गाशकर मेहता है तो खेड़ावाल ब्राह्मण, फिर भी वे महाकोशलके हिन्दी-भाषी ही है। काकासाहव वहुभाषी है। गुजरात, महाराष्ट्र, या हिन्दी प्रान्त अुन्हे अपना न माने, तो वह अुनकी संकुचितता ही मानी जायगी।

हम विशाल दृष्टिसे गुजरातकी सेवा करे, और अुसके फल समग्र भारतके और सभव हो तो समग्र मानवजातिके चरणोमें अर्पण करे। अैसे गुजरातीके लिअे यह भी कहा जा सकता है कि 'जहा अेक भी गुजराती रहता है, वहा सदा ही गुजरात वसता है', और यह भी कहा जा सकता है कि वह गुजराती सर्व जगतका देशजन है। वह जिस समय जहा वसता है, अुस समय वहाकी प्रजाका पूरा सेवक और हित-चिन्तक रहता है। गाधीजीको जन्म देकर सचमुच गुजरातने अैसे गुजराती पैदा कर दिखाये है। गुजरात अैसे गुजराती सदा ही पैदा करता रहे!

अन्तमे आपके निमत्रणके लिअे मैं आप सबका आभारी हू। यदि अिस लम्बे लेखसे आप अूब गये हो तो मुझे क्षमा करे। गुजरात विद्यासभाका भविष्य अुज्ज्वल हो!

वम्बअी, २७-११-'४८

शताव्दी व्याख्यानमाला — गुजरात विद्यासभा

३
राष्ट्रीय शिक्षा*

राष्ट्रीय शिक्षाका अर्थ क्या है? राष्ट्रीय शिक्षामें ये निश्चित वस्तुअें होनी ही चाहिये और अितनी नही होनी चाहिये, अैसा विधि-निषेधात्मक आलेख आप तैयार कर दें। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा और शुद्ध शिक्षाके बीच यदि कुछ अन्तर हो तो वह भी बतलावे।

जुलाअी १९२७ मे अुडीसा, सिंध और गुजरातमे बाढसे बहुत नुकसान हुआ। लाखो मनुष्य आफतमे फस गये। अुस सकटको दूर करनेमें अुडीसाका प्रयत्न बहुत ही थोडा माना जायगा। सिंधमें अभी ही सकट-निवारणका काम शुरू हुआ है। गुजरातमे किस प्रकारका प्रयत्न हुआ वह हम सब जानते हैं। अतिवृष्टिके समय और अुसके बाद जनताने अपने सकट किस प्रकार धीरज और परस्पर सहकारसे सहे और अुसके निवारणके लिअे किस प्रकारकी व्यवस्था तेजीसे की, वह हम देख ही चुके हैं। जनता सरकारका मुह देखती नही बैठी। सरकार सकट-निवारणकी तैयारी करे अुसके पहले ही अुसने अपनी तैयारी कर ली। जब सरकार मदद देनेके लिअे आगे आअी, तब अुसे प्रजाकी व्यवस्थाके मारफत ही अपनी मदद देनेमें विशेष सुविधा और बुद्धिमानी मालूम हुअी और जनताकी व्यवस्थाको स्वीकार करना पडा।

(देशी राज्योको छोडकर) अुडीसा, सिंध और गुजरातकी सरकार अेक ही है। लेकिन हम देखते हैं कि सरकारकी ओरसे जो राहत गुजरातको मिली, वह दूसरे प्रान्तोको नही मिली। अिसका कारण यह नही कि सरकारकी गुजरात पर कोअी विशेष कृपादृष्टि है, परन्तु

---

* विद्यापीठ व्याख्यानमालामे ता० १५-१-'२७ को हुअे प्रश्नोत्तर।

गुजरातकी जनताकी राष्ट्रीय प्रगति अितनी हो गअी है कि अिस मामलेमें सरकारको जनताकी माग स्वीकार करनी ही पडी। गुजरातमे भी देशी राज्योमें — वडोदा जैसे आगे बढे हुअे माने जानेवाले राज्यमे भी — जनताका सकट दूर करनेके लिअे अन्य स्थानोकी तुलनामे कम प्रयत्न किया गया, अैसा कहा जायगा। किसी किसी राज्यने तो कुछ भी नही किया। निष्ठुर बनकर तमाशेकी तरह जनताके कष्ट देखता रहा। वडोदा राज्यमे भी जितनी राहत वडोदा प्रान्तने प्राप्त की, अुसके मुकाबले कडी प्रान्तको बहुत ही थोडी और देरसे मिली। अिसका कारण यही है कि देशी राज्योकी प्रजामे राष्ट्रीय प्रगति कम हुअी है, और वडोदा राज्यमें बडोदा प्रान्तकी अपेक्षा कडी प्रान्तमें सार्वजनिक कार्यकर्ताओ और लोकमतकी शक्ति कम है।

राष्ट्रीय शिक्षा वही कही जा सकती है, जिससे राष्ट्रीय प्रगति सिद्ध हो, जिससे जनताको अपने काम अपने हाथो चलानेकी शक्ति प्राप्त हो।

सरकार या कुछ नेता अच्छे या बुरे नियम बना दें और अुन्हे जनता चुपचाप या थोडी-बहुत चिल्ल-पो मचानेके बाद स्वीकार कर ले, अुससे जनता शिक्षित नही मानी जायगी। परतु जनता खुद ही अपने नियम पसन्द करके अुन पर अमल करने लगे और सरकारको वे नियम अुसी रूपमें स्वीकार करने पडें, अैसी स्थिति निर्माण करने-वाली शिक्षा ही राष्ट्रीय शिक्षा है।

अुदाहरणार्थ, जनताको अैसा लगे कि हमारे यहा दियासलाअीका अुद्योग होना चाहिये, और अुसके लिअे लोकमत अितने व्यवस्थित ढगसे तीव्र बने कि कोअी भी व्यापारी विदेशी दियासलाअी बेच ही न सके, तो अुस आन्दोलनमें राष्ट्रीय शिक्षाका अग समाया हुआ होना चाहिये। अिस तरह जनता सिर्फ स्वराज्यकी माग ही करती न बैठेगी, बल्कि अपने आप देशका बहुतसा कारबार चलाने लगेगी। जिस रीतिसे यह सब होगा, अुसे राष्ट्रीय शिक्षा कहेंगे।

अैसा न माना जाय कि यह काम तुरन्त हो जायगा। अिसके लिअे बारबार तीव्र आन्दोलन करने होगे। परदेशी या निरकुश देशी सरकारको वशमे करने या पदभ्रष्ट करनेके लिअे आखिरी कदम तीव्र सघर्षका ही होगा। वह या तो रक्तपातहीन होगा या रक्त-पातवाला होगा। परतु अुसके पहले यदि जनता अपना अधिकतर कारोबार स्वय चलाने लग गअी होगी तो ही आखिरी कदममे निश्चय-पूर्वक यश मिलेगा। अिसलिअे जनता अपने काम स्वय ही सभालने लगे, यह राष्ट्रीय शिक्षा है।

यदि हम पिछला अितिहास देखे तो भी मालूम होगा कि राष्ट्रीय शिक्षाका विचार स्वराज्यके प्रश्नमे से ही पैदा हुआ है। सरकारने बंग-भग किया, मुसलमानोको धोखा दिया, रॉलेट अेक्ट बनाया, जलियावाला बागका हत्याकाड किया। जनताने टीका-टिप्पणी की, अुत्तेजित हुअी, तीव्र रोष प्रकट किया, परतु अुसने देख लिया कि वह खुद असहाय है। सरकारने आज अनेक युवकोको जेलखानोमें डाल रखा है, साअिमन कमीशनको भेजा है। जनता टीका-टिप्पणी कर रही है, गुस्सेसे बडबडा रही है, तडप रही है। परतु जिस तरह मौतसे चिढकर स्त्रिया अपनी ही छाती-माथा कूटने लगती हैं, अुसी तरह अेकाध दिनके लिअे सूतक पालकर जनता भी अिसके खिलाफ अपनी चिढ जाहिर करती है, लेकिन अन्तमें देखती है कि वह स्वय असहाय है।

जनताको अिस असहाय स्थितिसे बाहर निकलना है। राष्ट्रीय शिक्षाका विचार अिसी भानमे से अुत्पन्न हुआ है। और बारबार लहरें अुठें या बैठे, तो भी जब यह भान नये सिरेसे होने लगता है तब वह अुसी असहाय स्थितिसे निकलनेके खयालसे पैदा होता है।

अिस असहाय स्थितिसे प्रजाको जिस रीतिसे निकाला जाय वह राष्ट्रीय शिक्षा है।

वेशक अिसमें चरखा मुख्य है। केवल आर्थिक दृष्टिसे ही नही वल्कि प्रजाके सामाजिक और राजनीतिक सगठनकी दृष्टिसे भी। यह प्रवृत्ति हमें राष्ट्रीय सिविल सर्विस दे रही है और देगी। अिसके आसपास अनेक मडल, सस्थाअे और प्रवृत्तिया खडी की जा सकती है, परतु अिसके विना अेक भी प्रवृत्ति अितनी व्यापक नही बन सकती।

राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा अग अखाडे है। यह अग सिर्फ अिसीलिअे महत्त्वका नही है कि देशकी शारीरिक सपत्ति बढनी चाहिये, वल्कि अिसलिअे भी कि देशमें आवश्यक क्षात्रवृत्तिका विकास होना चाहिये।

राष्ट्रीय शिक्षाका तीसरा अग ज्ञान-प्रचार है। अिसमे छात्रालय, पाठशाला, रात्रिशाला, वाचनालय आदिका समावेश होता है।

दलित जातियोकी सेवा और स्त्री-शिक्षा अशत ज्ञान-प्रचारके अग है और अशत· राष्ट्रीय शिक्षाके स्वतत्र अग है। क्योकि अिनमे केवल ज्ञान-प्रचारका ही प्रश्न नही है, वल्कि अिन वर्गोंके साथ होनेवाले अनेक प्रकारके अन्यायोका प्रतिकार करनेका भी प्रश्न है। अिसलिअे अिसे मै अलग चौथे अगके रूपमें गिनता हू।

यह तो हुआ राष्ट्रीय शिक्षाका विधायक पहलू। अव हम अिसका निषेधात्मक पहलू ले।

देशको जिस असहाय स्थितिसे वाहर निकलना है, अुसके साथ जिस शिक्षाका सवध न हो वह राष्ट्रीय शिक्षा नही है। अुसमे जिसे हम वहुश्रुतता या (कुछ अनिश्चित रूपमे) सस्कारिता कहते है वह भले हो, परतु वह राष्ट्रीय शिक्षा नही है। और अिस प्रकारके साहित्य, सगीत या कला सस्कारी साहित्य, सगीत आदि भले हो, किन्तु वे राष्ट्रीय नही है।

अुदाहरणके लिअे, यदि कालिदासका शाकुन्तल नाटक, लोकगीत या कवि नानालालके 'रास' देशको अपनी असहाय स्थितिसे वाहर

निकलनेमे कुछ मदद न कर सके, तो वे राष्ट्रीय साहित्य नही है। और यदि जुगतराम दवेकी सीधी-सादी रचना 'आधळानु गाडु' (अधेकी गाडी) अिस दिशामे विचारोको प्रेरणा दे तो वह राष्ट्रीय साहित्य है। रवीन्द्रनाथ टागोरका 'अचलायतन' तो राष्ट्रीय साहित्य हो, परतु 'गीताजलि' अुत्कृष्ट होते हुअे भी सभव है राष्ट्रीय साहित्य न हो।

नदलाल बोस या रविशकर रावलके चित्र यदि अुक्त अुद्देश्यकी दिशामे ले जानेवाले न हो तो वे राष्ट्रीय कला नही है।

ताजमहल, देलवाडाके मदिर या अजन्ताकी गुफाये यदि हमारा आजका प्रश्न हल करनेमे कुछ योग न दे, तो वे राष्ट्रीय कलाके नमूने नही है।

मै यह नही कहता कि जो राष्ट्रीय नही है वह सब बुरा ही है। परतु अुसमें जो कुछ अच्छा होगा अुसका स्थान राष्ट्रीय शिक्षासे भिन्न शिक्षामे होगा। केवल राष्ट्रीय शिक्षामे अुसका आवश्यक स्थान नही रहेगा।

शुद्ध शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षाके बीच मुझे विरोध नही दिखाअी देता। यदि शुद्ध शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षाका साधन हो, तो मेरी समझमें शुद्ध शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा देनेकी सबसे सच्ची पद्धति है। सबसे सच्ची पद्धतिका अर्थ है वह पद्धति जो भावना और बुद्धिकी सशुद्धिके नियमोका अवलोकन करके और शिक्षकोंके परपरागत अनुभवोका विचार करके अैसी अनुकूलता पैदा करती है, जिससे छोटी या बडी अुम्र-वाली असस्कारी प्रजा सस्कारी बने। राष्ट्रीय शिक्षा भी जब शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीके द्वारा दी जायगी, तभी अुसके अुत्तम परिणाम आयेगे। अिसलिअे राष्ट्रीय शिक्षामें शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीकी जरूरत है।

राष्ट्रीय शिक्षामे प्रजाके प्रश्नोका विचार होता है। शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीको यह सोचना चाहिये कि ये प्रश्न अुत्तम ढगसे किस प्रकार हल किये जाय। जैसे जमीनका मालिक यह तय करे कि मुझे अमुक माप और सुविधाओवाला मकान चाहिये तो अुसे बनाना कुशल

मिस्त्रियोंका काम है, वैसे ही शुद्ध शिक्षा शिक्षाकी अिंजीनियरीका शास्त्र है। राष्ट्रीय शिक्षामें अुस शास्त्रका अुपयोग वांछनीय माना गया है।

नवजीवन, ५-२-१९२८

४

शिक्षा पर राज्यका अंकुश

क्या शिक्षा पर राज्यका अंकुश होना चाहिये?

१९०५ के वंग-भंगके बाद हिन्दुस्तानमें जो नअी जाग्रति आयी, अुसमें से स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी और अंग्रेजी मालका बहिष्कार — यह चतुर्विध कार्यक्रम पैदा हुआ। अंग्रेजोंने जो शिक्षा-प्रणाली शुरू की थी, अुससे असंतुष्ट रहनेवाला अेक दल तो अिससे पहले भी था। अुपरोक्त आन्दोलनके बाद यह असंतोष अितना तीव्र हो गया कि वह राष्ट्रीय क्षेत्रमें भी आ गया।

१९०५ से १९१५ के दरमियान यह आन्दोलन बिलकुल बन्द तो नहीं हो गया, परन्तु बहुत मंद जरूर पड़ गया। जिस असंतोषसे अिसे पोषण मिला था, अुसके वंग-भंग रद्द हो जाने पर मिट जानेके कारण यह परिणाम आना स्वाभाविक ही था।

१९१५ के आसपास गांधीजी हिन्दुस्तानमें आये, तबसे राष्ट्रीय शिक्षाके प्रश्नने फिर जोर पकड़ा। गांधीजीने राष्ट्रीय शिक्षाकी स्वतंत्र शाला और योजना खड़ी की, कुछ सिद्धान्त निश्चित किये और काकासाहब आदि कुछ तेजस्वी, विद्वान, अुत्साही, सूझ-बूझवाले और स्वराज्यकी भावनासे ओतप्रोत नवयुवकोंका दल अिकट्ठा करके नअी शिक्षाकी नींव डाली।

अुन्हींके प्रभावसे कुछ ही समयमें सारे देशमें असहयोगका युग आया और अुसीके साथ राष्ट्रीय शिक्षाकी प्रचण्ड बाढ़ आयी। अनेक प्रान्तोंमें राष्ट्रीय विद्यापीठोंकी स्थापना की गअी। अुनमें अुतार-चढ़ाव

तो बहुत आये, परतु अुन्होने कुछ अैसे सिद्धान्त प्रचलित कर दिये जिन्हे सरकारी सस्थाओको भी धीरे धीरे मान्य करना पडा।

अैसा कहा जा सकता है कि असहयोगके अुस जमानेमे हमारे प्रान्तमे गाधीजीके बाद दूसरे नबर पर सभी राष्ट्रीय वृत्तिके शिक्षा-शास्त्रियो, लोगो और विद्यार्थियोके माने हुअे नेता काकासाहव थे। राजनीतिक कार्यकर्ता तथा कुछ पुरानी परपराके शिक्षा-शास्त्रियोने अुन्हे भले अितना न माना हो, परतु शिक्षण-सस्थाओ, सामान्य लोगो और तरुण विद्यार्थियोके लिअे वे लगभग गुरु जैसे ही थे। नानाभाअी, गिजुभाअी, हरभाअी, नरहरिभाअी, मुझे और दूसरे कअी नामी अध्यापको और शिक्षकोको शिक्षाके क्षेत्रमे नअी नअी वस्तुअे और दृष्टिया देनेवाले वे ही थे। अुस कालमे हममे से कुछ लोग स्वतत्र रूपसे लिखते दिखाअी देते थे, किन्तु हमारे लेखोमे वहुत-कुछ गाधीजी या काकासाहवके विचारोकी ही प्रतिध्वनि रहती थी।

काकासाहवने अुस जमानेमे जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया, वह यह था कि स्वराज्यमे भी शिक्षा स्वतत्र यानी राज्यके अकुशसे मुक्त रहनी चाहिये। मै मानता हू कि गाधीजीने भी अुसका समर्थन किया था। ‘मानता हू’ कहनेका कारण अितना ही है कि काकासाहव और अुनकी छत्रछायामे हम लोग जितने जोरसे अिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते थे, अुतने जोरसे अुसका प्रतिपादन करनेवाला गाधीजीका कोअी वचन शायद न खोजा जा सके। यह भी सभव है कि काकासाहव आज अुसका अुतने ही जोरसे प्रतिपादन न करे।

आज जो यह प्रश्न अुठाया जाता है अुसका अुद्गम-स्थान कहा है, यह बतलानेके लिअे अितना पूर्व-वृत्तान्त मैने कहा। अब यह बता दू कि अितने वर्षोके अनुभवके बाद अुस विषयमे आज मुझे क्या लग रहा है।

शिक्षा पर राज्यका अकुश हो या न हो और हो तो कितना हो, यह कोअी स्वतत्र सिद्धान्त नहीं है। वह अनेक परिस्थितियो पर आधार रखता है।

अेक जमानेमे राज्य शिक्षा पर अंकुश रखता ही नही था। राज्यकी अैसी कोशिश ही नही रहती थी। अुस समय यह नही माना गया था कि प्रजाकी शिक्षाके बारेमे राज्यकी कोअी जिम्मेदारी है। राज्यका अधिकार यह था कि वह प्रजा पर कर लगाये तथा परदेशोके साथ लडाअी करे, और अुसका कर्तव्य यह था कि वह देशकी रक्षा करे, कुछ न्यायदान तथा पुलिस आदिकी व्यवस्था करे, और प्रजामे यदि कहीं गभीर झगडे अुठ खड़े हो तो अुन्हे दवाये। शेष सब बातोमें जनताको पूरी स्वतत्रता थी। सिक्के बनानेकी स्वतत्रता भी जनताको बहुत समय तक थी। शिक्षाके बारेमे प्रजाकी अिच्छा हो तो वह शिक्षा ले, न अिच्छा हो तो न ले — निरक्षर रहे। राज्यका द्रोह करनेकी शिक्षा न दे तो अुसे पसद आये वैसी और अुस ढगसे वह शिक्षा ले सकती थी। जैसे व्यापार, खेती, मजदूरी, आदिके सम्बन्धमे राज्य हस्तक्षेप नही करता था, अुसी तरह शिक्षाके क्षेत्रमे भी नही करता था। कोअी बडा सम्राट् अथवा बादशाह, दूसरे हाकिम या जागीरदार अपनी अिच्छासे शिक्षा-सस्थाओको दान दे या विद्वानोकी कद्र करे, तो वह अुनका शौक माना जाता था, कर्तव्य नही। हा, दान देनेवालोकी प्रशंसामें कवि और चारण स्तोत्र बनाते थे।

धीरे-धीरे अिन विचारोमे परिवर्तन हुआ। राज्यके कर्तव्यके क्षेत्रोंके साथ अुसके अधिकारका क्षेत्र भी बढता ही गया। राज्यकी बागडोर प्रजाके प्रतिनिधियोंके हाथमे आती गअी और साथ ही नित्य जीवनकी अनेक सस्थायें भी। कोअी अपढ न रहे, कोअी भूखा या बेकार न रहे, कोअी राष्ट्र-घातक धन्धा न करे, राष्ट्र-पोषक धन्धोको योजनापूर्वक अुत्तेजन मिले, प्रजाहितके कुछ व्यवसाय राज्यकी ओरसे ही चलाये जायं, मजदूरोको पूरी मजदूरी, आवश्यक आराम, अत्यधिक परिश्रमसे मुक्ति आदि मिले, चीजें बनानेवालोको पूरी कीमत मिले, प्रजाको चीजें बहुत महंगी न मिले आदि आदि सैकडो बातोकी जवाबदारी राज्यके सिर बढती ही गअी। अिसके परिणामस्वरूप राज्यके

महकमे — कारखाने बढ गये। अेक ओर लोकशाही बढी। लेकिन लोकशाही बढी असलिअे नौकरशाही और निष्णातशाही भी बढी। दूसरी ओर अुसीके परिणामस्वरूप कुछ हद तक व्यक्तियो और छोटे-छोटे समूहोका स्वातत्र्य भी घटा। यदि राज्य पर प्रजाको शिक्षित और सस्कारी बनानेकी जवाबदारी ही न हो, तो आप किस तरह पढाते हैं, क्या पढाते हैं आदि बातोमे हस्तक्षेप करनेका अुसे कोअी प्रयोजन ही न रहे। यदि राज्य विदेशी, निरकुश या जुल्मी हो तो वह ज्यादासे ज्यादा यही ध्यान रखेगा कि आप अैसा कुछ न पढावें जिससे अुसका अस्तित्व खतरेमे पडे। यदि आप अुसके अनुकूल शिक्षा दें, तो वह कुछ दान या ग्रान्ट भी देगा।

अग्रेजी राज्य यदि साधारण विदेशी राज्य होता — अुदाहरणार्थ जैसा अेक समय गुजरातमें गायकवाडका राज्य माना जाता था — तो वह भी शिक्षामे अिससे ज्यादा हस्तक्षेप नही करता। परन्तु अुसकी स्थिति विशेष प्रकारकी थी। वह बहुत ही दूर देशसे राज्यका सचालन करता था। अुसे अैसी स्थितिमें राज्य चलाना था जिसमें अुसके मुट्ठीभर अधिकारियोके मातहत काम करनेवाले सारे कर्मचारी जीती हुअी प्रजामें से ही थे। अुसकी भाषामे सिर्फ मराठी-गुजराती जैसा प्रान्तीय अन्तर ही न था, वह बिलकुल विलक्षण थी। अुसे अपनी सस्कृति और सभ्यताका अभिमान और अुसे हिन्दुस्तानमे दाखिल करनेकी अभिलाषा भी थी। अिसलिअे अुसे अपनी जरूरतके अनुसार और अपने लिअे अनुकूल शिक्षण-तत्र चलानेकी आवश्यकता मालूम हुअी। परन्तु अिस तरहकी शिक्षा भी सारे देशको देनेकी अुसकी जवाबदारी है, यह अुसने नही माना था। अिसलिअे यदि जनता सरकारी अकुशसे स्वतत्र राष्ट्रीय शिक्षणकी सस्थाये चलावे, तो अुनमें अुसे कोअी आपत्ति नही थी। परन्तु जनता कअी कारणोसे सरकारी शिक्षाकी ओर ही आकर्षित हुअी। अिसलिअे जनता स्वय भी अपनी शिक्षा-प्रवृत्तिया अैसी ही चलाने लगी जिनका मेल अग्रेजी शिक्षण-पद्धतिसे बैठ सके।

अिसी बीच युरोपमे यह भावना बढने लगी कि शिक्षाकी जिम्मेदारी सरकारकी है और अुसकी प्रतिक्रिया अिस देशके शासनकर्ताओ और प्रजा दोनो पर हुअी। राज्य शिक्षा-प्रसारकी जिम्मेदारी समझने लगा और प्रजा अिस जिम्मेदारीको पूरा करनेमे होनेवाली ढील पर सरकारकी टीका करने लगी तथा असन्तोष जाहिर करने लगी। नतीजा यह हुआ, और वह स्वाभाविक था, कि जो शिक्षा राज्यको अनुकूल मालूम हुअी वही प्रजाको भी अनुकूल मालूम हुअी, और वह बढने लगी। वह बढती गअी, फिर भी कभी अितनी न फैल पाअी कि जनताकी विशालताके प्रमाणमे अुसे कोअी महत्त्व दिया जा सके।

फिर भी, वह जितनी फैली अुतनी राज्यकी दृष्टिसे ही फैली थी और राज्य विदेशी था, अिसलिअे अुस शिक्षाने पढे-लिखो और जनताके बीच दीवार खडी कर दी। अिससे देशके विचारशील वर्गमे यह भावना पैदा हुअी कि यह शिक्षा राष्ट्रीय नही है। अिस प्रकार राष्ट्रीय-शिक्षा-वादका जन्म हुआ। अुसकी जडमे राजनीतिक असन्तोष तो था ही, अिसलिअे अुसके बारेमे शासनकर्ताओका यह मत रहा कि राष्ट्रीय शिक्षा यानी अंग्रेजी-राज्य-विरोधी शिक्षा। अिस कारणसे अुसे राज्यकी ओरसे प्रोत्साहन नही मिला, अितना ही नही, अुस पर कडी नजर भी रखी जाने लगी। बेशक, वह राज्यके विरोधियोका कार्यक्रम था, अिसलिअे अुस शिक्षाका अेक सस्कार पढनेवालोंके मन पर राजद्रोहके रूपमें तो पडता ही था।

अिस प्रकार सरकारी शिक्षा बनाम राष्ट्रीय शिक्षा जैसे दो पंथ बने।

हम यह न भूले कि राष्ट्रीय-शिक्षा-वादका निमित्त कारण विदेशी राज्य और अुससे मुक्त होनेकी अिच्छा थी।

बादमे धीरे-धीरे शिक्षा-विभाग प्रजाकीय (गैर-सरकारी) नेताओंके हाथमे आया, भले हम अुन्हे जनताके चुने हुअे प्रतिनिधि न कहे। अब सरकारी शिक्षा यानी विदेशी-सचालित शिक्षा और अिस-

लिअे अराष्ट्रीय शिक्षा — यह आक्षेप करनेका अधिकार न रहा। अच्छी हो या निकम्मी, फिर भी वह प्रजाकीय शिक्षा ही बनी। १९३५ के कानूनके अमलमे आनेके बाद वह विभाग फिर चुने हुअे प्रतिनिधियोके हाथमें ही आया। (अुसमे भी यदि कोअी कमी रह गअी हो तो वह अब बिलकुल पूरी हो गअी है।)

यह विभाग प्रजाकीय बना फिर भी अैसी स्थितिमे नही था कि विदेशी सरकारके बनाये हुअे रास्तेको छोड सके। जनताके प्रतिनिधियो, विभागके अधिकारियो तथा निष्णातोमे किसीको भी दूसरे प्रकारका तत्र रचनेकी सूझ नही थी; आज भी नही है। राष्ट्रीय शिक्षाके प्रवर्तको और अुनकी सस्थाओकी प्रतिष्ठा अभी भी अच्छी तरह जमी हुअी नही मानी जायगी। अिसलिअे प्रतिनिधिगण मौजूदा पद्धतिको आगे बढानेमे तो सफल हो सकते है, लेकिन अुसे छोडकर तेजीसे आगे बढनेमे परेशानी अनुभव करते है।

अिसलिअे अब राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा अर्थ महत्त्वपूर्ण बन जाता है। वह यह कि जो शिक्षा राष्ट्रके हित, सस्कृति, स्वभाव आदिकी पोषक हो वह राष्ट्रीय शिक्षा है, विदेशी सरकार द्वारा निश्चित किये हुअे मार्गसे दी जानेवाली शिक्षा राष्ट्रीय नही है। अिस प्रकार अब जो विवाद है वह प्रचलित शिक्षा और अुसके खिलाफ नअी पद्धति दाखिल करनेकी अिच्छा रखनेवाली शिक्षाके बीच है।

देश स्वतत्र नही था, तब राष्ट्रीय शिक्षाका अर्थ सरकार-द्रोही या गुलामी-विरोधी शिक्षा था, यही अुसका महत्त्वका अग था। अुसकी सिद्धिके लिअे अुसे सरकारी शिक्षा-विभागसे स्वतत्र रखनेका तथा सरकारी शिक्षा-विभागसे असहयोग करनेका सिद्धान्त अपनाना आवश्यक था। अैसा कहा जा सकता है कि अिस सिद्धान्तके लिअे अिस अर्थमे अब कोअी आधार नही रहा।

अब प्रश्न अिस प्रकारका है। आजका सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि प्रजाको शिक्षित बनानेकी जिम्मेदारी सरकारकी है। अुसके

लिअे शिक्षाको अनिवार्य वनाना आवश्यक तथा सरकारके अधिकारकी वात मानी गअी है। स्वाभाविक यही होगा कि सरकार अपने विचारोंके अनुसार ही शिक्षा-पद्धतिकी रचना करे। सरकार वाह्य रूपमे जनताके प्रतिनिधियोकी वनी हुअी है। ये प्रतिनिधि वही शिक्षा देगे, जिसे वे अच्छी और व्यवहार्य समझेगे। प्रत्येक नागरिकको शिक्षा मिले, यह देखना सरकारका कर्तव्य है। अिसलिअे शिक्षाके अनिवार्य अग कौनसे और अैच्छिक अग कौनसे हैं, यह भी सरकारको ही ठहराना चाहिये। और जो अग अनिवार्य माने जाय, अुन सभीको शिक्षा-संस्थाओंके लिअे — फिर वे सरकारी हो या गैरसरकारी — अनिवार्य कर दे, तभी मान सकती है कि वह अपनी दृष्टिसे अपनी जिम्मेदारी अदा कर रही है। अुदाहरणके लिअे, सरकार यदि यह माने कि सभी शिक्षितोको नागरी, अुर्दू और प्रान्तीय तीनो लिपिया आनी चाहियें, तो वह सभी सस्थाओंके लिअे तीनो लिपिया अनिवार्य करेगी। यदि अुसे लगे कि दो लिपियां काफी हैं, तो वह अैसा करेगी। अुस हालतमें तीसरीका ज्ञान अैच्छिक ही रहेगा। अिसी प्रकार अग्रेजी, धर्म, कताअी आदिकी शिक्षाके वारेमें भी होगा। अनिवार्य विषयोको छोडकर दूसरे चाहे जितने विषयोकी शिक्षा मिली हो, तो भी पढनेवाला सरकारकी दृष्टिसे शिक्षित नही माना जायगा। जैसे, सिर्फ वेदपाठी ब्राह्मण या कुरानपाठी हाफिज।

अिसके साथ दूसरी वात यह है कि लोकशाहीमे जनताकी सरकारका अर्थ सर्वमान्य सरकार नही होता। वह वफादारी मागने जितनी तो सर्वमान्य होती है, किन्तु नीति और अमलकी दृष्टिसे वह वहुमतमान्य ही रहती है। अध्यक्षका विशेष मत लेकर ५१ विरुद्ध ५० मत पानेवाली सरकार भी जनताकी ही मानी जायगी। अुसके विचारो और शासन-प्रणालीसे विरोध रखनेवाली अेकाध पार्टी तो रहेगी ही, यो मानकर चलना चाहिये। अेकमे ज्यादा विरोधी पार्टिया भी हो सकती हैं, लेकिन विलकुल न हो अैसा शायद ही कभी होगा।

यह विरोधी पार्टी या पार्टिया आज भले अल्पमतमे हो, लेकिन यदि सप्रदाय वगैराके आधार पर ही बनी हुअी न हो तो अुन्हे भविष्यमे बहुमत पानेकी आशा हो सकती है। सरकारी पक्ष जो शिक्षा देता होगा, अुससे यदि अिन पार्टियोका कोअी विरोध हो तो वे सरकार पर यह आक्षेप करेगी कि अुसकी शिक्षा राष्ट्रहित-वर्धक यानी राष्ट्रीय शिक्षा नही है। साम्प्रदायिक पार्टियोकी भी शिक्षाके बारेमें कुछ विशेष दृष्टि होना सभव है। यदि अुस विशेष दृष्टिको सरकारी शिक्षामें स्थान न मिले, या अपनी सस्थाके विद्यार्थियोंके लिअे भी अुसे अनिवार्य करनेकी छूट न हो, तो अुन्हे भी सरकारी शिक्षामे स्वतत्र रहना जरूरी मालूम हो सकता है। जैसे, कोअी अीसाअी स्कूल सब विद्यार्थियोंके लिअे बाअिबलके वर्गमे वैठना अनिवार्य करना चाहे, परन्तु सरकारी नियमोमे अुसकी मनाही हो।

अिस प्रकार शिक्षाके बारेमें सरकारके विरोधी पक्षके तथा खास सम्प्रदायोके अलग-अलग मार्ग रहे, यह स्वाभाविक है। अुनमें विरोधी पक्ष अपने मार्गको राष्ट्रीय शिक्षा कहेगा और सरकारी शिक्षाको अराष्ट्रीय; और संभव है वह सरकारी शिक्षासे स्वतत्र रहनेका भी आग्रह रखे। यदि सरकारी नियम अुसमें विघ्नरूप बनें, तो अुसका यह मत रहेगा कि शिक्षा-सस्थाओ पर राज्यका अकुश नही होना चाहिये। परन्तु अिस मतका अर्थ अितना ही समझना चाहिये कि जब तक अुस पक्षका बहुमत नही होता तभी तक अुसका अैसा मत है। यदि कल अुस पक्षकी सरकार बन जाये तो वह भी अपने मतके अनुसार अकुश रखेगा ही। अुदाहरणके लिअे, यदि आजकी सरकारका यह मत हो कि राष्ट्रभाषाका अर्थ देवनागरी तथा अुर्दू दोनो लिपियोमें लिखी जानेवाली हिन्दी-अुर्दू-मिश्रित हिन्दुस्तानी है और वह अुसे अनिवार्य कर दे, तो वह हिन्दी-प्रचारकोकी दृष्टिमे राष्ट्रीय शिक्षा नही बल्कि भाषा और लिपिका सकर करनेवाली, अशुद्ध तथा वेढगी शिक्षा देनेवाली अराष्ट्रीय प्रथा मानी जायगी, और चूकि वह अनिवार्य

होगी, अिसलिअे हिन्दी-प्रचारक शिक्षाको राज्यके अकुगसे स्वतंत्र रखनेकी हिमायत करेंगे। परन्तु यदि कल गासनसूत्र अुनके हाथमे चला जाये, तो वे अुर्दू भाषा और लिपिको सरकारी गालाओंसे निकाल देंगे, और हिन्दुस्तानी पुस्तकोको अमान्य करके शुद्ध हिन्दी पुस्तके चलायेगे। अुस समय आजका सरकारी पक्ष अुसे अराष्ट्रीय कहेगा, और अपनेको अनुकूल मालूम होनेवाली पुस्तके चलानेकी स्वतंत्रता चाहेगा।

अिस प्रकार सरकारी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा छोटे दल और वड़े दलके गिक्षण-मार्गोके ही दूसरे नाम वन जाते हैं। छोटे दलकी रायमें सरकारी गिक्षा अराष्ट्रीय होगी, भले ही अुसे जनताके प्रचड वहुमतका समर्थन प्राप्त हो।

हरअेक देगमे अैसा कुछ तो होता ही रहेगा। जिसके खास संप्रदाय है या जो सरकारका प्रतिस्पर्धी पक्ष है, वह छोटे पैमाने पर भी अपनी अलग सस्थाये चलानेका आग्रह रखेगा ही। यदि अुसकी प्रणालीमे अैसी कोअी वात होगी जिससे सरकारकी हस्तीको खतरा पहुंचनेकी सभावना हो, तो अुसे सरकारी दमनका सामना करनेका भी मौका आ सकता है।

सरकार पर प्रजाकी गिक्षाकी जवावदारी है, अैसा निश्चित कर देनेके वाद यह नही हो सकता कि सरकारका शिक्षा पर किसी तरहका अकुग न रहे। गिक्षा-विभाग ज्यादासे ज्यादा अितनी ही स्वतत्रता भोग सकता है कि सरकार समय-समय पर जो नियम वनाये, अुनके अनुसार गिक्षाका तंत्र चलानेमे दूसरे अविकारियो या विभागोका हस्तक्षेप अुनके काममें वाधक न हो। जैसे न्याय-विभागके वारेमे होता है।

लोकगाही तत्रमे सरकारी पक्षसे भिन्न विचार रखनेवाले पक्षोको जैसे दूसरी वातोमें अपना वहुमत वनाकर सरकारकी वागडोर अपने हाथमें लेनी पडती है, वैसे ही शिक्षाके क्षेत्रमे भी करना होता है। सरकार मानी तो जाती हो लोकतात्रिक, लेकिन हकीकतमे तानागाही ढगकी हो, तो तीव्र परिस्थितिमे असहयोग, वहिष्कार या

सत्याग्रहके दूसरे अुपाय काममे लेनेका भी प्रसग आ सकता है। यह सिर्फ शिक्षाके ही क्षेत्रमे सभव नही है, सभी प्रकारके राज्यतत्रोमे यह नौबत आ सकती है।

'शिक्षण अने साहित्य', अक्तूबर १९४७

५

'विशारद'* का अध्ययन

अनुभवसे नये स्नातकोको कुछ देने जैसा हो, तो मै अुन्हे अेक भूलसे मुक्त होनेकी वात कहूगा। मेरे अेक मित्र कहा करते थे: After graduation comes humiliation (स्नातक होनेके वाद अपमान और तिरस्कारका अनुभव होता है)। वस्तुत. कअी वार यह सच होता है। किन्तु वारीकीसे विचार करने पर मालूम होगा कि स्नातकके मनमें अपने विषयमे जो अेक भ्रमपूर्ण कल्पना रहती है, वही अिसका कारण होती है। वहुतेरे स्नातकोकी यह कल्पना होती है कि जैसे कारखानेसे वनकर निकले हुअे मालका अमुक वाजार भाव होना ही चाहिये, अुसी तरह स्नातक वनकर निकलते ही अुन्हे समाजमे अमुक कीमत तथा अमुक प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिये। कडुवे अनुभवोके वाद अुन्हे मालूम हो जाता है कि वे खुद कारखानेके मालकी तरह जड नही है, अिसलिअे अुनकी अमुक कीमत निश्चित नही की जा सकती, और परावलम्वी जीवन वितानेके लिअे अुम्मीदवारी करनेवालेको प्रतिष्ठाका खयाल भी छोड देना पडता है।

अिसका पता लगानेमे स्नातकको जो निराशाका अनुभव होता है, अुसका कारण अुसकी अपनी ही भूल होती है। वह अिसकी छानवीन करेगा, तो पायेगा कि विशारद (या वी० अे०) तकका पाठ्यक्रम

---

* गूजरात विद्यापीठ, अहमदावादकी अेक अुपाधि।

सामान्यत: अिस अुद्देश्यसे रचा ही नही जाता कि वह आजीविकाका साधन वन सके। वह तो विद्या-व्यासगियोका ही पाठचक्रम रहता है। यह पाठचक्रम अुनके लिअे है जिन्हे भाषा, अितिहास, सपत्ति-शास्त्र, आदि अनेक पाडित्यके विषयोमे रस है और जो अिनका अधिक रसास्वादन करना चाहते है। वे यदि 'विशारद' तक अपनी पढ़ाअी चालू रखें तो केवल विद्याप्राप्तिकी रुचिके कारण ही रख सकते है। अिसलिअे विशारद हो जानेके वाद अुससे आजीविका कमानेकी अिच्छा करना अेक प्रकारके वीजसे दूसरे प्रकारका फल प्राप्त करनेकी अिच्छा रखने जैसा माना जायगा। आम तौर पर तो विशारदको भी आजीविकाके लिअे विशेष योग्यता प्राप्त करनी चाहिये, और वह योग्यता जिस धधेके द्वारा आजीविका प्राप्त करनी हो, अुसमे अुम्मीदवारी करके ही प्राप्त की जा सकती है। अिस प्रकार यदि स्नातक हो जानेके वाद वह अपने-आपको आजीविका देने-वाली विद्याका विद्यार्थी समझे, तो कअी स्वारोपित श्रेष्ठताओके विचारो और महान आशाओको छोड देगा, और विद्यार्थीके जैसी ही नम्रता और शिष्यभाव अपने भीतर कायम रखेगा। अैसे स्नातकके लिअे अूपर लिखा हुआ अग्रेजी वाक्य दु खसे कहनेका प्रसग नही आ सकता। स्नातक मानता है कि अव वह शिष्य नही रहा, अव वह धन और मानके योग्य हो गया है। किन्तु वह शिष्य नही रहा हो तो सिर्फ कुछ विशेष विद्याओके सम्वन्धमें ही, धनप्राप्ति या आजीविका-प्राप्तिकी विद्याके वारेमे तो वह शिष्य ही है। वहां तो अुसे पुन. नम्रभाव, शिष्यभावसे अुम्मीदवारी ही करनी चाहिये।

यह सच है कि गुरुके जमानेमे और आज भी कुछ लोगोंके लिअे स्नातक होते ही आजीविकाके मार्ग खुल जाते है। किन्तु वे अपवाद-रूप हैं। अुन अपवादोंके कारण भी अलग है। अुनके लिअे विशारदका पाठचक्रम आजीविकाकी दृष्टिसे गढा गया हो सो वात नही। परतु कुछ धधोंमें केवल अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार होना ही

विशेष योग्यताके रूपमे माना जाता है; अिसलिअे अुनमे अंग्रेजीके अधिकारका आर्थिक मूल्य मिलता है। लेकिन यह बात हर धंधेको लागू नही हो सकती। अिसके अलावा बडे-बडे लोगोकी जान-पहचान, प्रभाव वगैरासे होनेवाले फायदे भी सामान्य नियममे नही माने जा सकते। सामान्य नियम तो यही होना चाहिये कि हर स्नातक यह माने कि अभी तक अुसके भीतर जितनी अुमग और अुत्साह था अुतनी विद्याकी अुपासना अुसने की, अब कुछ आजीविकाके लिअे सीखें।

नवजीवन, केळवणी अक, २५–१–१९२५

६

मनुष्यताकी, प्रतिष्ठाकी और निर्वाहकी शिक्षा

विद्यापीठ कार्यालयकी ओरसे स्नातकोको अुनकी प्रवृत्तिके बारेमे कुछ प्रश्न पूछे गये थे। कुछ स्नातकोंके अुत्तर आ चुके हैं, दूसरोंके आ रहे है। बहुत ही थोडे स्नातकोको अपना भविष्य आशाजनक और वर्तमान स्थिति सतोषकारक मालूम होती है। अधिकतर अुत्तर निराशा-भरे और चिन्तासे पूर्ण है तथा चिन्ता पैदा करनेवाले हैं। अेक-दो स्नातक तो करुणाजनक स्थितिमें दिन बिता रहे हैं। यहा सभी अुत्तरोका सार देनेका विचार नही है, केवल अुन अुत्तरो परसे पैदा होनेवाले कुछ विचारोको ही पेश करना चाहता हू।

अुसके पहले स्नातकोके आश्वासन (?) के लिअे अेक-दो बातें स्पष्ट कर दू।

स्नातक होनेके बाद निर्वाहके लिअे अनुकूल धधा पानेकी कठिनाअी घटी हुअी नही मालूम होती। यदि गूजरात विद्यापीठके स्नातकोका यह खयाल हो कि यह बात अुन्ही पर लागू होती है तो यह अुनका भ्रम है। पहले अेक बार मैं कह चुका हू और आज फिर कहता हू कि यह

प्रश्न सभी स्नातकोंको समान रूपमें परेशान करता है। मेरा निरीक्षण तो यह है कि हममें से बहुतेरे स्नातकोंका बी० अे०, अेम० अे०, अेल-अेल० बी० तकका अभ्यास कुछ अिस प्रकारकी परिस्थितिमें बढता है: अंग्रेजीकी पाचवी या छठी कक्षा तक, यानी लगभग १५ या १६ वर्षकी अुम्र तक कौटुम्बिक स्थितिकी बहुत चिन्ता किये बिना अभ्यास चलता रहता है। अिसके बाद घरकी स्थितिका कुछ ज्यादा खयाल होने लगता है, अपनी जिम्मेदारीका कुछ-कुछ भान होता है; हम समझने लगते है कि पढाअीका खर्च देना माता-पिताको कठिन होता है। परतु अितनी कच्ची अुम्रमे क्या किया जाय, यह प्रश्न माता-पिताके और हमारे भी मनमें अुठता है। परन्तु कोअी अुत्तर नही मिलता। हमारी पढाअीकी अुमंग तो कायम ही रहती है, मित्रवर्गकी ओरसे अनुकूल प्रोत्साहन भी मिलता है। अिसलिअे यह होता है कि जब यहा तक गाडी खीच लाये तो अब मैट्रिक हो जाये। लेकिन मैट्रिकके बाद क्या किया जाय? फिर कुटुम्ब और मित्रोकी सभा बैठती है, विचार-विमर्ष आरभ होता है। परतु कोअी निश्चित हल नही दिखाअी देता। कुटुम्बके प्रति अपनी जिम्मेदारीका हमें भान होते हुअे भी आगे पढनेकी हमारी अुमग मन्द नही पडती। ज्यादा पढकर कुटुम्बकी यह स्थिति सुधारनेकी आशा भी सबको रहती ही है। कौटुम्बिक स्थिति बिलकुल खराब न हो और परीक्षा पास करनेमे हम निरे बुद्धू न हो तो दूसरे किसी हलके अभावमे हम कॉलेजमें भरती होनेके निर्णय पर पहुंच जाते हैं। आजकी चिन्ताको चार वर्षकी अवधि देकर आगे ठेल देते हैं। अैसा करते-करते बी० अे० हुअे कि फिर वही प्रश्न सामने आकर खडा होता है। और फिर कोअी संतोषकारक अुत्तर नही मिलता। अिसलिअे फिर अेल-अेल० बी० पास करनेके निर्णयकी ओर खिच जाते है। अिस प्रकार हममें से ज्यादातर विद्यार्थियोंका अभ्यास अुत्तरोत्तर आत्म-निर्णयसे नही बढता, बल्कि जीवन-निर्वाहकी पद्धतिके बारेमें किसी संतोषकारक निर्णय पर न पहुच सकनेके कारण मजबूरीसे आगे

बढता है। अिस स्थितिके कारण बी० अे०, अेल-अेल० बी० या स्नातक हो जानेके बाद चारसे छह वर्ष तक आगे ठेली जाती रही चिन्ता हृष्ट-पुष्ट होकर यदि कष्ट देनेके लिअे आ खडी हो तो अुसमे आश्चर्य नही होना चाहिये। यह कठिनाअी सिर्फ विद्यापीठके स्नातकोके लिअे ही है या नअी है, यह खयाल भ्रमपूर्ण है। 'अेम० अे० बनाके मेरी मिट्टी क्यो खराब की?' जैसी ग्रेज्युअेटोकी दयाजनक स्थितिका दर्शन करानेवाली कथायें आजकलकी नही है। ग्रेज्युअेटोकी चिन्ताके प्रश्नको हल करनेके विचारमे से भी कुछ हद तक देशमे समय-समय पर राष्ट्रीय शिक्षाकी चर्चा और आन्दोलनकी अुत्पत्ति हुअी है।

विद्यापीठके कुछ स्नातकोने अेक बात यह कही है कि विद्यापीठके स्नातक होनेके कारण ही कअी जगह अुनका अनादर हुआ है। अुनसे कहा गया है कि 'हमें तो सरकारी डिग्रीवाले लोग चाहिये।' मै जानता हू कि मनुष्यकी आवश्यकता होते हुअे भी हमारे देशमे अैसे लोग हैं जिन्हे सरकारी डिग्रीवाले मनुष्यके प्रति विशेष श्रद्धा होती है। जिन्हे विशेष रूपमें अपने आदमी कहा जा सके, अैसे लोगोके प्रति अश्रद्धा — आत्मविश्वासकी कमी — हमे गुलाम बनाये रखनेवाले अनेक कारणोमे से अेक महत्त्वका कारण है। यह रोग हिन्दू जनतामे विशेष मात्रामें है। राष्ट्रीय सस्थाकी डिग्रीकी अपेक्षा सरकारी सस्थाकी डिग्रीको विशेष मान देनेकी, देशकी डिग्रीकी अपेक्षा विदेशकी डिग्रीको विशेष मान देनेकी हमारी आदत जरूर है। परतु फिर भी अुससे यह न समझा जाय कि अूपरका अुत्तर अिस आदतका ही परिणाम है। बहुतेरे मनुष्योका यह स्वभाव होता है कि अुन्हे किसी कारणसे अुम्मीदवारको न रखनेकी या दूसरा कोअी काम न करानेकी अिच्छा हो, तो वे सही कारण न बताकर दूसरा ही कोअी कारण बतलाते है। मनुष्यकी तीव्र आवश्यकता न हो, या कोअी अुम्मीदवार व्यक्तिगत रूपमे पसन्द न आता हो, या अुसे कुछ सस्ते वेतन पर रखनेकी वृत्ति हो, तो 'हमे दूसरी तरहका मनुष्य चाहिये' यह अुत्तर धधेदारोकी

जातिमें सौम्य माना जाता है। अिस प्रकारका थोडा असत्य विनयी अुत्तर माना जाता है।

किन्तु यह कठिनाअी पुरानी है, या सर्वसामान्य है, या अिस अुत्तरमे सौम्य असत्य है, यो कहनेसे स्नातकोके लिअे कोअी रास्ता खुल नही जाता। यह समझकर ही मैंने अूपर 'आश्वासन' शब्दके बाद प्रश्नचिह्न रखा है।

जब लम्बे समयसे शरीरमे रोग घर किये बैठा हो, तब रूढ मार्गसे जीवन व्यतीत करनेकी पद्धति जारी रखकर दवादारूसे रोग दूर करनेकी युक्तिया आजमाते रहनेमे मेरा विश्वास नही है। रोगीको अपनी जीवन वितानेकी पद्धतिकी ही जाच करनी चाहिये। अुसकी जीवन वितानेकी पद्धतिके मूलमे ही कही त्रुटि होनी चाहिये, और अुस त्रुटिको दूर किये वगैर रोगसे मुक्त नही हुआ जा सकता। सभव है अुस पद्धतिसे दूसरोको वह रोग न होता हो, लेकिन अितना अुसे अपनी तासीरका वुनियादी फर्क समझना चाहिये। यह भी संभव है कि लवे समयकी आदतके कारण वह त्रुटि निकालना कठिन हो; कौनसी त्रुटि है यह खोजनेके वदले दूसरी अच्छी पद्धति कौनसी है यह खोजना भी तत्काल सभव न हो; फिर भी यदि कभी समाधान होना होगा तो वह मौजूदा जीवन-पद्धतिको वदलकर अुसकी जगह ज्यादा अच्छी पद्धति दाखिल करनेसे ही हो सकेगा।

अिस न्यायसे मैं मानता हू कि शिक्षासे हमारी क्या अपेक्षा है और हमारी शिक्षा हमे क्या दे सकती है, अिसकी तात्त्विक दृष्टिसे खोज किये वगैर स्नातकोकी कठिनाअियोका हल नही मिल सकता। हमारा आजका प्रयत्न अिसी दिशामें चल रहा है।

शिक्षासे मिलनेवाले फलोके आधार पर मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा तीन प्रकारकी होती है। कुछ शिक्षा तो केवल हमारी मनुष्यताको वढानेके लिअे होती है। वह हमारी भावनाओंका — गुणोका विकास करती है। हमे मनुष्यके रूपमे विशेष अुन्नत वनाती है।

मनुष्य जो सत्पुरुषका समागम करता है वह कोअी निर्वाहकी पद्धति ढूढ़नेके लिअे नही, वल्कि अुसके भक्ति, साधुता, त्याग, सतर्कता आदि गुणोके लिअे।

दूसरे प्रकारकी शिक्षा हमे प्रतिष्ठा देनेवाली होती है। पण्डित तथा वहुश्रुतके रूपमें या किसी विद्याके प्रखर विद्वान्के रूपमे वह समाजमें हमारी प्रतिष्ठा वढानेवाली होती है। महाविद्यालयमें हम जो शिक्षा लेते है, वह आम तौर पर अिसी प्रकारकी मानी जायगी।

तीसरे प्रकारकी शिक्षा हमारा अुदर-निर्वाह करनेके लिअे है, जैसे वकीली, डॉक्टरी, वढगअीगीरी, चमारी, किसानी, जुलाहागीरी आदि।

शिक्षासे जिस प्रकारके फल पानेकी अिच्छा हो, अुसीके अनुसार विद्यार्थीको शिक्षक ढूढना चाहिये। सत्पुरुषके समागमसे हमारा चरित्र अुच्च होगा, अुसके कारण समाजमे हमारी अच्छी साख जमेगी और सम्भव है अुससे हमारा धन्धा ज्यादा अच्छा चलने लगेगा। किन्तु वह तो अैसी शिक्षाका गौण फल माना जायगा। वह चरित्रकी शिक्षाका निश्चित फल नही कहा जा सकता। अुलटे, यदि मुक्तानन्द स्वामीके शब्दोमें कहे तो यह भी हो सकता है कि :

"मधुकर, वात मोहनवर केरी,
जादुगारी जोर रे,
नरनारी अेने गाये सुणे ते
त्यागे ससारनो तोर रे

* * *

तथा

धन, दोलत, घरवार न अेने
भमता फरे रानोरान रे।

* * *

जे कोअी जगमा अेने अनुसरशे
तेना ते भवाटा गाय रे,

मुक्तानन्दना नाथने सेवी
जग छतरायां थाय रे"+ (अुद्धवगीता)

अिसी तरह हो सकता है कि प्रतिष्ठाकी शिक्षाके परिणाम-स्वरूप अच्छी तरह निर्वाह हो सके अैसा अध्यापन, लेखन अित्यादिका काम मिल जाय। किन्तु वह भी अुसका गौण फल माना जायगा। अुसका मुख्य फल तो अुसके द्वारा शिक्षित-विद्वान्‌की प्रतिष्ठा मिले अितना ही है।

जिसे जीवन-निर्वाहकी शिक्षा प्राप्त करनी हो, अुसे अुस विद्याके शिक्षकके पास जाना चाहिये। जिसे व्यापारी होना हो, अुसे व्यापारीके पास अुम्मीदवारी करनी चाहिये। वाणिज्यके स्नातक बननेसे व्यापारी नही वना जा सकता, वाणिज्य विषयके अध्यापक वन सकते हैं; और बहुत हुआ तो व्यापारीके सहायक बन सकते है। अिसी प्रकार जिसे मिलका अिंजीनियर बनना हो अुसे वही अुम्मीदवारी करनी चाहिये। बढअी बनना हो तो बढअीके यहां अुम्मीदवारी करनी चाहिये। ये धन्धे यदि महाविद्यालयोमे सिखाये जायं तो अुसका प्रयोजन मैं

+ हे मधुकर, मोहनकी बात तो जबरदस्त जादूसे भरी है। जो स्त्री-पुरुष अुसे गाते-सुनते है वे ससारका अहकार छोड देते हैं।

* * *

तथा —

अुनके पास धन, दौलत, घरवार वगैरा कुछ नही होता। वे तो जंगल-जगल भटकते फिरते हैं।

* * *

संसारमें जो कोअी अुनका अनुसरण करेगा, अुसकी अिसी तरह फजीहत होगी। मुक्तानन्द कहते है कि अुनके नाथकी सेवा करनेवालेको ससारका सारा रहस्य मालूम हो जाता है।

अितना ही मान सकता हू कि अुन धन्धोको चलानेवाले लोग अुन्हे व्यावहारिक रूपमे जानते हैं, किन्तु अुनके शास्त्रीय ज्ञानके अभावमे वे अुनसे पूरा फायदा नही अुठा सकते। यदि अुन धन्धोका शास्त्र विद्यार्थियोको समझा दिया जाय, तो वे अुससे विशेष लाभ अुठा सकते है। लेकिन अुससे यह न समझा जाय कि महाविद्यालयमे पढ लेनेके बाद धन्धेदारोके यहा अुम्मीदवारी करनेकी आवश्यकता कम हो जाती है।

यह बात न समझनेके कारण सरकारी अेव राष्ट्रीय विद्यापीठके विद्यार्थी जो शिक्षा प्राप्त करते है, अुससे दूसरे ही प्रकारके फलकी अिच्छा रखते हैं, और वह फल जब निश्चित समयमे नही मिलता, तो निराश होकर शिक्षाको दोष देने लगते है।

गूजरात विद्यापीठका मुख्य ध्येय तो विद्यार्थियोकी मनुष्यताका पोषण करना है; स्वराज्यके बिना भारतवासियोकी स्थिति शर्मनाक है, अिस बातका अुन्हे भान कराना है, और यह भान करानेके बाद अुस धर्मको सिद्ध करनेके लिअे तथा स्वराज्यके यज्ञमे अपने-आपको होम देनेके लिअे अुन्हे तैयार करना है। कहा जा सकता है कि विद्यापीठने यह आशा ही नही रखी थी कि अुसमे आनेवाले विद्यार्थी यह भी न जानते होगे कि अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार किया जाय। यह मान लिया गया है कि निर्वाह प्राप्त करनेके लिअे जितने साहस, अुत्साह और पुरुषार्थकी आवश्यकता है, अुससे तो कही ज्यादा मात्रामें ये गुण लेकर वे लोग यहा आयेगे।

लेकिन प्रतिष्ठाकी शिक्षाको भी आज विद्यापीठमे स्थान दिया गया है। सरकारी कॉलेजोका तो कहा जा सकता है कि यही मुख्य क्षेत्र है। विद्यापीठमें अुसे गौण स्थान दिया गया है, यद्यपि यह भी लग सकता है कि मुख्य स्थान अुसीने छीन लिया है। अठारह-बीस वर्षकी अुम्रमे अुच्च वर्णके युवकोमें विद्याप्राप्तिकी अुमग अत्यत तीव्र होती है। यह सच है कि बहुधा अिस अुमगका अनुचित प्रमाणमे और विशेष महत्त्वकी जवाबदारियोकी अवगणना करके पोषण किया जाता है।

फिर भी चूकि यह नही कहा जा सकता कि वह सर्वथा दोपपूर्ण ही है, अिसलिअे अुसके पोषणको 'आगे वढे हुअे' समाजमे थोड़ा स्थान देना अनिवार्य होता है। परन्तु यह मान लेनेमें कोअी हर्ज नही कि विद्यार्थीको अपने जीवन-निर्वाहकी चिन्ता नही रहती। वह केवल विद्यार्थीकी अुमगसे ही कॉलेज या महाविद्यालयमे भरती होता है। कुछ हद तक यह कहा जा सकता है कि महाविद्यालयमे या तो विद्याप्रेमी या खुशहाल युवकोके लिअे स्थान है या फिर अैसे युवकोके लिअे जो भिखारीकी स्थिति भोगते हुअे भी अपना विद्या-प्रेम नही छोड सकते।

परन्तु जिन्हे १५-१७ वर्षकी अुम्रमे ही जीवन-निर्वाहका प्रश्न हैरान करने लगता हो, वे भाषा-विशारद या अितिहास-विशारद वननेका प्रयत्न करे — और यदि भिखारीका जीवन वितानेकी अुनकी तैयारी न हो — तो वे भूल करते है। वे अपना निर्वाह किस ढगसे करना चाहते है यह अुन्हे निश्चित करना चाहिये; और जो अुस ढगसे अपना जीवन-निर्वाह चलाता हो अुसके यहा अुम्मीदवारी करनी चाहिये। यदि अुसमें अुन्हे विशेष कुशलता प्राप्त करनी हो तो जहा अुसका शास्त्रीय ज्ञान मिले वहा अुन्हे जाना चाहिये। शायद यह कहा जाय कि 'प्रतिष्ठित' शिक्षा पाये हुअे कुछ लोग शिक्षा लेनेके वाद केवल विद्याकी प्रतिष्ठा ही नही, वल्कि धनकी प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सकते है, और जीवन-निर्वाहके मार्गोंमे 'प्रतिष्ठित' शिक्षाके द्वारा ही प्रवेश किया जा सकता है। किन्तु विचार करने पर मालूम होगा कि अुसके पीछे 'प्रतिष्ठित' शिक्षाकी अपेक्षा दूसरे ही कारण है। 'प्रतिष्ठित' शिक्षा पानेवालेको अध्यापन कार्यके सिवा दूसरे किसी धन्धेमें शेक्सपियर या कालिदासके गहरे ज्ञानके कारण या अितिहास, अर्थशास्त्र अथवा तत्त्वज्ञानमे पहले नम्वरसे पास होनेके कारण अच्छी नौकरी मिली हो अैसा कही नही सुना। अुसे जो अूचा नम्वर मिला है वह अितना ही अनुमान करनेके लिअे अुपयोगी हो सकता है कि अुसकी वुद्धि तीव्र है तथा अुसकी अग्रेजी अच्छी होगी। कोअी यह नहीं

मानता कि अुसके धन्धेके लिअे अुसे शेक्सपियरका ज्ञान होना चाहिये। अुसमे आखिर तो अुसकी तीव्र बुद्धि, मेहनत और कभी कभी जान-पहिचान या वसीला ही अुसकी सहायता करते है। मतलब यह है कि 'प्रतिष्ठित' शिक्षामे से सीधी तरह जीवन-निर्वाहका फल अुत्पन्न नही होता।

तब शायद यह प्रश्न अुठेगा कि क्या गरीब युवकोको 'प्रतिष्ठित' विद्या पानेका अधिकार नही है? क्या समाजको अैसी व्यवस्था नही करनी चाहिये, जिससे अुन्हे भी विद्याके सब लाभ मिल सके? बेशक, अैसा होना चाहिये, पर आज तो 'प्रतिष्ठित' कही जानेवाली विद्याये फुरसत पा सकनेवाले लोग ही ग्रहण कर सकते हैं। अिस स्थितिमे विषमता भी है, किन्तु यह तो आजकी वस्तुस्थिति है। फिर भी यदि गरीब युवक पुरुषार्थी और वीर्यवान हो, तो वह भी विद्वान् हो सकता है। सिर्फ अुसे अपने समय-पत्रकमे थोडा परिवर्तन करना होगा। हममे से बहुतेरे युवकोकी परीक्षाये पास कर लेनेके बाद ज्ञान-पिपासा ही मर जाती है। दो-चार वर्षमे ही अुनकी विद्या-प्राप्तिकी अुमग पूरी (?) हो जाती है। विद्यार्थी-दशा और अविद्यार्थी-दशा — अिस तरह जीवनके दो भाग करना वस्तुत भूल है। समनस्क और शुचि मनुष्यके जीवनमे अविद्यार्थी-दशाके लिअे स्थान ही न होना चाहिये। मनुष्य चाहे जितने व्यवसायो या चिन्ताओमे पडा हो, फिर भी अुसे ज्ञान-पिपासाके लिअे सतत कुछ-न-कुछ अुद्यम करते रहना चाहिये। यदि गरीब विद्यार्थी यह बात समझ ले तो वह तीन-चार वर्षमें अपनी ज्ञान-पिपासा तृप्त कर डालनेकी अुतावलीमे नही पडेगा। तीन-चार वर्षमें मिलनेवाले ज्ञानको वह जीवन पर्यन्त धीरे-धीरे प्राप्त करता रहेगा। यह ज्ञान चूकि परीक्षाके बोझसे दबकर नही बल्कि अपनी रुचिसे प्राप्त किया जायेगा, अिसलिअे वह विशेष लाभदायक होगा।

लेकिन यदि विद्यार्थी अैसा न करे तो अुन्हे अिनके लिअे विशेष समय देने और तब तक धीरज रखनेके सिवा कोअी चारा नही है।

वे मनुष्यताकी शिक्षा ले, अुमग हो वहा तक प्रतिष्ठाकी शिक्षा लें, और अुसके बाद निर्वाहकी शिक्षाके लिअे फिरसे अुम्मीदवारी करनेको तैयार रहे। यदि कोअी कबीर जैसा शिक्षक मिल जाय, जो मनुष्यताकी शिक्षा भी दे सके, अपने समयकी 'प्रतिष्ठित' विद्याओंकी शिक्षा भी दे सके, और साथ ही बुनाअी जैसे निर्वाहके धन्धेकी शिक्षा भी दे सके, तो वह अमूल्य लाभ माना जायगा। लेकिन अैसा शिक्षक सभीको नही मिल सकता। अुन्हे तो क्रमसे सभी प्रकारके शिक्षकोका शिष्यत्व स्वीकार करना होगा; नही तो निराशाके सिवा और कुछ भी पल्ले न पड़ेगा।

नवजीवन, केळवणी अक, २९-११-१९२५

७

शिक्षणमें भावनाओंका विकास

पूज्य गाधीजी बार-बार कहते आये है कि आप अपने बालकोको पहले मनुष्य बनाये, फिर अक्षरज्ञान दे। शिक्षणका अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान नही होता। अक्षरज्ञानका अर्थ मनुष्यत्व नही होता।

हमारा लडका रवीन्द्रनाथ टागोर जैसा कवि बने, जगदीशचन्द्र बोस जैसा रसायन-शास्त्री बने, भास्कराचार्य जैसा ज्योतिषी बने, चिकित्सा-शास्त्रमे अपना कोअी सानी न रखे, पाकशास्त्रमे प्रवीण हो, सगीतशास्त्रमे पडित विष्णु दिगम्बरको हरा दे, वादविवादमें सभी शास्त्रियो और वकीलोको जीत ले, वक्तृत्वमें सुरेन्द्रनाथ बेनरजीको पीछे रख दे, फिर भी सभव है कि अुसमें मनुष्यत्व न आया हो।

अिसके अलावा, सभव है वह जैमिनि जैसा कर्मकाण्डी हो, साम्प्रदायिक विधियोका यथाशास्त्र पालन करनेवाला हो, और फिर भी मनुष्य न बना हो।

मनुष्यत्वका अर्थ क्या?

शरीरकी तालीम महत्त्वकी है; किन्तु बलवान तो हाथी भी होता है।

बुद्धिकी सूक्ष्मता महत्त्वकी है, परन्तु कर्तृत्व (पुरुषार्थ) के विना बुद्धि वन्ध्या है।

मनुष्यत्व सौंदर्यमे भी नही है। मनुष्यके शरीरको कितना ही सजाया जाय, लेकिन अुसमे पक्षियोका नैसर्गिक सौंदर्य नही आ सकता।

शरीरकी रक्षा करना प्राणीमात्रका स्वभाव है। लेकिन कुत्ते, घोडे जैसे कुछ पशु अपने स्वामीके लिअे शरीर कुरवान कर देते हैं। कोअी-कोअी पक्षी अपने साथीके वियोगसे शरीर छोड देते हैं। युद्धमें पीठ दिखानेकी अपेक्षा हमारे राजपूतोको मौत अच्छी लगती थी। दिवालिया बननेकी अपेक्षा वैश्यको मर जाना ज्यादा अच्छा लगता था।

मनुष्यका मनुष्यत्व अुच्च भावनाओंके साथ अेकरूप होनेमे है। जिनमें शौर्य, क्षमा, दया, अहिंसा, सत्य, प्रेम आदि भावनाओका अत्यन्त विकास हुआ है, अुन्हे हम महात्मा, पूज्य, सन्त, अवतारी मानते हैं। अुन्होने अपनी अुन्नति कर ली है। जिन्होने अिन भावनाओंके साथ अत्यन्त पुरुषार्थ — कर्तृत्व दिखलाया है, अुन्होने ससारको अूचा अुठाया है।

अुपनिषद् कहते है कि आत्मतत्त्व जाननेके लिअे बुद्धिकी सूक्ष्मता चाहिये। परन्तु बुद्धिकी सूक्ष्मताका अर्थ पाण्डित्य नही है। मैं समझता हू कि अुपनिषदोमे बुद्धिकी जो सूक्ष्मता सूचित की गअी है वह भावनाओंके अतिशय विकाससे बुद्धिमे पैदा होनेवाली सूक्ष्मता है।

अुच्च आदर्श तो बहुतेरे लोग रखते हैं। परन्तु अुन आदर्शों तक विरले ही मनुष्य पहुच सकते हैं। बुद्धि और मनके बीच बार-बार सघर्षका अनुभव होना सामान्य स्थिति है। अिन झगडोका कारण भावनाओके विकासकी कमी है। जो अेक भावनाके साथ तद्रूप होना

है, अुसके लिअे किसी भी तरहका त्याग करना कठिन नही होता। अुसे अिंद्रियोका सयम सीखना नही पडता, अुसे प्रयत्न-साध्य तप नही करना पड़ता। जो अेक भावनाके साथ तद्रूप हो सकता है, अुसे अुससे भी ज्यादा अूची भावनाके साथ तद्रूप होनेमे देर नही लगती।

हमारे देशमे भावनाओका विकास रुक गया है, या अुसने विपरीत स्वरूप ले लिया है, जिसके कारण किंचित् त्याग करना भी हमारे लिअे आज कठिन हो जाता है।

भावनाओकी शुद्धि और अुनका विकास बालककी शिक्षामें अुसके शरीरके पोषणके साथ जुडा हुआ होना चाहिये।

भावनाओकी शिक्षाकी प्राथमिक शाला कुटुम्ब है। वह शिक्षा देनेवाला पहला गुरु माता है, दूसरा गुरु पिता है। अुसका पहला पाठ प्रेम है; और अुसका पहला फल गुरुजनोकी सेवा करनेकी वृत्तिका विकास है।

आज्ञाका पालन और सेवा करनेकी वृत्ति अेक चीज नही हैं। आज्ञाका पालन डरसे भी हो सकता है। लाड और प्रेम अेक नही हैं। लाडमें मूर्खता भी हो सकती है। जिस बालकको मातृभक्त और पितृभक्त होनेका सबक मिला है, वह मनुष्यमात्रका भक्त हो सकेगा। कुटुम्बसेवामे जन-समाजकी सेवाका बीज निहित है।

सेवावृत्तिका विकास मनुष्यत्वका पहला लक्षण है और शायद अन्त तक रहनेवाला भी हो। अिस वृत्तिके विकासमे और अुसके क्षेत्रके विस्तारमे जगत्का कल्याण समा जाता है।

माता-पिताकी आज्ञाके पालनके लिअे जिस बालकने अपना शरीर अर्पण करना सीखा है, वह गुरुके पास जाने पर गुरुके लिअे भी वैसा ही करेगा, और बडा होने पर समाजके लिअे भी वह बलिदान दे सकेगा।

राममें पितृभक्ति न होती तो अुन्हें अवतारके रूपमें कोअी नही पूजता। वे पितृभक्त न होते, तो प्रजाभक्त भी नही हो सकते थे।

नन्द और यशोदा पढे-लिखे न थे। परन्तु वे कृष्णको शिक्षा दे सकते थे। अुन्होने कृष्णको प्रेमका जो पाठ पढाया था, अुससे ही कृष्णकी मुरलीमें माधुर्य भर गया था।

वालक परमेश्वरकी पूजा करना सीखे अुसके भी पहले वह माता-पिताको देवता मानना सीखे, यह ज्यादा महत्त्वका है।

भावनाओके विकासमें दूसरा स्थान कर्तृत्वकी — पुरुपार्थ करनेकी — शक्तिका है। हम अेक भी काम पूरा नही कर सकते, अिसका कारण यह है कि हम कर्तृत्वहीन वन गये है, हममें कोअी काम करनेका अुत्साह ही नही है। अपनी अशक्तिको हमने वहुधा साधुता माना है। पुराणोमें कहा गया है कि भारतवर्षके राजाओको देवता अपनी सहायताके लिअे वुलाते थे। परन्तु आज तो हम यह चाहते है कि देवता आकर हमारा अुद्धार करे! हममे दया कितनी ही क्यो न हो, लेकिन पुरुपार्थ न हो तो वह दया किस कामकी? जो भी हमारा अिष्ट हो अुसे सिद्ध करनेके लिअे हमे कर्तृत्व तो करना ही चाहिये।

कर्तृत्व कार्य करनेकी शारीरिक या वौद्धिक शक्ति ही नही है, वह तो शौर्यसे मिलती-जुलती अेक वृत्ति है। वीर पुरुप साहसी होता है, अुद्यमशील होता है, विघ्नोसे घवडाता नही और अपने ध्येयको जल्दी नही छोडता। कर्तृत्व अेक वृत्ति है, फिर भी यह सच है कि शरीरके आरोग्य पर अुसका आधार है। अिसीलिअे शारीरिक पुष्टिके वाद तुरन्त ही भावनाओके विकासको स्थान दिया गया है।

जो वालक पुरुषार्थी होगा और श्रवणकी तरह माता-पिताकी सेवा करना सीखा होगा, अुसके लिअे वुद्धिका विकास दूर नहीं है, सद्‌गुण दूर नही है। मोक्ष भी दूर नहीं है। मेरी वुद्धिको तो यही लगता है कि निःस्वार्थ सेवा और कर्तृत्व ही मुक्तिकी विद्या है।

नवजीवन, केळवणी अंक, १८-९-१९२२

८

विनय बनाम दृढ़ता और स्वातंत्र्य-वृत्ति

अेक भावी स्नातक, जिनका मुझसे व्यक्तिगत रूपमें मीठा संबध है और जो मेरे प्रति अितना आदर-भाव रखते हैं कि मेरा अपमान नही कर सकते, अुनके मनमे अैसी गलतफहमी पैदा हो गअी है कि विद्यापीठ कार्यालयकी ओरसे कुछ असावधानी या पक्षपात हुआ है, जिससे अुन्हे नुकसान पहुचा है। अिसलिअे वे नीचेका प्रश्न पूछते हैं:

> "मेरे साथियोंको मुझसे पहले यह फार्म मिलनेका कोअी कारण हो सकता है? अुनके साथ ही अपना . . . नाम लिखवा-कर मेरी . . . शरीक होनेकी अिच्छा नही है, यो मान लेनेका कोअी कारण है? हो तो कृपया लिखे।"

अिस प्रकारकी शैलीमें लिखे हुअे पत्र कभी-कभी मेरे पास आते रहते है। विद्यार्थियोकी स्वातन्त्र्य-वृत्तिका विकास होने लायक वातावरण मुझे अिष्ट मालूम होता है। मै यह भी समझ सकता हू कि अिस वृत्तिके विकासमें विद्यार्थी कभी अपना तारतम्य खो बैठता है। अिसलिअे जब कभी अैसे पत्र आते है, मै हंसकर अुन्हे दाखिल दफ्तर कर देता हूं। अिस पत्रको मै प्रकाशित कर रहा हूं, अुसका आशय यह नही कि मै अुन भाअीको सार्वजनिक रूपमें अुलाहना देना चाहता हू; अुनके साथ मेरा विशेष परिचय होनेसे गलतफहमी होनेकी कम संभावना है, यो मानकर ही अुनके पत्रको टीकाका निमित्त कारण बना रहा हूं। अिस टीकाको पढकर वे भाअी यह न समझे कि मै अुनसे किसी प्रकारकी क्षमायाचनाकी अपेक्षा रखता हू।

हमारे देशके बहुतेरे सत्ताधारियोंके मनमें यह खयाल दिखाअी देता है कि अपने मातहत लोगो या रिआयाके साथ व्यवहारमे विनय

रखी ही नही जा सकती; वह निर्बलता मानी जायगी; अुससे अधिकारी अपने दृढ निश्चय और प्रतिष्ठाकी रक्षा न कर सकेगा, वह अपना फर्ज न बजा सकेगा। जो अधिकारी खुशामदके बल पर अूचे चढते हैं, अुनमे यह खयाल घर किये रहता है। अुनकी समझमे यह नही आता कि अुन्हे बाकायदा जो अधिकार मिला है, अुसकी ताकत ही नियमके अनुसार आवश्यक काम करवानेके लिअे काफी है। अुसके लिअे अुद्धतताके बलकी सहायता आवश्यक नही।

अिसी तरह दूसरी दृष्टिसे विद्यार्थियोका भी यह खयाल हो गया है कि स्वातत्र्य (!) के जमानेमे विनयी नही बनना चाहिये। अुनकी यह धारणा मालूम होती है कि विनय गुलामीके सस्कारोसे पैदा हुआ अेक दुर्गुण है। अिसलिअे वे विनयका नाश करके गुलामीका नाश करनेकी आशा रखते है। अुन्हे यह नही समझमे आता कि विनयमे भी शक्ति भरी हुअी है, और स्वातत्र्य-वृत्तिवाला मनुष्य केवल विनय-बलसे ही अन्यायी अधिकारीको हरा सकता है। गुलामीकी मनोदशाका नाश करनेके लिअे अविनयी होनेकी जरा भी आवश्यकता नही। आवश्यकता तो अिस बातकी है कि भयसे अुत्पन्न होनेवाले सकोचको और अुसके कारण विनय-पूर्वक किन्तु साफ-साफ सत्य बोलनेका साहस न होनेके दोषको मनसे दूर किया जाय।

मै चाहता हू कि अैसी शैली स्वातत्र्य-वृत्तिके विकासको दिखानेवाला चिह्न है, यह माननेकी विद्यार्थी भूल न करे। अिसने स्वातत्र्य-वृत्तिका विकास नही मालूम होता, बल्कि अपने कुल (विद्यापीठ) के प्रति हमारे मनकी गहराअीमे छिपा हुआ अनादर प्रकट होता है। जिन विद्यार्थियोंको अपने अध्यापको या कुलके प्रति आदर नहीं है, वे यदि अुस संस्थामें अपना शिक्षण चालू रखते है या अुसकी पदवी ग्रहण करते हैं, तो वे अपने-आपको धोखा देते हैं। वे अुस सस्थासे किसी भी तरहका सच्चा लाभ नहीं अुठा सकते, न वे 'स्नातक-प्रतिज्ञा' का पालन कर सकते हैं। अितना ही नहीं, आगे

जाकर वें अपने जीवनके कडुअे अनुभवसे जानेंगे कि स्वातंत्र्य-वृत्तिकी हिम्मत अुनमें पैदा ही नहीं हुअी है। बल्कि स्वातंत्र्य-वृत्ति मानकर जिस अुद्धतताकी भावनाका अुन्होंने पोषण किया है, अुससे अुन्होंने अपने जीवन-साफल्य पर ही कुल्हाड़ी चलाअी है।

आशा है कि विद्यार्थी अिस सम्बन्धमे विचार करेगे और अुद्धतताकी बढती हुअी वृत्तिको अकुशमे रखेगे।

नवजीवन, केळवणी अक, २९–११–१९२५

९

तारतम्य-बुद्धि

कुछ हद तक यह दु.खद अनुभव सभीको होता है कि किसी भी प्रकारके व्यक्तिगत स्वार्थसे रहित मनुष्य कोअी सर्वमान्य सत्कार्य शुरू करते है, तो अुनमे भी अुस कामके सम्बन्धमें तीव्र मतभेद पैदा हो जाते है। ये मतभेद बहुत बार सिद्धान्तकी भाषामें पेश किये जाते है। अिन सिद्धान्तोको अस्वीकार करनेके लिअे तो विरोधी भी तैयार नही होता, लेकिन साथ ही अुन सिद्धान्तोसे निकलनेवाले तात्पर्यको भी वह स्वीकार नही कर पाता। वह अितना तो समझता है कि कही भूल हो रही है, परन्तु अुस भूलको बता न पानेसे अुसका वह विरोध दुराग्रह माना जाता है। अिससे बहुत बार कार्यकर्ताओंके बीच व्यर्थका वैमनस्य पैदा हो जाता है, फिरसे मिलकर काम करनेका अुत्साह भग हो जाता है और कभी-कभी प्रवृत्ति भी टूट जाती है। अिन्ही कारणोसे कुछ लोग सार्वजनिक कार्योंसे निवृत्त हुअे भी देखे जाते है।

अिस स्थितिसे प्रकट होता है कि हमारे जीवनमें, जीवन-सिद्धान्तोमें, हमारी बुद्धिमें या शिक्षामें कुछ दोप है।

अिस दोषके अेक अग पर आज मै विचार करना चाहता हू।

यह दोष तारतम्यका है।* विचारमे तारतम्यके सिद्धान्तका विस्मरण और आचारमें तारतम्यकी मर्यादा निश्चित करनेके वारेमे दुविधा, ये दोनो वातें अकसर प्रामाणिक मनुष्योके मतभेदोका कारण बनती हैं।

अिसे स्पष्ट करता हू।

तारतम्यका सिद्धान्त हम तव भूलते है जव आचरणका माप-दण्ड ठहरानेमे हमे किसी अेक ही सूत्रसे दिखाया जानेवाला विचार या सिद्धान्त परिपूर्ण मालूम होता है और अिस विचार या सिद्धान्तमे अनुमानोकी जो परम्परा निकलती है असुसे चिपटे रहनेमे ही योग्य आचरण दिखाअी देता है। हकीकत यह है कि योग्य आचरण किसी अेक विचार या सिद्धान्तको ही भलीभाति ग्रहण करनेमे नही पैदा होता। वह अनेक विचारो या सिद्धान्तोमे निहित तथ्याशोको स्वीकार करके प्राप्त वस्तुस्थितिमे अुन सव सिद्धान्तोका सुसगत समुच्चय करनेसे पैदा होता है। भाषामे ये सिद्धान्त कअी वार अेक-दूसरेके विरोधी दिखाअी देते है, फिर भी अिन परस्पर-विरोधी सिद्धान्तोमे भी तथ्याश रहता है, और अिस तथ्याशको निष्पक्ष रूपमे स्वीकार न करनेसे योग्य आचरण निश्चित करनेमे भूल होती है।

अुदाहरणके लिअे वाढ-सकट-निवारणके सम्वन्धमे वार-वार 'स्वाश्रय' के जिस सिद्धान्तकी वात कही जाती है अुसीको हम ले।

मनुष्यको स्वाश्रयी होना चाहिये। विपत्तिमे भी स्वय अपनी कठिनाअी दूर करनेकी अुसमें शक्ति और हिम्मत आनी चाहिये। अिसका नाम है स्वाश्रय। वेशक, यह गुण महान है।

---

* सादी भाषामे अिस दोषको केवल पोथी-पण्डितका दोष भी कहते है। लेकिन जो सिर्फ पोथी-पण्डित ही नही है, वल्कि पढे और गुने दोनो है, अुनमें भी कभी-कभी यह दोष पाया जाता है।

किन्तु अिससे यह तात्पर्य निकाला जाता है कि दूसरे व्यक्ति पर जब विपत्ति आये तो किसीको अुसकी मददके लिअे नही दौडना चाहिये, क्योकि अैसा करके हम अुसे स्वाश्रयी नही बनने देते।

यह तात्पर्य अुलटा है। अिसमे तारतम्यका अभाव है।

सत्य यह है कि स्वाश्रयके सिद्धान्तकी व्याप्ति अमर्यादित नही है। केवल स्वाश्रय पर ही जीवन नही टिक सकता। और न स्वाश्रयसे अभ्युदय साधा जा सकता है। कभी-कभी तो स्वाश्रयी रहने या रखनेका आग्रह जीवनको अशक्य बना सकता है। छोटे बालक, रोगी और वृद्धको पराश्रयकी अपेक्षा रखनी ही पडती है और अुन्हे आश्रय देनेवाला दोषी नही माना जाता। अिसी प्रकार कुछ अैसे प्रसग होते है जब अेक मनुष्य यदि दूसरेको सहारा देता है तो वह टिकता है, अुस सहारेके आधार पर आगे बढता है और अुसका टिकना और बढना समाजके लिअे हितकारक होता है।

व्यापारमे तो अैसे मौके कअी बार आते है। किसी व्यापारीका भारी नुकसान हो जाता है तब यदि दूसरे व्यापारी अुसे कुछ समय तक टिकाये रखनेके लिअे कुछ आश्रय दे देते है तो वह फिरसे व्यापारमे जम जाता है। न तो अुसके लेनदारोको नुकसान होता है और न बाजारमे अव्यवस्था पैदा होती है।

पिता पुत्रको या मित्र मित्रको पूजी या नौकरी दिलवाकर अुसे जीवनमे 'स्थिर बनाने'का जो प्रयत्न करता है, वह अिसी न्यायसे करता है। यह मदद मिलनेसे वह पराश्रित नही बन जाता, बल्कि थोडेसे आश्रयसे अधिक स्थिर हो जाता है।

सच बात तो यह है कि मनुष्यको सदा ही पराश्रयकी जरूरत नही होती, और न होनी चाहिये। जिस समाजमे अेक वर्ग पराश्रित होकर ही जीवन बिताता हो या बिता सकनेकी स्थितिमे हो, अुसकी रचनामें कोअी तो भी भारी दोष होना चाहिये। परन्तु अिसक

अर्थ यह नही होता है कि मनुष्यके लिअे किसी भी समय पराश्रय लेनेका प्रसग नही आ सकता। प्रत्येक सफल व्यक्ति भी यदि अपने जीवनकी जाच करे, तो अुसे मालूम होगा कि अुसके जीवनमे अमुक समय अुसे समाज या मित्रकी ओरसे जो मदद मिली थी अुसके कारण अुसका जीवन बहुत-कुछ सफल बना है।

आश्रय दिया ही न जाय, यह विचार गलत है, अुसी तरह अमुक वर्ग या व्यक्तिको निरन्तर आश्रय देते रहनेमे ही धर्म है, यह विचार भी गलत है। अुचित प्रसग पर अुचित प्रमाणमे अेक मनुष्यका दूसरे मनुष्यको आश्रय देना कर्तव्य है। यह आश्रय देनेका तरीका यदि अैसा हो कि अुससे आश्रय लेनेवालेको कुछ पुरुषार्थ ही न करना पडे, तो अुस आश्रयमे गभीर दोष है। लडके आरामसे खा-पी सके, अिसलिअे कोअी पिता धन-सग्रह करे तो वह यही दोष करता है। परन्तु सकटके अवसर पर अेक मनुष्य दूसरेको अैसा आश्रय दे जिससे अुसका पुरुषार्थ करनेका अुत्साह बढे और अुसका जीवन आशाहीन न बने, तो अैसा आश्रय लेनेवाले और देनेवाले दोनोको लाभ पहुचाता है, दोनोको मनुष्यताकी ओर बढाता है।

आश्रय देनेका योग्य तरीका खोज निकालनेकी कला जन्मसिद्ध होती है, वह शायद सिखाअी नही जा सकती। किन्तु जैसे यह विचार कि आश्रित वर्ग कभी स्वतत्र ही नही हो सकता, वह आश्रित ही रहेगा, अेक दिशाकी भूल है, अुसी प्रकार कभी किसीको आश्रय दिया ही न जाय यह विचार दूसरी दिशाकी भूल है। आश्रय और स्वाश्रय दोनोका जीवनमे स्थान है, और अिन दोनोके बीच तारतम्य बनाये रखनेसे जीवनका स्थायित्व और अभ्युदय सिद्ध होता है।

अिसी तरह स्वमतके अनुसार आचरण निश्चित किया जाय या बहुमतके अनुसार, अिसके निर्णयमें भी तारतम्य रखना जरूरी है। यदि कोअी कहे कि मै तो सदा अपने मतके अनुसार ही चलूगा तो सभव है वह भी गलत आचरण कर सकता है, और यदि [illegible]

कहे कि मैं हमेशा बहुमतके अनुसार ही चलूगा तो अुसका काम भी दोषपूर्ण हो सकता है।

कहा स्वमतका आग्रह रखा जाय और कहा बहुमतके सामने झुका जाय, यह हर प्रसग पर न्याय-बुद्धिके किसी तीसरे ही सिद्धान्तसे निश्चित करनेकी आवश्यकता होती है। अिस तीसरे सिद्धान्तकी अवगणना करनेमे तारतम्यका भग होता है।

अिस प्रकारकी तारतम्य-बुद्धि सामान्य वाचन या शिक्षणसे नही आती। वह अनेक बातो पर निर्भर करती है। लेकिन यह समझना जरूरी है कि तारतम्य-बुद्धि अेक महत्त्वकी वस्तु है, अुसमे विरोधी दिखाअी देनेवाले सिद्धान्तोमे निहित तथ्याशोका निष्पक्ष स्वीकार अपेक्षित है, और यह कि अिस बातको भूल जानेसे अिस बुद्धिके काममे रुकावट आ जाती है।

अिसका योग्य रीतिसे अुपयोग करना आना जीवन और जगत्के अनुभव पर, अिन अनुभवोका सूक्ष्म विचार करनेकी आदत पर, परिस्थितियो तथा सस्कारोके चित्त पर होनेवाले परिणामके सूक्ष्म अवलोकन पर, जीवन-सम्बन्धी सच्ची दृष्टि पर, व्यक्तिकी न्याय-बुद्धि पर, परस्पर विरोधी दिखाअी देनेवाले भावोके सामजस्य (मेल) पर और पुरुषार्थ पर निर्भर है।

अैसे अनेक अशोके गिनानेसे डरनेकी आवश्यकता नही, क्योकि तारतम्य-बुद्धिका कुछ-न-कुछ अुपयोग तो हरअेक मनुष्य ठीक तरहसे कर ही सकता है। और जब कभी वह अिस बुद्धिका अुपयोग करता है, तब अूपर बतलाये हुअे सभी अशोका, अज्ञात रूपमे ही क्यो न हो, वह विचार करता है। परन्तु जब किसी अेक सूत्रका जादू अुसे मुग्ध कर लेता है, तब भूल होनेकी सभावना रहती है।

अिस तारतम्य-बुद्धिके अेक दूसरी वृत्तिसे मिल जानेकी सभावना रहती है। वह वृत्ति है सत्यके साथ समझौता (compromise) करनेकी।

मनुष्य किसी प्रसग पर तारतम्य-बुद्धिका अुपयोग करता है या सत्यसे समझौता करता है, यह अधिकतर अुसकी प्रामाणिकता और दूसरी चरित्र-शुद्धि तथा जीवन-सबंधी दृष्टि पर अवलम्बित होता है। हो सकता है कि जिस निर्णय पर अेक मनुष्य तारतम्य-बुद्धिसे पहुचे अुसी पर दूसरा स्वार्थबुद्धिसे पहुचे। अमुक मौके पर कुत्तोको मारनेमे कोअी हर्ज नही — गाधीजीके अैसा निर्णय देनेमे और कुत्तोसे तकलीफ अुठाये हुअे किसी दूसरे आदमीके अुस निर्णयका स्वागत करनेमे दोनोकी तारतम्य-बुद्धिमे बहुत फर्क हो सकता है, जिसका निर्णय अुनके जीवनके दूसरे भाग परसे किया जा सकता है।

अिस प्रकार तारतम्य-बुद्धिका निर्णय अकसर लोकवृत्तिके अनुकूल हो सकता है। लेकिन भेद अितना ही है कि अुसका अनुकूल होना हमेशा ही सभव नही।

तारतम्य-बुद्धि त्रिकालाबाधित निर्णय नही करती। वह तो प्राप्त परिस्थितिमे न्याय्य निर्णय कौनसा है अितना ही तय करती है। अुस परिस्थितिको निर्माण करनेवाले सयोगोमे फर्क पडे, तो भी अुसी निर्णयका कायम रहना सभव नही है। लेकिन अुस समय तार-तम्य बुद्धि अिस बातकी सावधानी रखनेका प्रयत्न करेगी कि अुस निर्णयमें कोअी दोष न निकाला जा सके।

प्रस्थान, कार्तिक १९८४

१०

बुद्धि किस प्रकार विकसित हो ?

१

बुद्धि और तर्क

मुझसे पूछा गया है कि वालककी वुद्धि किस प्रकार खिल सकती है। अिस सवधमे 'केळवणीना पाया'* (शिक्षाकी वुनियाद) पुस्तकमे मैंने जो विचार प्रस्तुत किये है, अुन्हे पढ लेना चाहिये। फिर भी अुनकी पूर्तिमे मै यहा कुछ वाते पेश करूगा।

सवसे पहले वुद्धिका अर्थ और वुद्धि तथा तर्कके वीचका भेद स्पष्ट समझ लेनेकी जरूरत है। हमारे देशमे यह भूल वार वार होती है और तर्ककुशल मनुष्योकी गिनती वुद्धिमानोमे होती है। परतु वुद्धि और तर्क अेक नही है। तर्ककुशल मनुष्य मन्द वुद्धिका हो सकता है और व्रुद्धिमान मनुष्यमे तर्क दौडानेकी शक्ति कम हो सकती है।

तर्कका अर्थ है व्यवस्थित रीतिसे अेक विचारसे दूसरे विचार पर जाने और सामनेवाले मनुष्यके अिस प्रकारके प्रयत्नमे जो अव्यवस्थितता हो अुसे वतलानेकी शक्ति। अुस 'फकीर और खोये हुअे अूट' की कहानीमे फकीरकी तर्ककुशलता तथा चोरीका आरोप लगानेवाले व्यापारीकी विचार करनेकी अव्यवस्था दिखाओ देती है। अुसमे फकीरका किया हुआ तर्क सच निकला, यह कुछ हद तक तो सयोग ही माना जायगा। अुसने व्यापारीकी विचार करनेकी पद्धतिमे दोप अवश्य दिखा दिया, लेकिन यह असभव नही कि वह फकीर चोर ही हो।

हमारे पडित, वकील और पुलिस-विभागके लोग अधिकतर व्यवस्थित रीतिसे तर्क करनेकी शक्तिको विकसित करते है। वुद्धिके लिअे प्रसिद्ध नागर,+ महाराष्ट्रीय व्राह्मण, और वगाली विद्वान् ज्यादातर

---

* यह पुस्तक हिन्दीमे निकट भविष्यमे प्रकाशित होगी।

+ नागर जातिके लोग।

तर्ककुशल ही होते है। असके विपरीत कहा जा सकता है कि मोटर, विमान आदि यत्रोंके चलानेवालोको, सेनापति, नौकापति आदिको, तथा खिलाडियोको हर क्षण अपनी वुद्धिका अुपयोग करना पडता है। अैसा नही कहा जा सकता कि अुनकी तर्कशक्ति वहुत तीव्र होती है। लेकिन तत्काल निश्चय करनेकी शक्तिके विना अुनका काम विल्-कुल नही चल सकता।

तर्कशक्ति निकम्मी वस्तु नही है। लेकिन वुद्धि अुससे भिन्न शक्ति है। तर्क और वुद्धिकी व्याख्या यो की जा सकती है—तर्क विचारका विकास करनेकी शक्तिको कहते है और वुद्धि आचारका निर्णय करनेकी शक्तिको कहते है। अमुक परिस्थितिमे किस प्रकार वरताव किया जाय, यह नि सशय रूपमें जो निश्चित कर सके वह वुद्धिमान कहलायेगा। जो अपना कर्तव्य निश्चित न कर सके और सशय या विचारमें पड जाय, परेशानीमें पड जाय, वह विद्वान् हो सकता है, होशियार हो सकता है, परतु वुद्धिमान नही माना जा सकता।*

तर्ककुशल मनुष्य दूसरेको सयानी सलाह दे सकता है, और दूसरेके सयानपनमे गलतिया भी निकाल सकता है। हो सकता है कि वुद्धिमान मनुष्य स्वय अमुक रीतिसे वरताव करनेका निर्णय क्यो करता है यह समझा न सके, लेकिन अुसे अपने निर्णयके वारेमे शका नही रहती। अुसके निर्णयमें भूल नही हो सकती, अैसी वात नही। परतु अुस क्षण अुसे अपने निर्णयके विषयमे शका नही होती।

वुद्धि सदा निश्चित और अेकरूप ही होती है। वह अेकनिष्ठ (स्थितप्रज्ञ समाधिस्थ) या वहुशाखावाली हो सकती है, लेकिन अेक

---

* पडित जवाहरलाल, श्री राजगोपालाचार्य, श्री भूलाभाअी देसाअी तर्कशक्तिके अुत्तम नमूने कहे जा सकते है। पूज्य गाधीजी तुरन्त ही निर्णय पर पहुच जाते है, और वह निर्णय सच्चा ... भी हो सकता है; लेकिन अुसके समर्थनमें दी जानेवाली दलीलोंसे वे सवको सन्तुष्ट नही कर सकते।

समयमे वह अेक ही अुत्तर देती है। अिसे बीजगणितकी पद्धतिसे समझावे तो $क्ष^2 - ९क्ष + २० = ०$ अिस समीकरणमे क्ष की कीमत विकल्पसे ४ या ५ वतानी पडेगी। तर्कका यहा अन्त हो जाता है। लेकिन दृष्टिके सामनेके सयोगोको देखते हुअे अुसकी कीमत ४ ही हो सकती है, ५ कभी नही हो सकती, यह वुद्धि ठहराती है; अिन सयोगोमे जो क्ष की कीमत निश्चित रूपसे ४ ठहरा सके वह वुद्धिमान कहलायेगा, फिर भले अुसे यह न मालूम हो कि दूसरे कोअी संयोगोमे अुसकी कीमत ५ भी हो सकती है।

आम तौर पर स्वप्नमे मनुष्यकी वुद्धि ही काम करती है, तर्क-शक्ति नही। अिसलिअे कुत्तेके सिर पर सीग देखकर या अपनेको पख फूटे देखकर अुसे यह शक नही होता कि 'यह कैसे हो सकता है'। पहले क्षणमे जिस चीजको वह सीगोवाला कुत्ता ठहराता है, दूसरे क्षण अुसे तावूतका शेर समझता है और तीसरे क्षण अपनी भैंस मानता है। परतु अस्थिर होने पर भी वह हर क्षण नि सशय रहता है।

नि.सशयता वुद्धिका स्वभाव ही है। स्थिरता अुसकी विकसित स्थिति है। अेकसापन अुसकी तीक्ष्णता है। सत्यदर्शिता अुसका आरोग्य है। तर्कशक्ति और पाण्डित्य अुसके वैभव है।

अैसी वुद्धिका विकास किस प्रकार हो, अिस पर हमें विचार करना है।

२

वुद्धि और धृति

जिस प्रकार वुद्धि और तर्कके वीचका भेद समझना जरूरी है, अुसी प्रकार वुद्धि और धृतिके वीचका भेद जानना भी जरूरी है।

भगवद्गीतामें धृतिका अुल्लेख है, और अुसके सात्त्विक, राजस और तामस भेद भी वतलाये गये है। फिर भी, साधारणत. हमारे देशमें

धृतिका कही भी विचार किया गया हो अैसा मेरे जाननेमे नही आया। यह प्राणीके भीतर अेक महत्त्वकी शक्ति है और आजके यत्रयुगमें अिसका महत्त्व पहलेसे कही ज्यादा बढ गया है। अभी अभी मैंने किसी लेखकका यह वाक्य पढा है कि अिस युगके युद्धका अर्थ है आमने-सामनेकी विरोधी धृतियोका तीव्र मुकावला (war of nerves)।

हमारे देशकी प्राचीन वर्णव्यवस्थामें क्षत्रियो और शूद्रोंकी धृति अधिक विकसित होती थी। ब्राह्मणकी धृति अुससे कम और वैश्यकी सबसे कमजोर रहती थी। अिसका अुदाहरण परशुराम और कर्णकी कथामे मिलता है। कर्णने अपने-आपको ब्राह्मण कहकर परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी। किन्तु अेक दिन परशुराम अुसकी गोदमें सिर रखकर सो रहे थे, तब अेक वर्रने कर्णको काटा। परशुरामकी नीद न खराब हो अिसलिअे कर्णने अुसकी पीडा जरा भी हिले-डुले विना सहन कर ली। आखिर जब गरम खूनकी धार बहकर परशुरामके गाल तक पहुची तो वे जाग अुठे। अिस परसे अुन्हें लगा कि अपने ज्ञानतंतुओ पर अितना काबू रखनेकी शक्ति क्षत्रियके सिवा दूसरे किसीमे नही हो सकती, और अिस तरह अुन्होने कर्णका वर्ण पहचान लिया।

अिससे हम धृतिका अर्थ समझ सकते है। धृतिका अर्थ है स्नायुओ तथा चित्तको हिलानेवाले ज्ञानतंतुओ पर सपूर्ण अधिकार। अिसीको अिच्छाशक्ति भी कहा जा सकता है। कैसी भी स्थितिमें हाथमें पकडी हुअी चीज न छोडना, न कापना, पैरोका न हिलना, ज्ञानेन्द्रियो और कर्मेन्द्रियोका वशके बाहर न जाना, मनका न घबराना तथा बुद्धि (आचरणका निर्णय करनेवाली शक्ति) का मन्द न पडना — ये सब धृतिके लक्षण है।

बुद्धिके विकासमें तर्कशक्तिकी अपेक्षा धृति ज्यादा महत्त्वकी चीज है। सच्ची बात समझमे आने पर भी निर्णय नही लिया जा सके, निर्णयके बाद भी अुस पर आचरण नही किया जा सके, आरम्भ

करनेके वाद भी अन्त तक न टिका जा सके — ये सव धृतिके दोषोके लक्षण है।

३

वुद्धि और साहस

गीतामें कहा गया है : 'नास्ति वुद्धिरयुक्तस्य'।

अिसका अर्थ यह हुआ कि योगके विना वुद्धि पैदा नही हो सकती।

यहा योगका अर्थ समत्व किया गया है। गीताके अनुसार समत्वका अर्थ है सुख-दु.ख, लाभ-हानि, यश-अपयशमे समता। पढनेसे ये शब्द वहुत ही वडी और अूची आध्यात्मिक स्थिति वतलानेवाले मालूम होते है। विचार करने पर मालूम होगा कि अुन्हे सक्षेपमें साहस भी कहा जा सकता है। जव यह निर्णय करना होता है कि छोटेसे छोटा काम किया जाय या नही, तव कुछ-न-कुछ खतरा तो अुठाना ही पडता है। खतरेका अर्थ यही है कि किसी भी कारणसे अुस काममे विघ्न पैदा होनेकी सभावना है, और यदि विघ्न आया तो कुछ-न-कुछ दु ख, अपयश या हानि भोगनी ही पड़ेगी। अिसके अलावा, यदि वह काम निर्विघ्न पूरा हो तो भी अपेक्षित सुख, यश या लाभके वदले अुलटे परिणाम भी आ सकते है। केवल तीन फुटकी अूचाअीसे ही कूदना हो और मनुष्य यह निर्णय करना चाहता हो कि कूदा जाय या न कूदा जाय, तो जव तक वह अिस सशयमें अुलझा रहेगा कि 'कही चोट लग गअी तो' तव तक वह खडा ही रहेगा। अिस सशयको हटानेमे तर्क नही वल्कि साहसकी वृत्ति मदद करती है। 'चोट क्यो लगेगी?' अथवा 'लगेगी तो भले लगे' जव मनुष्यमे अैसी वृत्ति अुठे तभी वह निर्णय कर सकता है। 'चोट लगेगी तो भले लगे' की वृत्तिमें सुख-दुःखके प्रति अुस हद तक समताकी वृत्ति निर्माण होती है। अिसी प्रकार फीस भरकर परीक्षामे

वैठना या नही यह तय करना हो और यदि यह भय वना रहे कि 'नापास हुआ तो पैसे बेकार जायगे', तो फार्म भरनेकी हिम्मत नही होगी। 'परिश्रम करता हू, पास होनेकी आशा है, फिर जो होना होगा सो होगा,' यह वृत्ति होगी तभी कोअी विद्यार्थी परीक्षामे वैठ सकेगा। अिसलिअे यश-अपयशके वारेमे कमसे कम अुतने समयके लिअे तो समता होनी ही चाहिये। अिस प्रकारके निर्णयके लिअे आवश्यक क्षणिक समताको साहस और आरभसे लेकर परिणाम आनेके वाद भी वनी रहनेवाली समताको योग कहा जा सकता है।

अैसी साहसरूपी समताके विना वुद्धि पैदा ही नही हो सकती, अर्थात् किसी निर्णय पर पहुचा नही जा सकता।

४

प्रसन्नता

'नास्ति वुद्धिरयुक्तस्य' वाले अूपरके श्लोकमे गीतामें कहा गया है कि 'प्रसन्नचेतसो ह्याशु वुद्धि पर्यवतिष्ठते'। मतलव यह है कि वुद्धि अुत्पन्न करनेके लिअे जैसे योग, समता और साहसकी आवश्यकता है, वैसे ही अुसके विकासके लिअे मनकी प्रसन्नता भी आवश्यक है।

जो मनुष्य आचरणके वारेमे कोअी निर्णय कर लेता है, अुनके विषयमे यह तो कहा ही जायगा कि अुसने वुद्धिका अुपयोग किया है। लेकिन वह निर्णय सही भी हो सकता है और गलत भी, पक्का यानी स्थिर भी हो सकता है और कच्चा यानी कुछ समयमे वदला जानेवाला भी हो सकता है। यह तो परिणामसे मालूम होगा।

परतु जिसके निर्णय कच्चे और अस्थिर ही हुआ करते हो, अुसकी वुद्धिको हम विकसित वुद्धि नही कह सकते। कभी कभी तो अैसी वुद्धिका होना-न-होना अेकसा ही मालूम होगा। पक्के, स्थिर निर्णय करनेवालेकी वुद्धि ही प्रफुल्ल — विकसित कही जा सकेगी।

तो गीताके श्लोकका अर्थ हुआ कि अैसी स्थिर बुद्धिके लिअे मनकी प्रसन्नता आवश्यक है।

यहा प्रसन्नताका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्रसन्नताका अर्थ हर्ष या आनन्दका अुभार न समझा जाय। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नही कि अुसमें शोक, विषाद, अुद्वेग आदि नही हो सकते। न यह समझानेकी ही आवश्यकता है कि मनमे जब शोक या अुद्वेग भरा हो तब बुद्धि बराबर काम नही कर सकती। लेकिन हर्ष या आनन्दके आवेशमे भी बुद्धि अच्छी तरह काम नही कर सकती। किसी भी तरहकी भावना, फिर वह अच्छी हो या बुरी, मनुष्यमे विकार पैदा कर देती है, वह अुसे आचार या विचारके विषयके प्रति तटस्थ नही रहने दे सकती। अिसलिअे हर्ष या शोकका आवेग बुद्धिकी गतिके लिअे विघ्नरूप है। अिसलिअे मन जब हर्ष-शोकके आवेगसे मुक्त हो तभी बुद्धि भलीभाति काम कर सकती है। चित्तकी अिस दशाको ही प्रसन्नता कहते है। अुसमें प्रकृति स्वाभाविक, आवेगरहित, शान्त और प्रसन्न होती है। मनुष्य व्यायाम करके ठण्डे पानीसे नहाकर बैठा हो, अथवा काम करनेके बाद किसी टीले पर जाकर हवासे थकावट दूर करके आरामसे बैठा हो, अुस समयके अुसके चित्तके आनन्दके साथ प्रसन्नताकी तुलना की जा सकती है। बुद्धिके विकासके लिअे अैसी प्रसन्नता निरन्तर रहनी चाहिये।

अिस परसे अनायास ही हमें अेक प्रश्नका निर्णय मिल जाता है। मार-पीट, धमकी आदि विषाद पैदा करनेवाले तरीकोका जिन पर प्रयोग होता है, अुनकी बुद्धि कभी स्थिर नहीं हो सकती, अर्थात् खिल नहीं सकती।

यह बात समझनेमें भले कठिन मालूम हो, परंतु अिसीके साथ अिसका दूसरा किनारा भी बुद्धिके विकासमें सहायक नहीं होता, अर्थात्, आनन्द आदिका अुन्माद भी बुद्धिका पोषक नहीं है। अुसमें

बुद्धि गहरी नही हो सकती, वह अूपर-अूपरसे ही निर्णय करनेवाली बनती है। विशेषत जव अिन्द्रियो या भावनाओको प्रलोभनमे डालनेवाले साधनोसे आनन्द पैदा किया जाता है, तव बुद्धिमे चातुर्य आता तो मालूम होता है, परतु अुसमे गहरापन नही होता।

अिस तरह बुद्धि और प्रसन्नताका परस्पर सवध है।

५

अुपसंहार

अिस प्रकार हमने तर्क और बुद्धिके वीचका भेद देख लिया। यह भेद समझना वहुत जरूरी है। क्योकि साधारणतया जो बुद्धिमान पण्डित माने जाते हैं, वे तर्ककुशल ही होते है। अिसके विपरीत, अविद्वान्, तर्क-ज्ञान-रहित मनुष्यके वहुत बुद्धिमान होने पर भी अुसे अज्ञान माननेकी भूल होती है। बुद्धिका क्षेत्र विचारका नहीं, वल्कि आचारका निर्णय करनेका है, और अुसके साधन दलीले नहीं, वल्कि धृति, साहस, प्रसन्नता आदि हैं — यह वात हम याद रखे तो दोनोंके बीच कभी गडवडी नही हो सकती।

बुद्धिका अुपयोग करनेके लिअे धृति — किसी वस्तुसे चिपटे रहनेकी शक्ति — चाहिये, साहस वनाये रखने जितनी समता चाहिये, और चित्तकी प्रसन्नता चाहिये।

अिन सवके लिअे पद्धतिपूर्वक शिक्षा मिलनी चाहिये, और अिनका अभ्यास या आदत होनी चाहिये।

चूकि आचरणका निर्णय करनेका काम बुद्धिके क्षेत्रमें आता है, अिसलिअे अुसकी आदत डालनेके लिअे मनुष्यके पास कुछ-न-कुछ काम खुद करनेके लिअे सदा ही रहना चाहिये। काम छोटा हो या बडा अिसका कोअी महत्त्व नहीं है। लेकिन वह वैठे-वैठे दलीलें करने या अदाज लगानेका ही नही होना चाहिये। वह काम अैसा होना चाहिये जिसमे मनुष्यको 'अिस प्रकार किया जाय या अुस प्रकार किया जाय'

का निर्णय वार-वार करते रहनेकी जरूरत पड़ती हो। वह यन्त्रवत् करते रहनेका काम नही होना चाहिये।

अिसके अलावा, कुछ काम अैसे भी होने चाहिये, जिनमे दृढता-पूर्वक लगे रहनेके लिअे अपने मनको मजबूत रखनेकी आवश्यकता हो। साथ ही यदि अैसी परिस्थिति भी हो जिसमे दृढ रहना अनिवार्य हो जाय तो अधिक लाभ होगा।

'शिक्षण अने साहित्य', जनवरी-अप्रैल १९४२

शिक्षामें विवेक

दूसरा भाग

प्रवृत्ति-विवेक

१

स्कूलोंके वार्षिक सम्मेलन

कुछ वर्षोंसे मुझे शालाओंके वार्षिक सम्मेलनोमे जाना पडता है। पाठकोमे से भी कअी लोगोको अैसा अवसर प्राप्त होता होगा। सम्मेलनोमे सगीत और नाट्यकलाका प्रदर्शन अेक साधारण बात हो गअी है। जो बालक अच्छी तरह काम करके पारितोषिक प्राप्त करते है, अुनके मातापिताको अुनकी कुशलतासे आनन्द होता होगा। जो काम करना हो वह अुत्तम ढगसे करना आ जाये तो अुससे भी बालकका विकास होता है; अिस दृष्टिसे विद्यार्थीकी प्रगतिको देखकर यदि पालकोको आनन्द हो तो वह स्वाभाविक है।

परतु दूसरी दृष्टिसे ये सम्मेलन मुझे अिस बातके चिह्न मालूम होते है कि हमारी स्थिति कितनी दयाजनक है। गुलामोके व्यापारके जमानेमे गुलामोका बाजार लगता था। वहा खरीदार बिकनेके लिअे आये हुअे गुलाम लडकोको दौडाते, कुदाते, नचाते, अुनके दात गिनते, हाथ-पैरोकी जाच करते और अुनकी विशेष योग्यताओंकी परीक्षा लेते थे। बेचनेवाले भी यह दिखानेके लिअे कि गुलामोको खुद कितनी अच्छी तालीम दे सकते है, लडकोको कुछ खास चालाकिया सिखाते थे। विक्रेताकी गुलामको तालीम देनेकी कुशलताकी परीक्षा और खद गुलामकी भी परीक्षा बाजारमे होती थी, अिसलिअे दोनोको बाजारके लिअे विशेष सावधानी और अुत्साह रखना पडता था। गुलाम होते हुअे भी वह हम-जैसा ही मनुष्य होता था, अिसलिअे अुसे भी अपनी होशियारी पर गर्व होता था। अिस कारणसे वह भी अपनी होशियारी बतलानेके लिअे अुत्सुक रहता था।

कुछ सम्मेलनोमें भाग लेनेके बाद मुझे अैसा लगने लगा है कि ये सम्मेलन भी अुन गुलामोंके बाजारो जैसे ही प्रदर्शन है। ये अुन

वाजारो जितने मलिन, नीच या जानवूझकर स्वार्थपूर्ण तो नही होते, फिर भी अिन सम्मेलनोमे शिक्षकोको अपनी सिखानेकी योग्यता दिखानेका और वालकोको अपनी होशियारी वतलानेका लालच रहता ही है। अिस लालचके कारण अैसे सम्मेलनोंके समय कुछ विद्यार्थियो पर अत्यधिक वोझ डाला जाता है, और अुत्साहके कारण विद्यार्थी भी अुसे अुठाते है। कुछ समय पहले मै अेक सम्मेलनमे गया था। अुसमे अेक लडकेका कण्ठ वहुत मीठा होनेसे सारे समेलनमे कोअी पच्चीस-तीस गीत गानेका काम अुसे सौंपा गया था। अुस विद्यार्थी पर पडनेवाले वोझसे मुझे वडा दु ख हुआ; और मैंने देखा कि समारभके अन्तमे अुस लडकेका कण्ठ विलकुल वैठ गया था। कुछ जगहो पर रातके वारह-अेक वजे तक नाटच-प्रयोग चलते रहते है। कभी-कभी लडके अपने पाठ या गीतको केवल ग्रामोफोनके रेकार्डकी तरह वोल जाते है। अुनकी स्तव्व और अर्थहीन आखे यह वतला देती है कि अुनका अपने पाठके अर्थकी ओर जरा भी घ्यान नही है; अुनका सारा घ्यान अिसी वात पर केन्द्रित हो गया है कि पाठके शव्दोमे भूल न हो। समेलनोका अिस प्रकारका अुपयोग दोषपूर्ण है।

अिसके अलावा अिसमे अेक प्रकारकी आत्म-प्रवंचना भी होती है। अैसे सम्मेलनोमे विद्यार्थियोंसे अच्छा काम करवाकर शिक्षक अपने-आपको कृतार्थ समझ लेते है, लडके मान लेते है कि खूव आनन्द मिला, और लडकोंके माता-पिता घर जाकर अिस सतोपसे निश्चिन्त हो जाते है कि अुनके लडकोकी पढाअी अच्छी चल रही है। मेरी रायमे तो यह शिक्षाका अेक गौण अग है।

यो कहकर मै शिक्षकोंके सिर दोप मढना नही चाहता। शिक्षक, विद्यार्थी, पालक या माता-पिता सभी प्रथाके दास है। जहा अेक प्रथा लोकप्रिय वनी कि हम अुसकी ओर खिचने लगते है। सम्मेलनो और नाटय-प्रयोगोका जमाना शुरु हुआ कि हम अुसीमे शिक्षाका सार समाया हुआ मानने लगे है। अैसी ही अेक प्रथा कुछ समयसे हस्त-

लिखित मासिकोकी और सगीतकी शिक्षाकी भी चल पडी है। हरअेक प्रथामे कुछ-न-कुछ गुण तो रहते ही हैं। परंतु जब हम प्रथाके स्वामी न रहकर अुसके दास बनने लगते है, तब अुसके लाभ व्यर्थ हो जाते है, और शायद विषरूप भी हो जाते है। किसी भी प्रथासे लाभ अुठाना हो तो अुसका हमे सयमपूर्वक ही पोषण करना चाहिये। आनन्द-प्राप्तिके लिअे निर्माण हुअी प्रथाके विषयमे यह ध्यान रखना विशेष रूपसे आवश्यक है। नाटच-प्रयोग, सगीत, मासिक-लेखन आदिमे हमे आनन्द आता हो तो भी, मेरी नम्र रायमें, अिस आनन्दके योग्य पोषणके लिअे हमे सब अतिशयताओका त्याग करना चाहिये। अेकाध छोटा-सा, सरल, भावपूर्ण और अर्थ समझकर याद किया हुआ पाठ, बालकोके स्वभावके अनुकूल नाटच-प्रयोग, अेकाध सादा और सद्भाववाला सगीत, अेकाध छोटासा अच्छा मासिक — यदि अितनेमे हमे सतोष न हो तो समझ लेना चाहिये कि जैसे हममे से बहुतेरोकी जीभ अितनी बिगडी हुअी होती है कि बगैर शक्करके दूधमें रही मिठासका अुन्हे पता ही नही चलता, अुसी तरह हमारी दूसरी अिन्द्रिया भी अुतनी ही जड हो गअी है।

दूसरी ओर ये सम्मेलन हमारी प्रजाकी मनोवृत्तिका अच्छी तरह भान कराते है। अेक छोटेसे गावमे लेकर शहर तककी हमारी सारी प्रजाको कौनसी चीजे पसन्द आती है? देहातके आचार्य अपना कार्य-क्रम अिस ढगसे जमाते है कि शालाके कामका विवरण तथा अध्यक्षका भाषण आरभमे या बीचमे रहे और नाटच-प्रयोग अन्तमें या आरम्भ और अन्तमे रहे। अिसका कारण यह है कि पालक लडकोकी प्रगति और कल्याणकी बाते सुनना नही चाहते, अुन्हे तो नाटक और गायनका आनन्द लेना होता है। अिसलिअे प्रयोगोंके समय शान्ति रहती है, और विवरण तथा भाषणके समय गडबडी मच जाती है। जैसे शहरमें वैसे ही देहातमे हमे विलास ही पसन्द होता है। अिसलिअे अपने बालकोंमें भी विलास-वृत्तियोका पोषण करनेमें हम अुनका हित मानते है। कुछ

शालाओंके विवरणोंमें आवश्यकताओंके खानेमें संगीत और व्यायामके शिक्षकोंकी आवश्यकता बतलाओ जाती है। मैंने प्रायः यह देखा है कि व्यायामकी अपेक्षा संगीतकी कमी जल्दी ही दूर की जाती है। हमें शौर्यकी अपेक्षा विलास अधिक प्रिय है, अिसलिअे नाटचकला, संगीतकला, चित्रकला, काव्यकला, कहानी-कला आदिकी ओर हम खूब ध्यान दे रहे हैं। हिन्दुस्तानमें आनेके बाद गांधीजीने संगीत, कवायद और बुनाअीकी शिक्षा पर बहुत जोर दिया। अुनमें से हमने संगीतको तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह पसीना बहाये बिना अिन्द्रियोंको आनन्द देनेवाली चीज है। हमें आनन्द तो चाहिये, किन्तु पसीना बहाना अच्छा नहीं लगता। अिसलिअे दूसरी बातोंकी ओर हमने ध्यान नहीं दिया या अुनका विरोध किया है।

अिस विलासकी रुचिके कारण ही हमें चरखा शालामें पुसाता नहीं मालूम होता। असहयोग परसे हमारा विश्वास अुठता जा रहा है, अिसलिअे राष्ट्रीय शालाओंमें विद्यार्थियोंकी संख्या भी घटने लगी है। अुनमें अहमदाबादकी नओ गुजराती शाला जैसी कुछ शालाअें अपवादरूप मालूम होती हैं। किन्तु अिसका कारण यह नहीं कि अुन विद्यार्थियोंके पालकोंका राष्ट्रीय शिक्षामें विश्वास है, बल्कि यह है कि राष्ट्रीय शिक्षाके खास सिद्धान्तोंका स्पर्श अुन शालाओं तक नहीं पहुंचा है। चरखे पर जरा विशेष जोर देनेके लिअे कहा जाय या कोअी अछूत बालक वहां बैठनेके लिअे आ जाय, तो आचार्यजीकी छाती धड़कने लगेगी। अैसी दयाजनक स्थिति हमारी है। हमें विलास अच्छा लगता है, अिसीलिअे हाथ-पैरका श्रम करानेवाली शिक्षा पसन्द नहीं आती। विलासकी प्राप्तिके लिअे धन और फुरसत दोनों चाहिये। अिसलिअे हम अैसी शिक्षाको अच्छी मानते हैं, जो हमारी विलासकी वृत्तियोंको बढ़ाये, थोड़ीसी मेहनतमें धनका ढेर खड़ा कर देनेकी शक्ति दे, तथा हमें अपने हाथ-पैर हिलानेके लिअे मजबूर न करे। यदि महात्मा गांधी अैसी कोअी युक्ति ढूंढ निकालें

जिससे न्यूयार्कके फीचर या लीव्हरपुलके वाजार पर होनेवाले सट्टे अचूक रूपमें हमारे ही लाभमे निकलें और असकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था विद्यापीठमें हो, तो आज विद्यापीठ विद्यार्थियोसे अुभर पड़ेगा। परतु गाधीजी तो हमें मजदूरी करनेके लिअे कहते है, प्रामाणिक श्रमसे जितना कमाया जा सके अुतनी कमाअीसे गुजारा करनेके लिअे कहते है। वह हमसे नही हो सकता। हमारे वालकोके सामने अैसा आदर्श रखना भी हमे दु:खदायी मालूम होता है।

अस्तु। ये पाठशालायें अिस सिद्धान्तसे नही चलती। वल्कि अुन्हे अैसी अच्छी प्राथमिक शालाये वनानेकी कोशिश रहती है, जो मध्यम वर्ग या अुससे थोडे अधिक धनी वर्गके रहन-सहन और सुशिक्षाके खयालोके अनुकूल हो। अिसलिअे अुनमे म्युनिसिपैलिटीकी प्राथमिक शालाओसे विशेष सुविधाओवाली (more liberal) शिक्षा देनेकी व्यवस्था रहती है। यही दृष्टि सामने रखकर हम अुन शालाओके वारेमे यहा कुछ विचार करे।

यदि हम अिसके कारणोकी जाच करे कि शालाओको अैसे सम्मेलन करनेकी जरूरत क्यो होती है, तो दिखाअी देगा कि आम तौर पर माता-पिता अपने वालकोकी ओर लापरवाह रहते है। वह लापरवाही अिस हद तक तो नही होती कि लडका पढे तो पढे, न पढे तो न पढे। परतु हर महीने ५–७–१० रुपये खर्च करके आसपास जो भी अच्छी शाला हो वहा वालकको वैठाकर, वह जो पुस्तके वगैरा मागे अुसका प्रवध करके और जरूरत हो तो अेकाध खानगी शिक्षक रखकर माता-पिताको लगता है कि अुन्होने वालकोकी शिक्षाके सवधमें अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। यदि लडकेमे कोअी खास अवगुण न हो और वह सीधा हो, तो अितनी व्यवस्थाके वाद माता-पिताको लगने लगता है कि वस सारी जिम्मेदारी पूरी हो गअी। अैसे सम्मेलनोमे वह कुछ कर दिखाता है तभी माता-पिताको मालूम होता है कि लडका कुछ प्रगति कर रहा है, शालाका मकान देखनेका प्रसग भी तभी

जाता है। पालक कमसे कम अेक ही बार शालामे आ जाय, अिसके लिअे शिक्षकोको अितना आडबर करना पडता है।

परतु अच्छीसे अच्छी शालामे लडकोको बैठा देनेसे ही पालकोका कर्तव्य पूरा नही हो जाता। अच्छीसे अच्छी शाला विशेष अच्छी क्यो नही होती, अिसका अुन्हें विचार करना चाहिये। यह विचार करनेका भार वे शिक्षको या व्यवस्थापको पर डाल देते है। यदि पालकोको अपने आदर्शोके अनुसार भी बालकोको अच्छीसे अच्छी शिक्षा देनी हो तो वह अिस रीतिसे नही दी जा सकती। साधारणत माता-पिताकी यह वृत्ति होती है कि शालाको जरूरत हो तो वह अेककी जगह दो रुपया फीस ले ले, परतु हमे बालकोकी शिक्षाके विषयमे किसी तरह भी चिन्ता करनेकी जरूरत न रह जानी चाहिये; अैसा प्रबंध होना चाहिये कि अिस बारेमे हमे कुछ देखना ही न पडे। यह स्थिति मै सर्वत्र अितनी ज्यादा सामान्य रूपमे फैली हुअी देखता हू कि मुझे कठोर बनकर कहना पडता है कि अैसे लोग गृहस्थाश्रमी और माता-पिता बननेके लिअे सर्वथा अयोग्य है। पाठक मुझे अपने अिन शब्दोके लिअे क्षमा करे। अेक तो मै अुम्रमें छोटा हू और दूसरे मुझ पर पालकपनका बोझ नही है, अिसलिअे ये शब्द कहनेका मुझे अधिकार नही है। परतु मुझे लगता है कि अिसमे मै अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। माता-पिता अपने बालकोके लिअे धन बढानेकी अवश्य ही तन-तोड मेहनत करते है, किन्तु बालकोकी आन्तरिक पूजी बढानेके लिअे अुन्हे लापरवाहीसे दूसरोके सुपुर्द किया जाता है, यह मुझे ठीक नही मालूम होता। यदि पालक शालाके बारेमें विचार करते हो तो, अुदाहरणार्थ, नअी गुजराती शालाकी अैसी दयाजनक स्थिति अुन्हें असह्य क्यो न लगनी चाहिये? पाच-पाच सालसे यह शाला अेक बाडीमें लग रही है, अुसके वर्गोके बीचके पर्दे कच्ची चटाअीके है। वहा न तो बडा मैदान है, न कोअी बगीचा है। अेक सकडी जगहमें शिक्षकोने परिश्रम करके जितना कुछ

कर लिया अुतना ही है। साधारणत. शिक्षकोंकी आवाज जोरकी होती है। अिस स्थितिमे जब वर्ग चलते होंगे, तब यह तो हो ही नही सकता कि अेक वर्गका शोर दूसरे वर्गके काममें बाधक न बने। अहमदाबाद कोअी गरीब या छोटासा गाव नहीं है। लडकोंको सब सुविधाओंवाला शिक्षण (liberal education) देनेकी अिच्छा रखनेवाले लोगोंकी शालाकी स्थिति अितनी विचित्र नहीं होनी चाहिये। अहमदाबादको शोभा देनेवाली शाला तो अेक बडे बगीचेके बीच सादे किन्तु शान्तिपूर्ण और सब प्रकारकी सुविधाओं-वाले मकानमे होनी चाहिये; और अुसमे प्रवेश करते ही मन प्रफुल्ल हो जाना चाहिये। मुझे विश्वास है कि यदि कोअी खानगी साहसमें अैसी सुविधाओंवाली शाला आरभ करे, तो अहमदाबादके निवासी अधिक फीस देकर भी अपने बालकोंको अुसमें भेजेंगे। लेकिन जो शालायें आज चल रही हैं वे क्यों नही सुधरती, अिसका विचार करनेकी हमें फुरसत ही नही होती। मुझे अिसी बातका बडा दुःख होता है कि हमारी बुद्धि अितनी स्थिर नहीं है कि हम गरीबी और सादगीको आदर्श मान लें; हमें भी पश्चिमके लोगों जैसा ही सुख-सुविधा, आनन्द और विविधतावाला जीवन चाहिये, फिर भी यह सब प्राप्त करनेके लिअे अुन लोगों जैसी मेहनत करनेकी वृत्ति हममे नही है। कोअी सब तैयार करके दे दे तो अुत्तम। कोअी पहल करे तो हम अुसके पीछे चलेंगे, परतु अपने विचारसे हमें जो सुन्दरूप मालूम होता है, अुसे प्राप्त करनेके लिअे श्रम करनेका हममें अुत्साह पैदा नहीं होता।

नवजीवन, केळवणी अक, २४–५–१९२५

२

आदर्श आचार्य

विद्यामंदिरोंके वारेमें विविध प्रकारके प्रश्न बार-बार पूछे जाते हैं। अुनका अुत्तर देना हमेशा आसान नहीं होता। क्या पढाया जाय और किस प्रकार पढाया जाय, यह मंदिरको मिलनेवाले शिक्षकों पर निर्भर है। चाहे जितनी अच्छी पुस्तकें हों और चाहे जितनी सर्वांगपूर्ण योजनायें बनाअी गअी हों, परंतु यदि अुनके लिअे योग्य शिक्षक न मिलें तो जड पुस्तकें और योजनायें विद्यार्थियोंको कोअी लाभ नहीं पहुंचा सकतीं।

आचार्य नियुक्त करनेमें कौन-कौनसी बातें देखी जायें, अिस बारेमें मेरे व्यक्तिगत विचार अिस प्रकार हैं:

१. जो धर्मप्रिय हो। धर्मप्रिय अर्थात् सत्यवादी, कर्तव्य-परायण, प्रामाणिक, सच बोलनेसे न डरनेवाला, बगैर हिम्मतके कोरी बातें न करनेवाला, अुत्साही, मितव्ययी और संयमी।

२ जिसका कौटुम्बिक जीवन शुद्ध, प्रेमपूर्ण तथा अेक-दिलीका हो।

३ जिसे छोटे-छोटे बच्चोंके सहवासमें रुचि हो और आनन्द आता हो।

४ जिसे शिक्षाके सिवा दूसरी प्रवृत्तियोंमें भाग लेकर आगे बढनेकी आकांक्षा न हो, और जो सौंपे हुअे कामको छोडकर दूसरी बातोंमें अपनी शक्ति खर्च करनेवाला न हो।

५ जिसे ज्ञान बढानेका अुत्साह हो। किन्तु वह अुत्साह अैसा अनुचित न हो कि जिससे वह विद्यार्थियोंके प्रति अपना फर्ज अदा न कर सके, और वर्गमें तथा वर्गके लिअे तैयारी करनेके समयमें अपने ही शौकके विषयमें मस्त रहे।

६. जो वीडी पीने, अपशब्द बोलने, डाटकर या धमका कर बोलने, और अपना अज्ञान स्वीकार करनेमे शरमाने वगैराकी बुरी आदतोंसे मुक्त हो। और,

७ जो निरतर अुद्योगमे लगे रहनेमें, परिश्रम करनेकी शक्ति प्राप्त करनेमें और मेहनत पर ही गुजर करनेमें अपना गौरव मानता हो।

जिसमे ये गुण होगे, अुसमे जितनी भी योग्यता होगी अुतनीमे मै सतोष मानूगा, और अुसे नि सकोच कोअी भी विद्यामदिर सौंप दूगा। वह जितना कुछ विद्यार्थियोको सिखा सकेगा अुतना मेरे लिअे काफी होगा। अुसे अपनी शक्तिके अनुसार मै पाठचक्रम बनाने दूगा। वह किसी भी तरहका पाठचक्रम न बनाकर विद्यार्थियोमे केवल श्रमके लिअे आदरभाव पैदा करे और ममतालु माकी तरह अुन पर प्रेम बरसाये तथा अुनका प्रेम सपादन करे, तो अुतनेसे भी मै सतोष मानूगा।

अिसमे मैने अुसकी शिक्षणकी योग्यता नही बतलाअी है। किन्तु मै चाहूगा कि अुसमे देशकी वर्तमान स्थिति, आजका युगधर्म समझनेकी शक्ति हो, और स्वदेशी धर्ममें अुसकी श्रद्धा हो। लेकिन ये गुण न हो तो भी मै अुसे निबाह लूगा। क्योकि मुझे आशा रहेगी कि यह सब वह किसी दिन समझ जायगा, और अैसी श्रद्धा रहेगी कि यदि समझ गया तो अुस पर अमल भी अवश्य करेगा।

सभव है केवल अितनी बातोसे सबको सतोष न होगा। मैने अुसकी अुच्चारण-शुद्धि, लेखन-शुद्धि, अनेक विषयोकी जानकारी तथा शिक्षा-शास्त्रके ज्ञानके बारेमे कुछ भी नही लिखा। अिससे कोअी यह न समझ बैठे कि मै अिन बातोको अनावश्यक अथवा तुच्छ समझता हू। बात अितनी ही है कि अूपर गिनाअी हुअी बातोंसे अिन्हें विशेष महत्त्व देनेका मेरा मन नही होता। मुझे यह विश्वास तो नही है कि पढनेकी तीव्र अिच्छावाले विद्यार्थियोको अैसे सिखानेसे नुकसान होगा ही, परन्तु जिस शिक्षकमें अूपर बतलाये हुअे गुण न हो अुसे

वहुतसा ज्ञान प्राप्त करने पर भी विद्यार्थियोंका किसी भी तरहका विकास होनेकी आशा नही रखी जा सकती। मेरा नम्र मत तो यह है कि अैसे आचार्य द्वारा सचालित विद्यामदिरके विद्यार्थी ही अपने-आपको, कुटुम्वको और जगत्‌को सुखी करनेकी शिक्षा पा सकेंगे। दूसरी अनेक विद्याओमे विशारद और पारगत होनेके लिअे महान पण्डितो, कीमती पाठ्य-पुस्तको, खर्चीले पुस्तकालयो, विद्यापीठ कार्यालयो और वडे-वडे चन्दोकी आवश्यकता है। अैसी किसी विद्यामें प्रवीणता प्राप्त करना अच्छा है। अुसके लिअे देशके पास साधन भी होने चाहिये। परतु जिस विद्यासे पढनेवालो तथा पडोसियो और जगत्‌को सुख और शान्ति मिल सकती है, वह तो दूसरी ही विद्या है। अुस कल्याणकारी विद्यामे विशारद होनेके लिअे अूपर वताया हुआ आचार्य काफी है। शालान्त परीक्षा पास करनेवाला विद्यार्थी भी अिस विद्याका स्नातक हो सकता है, परतु संभव है महाविद्यालयके विद्यार्थी अुसमे असफल रहे। अिसके लिअे पाठ्य-पुस्तको और पुस्तकालयोंकी जरूरत कम है। अेक चरित्रवान आचार्य विद्या-मदिरके लिअे सपूर्ण साधन-सपत्ति माना जायगा।

राष्ट्रीय शिक्षाके विषयमे मेरी सलाह लेनेवाले भाअियोकी समझमें यदि मेरी वात आती हो, तो मै अितना ही कहूगा कि आप अपने कुमार[1], विनय[2] या महाविद्या-मदिरो[3] में कल्याण-विद्याकी शाखा पहले खोले, और साधनोकी अनुकूलताके अनुसार दूसरी विद्याये वादमें दाखिल करें।

जो आचार्य अपने विद्यार्थियोको धर्मप्रिय, प्रेमल, सरल, अेकाग्र, जिज्ञासु, निर्दोष वाणीवाले और परिश्रमी वना सकेंगे, अुनके विद्यार्थियोको भूखो मरनेका, धर्मभ्रष्ट होनेका, वुद्धिहीन वननेका या परावलवी वननेका डर नही लगता, यह स्पष्ट रूपमे प्रकट हो जाना चाहिये।

नवजीवन, ६-५-१९२३

१, २, ३ गुजरात विद्यापीठकी प्राथमिक, माध्यमिक और अुच्च शिक्षाकी शाखाओंके नाम।

३

कुछ हरिजन छात्रालय

कर्नाटक तथा काठियावाडमे अचानक ही कुछ हरिजन छात्रालय देखनेका प्रसग आया। धारवाड जिलेके कोरठूर गावमें वस्त्र-स्वावलम्बनकी मुख्य प्रवृत्ति है। वहाके हरिजन आश्रममें भी अिसी प्रवृत्तिका वातावरण दिखाअी दिया। अेक ही खडके लबे-चौडे झोपडेमें अेक परदा लगाकर अेक ओर पीजने चलाअी जा रही थी, दूसरी ओर लडके-लडकिया, युवतिया और बूढिया चरखा चला रही थी। अेक भागमें सभाकी व्यवस्था की गअी थी। अेक हरिजन विद्यार्थीको अपना बनाया हुआ सवाद अभिनयके साथ सुनानेकी अिच्छा हुअी। वह सवाद अेक प्रसिद्ध लिगायत भक्तके वचनो और जीवन-प्रसगोंसे लगभग अुसीकी भाषामें रचा गया था। वह कन्नडभाषामे था, अिसलिअे मैं अुसे ठीक तरह समझ न सका। परतु श्री दिवाकरजीने मुझे अुसका भावार्थ समझाया। प्रसग यह था कि अेक हरिजन शिष्य अुस भक्तको प्रणाम करनेके लिअे आया। भक्तने अुत्तरमे अुसे नमस्कार किया। अिस पर अुस शिष्य तथा दूसरे शिष्योंने प्रश्न किया कि आपके जैसा बडा आदमी अपने शिष्यके, और वह भी अेक नीच जातिके शिष्यके, नमस्कारके अुत्तरमें नमस्कार करे, यह कहा तक अुचित माना जायगा? अिस पर अुस भक्तने सबकी समानता तथा नम्रताके विषयमें अेक प्रवचन दिया।

दूसरा अेक आश्रम निपाणी गावमें अेक तरुण हरिजनसेवक चला रहे है। वह भी अेक छोटेसे झोपडेमें है। यदि हम अुस झोपडेको छोटासा हरिजन छात्रालय कहे तो अनुचित नहीं होगा। वहा ७ से १४ वर्ष तकके बालक अत्यन्त सादगीसे रहते और पढते है। थोडा व्यायाम करते है, थोडा कातने-पीजनेका काम करते है,

तथा वहुत करके शालामे पढनेके लिअे जाते है। मुझे आश्रमकी तफसीलमें जानेका समय नही मिला। लेकिन श्री ठक्करवापाने वहाकी भेंट-पुस्तिकामे जो वात लिखी, वही छाप मुझ पर भी पडी। श्री . . अुत्साही सेवक है, परतु अुन्हें अनेक-विध प्रवृत्तियोमे भाग लेने और विशाल क्षेत्रमे काम करनेका जो लोभ है, अुसकी अपेक्षा यदि वे अिस आश्रमके लिअे अधिक परिश्रम करे तो ज्यादा ठीक होगा। आश्रमकी रिपोर्ट मैंने ध्यानपूर्वक पढी। अुसमे जो वात मुझे खटकी वह है सचालककी वार-वार आनेवाली आत्म-प्रशसा। अुनकी अुम्र अभी तीसके भीतर है। यदि 'कीर्तिकी दीवारे' वे अितनी जल्दी चुनवाने लगेगे तो अुसमे खतरा है।

निपाणीका श्री वीरशैव केक्कय समाजका वोर्डिंग भी मेरा ध्यान खीचे विना नही रहा। वह वोर्डिंग माग या चमारसे मिलती-जुलती अेक जातिके स्कूल तथा कॉलिजके कुछ विद्यार्थी चलाते है। अुसके लिअे चन्दा भी प्राय. वे सव अपनी जातिमे से ही अिकट्ठा करते है। कुछ विद्यार्थियोको सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है। वह भी वे अुसी वोर्डिंगको दे देते है, और अिस प्रकार लगभग वीस विद्यार्थी अुस वोर्डिंगमे खाते-पीते और पढते है। सभी व्यवस्था विद्यार्थी अपने हाथसे ही कर लेते है। अिस स्वावलवी प्रवृत्तिके लिअे वे विद्यार्थी धन्यवादके पात्र है।

कर्नाटकके घास-मिट्टीकी झोपड़ियोमे चलनेवाले अिन आश्रमोको देखनेके वाद जव काठियावाडमे जाते है तो चित्रमें अेकदम परिवर्तन दिखाअी पडता है। वहाकी तुलनामे काठियावाडकी सस्थाओंके मकान विशाल भवन माने जायगे। विद्यार्थियोकी संख्या कर्नाटक, काठियावाड या सावरमती कही भी तीससे ज्यादा शायद ही हो। परंतु कर्नाटककी सादगी और अुद्योगमयता काठियावाड़में न पाकर मुझे खेद हुआ। लडके, लडकिया तथा शिक्षक — सभी रसिक दिखाअी देनेके लिअे वहुत चिन्तित दिखाअी दिये। सवर्ण तथा अवर्ण सभी तरुण-

तरुणियोको देखकर मेरे मनमे अेक ही प्रश्न अुठा कि समाजका सच्चा गुरु कौन है? और अुत्तर मिला कि रंगभूमिके नट और नटिया। मेरे बचपनमे जिस प्रकारके नृत्य, रास, कपडे तथा बालोकी भिन्न भिन्न फैशने नाटकमे लडके या लडकीका वेश धारण करनेवाले नटोमे दिखाअी देती थी, वे आज सारे समाजमे फैली हुअी रूढिया बन गअी है।

भावनगरके 'ठक्करबापा हरिजन आश्रम' ने मेरे लिअे दो-अढाअी घण्टोका कार्यक्रम रखा था। अुसमे मजीरे और पखावजके साथ गाया गया रास था, दोहे थे, बैठे-बैठे गाये गये लोकगीत थे, और पनिहारिन (बल्कि पनिहारे) का पानीका बेडा सिर पर रख कर किया गया नृत्य था। मेहमानको अपनी विशेषता दिखलानेकी दृष्टिसे यदि यह व्यवस्था की गअी हो, तो मुझे खेदके साथ कहना होगा कि मेरा मन अुससे खुश नही हुआ। अिसका अर्थ यह नही कि वे भजन, रास, दोहे, लोकगीत या नृत्य अच्छी तरह सम्पन्न नही हुअे थे, या अुनमे कला नही थी। पानीके बेडेके साथ किया गया नृत्य साधारण नही था। परन्तु जब मैं यह विचार करता हू कि हम लडके-लडकियोमे किस प्रकारके शौक बढा रहे है, हम कैसे छिछले रसोन्माद और बेढगी भावना-शीलताके पीछे पडे हुअे है, तो सौंदर्य और सस्कारिताका भास करानेवाली यह शिक्षा मुझे अप्रसन्न कर देती है। अुसमे भी जब पानीका बेडा सिर पर रखकर नाचनेवाले लडके (अेक सोलह-सत्रह वर्षके युवक) ने 'साहेली, मने रास रम्याना कोड'* या अैसा ही कोअी गीत गाना शुरू किया और अुसके साथ वह स्त्रैण हावभाव बतलाने लगा, तब यह सारी प्रवृत्ति जिस विचारशून्य रीतिसे चल रही है, अुसका मुझे दुःख हुअे बिना नही रहा। गुजरात-सौराष्ट्रकी सस्कृतिमें यदि सारी विशेष भावना है, तो मेरी नम्र रायमें यह कोअी बहुत अच्छी विशेषता नही है।

---

* हे सखी, मुझे रास खेलनेकी अुत्कट अिच्छा है।

कर्नाटककी अपेक्षा काठियावाडकी हरिजन सस्थाओमे खादी भी कम दिखाअी दी, और अैसे विद्यार्थी मुश्किलसे दिखाअी दिये जो भली-भाति कातना जानते हो, या जिनके पास सूतका अितना सग्रह हो जिसे बुनवाया जा सके।

काठियावाडमे अेक प्रकारकी जागृति मुझे विशेष प्रमाणमें दिखाअी दी। डॉ० आम्बेडकरने हरिजनोके धर्म-परिवर्तनके सम्बन्धमें जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, अुस पर छोटी तथा बडी अुम्रवाले हरिजनोने मुझे हर जगह प्रश्न पूछे। हरिजनोको अस्पृश्यता कितनी चुभने लगी है और अुसका अन्त करनेके लिअे वे कितने अधीर हो गये है, यह अुनके प्रश्नोसे तुरन्त मालूम हो सकता है। अुनका कहना था कि अस्पृश्यता कम हुअी है और अुसे मिटानेके लिअे गाधीजीने अपार श्रम किया है, यह मानते हुअे भी यह नही कहा जा सकता कि कितने समयमे अुसका पूरी तरह नाश हो जायगा। अिसलिअे वे पूछते है कि हम अिस अपमानित स्थितिमें कब तक रहे। अुन्हे मैंने धीरज रखनेके लिअे समझाया है, फिर भी प्रश्न पूछनेवाले भाअियोंके प्रति सहानुभूति पैदा हुअे बिना नही रहती। मै यदि हरिजन पैदा हुआ होता, तो मै भी अितना ही अधीर हो जाता।

हरिजनबन्धु, १५–१२–१९३५

४

बालकोंके नृत्य और नाटक

कराचीमे हाल ही जो गुजराती साहित्य सम्मेलन हुआ, अुसके निमित्तसे हमे दो रात बालकोके नृत्य और नाटक देखनेका अवसर मिला। शृगार और हावभावकी सादगीकी मर्यादाके साथ यदि बालक अिस प्रकारके नाटक, सगीत, रास आदि दिखायें, तो अुनमे मैं दोप नही मानता। अिसलिअे जब कभी सुविधा होती है, मैं अैसे समारभोमे शरीक हो जाता हू। अिन समारभोमें शरीक होनेका अेक अुद्देश्य यह भी होता है कि अुससे बालकोकी पढाअी किस प्रकार चल रही है अिसका तथा बालको, शिक्षको और प्रेक्षकोके मानसका अवलोकन करनेका मौका मिलता है। अिसीके साथ निर्दोप मनोरजनका लाभ भी रहता हैं।

पहली रातको केवल बालिकाओके ही प्रयोग थे। अुनमे नृत्य, सगीत, अभिनय, रगभूमिकी सजावट और वस्त्रोंके शृगार, अिन सबमे प्रेक्षकोको मोहित करनेवाली कला (युक्ति) की भरमार थी। अुन प्रयोगोको देखकर प्रेक्षक बाग-बाग हो गये थे। श्री मुनशीके हाथ सात बालिकाओको जो पदक दिलवाये गये, अुन परसे प्रेक्षकोंके आनन्दका माप निकाला जा सकता है। गुजरातके प्रख्यात कला-मर्मज्ञ यदि अुसकी कद्र करनेके लिअे वहा अुपस्थित न होते, तो भी मुझे विश्वास है कि सामान्य प्रेक्षक भी अुन प्रयोगोकी प्रशसा किये बिना न रहते।

दूसरे दिन शारदा-मन्दिरके बालक-बालिकाओने नाट्य-प्रयोगोंका अभिनय किया। ये प्रयोग मन्दिरकी ओरसे कराचीमें तीसरी या चौथी बार किये जा रहे थे। अुनमें काम करनेवाले अेक बालकने अपना काम बहुत ही सुन्दर ढगसे किया था। अिसने पहले भी [illegible] जनता अुस विद्यार्थीको पाच-छह पदक दे चुकी थी, और छठा या सातवा पदक अुस रातको काकासाहबके हाथसे दिया गया। अिस बालकको जो प्रसन्न [illegible],

वह सर्वथा अुचित थी। लेकिन छोटी अुम्रमे वालकोकी किस हद तक सार्वजनिक प्रशंसा की जानी चाहिये, यह अेक अलग प्रश्न है। अिस प्रश्न पर शिक्षा-शास्त्रियोको विचार करना है। काकासाहवने पदक देते समय अुस वालककी प्रशंसा भी की और अपने कलामय ढगसे अुस वालकके शिक्षकोको यह सलाह भी दी कि अुसके हितकी ओर दुर्लक्ष न किया जाय।

अिस प्रकार वे नाटच-नृत्यके शिक्षणके सफल प्रयोग कहे जा सकते है। केवल कराचीके समाजने ही नही, परन्तु सारे गुजरात और महागुजरातके साहित्यकारो, कलाकारो, गायको, विवेचको और चिन्तकोने भी अुनकी परीक्षा करके प्रमाणपत्र दिये है।

फिर भी मुझे सकोचके साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि जिस समय सारी नाटकशाला रसानन्दमें मग्न दिखाओ देती थी, अुस समय मेरे मन पर कुछ ग्लानिकी छाया फैल रही थी। अैसी ही भावना जव मैंने श्री नानाभाओ भट्टमे भी देखी, तव मेरा यह खयाल दूर हुआ कि सारे रसिकोंके वीच मै ही अकेला रस-मूढ हू। अिस विचारसे मुझे थोडा आश्वासन मिला कि मेरे साथ अेक अैसे वडे भागीदार है, जो शिक्षा-शास्त्रीके नाते प्राप्त की हुओ अपनी साखको खो सकते है।

अिससे कराचीकी जनता यह न समझे कि अुसके मधुर अतिथि-सत्कारका आनन्द लेनेके वाद घर जाकर मैं अुसकी निन्दा करना चाहता हू। सारे गुजरात — या लगभग सारी दुनियाके वडे शहरोमें — जिस प्रकारका शिक्षण आज चल रहा है, कराचीने अुसीकी झाकी सुन्दर ढगसे कराओ। वम्वओ, अहमदावाद, भावनगर और वर्धामे भी नृत्यो और नाटकोंके अैसे प्रदर्शन किये जाते है। साधनोंके मुताविक तड़क-भड़क कम-ज्यादा भले हो, किन्तु वृत्ति या दृष्टिमें फर्क नही होता। अर्थात् यह आजके जमानेकी अेक फैशन ही हो गओ है। अिसलिअे मेरी टीका कराची पर नहीं, हमारी आजकी फैशन और मनोदशा पर है।

हम अपनी अुगती हुअी पीढीको किस दिशामे मोडना चाहते हैं, अिस पर विचार करनेके लिअे मैं शिक्षको, पालको और पुरस्कार देकर बालकोकी कद्र करनेवालोसे नम्र विनती करता हू। मेरा यह नम्र मत है कि जिन बालक-बालिकाओको अुनके अभिनयके लिअे पारितोषिक दिये गये और जिनकी कच्ची अुम्रमे अत्यत प्रशसा और प्रसिद्धि की गअी, अुनके हितका हमने पूरा खयाल नही किया। यदि माता-पिता, शिक्षको और दर्शकोकी यह अिच्छा हो कि वे बालक और भी सुन्दर नृत्य और नाटक बताते रहे और अुत्तम नट-नटी बने, तब तो यह बात समझी जा सकती है। परन्तु मैं मानता हू कि पदक पानेवाले बालक नट-नटीका जीवन बितावे, अैसा शायद ही कोअी पालक और शिक्षक चाहते होगे। अधिकतर पालको और शिक्षकोकी वृत्ति तो यही होगी कि ये अभिनय बालकोंके जीवनका बाहरी अग ही रहे, वे वर्षमें दो-चार बार अैसे दृश्य बतलाकर शान्त हो जाय और अुन्हे अिनका चसका न लग जाय।

नाटक, नृत्य, सगीत, चित्रकला आदि ललित कलायें दो रूपोमें विकसित की जाती है अेक अपने सन्तोषके लिअे, और दूसरे, धन्धेके लिअे। धन्धेके लिअे अिन कलाओका विकास करनेवालोकी पद्धति और अुसका मापदण्ड निर्धारण करनेमे आश्रयदाताओकी रुचियो और अपनी कलाको मोहक बनानेका खयाल रखा जाता है। अुसमें अुत्तेजक हावभाव, शृगार, शोभा, आदिके साथ ही कलाको मिला दिया जाता है। बहुत बार कला गौण होती है और कृत्रिम शोभा तथा मद पैदा करनेवाली सामग्री तथा चेष्टाये ही मुख्य होती है। अुनके साथ यदि नरसिंह महेता, तुकाराम जैसोंके जीवनचित्र बनाये जाते हैं, तो केवल अिसीलिअे कि भले आदमी भी अुनकी ओर आक-र्षित हो और अुनका विरोध कम हो। जो प्रेक्षकोकी भोग-वृत्तियोका पोषण करना चाहता है, अुसके अपने जीवनमें तो अुनका अनिवार्य हो ही जाता है। अिनका नतीजा यह होना है कि बेचारे [illegible]

जीवन चरित्रकी दृष्टिसे अत्यन्त गिर जाता है। अुन्हे पेट भरनेके लिअे लोगोकी हीन रुचियोको वढाना और अुनका पोषण करना पडता है और खुदको भी अुनका शिकार वनना पडता है।

शालाओमे अुत्सवोके समय दिखाये जानेवाले नाटको और नृत्योका शिक्षण धन्धेके लिअे नही दिया जाता। अिसलिअे सिनेमा, रगभूमि, नृत्यशाला आदिके योजक शालाके गुरुजन न होने चाहिये। अर्थात् शालाके नाटच-समारभोमे अुनके अनुकरणका विचार भी नही होना चाहिये, तव फिर मोह तो रखा ही कैसे जा सकता है? अिसके विपरीत, सभव हो तो शालाके कला-शिक्षकोका आदर्श यह सिद्ध कर दिखानेका होना चाहिये कि सादे-से-सादे साधनो और अत्यन्त शिष्ट और सयम-पूर्ण अभिनयसे भी कला पूर्ण रूपमे विकसित की जा सकती है और अुसका पूरा आनन्द लिया जा सकता है। और अैसा करके अुन्हे राजस वृत्तिके कलाकारो और प्रेक्षकोको शुद्ध रुचिका स्वाद चखाना चाहिये। यह तो मै आनन्दपूर्वक स्वीकार करता हू कि अुस छह-सात पदक पानेवाले विद्यार्थीका अभिनय अिसी प्रकारका था। अुसकी कलाको विकसित करनेके लिअे रग-विरगे प्रकाशो, भडकीली पोशाक, सुन्दर परदे और दूसरी साधन-सामग्रीकी अपेक्षा न थी। यदि ये चीजें जोड दी जाती, तो मेरी दृष्टिसे वह भद्दा लगता। परन्तु अुस विद्यार्थीका अभिनय तो सारे अभिनयोमे अपवाद ही था। साधारणतः मेरा यह अनुभव है कि हमारे तरुणो और वालकोने वेश-भूषा और नृत्य-नाटच आदिमे रगभूमिके दिग्दर्शको और नटोको ही मानो अपना गुरु मान रखा है।

अेक पक्षका कहना तो यह है कि विद्यार्थियोको पारितोषिक देनेकी प्रथा वन्द हो जानी चाहिये। किन्तु यदि हम पारितोषिक देनेकी प्रथाको छोड न सकते हो तो अुसमें विवेक तो रखना ही चाहिये। पारितोषिक तीन शुभ हेतुओसे दिये जा सकते है पानेवालेको आथिक सहायता पहुचाना, अुनके प्रयत्नको प्रोत्साहन देना, और न पाने

वालेमे सद्-अीर्पा पैदा करना। तीनोंके लिअे योग्य अवमर हो सकते हैं। अैसे प्रसगो पर दिये हुअे पारितोषिक क्षम्य माने जायगे। गरीव मनुष्यको आर्थिक लाभ पहुचानेकी आवश्यकता हो सकती है। अिस प्रकार गरीब और होशियार विद्यार्थीके लिअे पारितोपिक या छात्र-वृत्तिकी योजना हो सकती है। कभी-कभी शक्तिशाली किन्तु मन्द पुरुषार्थीके लिअे भी पारितोपिकका प्रोत्साहन अुपयोगी हो मकता है। जो श्रम सभी कर सकते हो, जो सवमे करवाना भी अुचित हो, लेकिन पुरानी रूढियोके कारण न किया जाता हो, अुसके लिअे पारितोपिक देकर दूसरोमे अुत्साह पैदा करनेकी आवश्यकता होती है। मैं अिस वातकी कल्पना कर सकता हू कि शिक्षा तथा अुद्योगोके प्रति रुचि वढानेके लिअे अैसा करना पड सकता है। लेकिन खुशहाल घरोंके विद्यार्थियोको नाटक, नृत्य जैसे अुत्साहमे सीखे जानेवाले विपयोके लिअे पारितोषिक देनेकी जरूरत नही होती। अुसमे अच्छा काम करनेवालेकी कद्रमे प्रशसाके दो शब्द कहना ही काफी समझना चाहिये। प्रशसामे भी अितना सयम रखना चाहिये कि विद्यार्थीका दिमाग फूल न जाय।

आखिरमें, नाटक, नृत्य, सगीत आदि सभी भोग-वृत्तिसे सवध रखनेवाली कलाओंके वारेमे हमे यह न भूलना चाहिये कि राष्ट्रका भविष्य सयमी प्रजाओंके हाथमे होता है। अिसलिअे हमारी कलाओंको विकसित करनेका तरीका सयम-वृत्तिका पोपण करनेवाला ही होना चाहिये। अेक भोग दूसरी भोग-वृत्तियोको अुत्तेजित करता है। अिस-लिअे नाटककी वेश-भूपाकी अैसी योजना न करनी चाहिये जिससे वालक छैल-छवीला वन जाय।

जिनका यह खयाल हो कि अितनी मर्यादाओंमे रहकर कलाका विकास करना कलाको कुठित कर देने जैसा है, वे मेरी अल्पमतिके अनुसार कलाको शायद ही समझते है।

हरिजनवन्धु, १६-१-१९३८

५

अितिहासकी शिक्षामें यथार्थताकी मात्रा

अिस विषय पर पिछले दो अंकोमें चर्चा हुअी है। श्री कालिदासभाअीने प्रश्न अुठाया है कि अितिहास पढाते समय राष्ट्र-भावना और नीति-भावनाके वीच भिन्न भिन्न दृष्टियोंसे विरोध दिखाअी दे तव क्या किया जाय? अिसके अुत्तरमें अेक भाअीने अकारण ही 'साधक' नामसे अपना परिचय देकर पाठकको चौंधिया देनेवाली शब्दाडम्बरपूर्ण और स्वदेशाभिमानी शैलीमें अुस आदतका निषेध किया है, जिसके कारण हम अेक ही मुख्य साध्यसे चिपटे रहनेके वजाय अुनकी दृष्टिसे नीति, मानव-प्रेम आदिके अलग-अलग अप्रस्तुत मुद्दोंको अुठाकर परेशान होते हैं।

अितिहासकी शिक्षाके वारेमें मेरे खयाल कुछ अलग हैं। अुसकी मैं आज चर्चा नहीं करूंगा। परन्तु मैं समझता हूं कि अिन दोनों मित्रोंने जो प्रश्न अुठाया है, अुस पर यदि कोअी विचार किया जाय तो वह आसानीसे हल किया जा सकता है।

जीवनमें अैसे वहुतेरे प्रसंग आते हैं जब हमें धर्म और स्वार्थके बीच चुनाव करना होता है; अितना ही नहीं, दो अुदात्त भावनाओं या कर्तव्योंके वीच विरोध जैसा दिखाअी देता है।

जैसे-जैसे हम धर्माधर्मकी वारीकीमें अुतरते हैं, वैसे-वैसे 'किं कर्म किमकर्म' के प्रश्न वार-वार अुठते रहते हैं; और किसी निश्चय पर पहुंचनेका स्पष्ट मापदण्ड न मिलने पर निर्णय करना कठिन हो जाता है। अिसका अेक निर्णय, जैसा श्री साधकने कहा है, यह है कि अनेक मुद्दे खड़े ही न किये जाय, अेक साध्यसे चिपटे रहें, क्रिया-रीतिके वारेमें निकम्मी खींचतान न करें। वेशक, जो अिस तरह 'येन केन प्रकारेण कार्यं साधयामि' के निर्णय पर अटल रह सकते हैं, अुनके

लिअे यह रास्ता स्पष्ट हो जाता है; किन्तु जिन्हे धर्माधर्मका विचार खाजकी तरह चित्तमें खुजली पैदा करता है, वे अिस प्रश्नको अुठाये विना कैसे रह सकते है? अिस प्रश्नके अुठ जानेके बाद यह कहना निरर्थक है कि 'अैसा परेशान करनेवाला प्रश्न अुठाया ही क्यो गया?'

मतलब यह कि जब प्रश्न अुठ ही गया है, तो अुसका समाधान धर्मयुक्त मार्गसे मिलने पर ही अैसे (भले अुसे भावुक कहे) चित्तको सन्तोष हो सकता है।

अिस सम्बन्धमें मेरा खयाल है कि यदि अेक बातका दृढ निश्चय हो जाय तो धर्माधर्मका निर्णय करनेका मार्ग प्राय. स्पष्ट हो जाता है। मनुष्यता सबसे पहला धर्म है। मनुष्यताका हनन करके न मैं स्वदेश-सेवा करूंगा, न माता-पिताकी सेवा करूंगा, न भारतीयपन बतलाअूंगा, और न अपना हिन्दुत्व ही बताअूंगा। मनुष्यता किस बातमें है, अिस अुदात्त दृष्टिसे विचार न करके जब हम किसी नीचे दृष्टिबिन्दुसे विचार करते हैं तब दो विरोधी धर्म या भावनायें पैदा होने जैसा लगता है। अितना तो किसी विशेष परिस्थितिमें हमारा धर्म क्या है, यह निर्णय करनेके विषयमें।

दूसरेके बारेमें निर्णय करनेके लिअे अिस पर दो तरहसे विचार करना पड़ेगा मनुष्यताकी दृष्टिसे अुसका कर्तव्य कैसा था? और, अुसका अुद्देश्य अेक बार स्वीकार कर लेने पर अुसके कृत्योको किस दृष्टिसे देखना चाहिये?

अिस संयुक्त दृष्टिसे श्री कालिदासभाअीके अुद्धृत किये हुअे तीनो दृष्टान्तोका विचार करे।

क्लाअिवने अैसे छल-प्रपंच किये, जो मनुष्यको शोभा नही दे सकते। और यदि हम मानवताकी पूजा करते हो, तो स्वदेशके लिअे भी हम अैसे अनैतिक काम न करेंगे। मैं समझता हूं कि शिक्षकका यह अुत्तर अुचित था। परन्तु विद्यार्थी मानवताके दृष्टिबिन्दुसे विचार नहीं करता था। अुसने राज्य-लोभको अुचित वासना माना था। और अैसा मान

कर ही अुसने पूछा था कि 'यदि हम विदेशोंसे व्यापार करे, हमारा राज्य हो और हमारे पीछे सत्ताका बल हो तो हम भी वैसा ही करेंगे न?' अिसलिअे अुसके दृष्टिबिन्दुको ध्यानमे रखकर हम अुसे यो कह सकते है कि 'हा, भाअी, यदि राज्य-लोभको हम अेक बार अुचित वासना मान ले, तो क्लाअिव जैसे ही या अुनसे भी ज्यादा दुष्ट कृत्य हमारे हाथसे भी हो सकते है। अिसलिअे क्लाअिवको या राज्य-लोभके वश हुअी अंग्रेज प्रजाको दोष देनेकी आवश्यकता नही। दोष है राज्य-लोभका। अुनकी दृष्टि मनुष्यता तक नही पहुचती। हमसे हो सके तो हम अपनी दृष्टि मनुष्यता तक पहुचावे।'

अिसीके साथ शिक्षक स्वराज्यकी वासना और राज्य-लोभकी वासनाके बीचका भेद भी विद्यार्थीके सामने स्पष्ट कर सकता है। मेरे घर पर कब्जा रखने और चला गया हो तो अुसे फिरसे पानेका प्रयत्न करना अेक बात है, और अपने घरके अलावा मैं पडोसीके घरका भी कब्जा लेनेका प्रयत्न करू यह दूसरी बात है। राज्य-लोभ — दूसरेके घर पर कब्जा करनेका प्रयत्न करना — जड़से ही मनुष्यताके विरुद्ध है; तब अुसके लिअे जो-जो अुपाय किये जायं अुनमें यदि मनुष्यता का ज्यादासे ज्यादा भग हो तो कोअी आश्चर्य नही। अपने घरका कब्जा लेने या रखनेका प्रयत्न यथार्थमे ही मनुष्यताका विरोधी नही है; मनुष्यता (यहा धर्म-नीति) की रक्षा करके भी वह प्रयत्न किया जा सकता है। यदि मेरा मनुष्यताका आग्रह दृढ हो तो मैं मनुष्यताका पालन करके ही वह प्रयत्न करूगा। यदि वैसा न हो सके तो मैं स्वराज्यका आग्रह भी छोड दूगा। यदि मेरा मनुष्यताका आग्रह स्वराज्यकी वासनाकी तुलनामे निर्बल हो तो मैं दूसरे अुपाय भी अपनाअुगा। परन्तु स्वराज्य-लोभ राज्य-लोभसे सदा ही अधिक क्षम्य माना जायगा।

दूसरा प्रश्न है हिन्दू-मुस्लिम अेकताका। श्री नायकजी कहते है कि अितिहासमें अिस अेकताकी विरोधी जो बातें लिखी हुअी है — जैसे

मदिर तोड़नेकी, जजियाकी, या दूसरे जुल्मोकी — अुन्हे दवा दिया जाय। विद्यार्थियोको अुनसे अनभिज्ञ ही रखा जाय। 'यथार्थता' की मूर्ख या अधी पूजा न की जाय। अिस सम्बन्धमे श्री साशकने जो दलील दी है, वह अेक दृष्टिसे ठीक है। परन्तु अैसा लगता है कि अुनकी दृष्टि छोटी अुम्रके विद्यार्थियो पर ही है। मार्स्डन या विट्ठलदास पटेलके अितिहासकी आवृत्तिया अिस ढगसे लिखी जा सकती है कि अुनमें धर्मके पुराने झगडोका अुल्लेख ही न रहे। किन्तु मार्स्डन या विट्ठलदास पटेलके अितिहाससे अितिहासकी शिक्षा पूरी नही हो जाती। अितिहासके मूलभूत आधारोका और अुनके आधार पर लिखे हुअे वडे अितिहासोका नाश नही हो सकता। मूलभूत आधारोको विद्यार्थी न खोजे, यह आज्ञा नही निकाली जा सकती। वह तो अव —

"मुखेथी रे मानवी वेण मूक्यु,
फरीथी ते ते न गळाय थूक्यु"*

की तरह अगोप्य हो गया है। और अिस तरह सत्यको छिपानेका मिथ्या प्रयत्न करना वृथा है। मुझे याद है कि बी० अे० के रसायनशास्त्रके वर्गमे जब पहले दिन मै गया, तो हमारे अध्यापकने कहा था, 'आपने मैट्रिकमे रसायनशास्त्र पढकर जो कल्पनाये बाधी हो अुन्हे यदि आप भूल न गये हो तो आजसे कृपया भूल जावे।' अुस दिन मुझे बुरा लगा था। मुझे लगा था कि मैट्रिकमे हमारे साथ अितना धोखा क्यो किया गया? भले अेक ही पाठ पढाया गया हो, लेकिन जो पढाया गया वह सच्चा ही क्यो नही पढाया गया?' अिसी तरह वडे अितिहासोका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी श्री साशकसे कहेगे कि 'हमे हिन्दू-मुसलमानोके झगडो या सूरतकी लूटका ज्ञान न करानेका कारण क्या है?' फिर जैसे आज श्री वसुने अग्रेजी अितिहासकारो द्वारा छिपाअी हुअी वातोको चुन-चुनकर प्रकाशमे लाना शुरू किया है, वैसा ही कोअी दूसरा विद्यार्थी क्यो नही

* हे मानव, मुहसे वचन निकल गया, सो निकल गया। जो थूक दिया अुसे फिरसे निगला नही जा सकता।

निकल सकता ? अिसलिअे जानी हुअी और प्रस्तुत हकीकतोको छिपानेका प्रयत्न न करके अुन्हे विद्यार्थियोंके सामने रखकर ही कोअी मार्ग निकालना ठीक है।

सत्य यह है कि 'सद्धर्मकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है' अिस सूत्रको हिन्दुओ और मुसलमानोने तथा दोनो धर्मोने स्वीकार किया है। किसे सद्धर्म कहा जाय और किसे अधर्म, अिस सम्वन्धमें हर धर्मके अनुयायी अपने ही प्रसिद्ध शास्त्रोसे अपनेको बंधा हुआ मानते है। जैसे अनेक हिन्दू प्रामाणिकतासे यह मानते है कि 'अंत्यजको छुआ नही जा सकता' मनुस्मृतिके अिस श्लोकको वे ठुकरा नही सकते; अुन पर स्ववुद्धिसे या मानवताके खयालसे पैदा होनेवाली दलीलोका असर नही होता, अुसी प्रकार अनेक मुसलमानोकी अपने माने हुअे कुछ प्रामाणिक ग्रन्थोके आधार पर अैसी प्रामाणिक मान्यता वन गअी थी — सभव है आज भी हो — कि मूर्तिपूजा अधर्म है, सच्चे अीश्वरका द्रोह है। अिस मान्यताका सीधा परिणाम यह हुआ कि शास्त्रमे श्रद्धा रखनेवाले वादशाहोने 'परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसस्थापनार्थाय' अपना जन्म हुआ मानकर मदिर तोडे, हिन्दुओ पर जजिया कर लगाया, और मूर्तिपूजकोको अनेक तरहके कष्ट दिये। मनुष्य अपनी वुद्धिको मनुष्यता और शास्त्र दोनोंके विचारोंसे और मनुष्यताके विचारोको वुद्धिसे तेजस्वी वनानेके वदले यदि स्ववुद्धि और मनुष्यताको शास्त्रके चरणोंमें रखकर ही सन्तोष माने, तो अुसका शास्त्राध्ययन तेजस्वी और सदैव वर्धमान (ever growing) न होगा, अुलटे अुसे मनुष्यताके विरुद्ध कर्मोंमें लगावेगा। अिनमें दोष ज्ञानियोंकी अवुद्धि—जडताका ही माना जायगा। और जव तक यह अवुद्धि या जडता कायम रहेगी, तव तक यदि अैसा ही होता रहे तो कोअी आश्चर्य नही।

अिसलिअे हिन्दू-मुस्लिम अेकताके प्रश्नको हल करनेके लिअे मुसल-मान वादशाहोंने हिन्दू धर्म और हिन्दुओंके साथ जो व्यवहार किया, अुसे

छिपानेसे क्या होगा? परन्तु अिन घटनाओका ज्ञान देनेके बाद भी हमे कहना चाहिये कि "मनुष्यतासे भी शास्त्रको बडा माननेवाली अबुद्धिका परिणाम देखिये। हिन्दुओने जब अपने-अपने पथके शास्त्रोको मानवतासे अधिक महत्त्वका माना, तब शैवोने वैष्णवो और वैष्णवोने शैवोके सिर फोडे। मुसलमानोने जब पथके शास्त्रोको मानवतासे बडा माना, तब शियाओने सुन्नियोके और सुन्नियोने शियाओके सिर फोडे, और अभी कुछ ही दिनो पहले अेक नवीन पथके नेताको मार डाला। अीसाअियोने जब पथके मन्तव्योको मानवतासे अधिक महत्त्व दिया, तब कैथोलिकोने प्रोटेस्टेण्टोको और प्रोटेस्टेण्टोने कैथोलिकोको जिन्दा जलाया। यदि ये सब शास्त्रोकी अपेक्षा मनुष्यताको — जीवधर्म, दयाधर्म, प्रेमधर्मको, मतके आग्रहको नही बल्कि अहिसाके आग्रहको — स्वीकार करते, तो अिन्हे निश्चित रूपसे समझमे आ जाता कि अिस प्रकारका बरताव किया ही नही जा सकता। शास्त्रोकी दृष्टिसे न देखकर यदि आप मनुष्यताकी दृष्टिसे देखना स्वीकार करे, तो आपको तुरन्त ही समझमें आ जायेगा कि अस्पृश्यताके कारण समाजका अेक अग अैसा है, जो दुःखी है, दरिद्री है, और जिसकी अुन्नतिके सभी मार्ग बन्द है। अुन्हे छूनेसे सभव है अुच्च वर्णोंकी मुश्किलें बढ जाय, सभव है अुनके कुछ सुधरे हुअे रीत-रिवाज, शुद्धता आदिका आसानीसे पालन न किया जा सके, लेकिन अिसमे शक नही कि अिससे अछूतोकी सुविधाये तो बढ ही जायगी। और अिस तरह दूसरेका सुख बढानेमे ही मानवता है। अुसी प्रकार मुसलमानोंके शास्त्र भले गोवधको पाप न मानते हो, और हिन्दू शास्त्र दूसरे पशुओकी अपेक्षा गायको विशेष पवित्र माननेमें भूल करते हो, फिर भी जीवको मारनेकी अपेक्षा अुसकी रक्षा करनेमे किसी भी समय विशेष मानवता है। गायको ही क्यों बचाया जाय, बकरीको क्यो नही, यदि यह पूछा जाय तो बकरीको न बचानेमें हमारी मानवताके विकासमे न्यूनता है। परन्तु यदि अुस न्यूनताको यदि हम गोवध करके बढावें तो यह धर्म नही है। यदि

मै सत्य बोलनेको धर्म मानता हू तो अपने प्राणोको होम कर भी सत्य बोलनेमे मेरी मनुष्यता है, किन्तु मनुष्यताका धर्म यह नही कहता कि मै दूसरे झूठ बोलनेवालेको दण्ड दू। अुसी प्रकार यदि मूर्तिपूजामे मुझे अधर्म मालूम होता हो, तो प्राणोका खतरा अुत्पन्न होने पर भी मै मूर्तिके चरण नही छुअूगा। परन्तु जिन्हे अिस अधर्मके बारेमे विश्वास नही है, वे यदि मूर्तिके चरण छुअे तो अुन्हे दण्ड देनेमे मनुष्यता नही है।"

ये और अैसे ही दूसरे झगडोका अन्त अिन दो मार्गोसे हो सकता है या तो हम केवल शास्त्रोकी अपेक्षा मनुष्यताकी दृष्टिसे विचार करना सीखे, अथवा युरोपकी तरह शास्त्र — धर्माधर्म सब कुछ अेक ओर रखकर हम केवल धन-लाभ या भौतिक सुखप्राप्तिकी दृष्टिसे ही विचार करना सीखे। मनुष्यत्वकी अुन्नति किस प्रकार होगी यह निश्चित करना कठिन नही है।

अब हम सूरतकी लूटका विचार करें। मै जानता हू कि जिस ढगसे अितिहास पढाया जाता है अुससे सूरतके विद्यार्थियोके मनमे शिवाजीके प्रति तिरस्कार पैदा होता है। परतु अुसमे निष्कारण ही तिलका ताड किया जाता है। सत्य क्या है? शिवाजीको स्वराज्यकी स्थापना करनी थी। अुन दिनोमें सत्याग्रहका विचार भी पैदा नही हुआ था, जिससे अहिंसाके रास्ते स्वराज्यकी स्थापना की जाती। शिवाजीने हिंसाका मार्ग अस्वीकार नही किया था। स्वराज्य पैसेके बगैर तो स्थापित हो ही नही सकता था। अिसलिअे जैसे वनराजने किया या आजके अनार्किस्टोको करना पडता है, अुसी तरह शिवाजीने भी लुटेरोंकी पद्धतिसे अपने प्रयत्नका आरंभ किया। शिवाजीके सामने गुजराती, मराठी, हिन्दू या मुसलमानका प्रश्न नही था, जैसे अनार्किस्टोंके सामने बंगाली या मारवाडीका प्रश्न नही होता। जहा तक हो सके सरकारी — यानी शिवाजीके समयमें बीजापुर आदि दक्षिणके राज्यों या मुगल राज्योंका — खजाना लूटा जाय। अुससे काम न चले तो धनवान

शहरोंको लूटा जाय — अर्थात् स्वराज्यके नहीं, बल्कि मुगलमानोंके। अुस समय सूरत बहुत ही समृद्ध शहर था। वह मुसलमानोंका था। अिसलिअे शिवाजीने अुसे लूटा, जैसे अनार्किस्ट मालदार बंगालियोंको कलकत्तेमें लूटते हैं। शिवाजीने गुजरातियोंको या गुजरातियोंके सूरतको लूटा ही न था। अुन्होंने तो मुगलोंके सूरत और मुगल प्रजाको लूटा था। सूरत गुजरातमें था, यह तो अेक संयोग ही माना जायगा। वह कोंकणमें होता तो भी शिवाजी अुसे लूटते। शिवाजीको गुजरातियोंसे दुश्मनी नहीं थी, सूरतसे दुश्मनी नहीं थी, अुनकी तो मुगलोंसे दुश्मनी थी, और अुन्हें पैसेकी जरूरत थी। सूरत मुगल राज्यमें था और अुसमें पैसा था। अिसलिअे सूरत अुन्हें लूटने योग्य मालूम हुआ। अुसमें गुजराती लूटे गये, यह तो अेक अैसी अड़चन थी जो टाली नहीं जा सकती थी। अुसे यदि गुजराती लोग दुश्मनी समझें, तो यह अुनकी भूल ही होगी। यदि बोरसदके बाबरा डाकूमें वनराज या शिवाजी जैसी स्वराज्यकी महत्त्वाकांक्षा होती, नीतिमत्ता होती और अुसका पासा सीधा पड़कर वह स्वराज्यकी स्थापना कर देता, तो क्या खुद बोरसदके लोग ही अभिमानके साथ 'वीर बाबरा' कहकर अुसका नाम नहीं लेते? हिंसाकी राहसे स्वराज्य स्थापित करनेवालोंको आरंभमें लूट-पाट करनी ही पड़ती है, अैसा मानकर बोरसदके लोग भी अपनी लूटको अुदारतासे भूल जाते और अुसका यशोगान करते।

अिस प्रकार सभी हकीकतें बताते हुअे भी मेरी समझमें तीनों किस्सोंको योग्य दृष्टिसे विद्यार्थियोंके सामने पेश किया जा सकता है।

धर्माधर्मका अपने लिअे निर्णय करनेमें मनुष्यताको ही महत्त्व दें, और दूसरोंके हो चुके व्यवहारके बारेमें अुनके दृष्टिबिन्दुको समझकर विचार करनेका प्रयत्न करें, तो मुझे लगता है कि अैसी कठिनाअियां बहुत-कुछ हल हो सकती हैं।

नवजीवन, केळवणी अंक, २७-९-१९२८

६

'पगदंडी' की प्रस्तावना

श्री नानाभाअी भट्टकी पुस्तककी प्रस्तावना मैं अपनी धृष्टता प्रकट करनेके लिअे नही लिख रहा हू, बल्कि अिसलिअे लिख रहा हूं कि मेरे मनमे अुनके प्रति जो आदर है वह प्रकट हो और अुन्होने जो अिच्छा बताअी है अुसे मान कर मुझे आत्म-सन्तोषका अनुभव हो।

श्री नानाभाअीने जब शिक्षाके क्षेत्रमे प्रवेश किया, तब मैं अंग्रेजीकी चौथी या पाचवी कक्षामे पढता हूगा। अुन्होने तो पढते-पढते ही पढाना शुरू कर दिया था और डिग्री मिलनेके पहले ही अपने जीवनका कार्य निश्चित करके अुसमे प्रविष्ट हो गये थे। आज तक वे अुसी कार्यमे लगे हुअे है। अुनके परपरागत सस्कार भी अुस कार्यके अनुकूल थे और योग्य परिस्थितिया भी अुनके लिअे तैयार होती गअी। वह कार्य अुनकी प्रकृतिके अनुरूप — स्वभाव-नियत था। अुसीको अुन्होने बुद्धिसे हेतुपूर्वक वरण करके विशेष रूपमे अपनाया, और मन, वाणी तथा कर्म तीनोको अुसमे लगाकर वर्षो तक अुसीका अेकाग्र चिन्तन किया, अुसके लिअे आवश्यक सद्गुण और कुशलतायें प्राप्त की, अुस कार्यको चमकाया, अुस क्षेत्रमे महत्ता प्राप्त की, अपना विकास किया, और स्वकर्माचरण द्वारा मनुष्य किस प्रकार श्रेय-साधना कर सकता है अिसका अुदाहरण दुनियाके सामने पेश किया। साथ ही वे गुजरातमें शिक्षाके नवयुगके प्रवर्तक बने।

जो मनुष्य जीवनभर अेक ही कार्यमे लगा रहेगा, वह अुस क्षेत्रका अनुभवी तो बन ही जायगा। परन्तु सभी अनुभवी जागरूक रहकर — [illegible] अनुभव नही लेते। अधिकतर लोग तो अुस कार्यको अपनी जड़ आदत बनाकर अुसे अपने चित्तके तन्द्रिल भागका अंग बना देते हैं।

अपनी अुम्रके आखिरी हिस्सेमे यदि वे अपने अनुभवोका कोअी भाग किसीसे कहते है, तो वह अधिकतर किस्सो और चुटकलोके रूपमें होता है या अपनी सफलता-विफलताके परिणामस्वरूप अुस कार्यके सबधमे अुनका आशावादी या निराशावादी अतिम सार ही होता है। वे अपने पीछे आनेवालोको अुपयोगी हो सके अैसे दिशासूचक चिह्न बतानेका काम नही करते। यह काम तो जो जागरूक रहकर — स्मृतिपूर्वक काम करता हो वही कर सकता है।

अिस पुस्तकमे न तो श्री नानाभाअीके शिक्षकके रूपमें लगभग चालीस-पैतालीस वर्षके जीवनके मनोरजक किस्से या चुटकले है और न अुन्हे जीवनमे मिली हुअी सफलता-विफलताओका अन्तिम सारमात्र है। परतु ‘शिक्षा’ को जीवन-विज्ञानका अेक विशाल प्रदेश समझकर, अुस प्रदेशके अेक बुद्धिमान और सावधान किसानकी तरह हर क्षेत्रमे कहा किस प्रकारकी जमीन है — कहा मिट्टी है, कहा ककर है, कहा पत्थर हैं, कहा घास है, कहा गोखरू है, कहा काटे है, कहा अूचाअी है, कहा नीचाअी है, कहा सख्त जमीन है, कहा दलदल है, कौनसा हिस्सा किन किन चिह्नोंसे पहचाना जाता है — आदि बातोकी छानबीन करते-करते जो टिप्पणिया लिखते गये है, अुन्हीको यहा प्रकाशित किया गया है। जो भी मनुष्य शिक्षाके प्रदेशमे काम करेगा, फिर वह अुसे अुदर-निर्वाहके धधेके रूपमे अपनाये, या वह धन्धा करनेवालोको काम देकर अुनसे काम लेनेवाला मालिक (डिरेक्टर) बने, या अन्वेषणकर्ता वैज्ञानिक बने, अुसे अिस प्रदेशके किसी-न-किसी क्षेत्रका सामना करना ही होगा। अैसे सब लोगोके लिअे ये टिप्पणिया अभी कअी वर्षों तक अुपयोगी सिद्ध होगी। ये टिप्पणिया चालीससे भी अधिक वर्षोंमें जो अनुभव हुआ है अुस पर आजकी दृष्टिसे विचार करके नहीं लिखी गअी है। परतु जैसे अेक शोधक अपनी प्रयोगशालामे रोज जो प्रयोग करता है या अपनी निगरानीमे होते देखता है अुनकी जाच करता है, तथा अुन प्रयोगोके सबधमें अुस दिनके अपने विचार लिखता है

या जिनमें अनुभवसे सच्ची मालूम हुअी और वादमे गलत मालूम हुअी अपनी आजमाअिशे और विचारमाला भी रहती है, अुसी प्रकारकी ये टिप्पणिया है।

वादमे गलत सावित होनेवाली टिप्पणिया भी दो प्रकारकी होती है। जिन्हे हम जीवनकी भूले कहते है, अुनमे कुछ तो अैसी होती है जो वादमे विचार करने पर भले भूल मालूम हो, परतु यह दिखानेवाली होती है कि जिन परिस्थितियोमे वे कार्य हुअे थे अुनमें वैसा किये विना चल ही नही सकता था, अथवा जीवनके अुतने ही अनुभव और विकासकी स्थितिमें वैसा ही होना सभव था। अेसी भूले अेक रीतिमे भूलें नही, वल्कि विकासकी भूमिका ही होती है। अुस भूमिकामें वह कदम आगेकी दृष्टिसे सच्चा न होने पर भी अनिवार्य जैसा होता है। दूसरा प्रकार सच्ची भूलोका होता है। पाठक अुन्हे भूलके रूपमे समझ ही लेता है। लेकिन चूकि वैसी भूलें वार-वार होनेकी सभावना रहती है, अिसलिअे अुनकी टिप्पणिया दूसरोंके लिअे सकेतरूप वनती हैं।

अिस प्रकार शिक्षाके प्रदेशमे श्री नानाभाअी जिन-जिन पगडण्डियोंमे होकर गुजरे है अुन पर तथा श्री नानाभाअी, अुनके साथियो तथा समकालीन लोगोंके द्वारा वनी हुअी पगडण्डियो पर श्री नानाभाअीने जो चिह्न देखे है, अुनकी अिस पुस्तकमें नोंघ है। यों अिस पुस्तकको जो 'केळवणीनी पगदण्डी' (शिक्षाकी पगडण्डी) नाम दिया गया है वह सार्थक ही है।

समाप्त करनेके पहले श्री नानाभाअीकी अेक साहित्य-सेवाका भी अुल्लेख कर दू। हमारे देशके विद्वानोंमें यह फैशन हो गअी है कि किसी प्रचलित शब्दके यथार्थ होने पर भी अुसे अिसलिअे अशिष्ट बनाया जाता है कि वह रूढ हो गया है और अुसकी जगह कोअी नया शब्द गढा जाता है। अेक समय बालकोंको पढानेवालेके लिअे 'पण्डित' (गुजरातीमें 'पड्या', मराठीमें 'पन्त') नाम आदरसूचक माना जाता था।

फिर जब पडित, पड्या, पन्त शब्दोके लिअे विशेष आदरकी भावना पैदा करनेकी आवश्यकता हुअी, तो अुनमे 'जी' मिलाया गया। अिसके वाद मुसलमान कालमे देशी विद्या पढानेवालोके लिअे अुपयोग किये जाने-वाले अिन देशी शब्दोकी अपेक्षा अरवी-फारसीके पढानेवालोके लिअे वरते जानेवाले 'मेहता' तथा 'मुनशी' शब्द अधिक आदरसूचक माने गये। अिस प्रकार पण्डित और पण्ड्या 'मेहता' या 'मुनशी' वनने लगे। आगे चलकर अुन्हे भी विशेष आधारकी जरूरत पडने पर 'जी' का सहारा दिया गया। यो 'मेहताजी' और 'मुशीजी' सामान्य नाम वन गये। अिसके वाद आया अग्रेजोका जमाना। अुनकी शालाओमे तो 'मास्टर' ही हो सकते है। अिसलिअे मेहताजी कहलानेकी अपेक्षा मास्टर कहलानेमे विशेष अिज्जत मालूम हुअी। अितने पर भी कठिनाअी दूर न हुअी। क्योकि मास्टर तो वही कहा जायगा जो प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा देता है। कॉलेजमे पढाने-वालेको 'मास्टर' कहना सभ्यता नही मानी जा सकती। वहाका पढानेवाला तो 'प्रोफेसर' कहा जायगा।

फिर आया राष्ट्रीय जागृतिका जमाना। अिसलिअे हम अग्रेजी शब्दोको छोडकर सस्कृत व फारसीकी ओर मुडे। मास्टर-टीचरका अनुवाद हुआ 'शिक्षक', 'प्रोफेसर' का 'अध्यापक' (महाराष्ट्रमे आचार्य) और प्रिन्सिपालका 'आचार्य' (महाराष्ट्रमे मुख्य आचार्य)। 'मेहताजी', 'पतजी' तुच्छता वतलानेके लिअे अुपयोग किये जानेवाले शब्द वन गये। जमाना और आगे वढा। देशमे राष्ट्रीय शिक्षा फैली। अेक लकीरको मिटाये वगैर छोटी करना हो तो अुसके पास दूसरी वडी लकीर खीचनी चाहिये, अिस न्यायने अध्यापक शब्दने शिक्षक शब्दमें छोटापन ला दिया। शिक्षक शब्द छोडकर सभीको अध्यापक (या आचार्य) कहनेका युग आरभ हुआ। परतु प्रोफेसरोंकी अिस प्रकार अवगणना कैसे हो सकती थी? अुन्होने नअी [illegible] निकाली। वे अध्यापक न रहकर 'प्राध्यापक' या 'प्राचार्य' वन गये।

गुजरातने कअी वर्षो तक जिन्हे शामळदास कॉलेजके प्रोफेसर 'नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट' के नामसे और बादमे दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवनके आचार्य 'नृसिंहप्रसाद अुर्फ नानाभाअी भट्ट' के नामसे पहचाना है, अुन्होंने आंबलाकी ग्रामदक्षिणामूर्ति शालाके 'मेहताजी नानाभाअी भट्ट' के नामसे अपना परिचय देकर शब्दोके अिनिहासमे 'शाला' तथा 'मेहताजी' जैसे शब्दोको पुन. प्रतिष्ठित किया है।

जहा तहा अूच-नीचका भेद बतलानेवाली श्रेणियां खडी किये बिना हमें चैन ही नही पडता! अूच-नीच समझनेके लिअे जब दूसरा कोअी निमित्त हाथ नही लगता, तो हम केवल शब्द बदलकर ही काल्पनिक अूच-नीचपन खडा कर देते है। अुसमे हम साहित्य और शब्दोका विकास मानते है। किन्तु वास्तवमे हम अितना ही करते हैं कि तत्त्वत अेक ही काम करनेवाले लोगोमे कम-ज्यादा प्रतिष्ठाके कृत्रिम भेद निर्माण करके अुनमे अीर्ष्याके बीज बोते है। श्री नानाभाअीने अिस रूढिको तोडकर समाजकी अेक बडी सेवा की है।

'कोडियु', जून १९४६

शिक्षामें विवेक

तीसरा भाग

प्रश्न-चर्चा

१
विविध प्रश्न

[जो प्रश्न अुत्तरो परसे ही समझमे आ सकते है, अुन्हे अलगसे नही दिया गया है।]

१ जो शिक्षक सदा विद्यार्थी न रहे, वह सफल शिक्षक हो ही नही सकता। अिस बातमें वकील और शिक्षक समान है। अैसा अेक भी विषय नही है, जिसका ज्ञान अुसे अपने धधेमे अुपयोगी न हो। कानूनमे प्रतिदिन जो फेरबदल होते है, बडी अदालते जो नये-नये निर्णय देती है, अुनसे वकीलको सदा परिचित रहना पडता है। अुसी तरह शिक्षकको भी सदा ही शोधक रहना चाहिये। जो शिक्षक केवल पाठ्य-पुस्तके पढा देता है, वह तो शिक्षाका यत्रमात्र है। आजकल अधिकतर अैसा ही यात्रिक शिक्षण चलता है। वह शिक्षकोको सरल मालूम होता होगा; विद्यार्थियोको परीक्षा पास करनेमें भी सुविधा-जनक रहता होगा, परतु अुससे न तो शिक्षककी प्रगति होती है और न विद्यार्थियोकी। पाठ्य-पुस्तके धीरे-धीरे तो बनेंगी ही। आपका पहला दल है। आप अपने अनुभवसे अुन्हे तैयार करनेमे योग दे। परन्तु पाठ्य-पुस्तकोंके बिना शिक्षाकी गाडी रुक जायगी, अैसी लाचारी न मालूम होनी चाहिये।

२ अेक शिक्षकको अेक साथ अनेक वर्ग चलाने पडे, यह स्थिति अच्छी तो हरगिज नही कही जा सकती। यह पद्धति आर्थिक असुविधाके कारण ही चलती है। विद्यार्थियोकी सख्या कम हो तब भी यह रास्ता अपनाना पडता है। परतु यह सब हमारी दरिद्रताको प्रकट करता है। अिसमे पद्धतिका शास्त्रीय समर्थन नही है।

परतु अिस कठिनाअीको हल करनेके लिअे मैं बडे विद्या-र्थियोका छोटे विद्यार्थियोके शिक्षकके रूपमे अुपयोग करना अधिक पसन्द

करूगा। काफी शिक्षक होने पर भी मैं तो कहूगा कि होशियार बड़े विद्यार्थियोको कुछ न कुछ शिक्षाका काम सौंपना चाहिये। अिससे सवचित थोडा पाठ्यक्रम भी अुनके वर्गमे रखा जा सकता है। अिससे पढानेवाले विद्यार्थीकी शक्ति बढती है, अुसका अपना ज्ञान पक्का होता है, और बहुत बार यह भी अनुभव होता है कि बालक बडे शिक्षकके समझानेसे जो नही समझता, वह विद्यार्थीसे ज्यादा अच्छी तरह समझ जाता है।

आधे दिनकी शाला (शिफ्ट) की पद्धति भी व्यवस्थाकी असुविधा और समय तथा जगहकी किफायतकी दृष्टिसे ही जारी हुअी है। स्थानीय परिस्थिति जाने विना अिस पर मैं टीका नही कर सकूगा। परन्तु विद्यार्थी-शिक्षककी पद्धतिमें मेरा जरूर विश्वास है।

३ प्र० — हमारे यहा मुसलमान विद्यार्थियोको दो घण्टे अनिवार्य रूपमें अरबी सीखनी पडती है। अुनके लिअे अिस पढाअीके लिअे आवश्यक समय कैसे निकाला जा सकता है?

अु० — अिसका अुत्तर मैं नही दे सकता। सरकार और जिनकी माग पर अरबीका शिक्षण शुरू किया गया है, वे अिस पर विचार करके जो निर्णय करें अुसीके अनुसार चला जाय।

४ अिसमें शक नही कि कताअीका आरभ चरखेसे नही, तकलीसे होना चाहिये। शिक्षाशास्त्र और व्यावहारिक सुविधा दोनोकी दृष्टिसे बालकोंके लिअे तकली ही पहली सीढ़ी है। बालकोंको तकलीमें आनन्द आता है। वह फिरकनी और भँवरेकी बहन है। चरखेकी अपेक्षा तकली पर आसानीसे हाथ जम जाता है। और जिनका तकली पर हाथ जम गया अुनके लिअे चरखे पर हाथ जमाना बायें हाथका खेल है। लेकिन चरखे पर हाथ बैठ जानेके बाद तकली पर हाथ बैठाना अितना आसान नहीं है। क्योंकि अुसमें जबरदस्ती मन लगाना पड़ता है। व्यवहारकी दृष्टिसे देखें तो सबको चरखे देना और अुनकी मरम्मतकी व्यवस्था रखना कठिन है। अिसके अलावा, छोटे

नकलीको जाघ पर घुमानेमे जाघको खुली रखना पड़ता है। वह कुछ लोगोको सभ्यताकी दृष्टिमे अच्छा नही लगता, अैसा मैंने सुना है। यह तरीका अनिवार्य तो नही है, परतु यदि अनिवार्य भी हो तो क्या? जिस देशमे गरीबीके कारण चौबीसो घण्टे जांघ खुली रखकर स्त्री-पुरुष दोनोको जीवन बिताना पडता है, वहा यदि कताअीके समय चड्डी या धोती अूची चढानी पडे, तो अुसमे शर्म किस बातकी? व्यायामशालामे क्या करते है? तैरनेके समय क्या करते है? अिससे यही मालूम होता है कि अभी हमारी दृष्टि देहातकी ओर नही मुडी है। हमे अभी अपने आसपास सफेदपोश वर्ग ही घिरा दिखाअी देता है। लेकिन सूरत जिलेमे तो सफेदपोश वर्गोकी स्त्रिया भी कछौटा लगाकर समाजमें घूमती-फिरती है। सभ्यताके अैसे गलत खयाल हमे छोड देने चाहिये।

५. अुद्योगके समयमे हमे काम पर ही ध्यान रखना चाहिये। अिसमे शक नही कि अुस समय दूसरे विषय पढानेका लोभ रखनेसे काम बिगडता है या अुद्योगकी गति कम होती है। परतु अुद्योगसे सबध रखनेवाली बाते या बहुतेरी जानकारी अुसी समय बतलाअी जा सकती है। जाकिरहुसेन कमेटीने कहा है कि अुद्योगसे सबधित शास्त्र अुद्योगके समय ही सिखाया जाय। यह तो स्पष्ट है कि अिससे प्रत्यक्ष कामका समय अुतना कम होगा। अुद्योगके कुछ काम अैसे अवश्य होते है, जिनके साथ याद किये हुअे गीत-कविता वगैरा दुहराये जा सकते है। कोअी काम अैसा न होना चाहिये, जिसमें अुद्योगके कामसे ध्यान हटानी पड़े। अमुक समय तो केवल मौन रखनेका ही नियम होना चाहिये।

६. अैसा नहीं हो सकता कि कांग्रेसी सरकार राष्ट्रीय साहित्य स्कूलमें न आने दे। अैसी माग कीजिये।

७. शारीरिक सजा — यानी छडी या तमाचे मारना, चिमटी भरना, अुठक-बैठक करवाना वगैरा — की मनाही होनी चाहिये। यह हो सकता

है कि किसी लडकेको सुधारनेकी शिक्षकोमे ताकत न हो। अुसे शालामे निकाल देनेका प्रसग भी आ सकता है। लेकिन सजाका रास्ता अख्तियार करना अुचित नही है।

८ बालकको घरके लिअे अभ्यास देना मै कुछ अशमे आवश्यक मानता हू। अुसे स्वाध्यायकी आदत पडनी चाहिये। अलबत्ता, बालकके सारे बोझका ध्यान रखकर ही यह होना चाहिये। बालकने घर पर अभ्यास किया या नही, अैसी चिट्ठी अुससे मागनेका तरीका ठीक नही है। अुसमे झूठ ही बोलना पडता है।

९ बुनियादी शिक्षाका अभ्यासक्रम आसान है या कम है, यह कहना ठीक नही है। वह लगभग अग्रेजी-रहित मैट्रिकके बराबर है। अुलटे, सभावना यह है कि वह सात वर्षमे पूरा न किया जा सके। अत अुसे पूरा करनेके लिअे यदि अवधि बढानी पडे, सातके बदले आठ या नौ वर्ष करने पडे, तो अुसमें मुझे कोअी आपत्ति नही है।

१० बुनियादी शिक्षा जहा समाप्त होगी, वहासे माध्यमिक शिक्षाके पाठ्यक्रमके बारेमे विचार करना होगा। माध्यमिक शिक्षा यहासे आरभ होनी चाहिये, अैसा पहलेसे निश्चित करके बुनियादी शिक्षाको वहा तक लानेका यह अुलटा तरीका कैसे चल सकता है? लाखो बालकोको सात वर्ष तक पढनेके बाद ससारमे प्रवेश करना होगा। अुनके लिअे किस प्रकारकी और कितनी शिक्षा अनिवार्य और सभव है, अिसका विचार करके जो पाठ्यक्रम बनाया जाय वह बुनियादी शिक्षा है। जिन्हे आगे पढना हो वे वहासे आगे बढे, और अुनकी शिक्षाकी योजना बनानेवाले यह ध्यानमे रखकर अुनका पाठ्यक्रम तैयार करे कि वे कितना पढकर आये है।

११ सारी प्रजाके बालकोको छात्रालयोमे नही रखा जा सकता। यह अिष्ट भी नही है। अुत्साही और अच्छे शिक्षक अितना कर सकते है कि अमुक समयको छोडकर शेष समय विद्यार्थी शालामे रहे, वही सोये। परन्तु अैसा अनिवार्य कर देनेसे लाभ नही होगा। अिससे

विपरीत, अैसा नियम बनाना भी आवश्यक हो सकता है कि बालकोको रहने-सोनेके लिअे शालामे बुलानेके पहले शिक्षकको अिजाजत लेनी चाहिये। क्योकि खेदजनक सत्य यह है कि कभी-कभी शिक्षक बालकोको कुमार्ग पर भी ले जाते है। अिससे शिक्षकको अैसी अिजाजत देनेके पहले जाच-पडताल करना जरूरी होगा।

१२. धार्मिक शिक्षाके बारेमे 'हरिजनबधु' मे जो लेख छप चुके है वे आप देख ले। धार्मिक वृत्ति शिक्षकके जीवनसे पैदा होती है। अुसमें प्रार्थनाका स्थान है। परतु प्रार्थना धार्मिक वृत्तिसे हो तो ही। प्रार्थना अैसी रखी जाय जो सभी समझदार आदमियोको मान्य हो। जिन्हे धर्मके नाम पर झगडे ही करने हो अुन्हे सतुष्ट नही किया जा सकता। भिन्न-भिन्न त्योहार मनानेसे भिन्न-भिन्न धर्मोके बालकोको अपने धर्मकी खास-खास विशेषताये जाननेको मिलती है। अिसमे शिक्षक अुदार वृत्तिवाला और सब धर्मोके प्रति आदरभाव रखनेवाला होना चाहिये। तभी वह विद्यार्थियोंमें सच्ची धार्मिक वृत्तिका विकास कर सकेगा। नही तो वह अुनमे सकुचित धार्मिक अहकार बढायेगा।

१३. साप्रदायिक झगडोकी अपेक्षा ग्रामशिक्षकके सामने दल-बन्दीके झगडेका प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। शिक्षक किसी अेक दलमें मिल जाता है और फिर या तो वह अुस दलका शकुनि बनता है या अुसके हाथका खिलौना। अिसमें से कभी कभी वह दो दलोंको लडाकर या अुनके बीच समझौता करानेवाला मध्यस्थ बनकर अपनी कमाअी बढाता है। शिक्षकको किसी झगडेमें तभी हाथ डालना चाहिये जब वह दोनों दलोंमें समाधान करा सके, नहीं तो अुसे दोनों दलोंसे अलग ही रहना चाहिये।

१४. व्यसनी शिक्षक विद्यार्थीके व्यसन नहीं छुडा सकता, सिर्फ अुन्हें सावधान कर सकता है। व्यसन न छोड सकनेवाला शिक्षक भी अपनी निर्बलता बतलाकर विद्यार्थीको अुपदेश दे। अिसमें कितनी सफलता मिलेगी यह नहीं कहा जा सकता।

१५ जिस गावमे बुनियादी शिक्षा दाखिल की गअी हो, अुस गावका कोअी आदमी यदि अपने बालकको पुरानी शिक्षा ही देना चाहता हो, तो अुसे जहा पुरानी पद्धतिकी शाला हो वही अपने लडकेको भेजना होगा। जब तक दोनो तरहकी शालायें चलती होगी तभी तक अैसा हो सकेगा। वातावरणको अनुकूल बनानेका काम कांग्रेस समितियोका भी है। वे आपकी सहायता जरूर करेगी, अैसी अपेक्षा रखनेका आपको अधिकार है।

१६ प्रतिस्पर्धा और पारितोपिकको जितना कम स्थान दिया दिया जाय अुतना ही अच्छा होगा। लेकिन अिसमे शका है कि अिन्हे सजा जितना ही बुरा कहा जा सकता है या नही। लालच पैदा करनेके लिअे नही, बल्कि कद्र बतलानेके लिअे पारितोपिक जैसी चीजका कुछ स्थान हो सकता है। अुत्साह बढानेकी दृष्टिसे भी प्रति-स्पर्धायें रखी जा सकती हैं। जैसे खेलोमे होता है, वैसे काममे भी हो सकता है। पारितोपिक देनेमे विवेक होना चाहिये। कद्रके रूपमे केवल धन्यवादका पत्र भी दिया जा सकता है, और जहा गरीबी हो वहा अुपयोगी साधन भी दिये जा सकते हैं।

१७ प्र०—वर्धा-योजनाकी शालाकी सफलताका माप-दण्ड क्या हो?

अु०—अुसमे अुद्योग और शिक्षा दोनोकी छूत लगेगी। बालकको जो बाते शालामे करनी या पढनी होगी, अुन्हे वह घर और पडोसियो तक पहुचावेगा। यानी चरखेका प्रवेश अुसके गावमे भी होगा। शालामे हुअी पढाअी अुसके दादा-दादीको भी मिलेगी। बुनियादी शालाका बालक दादी मासे जो बातें सुनेगा अुनके बदलेमे अुन्हे शालाकी बाते सिखाने लगेगा। जो सफाअी शालामे रखनी या करनी होती है, वही सफाअी वह अपने घरमे भी करेगा। गावमे अुद्योग बढेंगे, स्वावलंबन बढेगा, गावके खर्चकी अपेक्षा आय बढेगी।

शाला छोडते समय विद्यार्थीमें अितना आत्म-विश्वास आ जाना चाहिये कि अब वह दुनियामें अपने पांव पर खडा रहकर जीवन बिता सकेगा। यदि अुसे ज्यादा पढनेकी अिच्छा होगी तो अुसमें अपने बल पर बडे विद्यालयमें भरती होनेका साहस होगा। अिसके अलावा अुसकी नागरिक वृत्तिका अच्छी तरह विकास हुआ होना चाहिये। नागरिक वृत्ति यानी जिस मानव-समाजका वह अंग है अुस समाजके प्रति अपने सब धर्मोंका भलीभांति पालन करनेकी वृत्ति। अिसके मूलमें हिंसक संस्कृतिकी जगह अहिंसक संस्कृति पैदा करनेकी भावना है। हमें अैसी संस्कृति पैदा करनी है, जिसमें बहुतोंके हितोंका हनन करके कुछ ही वर्गोंमें ज्ञान, कला और वैभवकी वृद्धि करनेकी अपेक्षा सभी वर्गोंमें अुनका प्रचार हो और अूंच-नीचकी भावनाकी जगह सबमें समताकी भावनाका विकास हो। यह लक्ष्य जितने अंशोंमें सिद्ध होगा, अुतने ही अंशोंमें बुनियादी शिक्षा सफल मानी जायगी।

हरिजनबंधु, १६–४–१९३९

२

विद्यार्थी जीवनकी दुरवस्था*

प्र० — आजका विद्यार्थी जीवन छिन्न-भिन्न और विकृत हो गया है। आपकी रायमे अुसके कारण और अुपाय क्या है?

अु० — प्रश्न परसे मुझे यह मान लेना चाहिये कि यह प्रश्न पूछनेवाले विद्यार्थी अैसा समझते है कि अुनका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। शायद आपमे सभी अिस खयालके न हो, परतु कुछ लोग होगे। कुछ हद तक यह वात सच भी है। आज न केवल विद्यार्थियोका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है, वल्कि सारे हिन्दुस्तानका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। ससारमे अनेक नये अन्वेषण हो रहे हैं, फिर भी अशानि और जुल्म वढते जा रहे है। हमारे देशमे हमारा समाज और जीवन जो छिन्न-भिन्न हो गया है, अुसका कारण स्पष्ट है, और वह है हमारी पराधीनता। यह पराधीनता अिसलिअे आअी है कि हमने सच्चे धर्मका नाश कर दिया है। सच्चे धर्मके नाशसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी तरहसे हमारी अवनति हो गअी है और हमारा जीवन अव्यवस्थित हो गया है। राजनीतिक अवनतिसे परतत्रता आअी और अुसके वाद अनेक अनर्थोकी परपरा चली आअी है। अिस स्थितिमे मुक्त होनेके लिअे हमे जहासे धर्मका ह्रास आरभ हुआ है वही पहुचना चाहिये। अर्थात् धर्मका सशोधन करना होगा। धर्मके सशोधनमे हमारे समाज और जीवनका शोधन होगा। मै यहा धर्म शब्दका अुपयोग 'रिलिजन' के अर्थमे नही, वल्कि अधिक विशाल अर्थमे कर रहा हू। धर्मका अर्थ है वह वस्तु या वह जीवन-व्यवस्था जो मानव-समाजको अेक विशाल कुटुम्वमे अेकत्रित कर देती है, अुसमे विशालताकी भावना

---

* रविवार, ता० २९ नवम्बर, १९३६ को शामके चार बजे विद्यार्थी-सघके आश्रयमे गूजरात विद्यापीठमे हुअी प्रश्नोत्तरी प्रकरण २ मे ६ तक।

पैदा करनी है। यही धर्मका लक्षण है। संकुचितताको धर्मका लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो धर्म मनुष्यमें संकुचितता पैदा करे और समाजकी अैसी रचना करे जिससे मनुष्य-मनुष्यमे भेद पैदा हो, मनुष्यका व्यक्तित्व भी वैसा ही बन जाय, वह धर्म नहीं बल्कि धर्मका आभास मात्र है। मेरे विचारमें हिन्दुस्तानमे हमने धर्मके बारेमें खूब विचार किया है, तत्त्वज्ञानमे भी हम खूब गहरे अुतरे हैं, फिर भी अिन सबके कारण हम व्यक्तिवादी बन गये हैं। हमारी हरअेक प्रवृत्तिका ध्येय, फिर वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति हो या आर्थिक, व्यक्तिगत लाभ हो गया है। मोक्षका विचार भी खुद अपने लिअे ही किया जाता है। 'आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्' में भी हम स्वार्थसे ही प्रेरित होते हैं। अिस प्रकार धर्मका ध्येय व्यक्तिगत हो जानेसे धर्म संकुचित हो गया। अिससे समभावका, जो धर्मकी आत्मा है, विस्तार होनेके बदले विषमता पैदा करनेवाली धर्म-परम्परा आरंभ हो गअी। अिसका सीधा परिणाम यह निकला कि समाज और राज्य-व्यवस्थामें सच्ची वस्तुका ह्रास होता गया और मताग्रह पैदा हुअी। अिस अवनत दशामें से निकलकर फिर अुन्नति करनेके लिअे व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन बितानेकी आदत डालनी चाहिये।

परन्तु यह तो सारे समाजकी सामान्य बात हुअी। विद्यार्थियोंका जीवन छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, अुसकी जड़में विचार करने जैसी अेक दूसरी चीज है। आज विद्यार्थी जिनसे संस्कार ग्रहण करते हैं, वे अुनके गुरु हैं। विद्यार्थियोंके गुरु आज कौन हैं, अिसका निरीक्षण करने पर मुझे दो गुरु दिखाअी दिये हैं: अेक तो पश्चिमके लेखक और दूसरे नाटक-सिनेमाके नट-नटी। आजके बच्चोंके गीत-[illegible] सिनेमासे ही सीखे जाते हैं। आजके धार्मिक-भजन और सामाजिक [illegible] [illegible] सर्वनाश यानी रंगभूमिसे ही [illegible] जाती है। [illegible] [illegible] भी [illegible] था, परन्तु अुस समय रंगभूमिका [illegible] [illegible] नहीं [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] बहुत ही आगे बढ़ गयी है।

अिसके अलावा, अुसका पोषण करनेवाली फिलसूफी और साहित्यका प्रवाह भी वहता ही जा रहा है। विशेष ध्यानमे लेने जैसी वात तो यह है कि विद्यार्थीके आसपासकी सारी प्रवृत्तिया अुस पर अैसे सस्कार डालती है कि वचपनसे ही भोगके प्रति अुसकी अभिरुचि वढे। अुद्योग-युगका जो कुछ भी विकास हो रहा है, अुस सवकी जडमे यह मान्यता है कि मनुष्यका सर्जन भोग भोगनेके लिअे ही हुआ है। धर्म-ग्रथोमे लिखा है कि अीश्वरने सव कुछ रचकर मनुष्यको सौप दिया है, अिसलिअे मनुष्यने मान लिया कि यह सव अुसके अुपभोगके लिअे है। यह मान्यता किसे रोचक न लगेगी? मनुष्यको रोचक लगी, अिसलिअे अुसे यह मान्यता पसन्द आअी।

अत. वस्तुस्थिति यह है कि जो मुहसे त्यागकी वातें करते है अुनका जीवन भी भोगकी तरफ खिच रहा है। मनुष्यका निश्चय-बल और सयम-शक्ति अितनी घट गअी है कि सयममे स्थिर रहनेकी अपेक्षा भोगमे फिसलनेकी तरफ अुसका मन अुसे खीच ले जाता है। शाला-महाशालाओमे खूव पढनेके वाद भी यही स्थिति रहती है, अिसलिअे वह चुपचाप अुस परिणामको सहन करता है। अिसलिअे जव भोग अुस पर आक्रमण करता है, तो मन निर्वल होनेसे वह हार जाता है। अिस स्थितिसे छूटनेके लिअे अिस प्रकारकी सस्कार-प्राप्तिसे ही छूटना चाहिये। किन्तु वह कठिन मालूम होता है, क्योकि हमारी रोटीके लिअे भी हमे यह शिक्षा लेनी ही पडती है।

दूसरी ओर विद्यार्थी पश्चिमके समृद्ध देशोकी जीवन-पद्धतिका अनुकरण करनेका प्रयत्न करते है। गरीव आदमी धनवानकी नकल करता है तो वह अपनी सादी-सी झोपडी भी खोता है और अुसे महल भी नही मिलता। पश्चिमके समृद्ध देशोने भोगका जीवन वितानेके लिअे अितने साधन और सुविधाये पैदा की है कि अुनके कारण अुनकी शारीरिक शक्ति और भोगशक्ति टिकी रहती है। लेकिन अिस भोगी जीवनकी छूत जव फैशनके रूपमे गरीवोको लगती है तव यह

अुनसे बच नहीं सकता। अमीरको क्षय हो जाय तो वह चाहे जो साधन जुटाकर अुनसे बच सकता है; परन्तु यदि गरीब अनुकरण करके क्षयका शिकार हो जाय तो अुसे मरना ही होगा। अिस प्रकार युरोपकी समृद्ध प्रजाके मौज-शौक, भोग-विलासको आदर्श बनाकर अुसका अनुकरण करेंगे तो हमारी हार निश्चित है। अुनके पास अपार कृत्रिम साधन हैं। किन्तु जहां दूध जैसी चीज भी नसीब न होती हो, वहांकी प्रजा अुनके जैसे विलासोंका सेवन करे तो अुसका नाश ही होगा। मतलब यह कि यदि आजके विद्यार्थी जीवनको अुन्नत और विकसित बनाना हो, तो अुसका यही रास्ता है कि भोग-विलास और मौज-शौकका जीवन छोड़कर हम संयमी जीवन बितावें। यदि विद्यार्थी संयमी न बने तो देशकी पराधीनता भी दूर नहीं हो सकती।

हरिजनबंधु, २७-१२-१९३६

३

धंधा या विकास?

प्र० — आपने 'हरिजनबंधु' में लिखा है कि विद्यार्थियोंको अपना भावी धंधा आजसे ही निश्चित कर लेना चाहिये। परन्तु क्या अिससे विद्यार्थीका सच्चा विकास रुक नहीं जायगा?

अु० — यहां विद्यार्थीके विकासका सामान्य अर्थ करें तो मैं कहूंगा कि वह नहीं होगा। आज जो शिक्षा दी जा रही है अुसमें बुद्धिका विकास नहीं होता। बुद्धिके विकासका प्रमाण और कसौटी क्या है? बुद्धि सच्चा निर्णय करनेकी शक्ति। विद्यार्थीको किस तरह रहना चाहिये, किस तरह जीना चाहिये, जीवन क्या है — अिन सब बातोंमें निर्णय करना आ जाय तो कहा जा सकता है कि अुसने बुद्धिका विकास किया है। लेकिन धंधा तय करनेके बाद विद्यार्थी [illegible]

नही कर पाता कि अब क्या किया जाय। अुस अनिश्चिततामे वह तय करता है कि चलो, चार वर्ष और निकाले, फिर अिस बातका निर्णय करेंगे। अितना पढ लेनेके बाद भी वह यह निश्चय नही कर पाता कि अब क्या करूगा। अिस प्रकार अनिश्चिततामे ही जीवनका अुत्तम समय बिगाडनेके बाद भी जब हम अनिर्णयमे ही रहते है, तब कैसे कहा जा सकता है कि हमने बुद्धिका विकास किया? जो किसान खेती करता है वह जानता है कि खेतकी जुताअी कैसे की जाय। मोटर चलानेवाला भी जानता है कि अुसे किस रास्ते जाना है। लेकिन पढे-लिखे होने पर भी हमे यह खयाल नही होता कि हमे किस रास्ते जाना है।

बात यह है कि स्कूल-कॉलेजोमे हम बुद्धिकी नही बल्कि तर्क-शास्त्रकी शिक्षा लेते है। और तर्कसे पूर्वपक्ष और अुत्तरपक्षकी रचना करनेकी शक्ति ही बढती है, सिर्फ विचारोको व्यवस्थित रूप देनेकी कला हाथ आती है। जैसे कोअी पिंगलशास्त्री विविध अक्षरो या मात्राओको जमा कर छन्दकी रचना कर सकता है, जैसे कोअी सगीतशास्त्री विविध स्वरोसे सगीतकी योजना कर सकता है, अुसी प्रकार हम शिक्षाके द्वारा तर्कको व्यवस्थित करनेकी कला प्राप्त करते है। मुझे कुछ बी० अेस-सी० के विद्यार्थी भी अैसे मिलते है, जिन्होने विज्ञानमें भी केवल तर्कका ही ज्ञान प्राप्त किया होता है। मतलब यह कि शालामे बुद्धिकी शिक्षा दी जाती है, यह मानना भ्रम है। वह भ्रम हमे निकाल देना चाहिये और समझना चाहिये कि यह शिक्षा बुद्धिकी नही बल्कि तार्किक शिक्षा ही है। केवल तर्ककी शिक्षासे निश्चय करनेकी शक्ति घटती जाती है, और आत्मबल जैसी कोअी वस्तु हममे नही रहती। जीवनके सर्वोत्तम काल, विद्यार्थी जीवन के पहले पच्चीस वर्ष यदि हम बिना किसी निर्णयके बितायें, तब यदि बादके पचास-पचपन वर्षोंमें — सौ वर्ष तो हरगिज नहीं — पहलेके सस्कार बाधक बने तो अुसमे आश्चर्य ही क्या?

अधिकतर लोग मेहनत करके खानेकी स्थितिमें होते है। मेहनत करके खाना जीवनका अेक बड़ा सत्य है। अिसलिअे यदि पहलेसे ही जीवनका मार्ग निश्चित हो जाय, तो अुससे निश्चयीकी संस्कारिता बढ़ेगी। अैसा मनुष्य हर चीजमे अपने विकासकी दृष्टि रखेगा। वह प्रत्येक कार्यमे सावधानी रखेगा। जिसे यही मालूम न हो कि कहा जाना है, वह किससे से क्या ले सकेगा? अिसलिअे मुझे लगता है कि बचपनसे ही विद्यार्थीको यह निश्चय करा देना चाहिये कि अुसको क्या बनना है। सारे संस्कार जीवनके आसपास गुंथे होने चाहिये। अुन संस्कारोमे भले वह ललित कलाकार बने या औद्योगिक कारीगर, परतु वह भला नागरिक तो होगा ही। दक्षिण अफ्रीकाका प्रेसिडेन्ट जनरल बोथा कुशल गडरिया भी था। जनरल स्मट्सके बारेमें भी यही कहा जाता है। अिसका अर्थ यह हुआ कि कोअी मनुष्य मोची होने पर भी कांग्रेसका अध्यक्ष हो सकता है। मोची भी नागरिक होगा। वही सच्चा नागरिक है, जो किसी अुपयोगी धंधेमे कुशल है। जिसमे किसी भी अुपयोगी धधेकी निश्चितता हो और जो अपनी कुशलता और योग्यताका अुपयोग समाजके हितके लिअे करना जानता हो, वह सच्चा नागरिक है।

यहां मैं तीसरे प्रश्नको भी मिला देता हू। क्योंकि अुसमे भी यह पूछा गया है कि "हिन्दुस्तानकी आजकी परिस्थितिमे विद्यार्थियोंको कुशल कारीगर बनाने पर विशेष जोर दिया जाय या अुन्हें आदर्श नागरिक बनानेका प्रयत्न किया जाय?"

अच्छा नागरिक बननेके लिअे किसी भी धन्धेकी निश्चितता आवश्यक है, क्योंकि जिसके पास धन्धा नहीं वह बिना वर्णका है। कोअी भी निश्चित ध्येय न रखनेवाला वर्णहीन — बगैर धन्धेका — आदमी नागरिक नहीं हो सकता। अिस मामलेमें विद्यार्थीको पहलेसे ही निश्चितता होनी चाहिये। आज प्राथमिक शिक्षामें लिखना, पढ़ना और हिसाब रखना सिखाया जाता है। ये तीन काफी नहीं होते, अिसलिअे

अिनमें मै चौथा और जोडता हू कि अुसे 'मैकेनिक' भी होना चाहिये। जिसे सादे औजारोका भी अुपयोग करना नही आता, अुसने प्राथमिक शिक्षण नही लिया अैसा समझना चाहिये। यानी औजारोका सादा अुपयोग प्राथमिक शिक्षाका अंग माना जाना चाहिये। हर विद्यार्थीको कारीगर — वुद्धि चला सके अैसा मजदूर — वनना आना चाहिये। अिस मजदूरीमे मै चार वस्तुओकी शिक्षाको महत्त्व देता हू वढअी-गिरी, लुहारी, खराद-काम और 'फिटर' का काम। अिन चारकी कुशलताके विना मै प्राथमिक शिक्षाको अधूरी मानूगा। देशकी राज-नीतिक परतत्रता और समाजकी अव्यवस्थाके कारण आज वेकारी सवके मार्गमे वाधक होगी। लेकिन भविष्यमे जिसके पास कारीगरी होगी, अुसके लिअे भरण-पोषणका रास्ता आसान हो जायगा।

हरिजनवन्धु, ३–१–१९३७

४

अुद्योग या शरीरश्रम ?

प्र० — विद्यार्थीको सर्वांगीण शिक्षा देनेके लिअे किसी खास अुद्योगका शिक्षण देनेके वदले यदि सपूर्ण शरीरश्रमवाला जीवन विताना सिखाया जाय तो कैसा हो ?

अु० — केवल शरीरश्रम काफी नही है। अुसके साथ अुद्योग न हो तो काम नही चल सकता। आज देहातमे शरीरश्रम तो सभी करते है, लेकिन वह सब काम वुद्धिहीन होता है। परम्परासे जिस प्रकार काम होता आ रहा है, अुसी प्रकारसे आज भी होता है। गाधीजीने मधुसूदन दासके शब्दोंमें अेक वार कहा था कि "हमारा देहाती जिस वैलको रास पकडकर हाकता है, अुसीके जैसा वन गया है।" देहातीमें योजना या वुद्धिपूर्वक मेहनत करनेका तरीका नही

होना। मतलब यह कि शरीरश्रममें भी कौशल चाहिये। अिसलिअे अुद्योगका शिक्षण छोड़ा नहीं जा सकता। विद्यार्थीको किसी भी अेक अुद्योगमें पारंगत होना चाहिये। 'सर्वांगीण' शब्द आजके बहुतेरे Slogans — मोहक सूत्रों — जैसा है। 'संस्कारिता, कला, व्यक्तित्व आदिका विकास' शब्द बहुत बार निरर्थक-से लगते हैं। विकास तो अेकांगी ही हो सकता है। जिसका सर्वांगीण विकास हुआ हो अैसा तो केवल अीश्वर ही माना जा सकता है। वैसे हम तो देखते हैं कि कोअी भी शाला किसी अेक निश्चित वस्तुमें पारंगत बननेका शिक्षण देनेका दावा कर सकती है। सर्वांगीण विकास करानेवाली कोअी शाला हो ही नहीं सकती।

हरिजनबन्धु, ३–१–१९३७

५

धार्मिक शिक्षणकी दृष्टि

प्र० — शालाके अभ्यासक्रममें धार्मिक शिक्षण किस दृष्टिसे दिया जाना चाहिये?

अु० — किसी भी धर्मका सच्चा शिक्षण तो अैसा होना चाहिये, जिससे हमारे हृदय संकुचित नहीं, बल्कि विशाल बनें। हमने अेक महान सूत्र सीखा है 'अहिंसा परमो धर्मः'। मानवजातिको सुख-शांतिसे रहना हो तो मानवके प्राणोंके प्रति आदर बढ़ना चाहिये। आज मानवके प्राणोंके प्रति समाजमें आदर नहीं है। अहिंसा-धर्मी जैनोंमें भी परस्पर सिर फूटते हैं और धर्मके नाम पर कितने ही अनर्थ होते हैं। अिन सबकी जड़में बात यह है कि हमें यह सिखाया ही नहीं गया कि [illegible] है। [illegible] वैष्णव और जैन [illegible] नहीं होंगे। लेकिन [illegible] अपने धर्मके [illegible]

हिंसासे अिन्कार किया हो अैसा जाननेमे नही आया। जैन राजाओने भी युद्ध किया है। अिसका अर्थ यह हुआ कि जहासे अहिंसाका आरभ होना चाहिये था, वहासे नही हुआ। हमने छोटे-छोटे जीवोमे और वनस्पतिमे भी प्राण देखा, किन्तु मनुष्यको अिस दृष्टिसे नही देखा। आज तो युद्धके लिअे जानेवाली सेनाको धर्मगुरु पोप आशीर्वाद देते हैं। वैसे ही वहुतेरे धर्मगुरुओको युद्धके प्रति तिरस्कार नही होता।

शिक्षण-क्रममे धार्मिक शिक्षाकी दृष्टि अैसी होनी चाहिये, जिससे मानव-प्राणके प्रति आदर वढे। आज हमने खाने-पीनेके वारेमे अहिसाकी दृष्टि वढा ली है, किन्तु मानव-समाज हिलमिल कर रहे और दुश्मनी मिटे अिसमे अहिंसा-धर्म नही जाना। मछुआ मछली मारनेका धन्धा करता है, अिसलिअे अुसे नफरतसे अधम कहा जाता है, परन्तु मोती वेचनेका धन्धा अधम नही माना जाता। किसीको व्यवहारमे लूटने, चूसनेमे हिंसा नही मानी जाती, परन्तु असलमे वह हिंसा ही है।

अहिंसाका अर्थ है प्राणके प्रति आदर। अिसमे अन्य जीवोंके साथ मानव-प्राणका भी आदर आ जाता है। किन्ही अनिवार्य सयोगोमे आत्मरक्षा करते हुअे या दूसरी हिंसाको रोकते हुअे हिंसा हो, तो अुसे अपवाद माना जा सकता है। परन्तु धर्मके नाम पर जो झगडे होते हैं, अुनमे धर्म नही है। सहजानन्द स्वामीने आदेश दिया है कि स्त्री, धन और साम्राज्यके लिअे मनुष्यकी हिसा न करनी चाहिये, अुसमे धर्मके नान पर भी मानव-हिंसाका निपेध जोडना आवश्यक है। और अैसी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। मनुष्यका वध न करनेकी वात स्वीकार कर लें तो धर्मकी सारी दृष्टि ही वदल जायगी।

हरिजनवन्धु, ७–३–१९३७

६

वर्ग-विग्रह बनाम अहिंसा

प्र० — आजकी सामाजिक अव्यवस्था वर्ग-विग्रहके द्वारा दूर हो सकेगी या अहिंसा और प्रेमके मार्गसे? अहिंसाकी शक्तिने मानवताके विकासमे कितना योग दिया है?

अु० — हम जब हिंसा करना आरभ करते है, तब यह मानो भूल जाते है कि हम अेक ही योनिके है। कुत्ते या भेडियोने सामूहिक रूपमे अेक-दूसरेका नाश किया हो अैसा नही सुना। यह अलग बात है कि क्षणिक क्रोधमे पशु हिंसा करते है। परन्तु वे सामूहिक रूपमे लडाअी ही किया करते हो अैसा तो जगलोमें देखनेमे नही आया। परन्तु मनुष्य हिंसामे कुत्ते और भेडियेसे बढ जाता है। अिसीने वह अपनी ही योनिके — मानवके — सहारके साधन जुटानेमें अपार सम्पत्ति और शक्ति खर्च करता है। आज करोडो रुपये खर्च करके सहारके साधन तैयार किये जा रहे है। वर्ग-विग्रहकी जडमें भी अैसा ही हिंसाका भाव है। क्योकि वर्ग-विग्रहके सिद्धान्तके प्रचारमें मानव-मानवके बीच अनादरकी भावना पैदा करनेका प्रयत्न तो रहता ही है। सामाजिक या दूसरी अव्यवस्था दूर करनेका यह अिष्ट मार्ग नही है। व्यवस्थित रीतिसे विकसित किया हुआ प्रेमका मार्ग ही अिससे बढकर है। आज तक लडाअी, द्वेष तथा सहारके साधनोके पीछे मनुष्यने अपार बुद्धि और धन बरबाद किया है। न जाने कितनी बुद्धि और पैसा खर्च किया होगा। परन्तु धरती मा जैसे जानती है अुस प्रेमका — अहिंसाकी शक्तिका — व्यवस्थित रूपसे विकास करनेका प्रयत्न नही किया गया। किसी अीसामसीह, भगवान बुद्ध या गाधीजी जैसे व्यक्तियोने ही अिसका प्रयोग किया है। [illegible] मनुष्योकी मारनेकी शक्ति घटे और समाज अुसमें रहनेके लिये [illegible]

अपनी बुद्धि खूब चलाअी है, जब कि गाधीजीने कुछ ही वर्षोकी अहिंसाकी साधनासे सत्ताके पैर अुखाड दिये है। अिन दोनोमे किसकी शोध ज्यादा अच्छी मानी जायगी?

आज सहारके विविध साधन पैदा होते ही जा रहे है। अिस-लिअे मनुष्य मानने लगा है कि सहारके साधन अनन्त है। तब मै पूछता हू कि प्रेम और सत्याग्रहकी शक्तिको क्यो न अनन्त माना जाय? गाधीजीने सत्य और अहिसाकी शक्तिका नया प्रयोग किया और अिस मानव-बलको ससारमे अुज्ज्वल किया। अिसी प्रकार सच्ची निष्ठासे यदि दूसरे भी अिस काममें लगें, तो हम आगे क्यो नही बढ सकते? अहिंसा और प्रेमकी शक्तिका मनुष्यको पूरा अनुभव हो गया है और अुसका अन्त आ गया है, अैसा माननेके लिअे कौनसे कारण है? गाधीजीने जो कुछ बतलाया वह वहा पूरा हो गया, अैसा कैसे माना जा सकता है? आज यदि कोअी कहे कि अभी विविध प्रकारके यत्र और बढेंगे, तो अुसमे हमे आश्चर्य नही मालूम होता। किन्तु अुसी प्रकार यदि यह कहा जाय कि प्रेम और अहिंसाकी शक्तिका और भी अधिक विकास किया जा सकता है, तो अुस पर श्रद्धा रखना बुद्धिसे बाहरकी बात जान पडती है।

गाधीजीने जब अहिंसाका मार्ग अपनाया तो अुसके लिअे सशोधनका काम हाथमे लिया। दूसरोने अैसे प्रयत्न कहा किये है? हमें यदि अहिंसाके रास्ते जाना हो, तो अुससे अुलटा रास्ता हमारे लिअे बिल-कुल बन्द होना चाहिये। यदि हम अधूरी श्रद्धासे चलेंगे तो कुछ भी लाभ नही होगा। अहिंसाके मार्गमे जरा भी असफल हुअे कि हिंसाकी ओर चले, यह ठीक नही। अिसमे तो कुछ भी काम न होगा। अहिंसामे कैसी-कैसी शक्ति भरी है यह जाननेके लिअे भी अुसके विरुद्ध दूसरे पहलूका हमे सर्वथा त्याग करना होगा।

अहिंसाकी शक्तिने मानवताके विकासमें जो योग दिया है, वह अितना बडा है कि अुसका मैं यहा पूरी तरहसे वर्णन नही कर

सकता। यदि अहिंसा-शक्तिके योगके बारेमे आपको कुछ अुपयोगी बाते जाननी हो, तो मैं आपको श्री नरहरिभाअी परीखकी अनुवाद की हुअी प्रिंस क्रोपाटकिनकी पुस्तक 'सहायवृत्ति'* पढ जानेकी सलाह देता हू। जैसा कि डार्विनने कहा है, मनुष्य जातिने 'जिसकी लाठी अुसकी भैंस' के न्यायसे विकास किया है। यह सच है कि वह विकास परस्पर सहयोगसे हुआ है। यह बात आपको अुस पुस्तकमे मिलेगी। मैं मानता हू कि वह पुस्तक हर विद्यार्थीको पढनी चाहिये। वह डार्विनसे सर्वथा भिन्न दृष्टिसे लिखी गअी है, और अुसे पढनेसे संघशक्तिके प्रति आदर बढ सकता है।

अहिंसाके विकासका माप अेक रीतिसे निकाला जा सकता है। मनुष्य-समाजने धीरे-धीरे अहिंसाकी ओर प्रयाण किया है, वह देखा जा सकता है। अुदाहरणार्थ, अेक समय अैसा था जब अपराधीको देहान्त दण्ड दिया जाता था। अिसके अलावा, छोटे-छोटे अपराधोंके लिअे अपराधीको कांटोंमे जलाकर, पानीमे डुबोकर या पत्थरकी मारसे खतम कर दिया जाता था। तेलमे तलने और चमडी अुधेडनेकी बाते भी कही जाती है। ये क्रूर प्रथायें आज नही रही। राज्यकी आज्ञासे भी अब यदि प्राणान्त दण्डकी सजा दी जाती है, तो अुसमें हमारा झुकाव अैसे तरीके खोजनेकी ओर रहता है कि मरनेवालेको कमसे कम पीडा हो। वैज्ञानिक या कसाअी लोग प्राणियोंकी हिंसा करते हैं अुसमें भी वे अैसा तरीका या साधन काममें लेते हैं जिससे प्राणी यातना महसूस न करे। यद्यपि अेक ओर युद्ध-सामग्रीमें [illegible] सब तरहकी क्रूर पद्धतियां बढती जा रही हैं, फिर भी नागरिक जीवनमें ये सब चीजें अहिंसाका विकास बतलानेवाली हैं। मनुष्यने हिंसा की है और आज भी करता है, फिर भी अुसने अुसको शांति या कल्याणकारक अनुभव नहीं किया। क्योंकि अुसमें [illegible]

* नवजीवन द्वारा प्रकाशित गुजराती अनुवाद। कीमत १-८-०, डाकखर्च ०-३-० ।

हुआ है। मनुष्यको स्वभावसे ही जीवोका दुःख घटानेमें सन्तोष मिलता है। अहिंसा-शक्तिने मानवताके विकासमें कितना योग दिया है, अिस पर आपमे से अितिहासके विद्यार्थी काफी छान-बीन करके अेक निवन्ध तैयार कर सकते है। यह सारा विषय वहुत ही रसप्रद और महत्त्वपूर्ण है। आपमे से किसीको अिस दिशामें प्रयत्न करना चाहिये।

हरिजनवन्धु, ७-३-१९३७

७

स्वतंत्रता और नियमन

अेक विद्यार्थीने नीचे लिखा प्रश्न पूछा है

"हम स्वतत्रतामे विश्वास करते है, फिर भी शालाओमें विद्यार्थियोसे व्यवस्थित काम करवानेके लिअे नियमनका वोझ क्यो लादा जाता है? यदि वे स्वतत्र रूपसे काम न कर सकते हो, तो अुसका कारण क्या है? अुन्हे स्वतत्र रूपसे काम करनेकी आदत डालना किसका फर्ज है?"

हम स्वतत्रतामें विश्वास रखनेवाले है, अिसका अर्थ यह नही कि हम अराजकता या अव्यवस्थामे भी विश्वास रखे। देश आज जिस स्वतत्रताके लिअे आन्दोलन कर रहा है, वह अेक खास प्रकारकी ही स्वतत्रता है। हमारा प्रयत्न अैसी स्वतत्रता पानेका है जिसमें देशके कारोवारमें विदेशियोका हस्तक्षेप न रहे।

अिसके अुपरान्त हम यह चाहते है कि देशका कारोवार चलाते हुअे अमुक वातोमे हर नागरिक तथा समाजको अपनी अिच्छाके मुताविक चलनेकी स्वतत्रता हो। अिन वातोको छोडकर अन्य वातोमे नियमन न हो, अैसा कोअी भी समझदार मनुष्य नही सोचता। मतलव

यह कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानमे भी व्यक्तियों तथा समूहो पर अनेक प्रकारके अकुश, अनिवार्य कर्तव्य आदि रहेगे ही।

जैसा देशमे, वैसा ही सस्थाओमे भी — यानी स्कूलोमे भी होगा।

'मुद्राराक्षस' के लेखकने स्वतत्रताकी अच्छी परिभाषा की है: स्वतंत्रताका अर्थ है अच्छे काम करनेकी स्वतत्रता। गलत काम करनेसे, कर्तव्य-भ्रष्ट होनेसे, गड्ढेमे गिरनेसे जो नियमन रोकता है वह स्वतत्रताका विरोधी नहीं है।

मतलब यह है कि व्यवस्थित समाज या सस्थामें कोअी नियमन न हो यह स्थिति कभी आ ही नही सकेगी। आज्ञा देने और माननेके कर्तव्य रहेंगे ही। यदि सुधार हो सकेंगे तो वे आज्ञा करने, काम करवाने तथा व्यवस्था रखनेके तरीकोमें होंगे। अनगढ शिक्षक बेतसे वर्गमें व्यवस्था रखनेका प्रयत्न करेगा, मध्यम शिक्षक विद्यार्थियोको लालच बतलाकर और अुत्तम शिक्षक कला और प्रेमके द्वारा वैसा करेगा। नियमन अखरे नही या अखरे तो कमसे कम अखरे, अितना ही किया जा सकता है।

फिर भी नियमन तो नियमन ही रहेगा। कभी न कभी तो वह अखरेगा ही। प्रेमका नियमन हो फिर भी आलसीको अखरे बिना नहीं रहेगा; जड मनुष्यको भी अखरेगा, जिसे अपनी बुद्धिका अत्यन्त गर्व हो, अुसको भी अखरेगा; और स्वच्छन्दी, व्यसनी, दुर्जनोको भी अखरेगा। वे तो कहेंगे कि हमारी स्वतत्रताका हनन हो रहा है।

शाला या समाजमें नियम-भंगके लिअे पुराना अिलाज दण्ड रहा है। जैसे शालामें दण्डकी प्रथा धीरे-धीरे अुठती जा रही है, वैसे ही हम आशा करें कि वह समाजसे भी अुठ जायगी। हो सकता है कि नियम भंग करनेवालोंको किसी-न-किसी प्रकारके रोगी मानकर सुधार होनेकी अिलाज करनेकी व्यवस्था की जाय। परन्तु यह रोगकी अिलाज भी सबके लिअे अनिवार्य होगा, जिससे यह कहाँ कहा जा सकता कि यह सबको पसन्द ही आयेगा। [illegible] है [illegible] आदमी

करनेवाले विद्यार्थी अस्पतालमे जानेकी अपेक्षा वेंतकी सजा ज्यादा पसद करें।

बालक या बडे स्वतंत्र रूपमें स्वेच्छासे अपना कर्तव्य पूरा नही कर पाते, अुसके कअी कारण हो सकते हैं, अुदाहरणार्थ, काम करनेकी आदतका अभाव, शारीरिक या मानसिक रोग, हृदय और बुद्धिकी जडता, कोअी खराब आदत, कोअी स्वार्थ। ये लोग स्वतत्र रूपमे काम करने लगें, अिस ध्येयको सामने रखकर नियामकोको काम करना चाहिये। अिस सम्बन्धमे किस प्रकारके अुपाय किये जाय, अिसका शास्त्र धीरे-धीरे बनता और विकास करता जा रहा है।

विद्यार्थियोको अेक बात जान लेनी चाहिये. जबरन नियम पलवाना किसी भी शिक्षक या अधिकारीको पसद नही होता। प्रेमके सिवा किसी दूसरी रीतिसे चलनेवाले नियामकको भी जबरदस्ती करनेमें कोअी आनन्द नही आता। नियम पालनेकी आवश्यकताके कर्तव्यमे से अुसे जो रीति सूझती है या आती है, अुसीका वह अमल करता है।

नियम तोडनेवालोको स्वतत्र रूपसे काममें लगानेका कर्तव्य केवल नियामकोका ही नही, बल्कि अच्छी तरह नियम पालनेवालों — यानी दूसरे विद्यार्थियो और नागरिकोका भी है। अेक विद्यार्थी स्वतत्र रूपसे काम न करे तो अुसे सुधारनेमे दूसरे विद्यार्थियोको भी मदद करनी चाहिये।

'शिक्षण अने साहित्य', फरवरी १९४०

८

संस्कारी और असंस्कारी बालकोंका सहवास

प्र० — कअी माता-पिता अपने बालकोको गरीबोके लड़कोंके साथ नहीं खेलने देते। क्या यह अुचित है? क्या अिससे बालक पर बुरे सस्कार पड़ते है?

अु० — यहा गरीब शब्द जितनी आर्थिक हीनता बतलाता है अुसकी अपेक्षा सास्कारिक या जातिकी हीनता अधिक बतलाता है। साधारणतः माता-पिता अपनी जातिके गरीब बालकोके साथ अपने बालकोके मिलने-जुलनेमें आपत्ति नही मानते। परन्तु जिन्हे वे अपनेसे नीची जातिके या हलके सस्कारवाले समझते है, अुनसे नही मिलने देते।

परन्तु अधिकतर तो अिसमें मिथ्याभिमान ही रहता है। मिलने-वाले बालक किस स्वभावके है, अुसी पर सारी बात निर्भर करती है। बचपनमें मेरे पिताके अेक हमालका लडका मेरा घनिष्ठ मित्र था। अुनके साथ हमालोंके दो-तीन और लडके मेरे साथ खेलते थे। अुन लड़कोंने मुझे कभी बुरी आदतें सिखायी हों अैसा मुझे याद नहीं पड़ता। हां, अुनका प्रेम मुझे अभी तक याद है। लेकिन जिन निकटके सगे-सम्बन्धियोंके लड़कोंके साथ मैं खेला था, अुनसे तो मैंने बहुतसे दोष सीखे थे। अेकके साथ रहकर मैंने अुसे अेक-दो छोटी-छोटी चोरियां करनेमें भी मदद दी थी। बुरी आदतें सिखाने-वाले अधिकतर तो अपने सगे-सम्बन्धियोंके या समान दर्जेके लड़के ही होते हैं। यह 'गरीब' का लड़का गंदी गाली देता तो मैं समझता कि अुसकी जातिमें गाली अैसी चलती है, जिससे वह दे सकता है, पर मैं नहीं दे सकता। मैं तब अुसे कहता कि भाअी, गाली नहीं देना

चाहिये तो वह मान लेता था। परन्तु जब सम्बन्धियोंके लडके गाली देते और मैं अुन्हे रोकने जाता तो वे कहते, बडा आया समझदारका बाबा; तुझे अच्छा न लगता हो तो हमारे साथ खेलने न आया कर। बादमें तो खेलनेकी गरजसे मैं अुनकी गन्दी भाषा सहन भी करने लगा और अुसमे कुछ मजा भी लेने लगा। समान दरजेके बालकोने मुझे जो कुसस्कार दिये है, अुनकी ओर यहा मैंने थोडा अिशारा किया है। बडोमें यह अन्धविश्वास रहता हे कि अुनके और अुनके समान दरजेवाले बालकोमें कोअी दुराचरण हो ही नही सकते। परन्तु कुसस्कार प्राय॰ समान दरजेके बालकोसे ही फैलते हे।

अिसलिअे अिसमें गरीब-अमीर या अूची-नीची जातिका भेद करना ठीक नही। हमारा लडका कैसा है और अुसके साथी कैसे है, अिसका व्यक्तिगत अध्ययन करके ही यह निश्चित करना चाहिये कि साथियोंके साथ अुसे रहने देना अच्छा है या बुरा।

'शिक्षण अने साहित्य', अक्तूबर १९४०